जैन शोध अकादमी, अलीगढ़

सम्पर्क सूत्र : मंगल कलश, ३९४, सर्वोदय नगर, आगरा रोड, अलीगढ़-२०२००१

जैन हिन्दी पूजा काव्य

परम्परा और आलोचना

[आगरा विश्वविद्यालय द्वारा १९७८ ई० में पी-एच०डी० उपाधि हेतु स्वीकृत शोधप्रबन्ध]

लेखक :

डॉ० आदित्य प्रचण्डिया 'दीति'

[एम० ए० (स्वर्णपदक प्राप्त), पी-एच० डी०]

डॉ० आदित्य प्रचण्डिया 'दीति'

प्रथम संस्करण	महावीर जयन्ती, अप्रेल, १९८७
प्रकाशक	जैन शोध अकादमी, अलीगढ़ सम्पर्क सूत्र : मंगलकलश ३९४, सर्वोदय नगर, आगरा रोड, अलीगढ़–२०२००१ (उ०प्र०)
मूल्य	अकादमी की सदस्यता
मुद्रक	दी प्रिण्टर्स हाउस, आगरा

Jain Hindi Pooja Kavya : Parampara Aur Alochana by the Dr. Aditya Prachandia Deeti; Published by the Jain Sodh Academy, Mangal Kalash, 394, Sarvodaya Nagar, Agra Road, Aligarh-202001. (U.P.)

Price—Membership of Academy

मातृ देवो भव

समर्पण

जिनका सारा जीवन पूजामय था और जिनकी वात्सल्य सिक्त सीख मुझे आज भी सम्बोधती-साधती है, उन्हीं ऋजुमना, धर्म-परायणा, महिलामणि, पूज्या मातेश्वरी स्वर्गीया मनोरञ्जनी प्रचण्डिया 'देवीजी' की पावन पुण्य स्मृति में

—आदित्य प्रचण्डिया 'दीति'

जैन शोध अकादमी, अलीगढ़

विशिष्ट संरक्षक

स्व० श्री नौरंगराय जैन
(स्व० आनंदप्रकाश जैन, श्री वेद प्रकाश जैन,
श्री कैलाशचन्द्र जैन, श्री सुरेशचन्द्र जैन,
श्री सुभाषचन्द्र जैन)
नौरंग भवन, जी० टी० रोड, अलीगढ़

संरक्षक मण्डल

श्रीमान सेठ उम्मेदमल जी पाण्डया, दिल्ली
श्रीमान लाला प्रेमचन्द्र जी जैन, दिल्ली
श्रीमान बाबू महताबसिंह जी जैन, दिल्ली
श्रीमान सेठ रविचन्द्र जी जैन, कानपुर
श्रीमान सेठ सौभाग्यमल जी जैन, लखनऊ
श्रीमान सेठ ताराचन्द्र जी गंगवाल, जयपुर
श्रीमान सेठ चन्द्रकुमार जी जैन, फीरोजाबाद
श्रीमान बाबू शिखरचन्द्र जी जैन, देहरादून
श्रीमान महेन्द्रकुमार जी जैन, कानपुर
श्रीमती रूपरानी जी जैन, अलीगढ़
श्रीमती अलका प्रचण्डिया, अलीगढ़

निदेशक एवं सम्पादक
विद्यावारिधि डॉ० महेन्द्रसागर प्रचण्डिया, डी० लिट्०

सम्पर्क सूत्र : मंगल कलश
३९४, सर्वोदय नगर, आगरा रोड,
अलीगढ़-२०२००१ (उ० प्र०)

विषय-क्रम

मेरी समस्या : मेरा समाधान

अनभ्यासे विष विद्या अर्थात् अभ्यास के अभाव में विद्या भी विष हो जाती है। शास्त्र विद्या का वैज्ञानिक अध्ययन अनुशीलन जब मौलिकता का उद्घाटन करता है वस्तुतः तभी वह अनुसंधान की वस्तु बन जाती है। अतीत कालीन शास्त्र-वाणी का अभिप्राय विशेष व्याख्या-विधि की अपेक्षा रखता है क्योंकि भाषा-विज्ञान के स्वभाव की दृष्टि से शब्द का अर्थ कालान्तर में स्वचालित होता जाता है।

शास्त्र-परम्परा का प्राचीनतम रूप भारतीय शास्त्र-भाण्डारों में विद्यमान है। इस दृष्टि से जिनवाणी की सम्पदा जैन भाण्डारों में सुरक्षित है। हस्त-लिखित जैन शास्त्रों की भाषा तथा लिपि विज्ञान एक विशेष विधि-बोध की अपेक्षा रखता है। इस दृष्टि से प्राचीनहस्तलिखित साहित्य का पाठानुसंधान और अर्थ-अभिप्राय आधुनिक प्राचीन लिपि में आबद्ध करना आवश्यक हो गया है।

आधुनिक अनुसंधित्सु के समक्ष अनेक कठिनाइयाँ उसे जैन विषयों पर गवेषणात्मक अध्ययन-अनुशीलन करने पर आती हैं। सर्वप्रथम उसे विषय का विद्वान निर्देशक ही नहीं मिल पाता है। जो देश में विषय के विद्वान हैं वे प्रायः शोध तकनीक से अनभिज्ञ होते हैं, साथ ही विश्व-विद्यालयी निकष पर खरे नहीं उतरते। जो विश्व विद्यालय अधिनियम के अन्तर्गत समर्थ शोध-निर्देशक हैं उन्हें जैन शास्त्र तथा वाणी का सम्यक् ज्ञान नहीं होता। इसी क्रम में विषय का चयन और तत्सम्बन्धित सामग्री संकलन अनुसंधित्सु के लिए शिर-शूल बन जाता है। जैन भाण्डारों में लुप्त-विलुप्त शास्त्रों की खोज लिपि-विज्ञान को न समझ पाने की खीज वस्तुतः उसे नैतिक स्खलन तथा सत्य हनन करने-कराने के लिए विवश करता है। जो स्तरीय शोध प्रबन्ध तैयार हैं, जिनकी विधिवत परीक्षा हो चुकी है और जिन्हें उत्तीर्ण घोषित किया जा चुका है, किन्तु उनके प्रकाशन की समस्या है। इन सभी समस्याओं ने एक ऐसे संस्थान की स्थापना करने के लिए मुझे प्रेरित किया जहाँ उपलब्ध हों शोध विषयक सभी समस्याओं

के समाधान । और मूल्यवान ग्रन्थों को प्रकाशित कर देश-विदेश के अनुसंधान केन्द्रों तक सुलभ कराया जा सके, फलस्वरूप विद्या के विविध ज्ञान-विज्ञान का सम्यक् मूल्यांकन हो सके । जैन शोध अकादमी इसी का शुभ परिणाम है ।

इसके तत्त्वावधान में लगभग दो दर्जन शोध प्रबन्ध तैयार हो चुके हैं और अनेक शोधार्थियों को दुर्लभ सामग्री, शोध-प्रबन्धों की रूप रेखायें, लघु निबन्धों की रचना तथा पाठानुसंधान विषयक नाना कठिनाइयों का हल सुलभ है । प्रसन्नता का विषय है कि अकादमी के तत्त्वावधान में यह शोध-प्रबन्ध उसकी प्रकाशन परम्परा को पहल करता है तथापि इसके सम्पादन तथा प्रकाशन में कितने पापड़ बेलने पड़े हैं, यह वस्तुत: आत्म-कथा का विषय है ।

अकादमी की योजना को सफल बनाने में अनेक सामाजिक जिनवाणी प्रेमियों का सहयोग प्राप्त है जिनमें सर्वश्री लाला प्रेमचन्द्रजी जैन (जैना वाच कम्पनी). बाबू इन्द्रजीत जैन, एडवोकेट, कानपुर, पं. शीलचन्द्र जी शास्त्री, मवाना श्रीमान् जयनारायण जी जैन, मेरठ, श्रीमान कैलाशचन्द्र जी जैन, मुजफ्फरनगर, श्रीमान् हजारीमल्ल जी बाँठिया, कानपुर, श्रीमान् रमेशचन्द्र जी गँगवाल, जयपुर तथा श्री जवाहरलाल जी जैन, सिकन्द्राबाद आदि भाइयों के शुभ नाम उल्लेखनीय हैं । इसके अतिरिक्त महामनीषी पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री, पंडितवर श्री जगमोहन लाल जी शास्त्री, पं० पन्नालाल जी साहित्याचार्य, पं० राजकुमार जी शास्त्री निवाई, पं० नाथूलाल जी शास्त्री, पं० लाल बहादुर जी शास्त्री, पं० भंवरलाल जी न्यायतीर्थ, डॉ० कस्तूर चन्द्र जी कासलीवाल, बाबू लक्ष्मी चन्द्र जी जैन (भारतीय ज्ञानपीठ) तथा इतिहासमनीषी पं० नीरज जैन, सतना के शुभ नामों का उल्लेख वस्तुत: अकादमी की शक्ति और शोभा है जिनसे हमें समय-समय पर सारस्वत सहयोग प्राप्त होता रहा है । ग्रन्थ के मुद्रण में श्री गोस्वामी जी, मुख पृष्ठ आवरण जैन सेवा समिति, सिकन्द्रा-बाद तथा ग्रन्थ-प्रबन्धनात्मक सहयोग श्रीमान् श्रीचन्द्र जी सुराना की देख-रेख में सम्पन्न हुआ है, अतः अकादमी परिवार इनका अत्यन्त आभारी है ।

इस प्रबन्ध के शोध कर्ता चिरंजीवी डॉ. आदित्य प्रचंडिया 'दीति' हैं जिनका गवेषणात्मक स्वाध्याय और श्रम तथा सूझ-बूझ उल्लेखनीय है । आगरा विश्वविद्यालय के महामनीषी विद्वानों ने इस प्रबन्ध की भूरि-भूरि अनुशंसा कर पी-एच. डी. उपाधि के लिए संस्तुति की है ।

इन सभी विद्या-प्रेमियों का योगदान जिनकी सक्रियता के बिना यह प्रकाशन कार्य चलना सम्भव नहीं था, सर्वथा श्लाघनीय है। श्रीमान् उम्मेदमल जी पाण्ड्या, श्री रविचन्द्र जी जैन, श्री ताराचन्द्र जी गंगवाल, बाबू शिखर चन्द्र जी जैन तथा श्रीमान् सौभाग्यमल जी जैन ने अकादमी के संरक्षक बनने की महान कृपा की है। अकादमी की स्थापना में प्रेरणा स्रोत रहे हैं इसके परम संरक्षक श्रीमान कैलाशचन्द्र जी जैन, नौरंग भवन, अलीगढ़।

अंत में उन सभी जैन विद्याप्रेमियों, दानवीरों तथा विद्वान्-बन्धुओं का आत्मिक शुभ-भाव तथा सहयोग-सुझाव सादर-प्रार्थित है। इत्यलम्।

महेन्द्र सागर प्रचंडिया
निदेशक तथा सम्पादक

वचन-शुभ

जैन तत्व दर्शन में आत्मा और परमात्मा में इतनी भिन्नता नहीं है कि भजन-स्तवन, पूजा-उपासना का अवकाश हो। पर मनवाद का शासन जीवन पर नहीं चलता। भक्ति-उपासना हर मानव की अंतर्निहित आवश्यकता है। परमात्मा उस अर्थ में न सही, जैनों के पास उपास्य रूप में परम्परागत पंचपरमेष्ठी की धारणा रहती आई है।

जिन जीतने वाले को कहते हैं और जिन अनुयायी कहलाते हैं जैन। जय-विजय कोई बाहरी नहीं वरन् अपने भीतर के विकार-वासनाओं की। ऐसे विजेताओं की एक सुदीर्घ परम्परा रही है। इनके गुणों को पूजने की पद्धति भी आज की नहीं है। पूजा विषयक हिन्दी में भी काफी काव्य रचा गया है। इसी काव्य को आधार बनाकर श्री आदित्य प्रचण्डिया ने गवेषणात्मक प्रबन्ध की रचना की है जिस पर आगरा विश्वविद्यालय द्वारा इन्हें पी-एच० डी० उपाधि से विभूषित किया गया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में लेखक ने स्पष्ट किया है कि जैन पूजा का रूप-स्वरूप अन्य धर्मावलम्बियों की पूजा पद्धति से भिन्न है। पूजनीय यहाँ व्यक्ति नहीं गुण हैं। सिद्ध, अरिहंत, आचार्य, उपाध्याय और साधु-मुनि यह पंच परमेष्ठि प्रतीक हैं। संयम साधना और तपश्चरण से ये राग-द्वेष जन्य कर्म कषायों को जीतने और अन्त में सिद्ध अवस्था को प्राप्त करते हैं। लेखक ने स्पष्ट किया है कि पंचपरमेष्ठि व्यक्ति नहीं, गुणधाम हैं। गुणों का स्मरण, उनकी वंदना करना वस्तुतः जैनपूजा है। अन्यथा वीतराग की पूजा करने में लाभ ही क्या है? वे अपने पुजारी का भला-बुरा कुछ कर तो सकते नहीं। लेखक ने स्पष्ट किया है कि इन आत्मिक गुणों का स्मरण कर, उनकी वंदना कर पूजक अपनी आत्मा में निहित प्रच्छन्न गुणों को जगाता है, उजागर करता है। इस प्रकार आत्म-जागरण ही वस्तुतः जैन पूजा का प्रयोजन है।

हिन्दी पूजा-काव्य-रूप रस वैविध्य के अतिरिक्त अनेक छन्दों में, शैलियों में रचा गया है। इस काव्य-अभिव्यञ्जना में नाना प्रतीकों, अलंकारों तथा शब्द शक्तियों का प्रयोग-उपयोग हुआ है। लेखक ने इन तमाम काव्यशास्त्रीय

अंगों का अध्ययन किया है। भाषागत अनेक रूप स्पष्ट किये गये हैं जिसमें अनेक शब्द पारिभाषिक अर्थ-अभिप्राय रखते हैं। इससे हिन्दी भाषा समृद्ध होती है।

पूजा काव्य में व्यक्तिगत सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक स्वरूप का विश्लेषण भी किया गया है। भारतीय संस्कृति के विकास क्रम में जैन संस्कृति का आरम्भ से ही स्थान है, रचना से यह स्पष्ट हो जाता है। वैदिक, बौद्ध और जैनधाराएँ मिलकर ही भारतीय संस्कृति के रूप का स्वरूप स्थिर करती हैं। आरम्भ में जैन संस्कृति को श्रमण संस्कृति के नाम से अभिहित किया जाता था।

पूजा काव्य में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावलि देकर लेखक ने प्रबन्ध के महत्व का संवर्द्धन किया है। साथ ही इस काव्य के पाठियों को उसके अर्थ-अभिप्राय को समझने में इससे पर्याप्त मदद मिलेगी। हिन्दी के अन्यान्य संत कवियों की नाईं इन कवियों की भाषा भी विशेष अर्थ की व्यञ्जना करती है। भाषा के विकास अथवा ह्रास क्रम में इस अध्ययन की सहायता असंदिग्ध है।

प्रस्तुत प्रबन्ध अपनी भाव तथा कला सम्पदा से जहाँ एक ओर विद्वत् समाज को लाभान्वित करता है वहाँ भक्त्यात्मक अनुवाद को भी ज्ञानालोक विकीर्ण करता है। मुझे भरोसा है इस उपयोगी प्रकाशन के लिए जैनशोध अकादमी, अलीगढ़ के शुभ निर्णय का सुधी समाज यथेष्ट स्वागत करेगा।

१६-२-८६ जैनेन्द्र कुमार
दरियागंज, दिल्ली

भूमिका

देश की सभी प्रमुख भाषाओं में निबद्ध होने के कारण जैन साहित्य की विशालता का अनुमान लगाना सहज कार्य नहीं है उसका अधिकांश भाग अप्रकाशित है, अनदेखा है साथ में अचर्चित भी है। जब हम राजस्थान के ग्रंथालयों को देखते हैं तो उनमें सैकड़ों हजारों पाण्डुलिपियों के दर्शन होते हैं। अभी तक तो पचासों ग्रंथालय ऐसे भी हैं जिनका सूचीकरण भी नहीं हो पाया है इसलिए इन शास्त्र भण्डारों में कितने अमूल्य ग्रंथ बिखरे पड़े हैं इसके बारे में कौन क्या कह सकता है? इसके अतिरिक्त जैनाचार्यों एवं विद्वानों ने सभी विषयों पर लेखनी चलाई है। उन्होंने अपने गम्भीर ज्ञान को अपनी कृतियों में उड़ेल कर रख दिया है इसलिए जैन साहित्य की गहनता के बारे में 'नेति नेति' कहने के अतिरिक्त और कहा भी क्या जा सकता है?

जैन धर्म निवृत्ति प्रधान धर्म है। सर्वथा निष्परिग्रही बने बिना जीवन का अन्तिम लक्ष्य 'निर्वाण' को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। उसका दर्शन चिन्तन, आचार एवं व्यवहार सभी मानव मात्र को त्याग की दिशा में मोड़ने वाले हैं इसलिए जो निष्परिग्रही बनकर निर्वाण प्राप्त करता है अथवा निष्परिग्रही जीवन में प्रवृत होकर मोक्ष मार्ग का पथिक बन जाता है उनका जीवन स्तुत्य है। उनका दर्शन, स्तवन, अर्चन आदि सभी हमारे लिए अभीष्ट है। अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एवं साधु ये पंचपरमेष्ठी कहलाते हैं क्योंकि ये सभी निवृतिपरक जीवन अपना चुके हैं। जगत से उन्हें कोई लेना देना नहीं है। उनमें भी सिद्ध परमेष्ठी मोक्ष प्राप्त कर चुके हैं, अर्हत् परमेष्ठी को मोक्ष की उपलब्धि होने वाली है तथा आचार्य, उपाध्याय एवं साधु मोक्ष मार्ग के पथिक बन चुके हैं वे अपने वर्तमान भव से वापिस गृहस्थी में आने वाले नहीं हैं। उन्होंने मोक्ष मार्ग अपना लिया है इसलिए जो मोक्ष चले गए हैं, जो जाने वाले हैं और जिन्होंने यात्रा आरम्भ कर दी है वे सभी हमारे लिए वन्दनीय हैं, पूजनीय हैं।

गृहस्थ अवस्था जिन्हें जैनधर्म में श्रावक की संज्ञा दी है उनके जीवन के लिए अपने नियम हैं, विधि है तथा दिशानिर्देश हैं इन सब का उद्देश्य जीवन को शुद्ध, सात्विक एवं सरल बनाना है। उसे मोक्ष पथ का पथिक बनाना है

और अन्त में जीवन का चरम लक्ष्य निर्वाण प्राप्त करना है, इसलिए श्रावकों के लिए प्रतिदिन किए जाने वाले छह कर्मों का स्पष्ट विधान किया गया है। देवपूजा, गुरुसेवा, स्वाध्याय, संयम, तप और त्याग इन षट् कर्मों को प्रतिदिन करने को आवश्यक माना गया है। इन षट् कर्मों में देव पूजा को प्रथम स्थान प्राप्त है। पूजा का उद्देश्य आत्म विकास का करना है। आध्यात्मिकता को पूर्णतया विकसित करना ही पूजा का फल माना जाता है।

पूजा दो तरह से की जा सकती है। एक भावों के द्वारा तथा दूसरे द्रव्य को आलम्बन बनाकर। प्रथम पूजा भाव पूजा कहलाती है तथा दूसरी पूजा द्रव्यपूजा के नाम से जानी जाती है। द्रव्यों के उपयोग किए बिना मन ही मन पूजा करना भाव पूजा है। इसमें मन, वचन और काय तीनों का जिनेन्द्र की भक्ति में तादात्म्य करना होता है। द्रव्य पूजा अष्टद्रव्य पूजा कहलाती है जिसमें आठ द्रव्यों—जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप एवं फल का उपयोग होता है। लेकिन द्रव्यपूजा का उद्देश्य भी निर्विकार दशा की ओर अपने आप को संजोना है। दोनों ही प्रकार की पूजाएँ अनादि हैं। जब से अरिहंत सिद्ध आचार्य परम्परा है तब से श्रावक परम्परा है तो पूजा की परम्परा अनादि है। उसका छोर पाना सम्भव नहीं है। तिलोयपण्णत्ती आदि ग्रन्थों में अष्टद्रव्य से पूजा करने का वर्णन आता है। आचार्य वीरसेन ने षट्खण्डागम की धवला टीका में पूजाओं का उल्लेख किया है। आचार्य समन्तभद्र ने पूजा करने को श्रावक का महान कर्त्तव्य बतलाते हुए उसे इच्छित फलदायक सर्व दुःख विनाशक एवं कामवासना दाहक कहा है। महापण्डित आशाधर ने अष्टद्रव्यों से पूजा करने का स्पष्ट उल्लेख करते हुए प्रत्येक द्रव्य के चढ़ाने का फल भी निर्दिष्ट किया है। इसी प्रकार आचार्य जिनसेन, अमृतचन्द्र, सोमदेव, अमितगति, पं. मेधावी, पं. राजमल्ल भट्टारक, सकलकीर्ति एवं पद्मनन्दि सभी ने पूजा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए उसे श्रावक के आवश्यक कर्त्तव्यों में गिनाया है। स्वयं महापंडित टोडरमल जी जिन्हें तेरह पंथ आम्नाय का प्रमुख प्रचारक माना जाता है, इन्द्रध्वज विधान के आयोजन में प्रमुख योगदान देकर अष्टद्रव्य पूजा की प्राचीनतम परम्परा को स्वीकारा है।

पूजा साहित्य जैन साहित्य का प्रमुख अंग है। यद्यपि पूजा साहित्य धार्मिक साहित्य के अन्तर्गत आता है लेकिन इस साहित्य में भी जैनाचार्यों एवं कवियों ने एकदम नया रूप दिया है और इस साहित्य में वो उन सभी तत्वों

का समावेश कर दिया है जो किसी काव्य पुराण, इतिहास, संगीत, छन्द, अलंकार एवं अन्य प्रकार के साहित्य में मिलते है। कहने का तात्पर्य है कि जैन विद्वानों ने उन सभी गुणों का समावेश कर दिया है जिससे पूजा विषयक साहित्य धार्मिक साहित्य के साथ-साथ लौकिक साहित्य भी बन गया है।

यह पूजा साहित्य प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत, हिन्दी आदि सभी भाषाओं में उपलब्ध होता है। जैनाचार्यों की यह विशेषता रही है कि उन्होंने जो भी जन भाषा रही उसी में अपनी लेखनी तथा देश एवं समाज को भाषा विशेष के कारण साहित्य से वंचित नहीं किया। राजस्थान के जैनशास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूचियों के जो पाँच भाग प्रकाशित हुए है उनको हम देखें तो हमें देश की सभी भाषाओं में निबद्ध साहित्य का सहज ही पता चल सकता है। पूजा साहित्य की सैकड़ों पाण्डुलिपियों का परिचय इन ग्रंथ सूचियों में उपलब्ध होता है जिनको देखकर हमारा हृदय गद्‌गद हो उठता है और इन पूजाओं के निर्माताओं के प्रति हमारी सहज श्रद्धा उमड़ पड़ती है।

जैन पूजा साहित्य किसी तीर्थंकर विशेष और चौबीस तीर्थंकरों तक ही सीमित नहीं रहा किन्तु विद्वानों ने बीसों विषयों पर पूजाएँ लिखकर समाज में पूजाओं के प्रति सहज आकर्षण पैदा कर दिया। पूजा साहित्य का इतिहास अभी तक क्रमबद्ध रूप से नहीं लिखा गया। यद्यपि प्राचीन आचार्यों ने पूजा के महत्व को स्वीकारा है और उसमे अष्टद्रव्य पूजा का विधान किया है लेकिन महापंडित आशाधर के पश्चात् जैन सन्तों का पूजा साहित्य की ओर अधिक ध्यान गया और अकेले भट्टारक सकलकीर्ति परम्परा के भट्टारक शुभचन्द्र ने संस्कृत भाषा में २५ से भी अधिक पूजाओं को निबद्ध करने का एक नया कीर्तिमान स्थापित किया। इनके पश्चात् तो पूजा साहित्य लिखने को विद्वत्ता पाण्डित्य एवं प्रभावना की कसौटी माना जाने लगा इसीलिए साहित्यिक रुचि वाले अधिकांश भट्टारकों एवं विद्वानों ने अपनी लेखनी चलाकर अपने पाण्डित्य का परिचय दिया।

हिन्दी में पूजा साहित्य लिखना १७वीं शताब्दी से प्रारम्भ हुआ। इस शताब्दी में होने वाले रूपचन्द्र कवि ने पंचकल्याणक पूजा की रचना समाप्त की और हिन्दी कवियों के लिए पूजा साहित्य लिखने के एक नये मार्ग को जन्म दिया। इस शताब्दी में और भी कवियों ने छोटी-छोटी पूजायें लिखी लेकिन १८वीं शताब्दी आते-आते हिन्दी में पूजाये लिखने को भी पाण्डित्य की निशानी समझा जाने लगा यही कारण है कि इस शताब्दी के दो प्रमुख

कवियों भूधरदास एवं द्यानतराय दोनों ने पूजा साहित्य को भी अन्य साहित्य के समकक्ष लाकर खड़ा कर दिया। इन दोनों कवियों की पूजाओं ने जब लोकप्रियता प्राप्त की तथा घर-घर में उनका प्रचार हो गया तो १९वीं एवं २०वीं शताब्दियों में तो हिन्दी में इतना अधिक पूजा साहित्य लिखा गया कि उनकी गिनती करना कठिन है। ऐसे पूजा साहित्य निर्माता कवियों में डालूराम, टेकचन्द, सेवाराम साह, रामचन्द्र, बख्तावरलाल, नेमिचन्द्र पाटनी के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं। २०वीं शताब्दी में प्रसिद्ध पूजाकवियों में सदासुखजी कासलीवाल, स्वरूपचन्द्र बिलाला, पन्नालाल दूनीवाले, मनरंगलाल के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं। इन कवियों ने पूजा साहित्य को इतना अधिक लोकप्रिय बनाया कि चारों ओर पूजा साहित्य ही दृष्टिगोचर होने लगा। अढ़ाई द्वीप पूजा, तीन लोक पूजा, समवशरणपूजा, चारित्र शुद्धि विधान पूजा, सोलहकारणपूजा, दशलक्षणपूजा, अष्टाह्निका पूजा, पंचमेरु पूजा जैसी महत्वपूर्ण एवं पुराण सम्मत पूजाओं को छंदोबद्ध करके समाज को एक सूत्र में बांध दिया और देश के हिन्दी भाषी एवं अहिन्दी भाषी प्रदेशों में समान रूप से उसी तन्मयता के साथ पूजायें की जाने लगीं। हजारों व्यक्तियों को तो पूजा बोलने के लिए हिन्दी भाषा सीखनी पड़ी और आज तक की हिन्दी पूजा की यही परम्परा चल रही है। वर्तमान शताब्दी में भी पचासों विद्वानों ने विभिन्न प्रकार की पूजाएँ निबद्ध की हैं उनमें कुछ पूजायें तो बहुत ही लोकप्रिय बन गई हैं।

पूजा साहित्य हमारी भावनात्मक एकता का प्रतीक है क्योंकि देश के विभिन्न प्रदेशों में वे समान रूप से पढ़ी एवं बोली जाती हैं। आसाम, बंगाल, तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र में पूजा करने वालों के लिए वे ही हिन्दी पूजायें हैं जो राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं देहली में उपलब्ध हैं। पूजा करने वालों के लिए प्रदेश एवं भाषा का कोई अवरोध नहीं है।

डॉ० आदित्य प्रचण्डिया ने 'हिन्दी जैन पूजा साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन' प्रस्तुत करके इस दिशा में एक नया एवं खोजपूर्ण कार्य किया है। यह उनका शोधप्रबन्ध है जिस पर सन् १९७८ ई० में उन्हें आगरा विश्व-विद्यालय से पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त हुई है। डॉ० आदित्य ने हिन्दी पूजाओं का सम्यक् अध्ययन किया है और उसके उद्भव एवं विकास, ज्ञान,

भक्ति, विधि-विधान, भावपूजा, द्रव्यपूजा, जैसे पक्षों का बहुत ही सुन्दर विश्लेषण प्रस्तुत किया है तथा पूजा साहित्य की रसयोजना, प्रकृति-चित्रण, अलंकारयोजना, छंदोयोजना, प्रतीक-योजना, भाषा, मनोविज्ञान, संस्कृति, नगरवर्णन, वेशभूषा, आभूषण एवं सौन्दर्य प्रसाधन, वाद्ययंत्र जैसे विषयों का जो वर्णन इन जैन पूजाओं में मिलता है उन सबका सविस्तार अध्ययन प्रस्तुत करके जैनपूजा साहित्य को काव्य की धरातल पर ला बिठाया है। डॉ० आदित्य प्रचण्डिया के अनुसार जैन हिन्दी पूजाएँ सभी दृष्टियों से उल्लेखनीय हैं। वे धार्मिक साहित्य के साथ-साथ लौकिक वर्णन से भी ओत-प्रोत है।

डॉ० आदित्य प्रचण्डिया ने स्वीकारा है कि पूजा काव्यों में यद्यपि शांत रस का परिपाक हुआ है लेकिन उनमें शोभा-शृंगार, उत्साह-वीर एवं करुण रस के भी अभिदर्शन होते हैं। जैन पूजा साहित्य की भाषा आलंकारिक होती है। शब्दालंकार एवं अर्थालंकार दोनों से ही वे ओतप्रोत है। डॉ० आदित्य ने इन अलंकारों से युक्त पद्यों का सविस्तार वर्णन किया है। छंदशास्त्र की दृष्टि से भी इन पूजाओं में महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध होती है। वास्तव में जैन कवियों ने इन पूजाओं में विविध छन्दों का प्रयोग किया है तथा उसे वर्णतः गेय बना दिया है।

भाषागत अध्ययन के लिए हिन्दी जैन पूजाएँ किसी भी शोधार्थी के लिए महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध कराती हैं। पूजा साहित्य की भाषा अपने समय की समस्त भाषाओं, विभाषाओं एवं बोलियों के मधुर सम्मिश्रण से प्रभावी रही है। डॉ० आदित्य प्रचण्डिया ने इन सबका विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया है जिससे उनका यह शोधप्रबन्ध बहुत ही उपयोगी बन गया है। गत तीन शताब्दियों में विभिन्न क्रियापदों की मात्रा किस प्रकार आगे बढ़ती रही इसका भी उन्होंने अच्छा अध्ययन किया है। जैन पूजाये मनोविज्ञान के गुण से भी ओतप्रोत है तथा पूजक को पूजा करते समय एक भिन्न प्रकार का मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है और वे उसमें विभिन्न अवस्थाओं के भाव भर देती हैं।

डॉ० आदित्य प्रचण्डिया डॉ० महेन्द्र सागर प्रचण्डिया के सुपुत्र है। डॉ० महेन्द्र सागर जी समाज एवं साहित्यिक जगत में अपने चिन्तन, मनन एवं लेखन के लिए ख्याति प्राप्त विद्वान हैं और वे ही गुण डॉ० आदित्य में उतर

आये हैं। डॉ० आदित्य द्वारा हिन्दी जैन पूजा साहित्य का जो नये आयामों के आधार पर विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है इसके लिए वे बधाई के पात्र हैं। पूजा साहित्य के प्रति अब तक जो आम पाठक की धारणा रही है उनसे भिन्न हटकर डॉ० आदित्य ने उसे नए परिधानों से अलंकृत किया है। उनका यह अध्ययन स्तुत्य एवं प्रशंसनीय है तथा हिन्दी जगत में इसका व्यापक स्वागत होगा, ऐसी मेरी मंगलकामना है।

१ अप्रैल, १९८६

४६७, अमृतकलश, बरकतनगर
किसान मार्ग, टोंक फाटक
जयपुर (राज०)

डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल

अपनी बात

जिज्ञासा मनुष्य की स्वयंभू मनोवृत्ति है। ज्ञानार्जन का मूलाधार यही जिज्ञासा प्रवृत्ति होती है। मनुष्य अर्जित ज्ञान की अभिव्यक्ति आरम्भ से करता आया है। सत्यं शिवं सुन्दरं से समन्वित अभिव्यञ्जना साहित्य है। जैन हिन्दी काव्य में प्रयुक्त काव्य रूपों को मूलतया दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—बद्ध और मुक्त। बद्ध वर्ग में वर्णनात्मक काव्यरूपों में पूजा-काव्य रूप का स्थान अपनी स्वतंत्र उपयोगिता के कारणवश सुरक्षित है। पूजा वस्तुतः एक भक्त्यात्मक लोक काव्य रूप है। लोक कण्ठ से होता हुआ यह काव्य रूप मनीषी साहित्य में समादृत हुआ है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश से होता हुआ यह काव्य रूप हिन्दी में अवतरित हुआ है। इतनी महत्वपूर्ण काव्यधारा का अभी तक वैज्ञानिक तथा सैद्धान्तिक रूप से अध्ययन नहीं हुआ था। इसी अभाव ने मुझे इस ओर प्रवृत्त होने के लिए प्रेरित किया। आगरा विश्वविद्यालय ने सन् १९७८ ई० में इस शोध प्रबन्ध पर मुझे पी०एच०डी० की उपाधि प्रदान की है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ० सत्येन्द्र, डॉ० रामसिंह जी तोमर, डॉ० अम्बाप्रसाद जी 'सुमन', डॉ० श्रीकृष्णजी वार्ष्णेय आदि विद्वानों की इस प्रबन्ध पर प्रदत्त आशंसा मेरे श्रम का परिहार करती है।

पूज्य पिता श्री डॉ० महेन्द्र सागरजी प्रचण्डिया की सतत प्रेरणा, प्रोत्साहन और विद्वत्ता ने मुझे इस अज्ञात पथ पर अग्रसर होने का साहस प्रदान किया है। उनके इस ऋणत्व से विमुक्त होना असम्भव है। श्रद्धेय डॉ० विद्यानिवास जी मिश्र, कुलपति, काशी विद्यापीठ, वाराणसी के लिए क्या कहूँ जिनका स्नेहाशीष मुझे अन्त तक मिलता रहा है। उन्हें धन्यवाद देकर अपने सम्बन्धों की अभिन्नता को मैं कम नहीं करना चाहता। डॉ० कस्तूरचन्द्र जी कासलीवाल का किन शब्दों में स्मरण करूँ जिन्होने प्रस्तुत प्रबन्ध की भूमिका लिखकर मुझे उपकृत किया है। श्रद्धेय श्री जैनेन्द्र जी का तो

मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने इस ग्रन्थ को अपने शुभ वचनों से समलंकृत किया है।

डॉ० एस० सी० गुप्ता, श्री जगवीर किशोर जैन, डॉ० चन्द्रवीर जैन को कैसे विस्मरण किया जा सकता जिनकी प्रेरणा मेरा सम्बल रही है। मेरे अनुज श्री राजीव प्रचण्डिया, एडवोकेट ने इस ग्रन्थ की प्रूफ रीडिंग का दुरूह दायित्व बड़ी सफलता से निर्वाह किया है। प्रिय संजीव प्रचण्डिया 'सोमेन्द्र', एम० काम०, एल० एल० बी० और कुँवर परितोष प्रचण्डिया, एम० काम० का ग्रन्थ की पाण्डुलिपि व्यवस्थित करने का परिश्रम प्रशंस्य है। मैं इन त्रय अनुजों के उज्ज्वल भविष्य की मंगल कामना करता हूँ। सहधर्मिणी श्रीमती अलका जी, एम० ए० (द्वय), रिसर्चस्कॉलर धन्यवाद की अधिकारिणी हैं जिन्होंने मेरे इस कार्य को अपने सहयोग से गति प्रदान की है। चि० मनुराजा एवं दुलारी कनुप्रिया की बाल लीलाओं ने शोध की नीरसता में सरसता का संचार किया है। ग्रन्थ के मुद्रक श्री योगेन्द्र गोस्वामी की तत्परता के लिए आभारी हूँ।

अन्त में इस ग्रन्थ के प्रणयन में परोक्ष-अपरोक्ष जिनसे सहायता मुझे मिली है उनके प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ। शुभम्।

२० दिसम्बर, १९८६

आदित्य प्रचण्डिया 'दीति'

उद्भव तथा विकास

जैन-धर्म के अनुसार मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल नामक ज्ञान के पाँच भेद विख्यात हैं। इन्हें स्वार्थ और परार्थ नामक दो भेदों में विभाजित किया गया है। मति, अवधि, मनःपर्यय और केवल ज्ञान स्वार्थ-सिद्ध हैं, जबकि परार्थज्ञान केवल एक है और वह भी श्रुत। श्रुत का प्रयोग शास्त्र के अर्थ में होता है। भारतीय धर्म-साधना में वैदिक, बौद्ध और जैन धर्म समाहित हैं। वैदिक-शास्त्रों को वेद, बौद्ध-शास्त्रों को पिटक तथा जैन-शास्त्रों को आगम कहा जाता है।[1]

आगमयति हिताहितं बोधयति इति आगमः अर्थात् जो हित और अहित का ज्ञान कराते हैं, वे आगम हैं। शुद्ध-निष्पाप आत्मा में आगम विद्या का संचार होता है। इसलिए केवल ज्ञान प्राप्त तीर्थंकरों की वाणी को ही आगम कहा गया है। आगम का मौलिक अभिप्राय प्राचीनतर प्राग्वैदिक काल से आती हुई वैदिकेतर धार्मिक या सांस्कृतिक परम्परा से है।[2]

जैनशास्त्रों का वर्गीकरण चार अनुयोगों के रूप में किया गया है[3], यथा—

१. प्रथमानुयोग २. करणानुयोग ३. चरणानुयोग ४. द्रव्यानुयोग

---

१. दसवें आलियं, सम्पादक—मुनि नथमल जैन, विश्वभारती, लाडनूं, राजस्थान, द्वितीय संस्करण १९७४ ई०, भूमिका लेखक आचार्य श्री तुलसी, पृष्ठ १५।

२. वैदिक संस्कृति के तत्त्व—डा० मंगलदेव शास्त्री, पृष्ठ ७; भारत में संस्कृति एवं धर्म—डा० एम० एल० शर्मा, रामा पब्लिशिंग हाउस, बड़ौत (मेरठ) प्रथम संस्करण १९६९, पृष्ठ ८३।

३. रत्नकरण्ड श्रावकाचार—स्वामी समन्तभद्राचार्य, वीर सेवा मंदिर, सस्ती ग्रन्थमाला, दरियागंज, दिल्ली, प्रथम संस्करण, वी० नि० सं० २४७६, पृष्ठ १३५ से १३७ तक।

जिन शास्त्रों में महापुरुषों के चरित्र द्वारा पुण्य-पाप के फल का वर्णन होता है और अन्त में वीतरागता को हितकर निरूपित किया जाता है, उन शास्त्रों को प्रथमानुयोग कहते हैं।[1] करणानुयोग के शास्त्रों में गुणस्थान, मार्गणास्थान आदि रूप से जीव का वर्णन होता है, इसमें गणित का प्राधान्य है, क्योंकि गणना और नाम का यहाँ व्यापक वर्णन होता है।[2] गृहस्थ और मुनियों के आचरण-नियमों का वर्णन चरणानुयोग के शास्त्रों में होता है। इनमें सुभाषित, नीति-शास्त्रों की पद्धति मुख्य है, जीवों को पाप से मुक्त कर धर्म में प्रवृत्त करना इनका मूल प्रयोजन है। इनमें प्रायः व्यवहार-नय की मुख्यता से कथन किया जाता है। बाह्याचार का समस्त विधान चरणानुयोग का मूल वर्ण्य विषय है।[3] द्रव्यानुयोग में षट्द्रव्य,[4] सप्ततत्त्व[5] और स्व-परभेद विज्ञान का वर्णन होता है। इस अनुयोग का प्रयोजन

---

१. प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यं।
बोधिसमाधिनिधानं बोधाति बोधः समीचीनः ॥

—रत्नकरण्ड श्रावकाचार—स्वामी समंतभद्राचार्य, वीरसेवा मंदिर, सस्ती ग्रन्थमाला, दरियागंज, देहली, प्रथम संस्करण, वीर निर्वाण सं० २४७६, श्लोक संख्या ४३।

२. लोकालोकविभक्तेर्युगपरिवृतेश्चतुर्गतीनां च।
आदर्शमित्र तथा मतिरवैति करणानुयोगं च ॥
—रत्नकरण्ड श्रावकाचार—स्वामी समन्तभद्राचार्य, श्लोक संख्या ४४।

३. गृहमेध्यनगाराणं चारित्रोत्पत्तिवृद्धिरक्षाङ्गम्।
चरणानुयोग समयं सम्यग्ज्ञानं विजानाति ॥

—रत्नकरण्ड श्रावकाचार—स्वामी समन्तभद्र, वीरसेवा मंदिर, सस्ती ग्रंथमाला, दरियागंज, देहली, प्रथम संस्करण, वी० नि० सं० २४७६, श्लोक संख्या ४५।

४. जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा य काल आयासं।
तच्चत्था इदि भणिदा णाणा गुणपज्जएहिं संजुता ॥

नियमसार, आचार्य कुंदकुंद, जीवअधिकार, गाथा संख्या ९, श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र), द्वितीय आवृति वीर सं० २४९२, पृष्ठ २२।

५. जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम्।

—तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय १, सूत्र ४, उमास्वामि, श्री अखिल विश्व जैन मिशन, अलीगंज-एटा, सन् १९५७, पृष्ठ ३।

वस्तुस्वरूप का सच्चा श्रद्धान तथा स्वपर-भेद-विज्ञान उत्पन्न कर वीतरागता प्राप्त करने की प्रेरणा देना है।[1]

चरणानुयोग के समान द्रव्यानुयोग में बुद्धिगोचर कथन होता है, परन्तु चरणानुयोग में वाह्य क्रिया की मुख्यता रहती है और द्रव्यानुयोग में आत्मा-परिणामों की मुख्यता से कथन होता है। जैनधर्म के अनुसार तो यह परिपाटी है कि पहले द्रव्यानुयोगानुसार सम्यग्दृष्टि हो, फिर चरणानुयोगानुसार व्रतादि धारणकर व्रती हो। पूजा-अर्चना का सम्बन्ध इन्हीं अनुयोगों से होता हुआ चरणानुयोग के शास्त्रों में पल्लवित हुआ है।

द्राविड़ तथा वैदिक परम्परा द्वारा निर्दिष्ट सन्मार्ग पर भारतीय जन समाज आरम्भ से ही प्रवहमान है। द्राविड़ संस्कृति से चलकर व्रत-साधना श्रमण कहलाई और वैदिक परम्परा को संजीवित करने वाली पद्धति वस्तुतः ब्राह्मण।[2] अपने आराध्य के श्री-चरणों में भक्ति-भावना व्यक्त करने के लिए ब्राह्मण शैली यज्ञ का आयोजन करती है।[3] श्रमण समाज में पूजा का विधान व्यवस्थित हुआ, जिसमें पुष्प का क्षेपण उल्लेखनीय है।[4]

भारतीय संस्कृति में श्रमण संस्कृति का प्रमुख स्थान है। जो संयमपूर्वक श्रम करे, उसे श्रमण कहते हैं।[5] इस परम्परा की प्राचीनता ऋग्वेद में श्रमण शब्द के व्यवहार से भी प्रमाणित है।[6] श्रमण-संस्कृति के दर्शन, सिद्धान्त, धर्म

---

१. जीवा जीवमुत्तत्वे पुण्यापुण्ये च वन्ध मोक्षौ च।
द्रव्यानुयोग दीपः श्रुत विद्यालोक मातनुते ॥
—रत्नकरण्ड श्रावकाचार, स्वामी समन्तभद्र, श्लोक संख्या ४६, वही।

२. भारतवाणी, तृतीय जिल्द, प्रबंध संपादक श्री विश्वम्भरनाथ पांडे। पृष्ठ ५९८।

३. बृहत् हिन्दी कोश, सम्पा० कालिकाप्रसाद आदि, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी—१, तृतीय संस्करण संवत् २०२०, पृष्ठ ११११२।

४. भारतवाणी, तृतीय जिल्द, प्रवन्ध सम्पादक श्री विश्वम्भरनाथ पांडे, लेख-हिन्दी जैन पूजाकाव्य—डा० महेन्द्र सागर प्रचंडिया द्वारा उद्धृत इण्डो एशियन कल्चर, डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, इन्दिरा गान्धी अभिनन्दन समिति सन् १९७५, पृष्ठ ५९८।

५. दसवेआलियं, सम्पादक मुनि नथमल, आमुख, जैन विश्वभारती प्रकाशन, लाडनूं, द्वितीय संस्करण १९७४, पृष्ठ १७।

६. तृदिला अतृदिलासो अद्रयोऽश्रमणाअशृपिता अमृत्यवः।
अनातुरा अजराः स्थामविष्णवः सुपीवसो अतृपिता अतृष्णजः ॥
ऋग्वेद, मण्डल १०, सूत्र संख्या ९४, ऋचासंख्या ११, सम्पादक श्रीरामशर्मा आचार्य, गायत्री तपोभूमि, मथुरा, प्रथम संस्करण १९६० ई०, पृ० १९९५।

उसके प्रवर्तकों-तीर्थंकरों तथा उनकी परम्परा का महत्त्वपूर्ण अवदान हैं। आदि तीर्थंकर ऋषभदेव से लेकर अन्तिम अर्थात् चौबीसवें तीर्थंकर महावीर और उनके उत्तरवर्ती आचार्यों ने आध्यात्मिक विद्या का प्रसार किया है, जिसे उपनिषद् साहित्य में परा-विद्या अर्थात् उत्कृष्ट विद्या कहा गया है।[1]

तीर्थंकर महावीर के सिद्धान्तों और वाङ्मय का अवधारण एवं संरक्षण उनके उत्तरवर्ती श्रमणों और उपासकों ने किया है। तीर्थक्षेत्र, मन्दिर, मूर्तियाँ ग्रंथागार, स्मारक आदि सांस्कृतिक विभव उन्हीं के अटूट प्रयत्नों से आज संरक्षित हैं। इस उपलब्ध सामग्री का श्रुतधराचार्य, सारस्वताचार्य, प्रबुद्धाचार्य और परम्परा पोषकाचार्यों द्वारा संवर्द्धन होता रहा है। यहाँ श्रुतधराचार्यों से तात्पर्य उन आचार्यों से है, जिन्होंने सिद्धान्त-साहित्य, कर्म-साहित्य तथा अध्यात्म-साहित्य की रचना की है। जैनागम में ऐसे आचार्यों में गणधर, धरसेन, भूतवलि, यतिवृषभ, कुंद कुंद आचार्य आदि उल्लेखनीय हैं। सारस्वताचार्य का संकेत उन आचार्यों से है, जिन्होंने श्रुत परम्परा द्वारा प्रणीत मौलिक साहित्य तथा टीका साहित्य द्वारा धर्म-सिद्धांत का प्रचार-प्रसार किया है। इन आचार्यों में स्वामी समंतभद्र, देवनंदि, पूज्यपाद, नेमीचंद्र सिद्धान्ताचार्य, जोइन्दु, अमृतचन्द्र सूरि आदि उल्लेखनीय हैं। प्रबुद्धाचार्य से अभिप्राय उन आचार्यों से है, जिन्होंने अपनी प्रतिभा द्वारा ग्रंथ-प्रणयन के साथ विवृतियाँ तथा भाष्य रचे हैं। इन आचार्यों में गुणभद्र, प्रभाचंद्र, हरिषेण, सोमदेव, पद्मचंद आदि उल्लेखनीय हैं। परम्परापोषकाचार्य से अभिप्राय उन आचार्यों से हैं, जिन्होंने दिगम्बर परम्परा की रक्षा के लिए प्राचीन आचार्यों द्वारा निर्मित ग्रंथों के आधार पर अपने नए ग्रंथ रचे और शास्त्रागम परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखा है। इस श्रेणी में आचार्य सकलकीर्ति, ब्रह्म जिनदास, ज्ञानभूषण, विद्यानंद, यशकीर्ति तथा मल्लिभूषण आदि उल्लेखनीय हैं।[2]

---

१. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा—डा० नेमीचन्द्र शास्त्री, भाग १, अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद्, सागर प्रथम संस्करण, सन् १९७४, आमुख पृष्ठ १३।

२. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा—डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, भाग १, अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद्, सागर, प्रथम संस्करण सन् १९७४, आमुख पृष्ठ १८, १९ तथा २०।

चरणानुयोग के शास्त्रों में बाह्याचार का विधान व्यंजित है। जिनवाणी का तात्पर्य वीतरागता है। यह परमधर्म है, जिसकी अनुयोगों में परिपुष्टि हुई है। आत्म-स्वरूप में रमण करना वस्तुतः चारित्र है। मोह, राग, द्वेष से रहित आत्मा का परिणाम साम्य भाव है, जिसे प्राप्त करना चारित्र का मूलोद्देश्य है।[1]

चारित्र-साधना गृहस्थ से प्रारम्भ होती है। विवेकवान विरक्त चित्त अणुव्रती गृहस्थ को श्रावक कहा गया है।[2] जैन परम्परा के अनुसार श्रावक को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है[3], यथा—

१. पाक्षिक

२. नैष्ठिक

३. साधक

पाक्षिक श्रावक देव-शास्त्र-गुरु का स्तवन करता है, साथ ही उसे रत्नत्रय[4] का पालन कर सप्त व्यसनों[5] से विरक्त होकर अष्टमूल

---

१. चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो समोत्तिणिद्दिट्ठो।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु समो॥

प्रवचनसार—कुंदकुंदाचार्य, प्रथम अध्याय, गाथांक ७, श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़, सौराष्ट्र, द्वितीय संस्करण १९६४, पृष्ठ ८।

२. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश—क्षु० जिनेन्द्रवर्णी, भाग ४, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १९७३, पृष्ठ ४६।

३. वृहद् जैन शब्दार्णव—मास्टर विहारीलाल जैन, भाग २, अमरोहा, मूलचन्द्र किसनदास कापड़िया, पुस्तकालय, सूरत, पृष्ठ ६२५।

४. 'सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र इन तीन गुणों को रत्नत्रय कहते हैं।'

—जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश—क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी, भाग ३, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण सन् १९७२, पृष्ठ ४०४।

५. द्यूतमांससुरावेश्याखेटचौर्य पराङ्गना।
महापापानि सप्तेति व्यसनानि त्यजेद्बुधः॥

—पंचविंशतिका—आचार्य पद्मनन्दि, अधिकार संख्या १, श्लोक संख्या १६, जीवराज ग्रन्थमाला, शोलापुर, प्रथम संस्करण, सन् १९३२ ई०।

गुणों[1] का स्थूल रूप से अनुपालन करना चाहिए। जो ग्यारह प्रतिमा[2] को धारण कर चारित्र का पालन करता है, वह वस्तुतः नैष्ठिक श्रावक कहलाता है और

---

१. (अ) मद्यं मासं क्षौद्रं पंचोदुम्बरफलानि यत्नेन।
हिंसा व्युपरतिः कामैर्मोक्तव्यानि प्रथममेव ॥

—पुरुपार्थसिद्धोपाय, अमृतचन्द्र सूरि, सैन्ट्रल जैन पब्लिशिंग हाउस, अजिताश्रम, लखनऊ, प्रथम संस्करण सन् १९३३, श्लोक संख्या ६१, पृष्ठ ३४।

(व) वड़ का फल, पीपल का फल, ऊमर, कठूमर (गूलर) तथा पाकरफल ये पाँच उदुम्वर फल कहलाते है। मधु, माँस, मदिरा इन सभी का त्याग अष्टूमल गुण कहलाता है।

—वालवोध पाठमाला, भाग ३, डा० हुकुमचन्द्र भारिल्ल, श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए—४, वापू नगर, जयपुर—४, पृष्ठ १२—१३।

२. (अ) संयम अंश जग्यौ जहाँ, भोग अरुचि परिणाम।
उदै प्रतिग्या को भयो, प्रतिमा ताका नाम ॥

—सयमसार नाटक, वनारसीदास, चतुर्दशगुणस्थानाधिकार, छंद संख्या ५८, श्री दि०जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र), प्रथम संस्करण वि० सं० २०२७, पृष्ठ ३८६।

(व) दर्सन विसुद्धकारी वारह विरतधारी,
सामाइकचारी पर्वप्रोषध विधि वहै।
सचित को परहारी दिवा अपरस नारी,
आठो जाम ब्रह्मचारी निरारंभी ह्वै रहै ॥
पाप परिग्रह छंदे पाप कीन शिक्षा मंडे,
कोऊ याके निमित करै सो वस्तु न गहै।
ऐमे देसव्रत के धरैया समकिती जीव,
ग्यारह प्रतिमा तिन्हें भगवंत जी कहै ॥

अर्थात् १. सम्यग्दर्शन में विशुद्धि उत्पन्न करने वाली दर्शन प्रतिमा अर्थात् कक्षा या श्रेणी है। २. वारहव्रतों का आचरण व्रत प्रतिमा है। ३. सामायिक की प्रवृत्ति सामायिक प्रतिमा है। ४. पर्व में उपवास-विधि करना प्रोषध प्रतिमा है। ५. सचित त्याग सचितविरत प्रतिमा है। ६. दिन में स्त्री स्पर्श का त्याग दिवा मैथुन व्रत प्रतिमा है। ७. आठों पहर स्त्रीमात्र का त्याग ब्रह्मचर्य प्रतिमा है। ८. सर्व आरम्भ का त्याग निरारम्भ प्रतिमा है। ९. पाप के कारणभूत परिग्रह का त्याग परिग्रह त्याग प्रतिमा है। १०. पाप की शिक्षा का त्याग अनुमति त्याग प्रतिमा है। ११. अपने बनाए हुए भोजनादि का त्याग उद्देश्य विरति प्रतिमा है।

जिसमें व्रतपालन कर अन्त में समाधिमरण[1] की प्रवृत्ति विद्यमान रहती है उसे साधक श्रावक कहा जाता है ।

संसार के समस्त प्राणी सुख चाहते हैं और दुःख से भयभीत रहते हैं। दुःखों से वचने के लिए आत्मा को समझ कर उसमें लीन होना सच्चा उपाय करते हैं । मुनिराज अपने पुष्ट पुरुषार्थ द्वारा आत्मा का सुख विशेष प्राप्त कर लेते हैं और गृहस्थ अपनी भूमिकानुसार अंशतः सुख प्राप्त कर पाते हैं । उक्त मार्ग में चलने वाले सम्यक् दृष्टि श्रावक के आंशिक शुद्धरूप निश्चय आवश्यक के साथ-साथ शुभ विकल्प भी आते हैं, उन्हें व्यवहार आवश्यक कहते हैं ।[2] श्रावक के आवश्यक व्यवहार छह प्रकार के वतलाए गए हैं,[3] यथा—

१. सामायिक	२. स्तवन	३. वंदना
४. प्रतिक्रमण	५. प्रत्याख्यान	६. उत्सर्ग

ये ग्यारह प्रतिमा देश व्रतधारी सम्यग्दृष्टी जीवों की जिनराज ने कही हैं ।

—समयसार नाटक, वनारसीदास, चतुर्दशगुणस्थानाधिकार, छंद संख्या ५७, श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट सोनगढ़ (सौराष्ट्र), प्रथम संस्करण वि० सं० २०२७, पृष्ठ ३८५ ।

१. सम्यक्काय कषाय लेखना-सल्लेखना । कायस्य वाह्यस्याभ्यन्तराणां च कषायाणां तत्कारणहापन क्रमेण सम्यग्लेखना सल्लेखना । अर्थात् अच्छे प्रकार से काय और कषाय का लेखन करना अर्थात् कृश करना सल्लेखना है, समाधि मरण है अर्थात् वाहरी शरीर का और भीतरी कषायों का, उत्तरोत्तर काय और कषाय को पुष्ट करने वाले कारणों को घटाते हुए भले प्रकार से लेखन करना अर्थात् कृश करना सल्लेखना है ।

—सर्वार्थसिद्धि, आचार्य पूज्यपाद, अध्याय ७, सूत्र सं० २२, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वनारस—५, प्रथम संस्करण १९५५, पृष्ठ ३६३ ।

२. वीतराग विज्ञान पाठमाला, भाग १, डॉ० हुकुमचन्द्र भारिल्ल, श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४ बापू नगर, जयपुर-४, द्वितीय संस्करण १९७०, पृष्ठ १७ ।

३. (अ) सामायिकं स्तवः प्राज्ञैर्वंदना सप्रतिक्रमा ।
प्रत्याख्यानं तनूत्सर्गः षोडावश्यक मीरितम ।।
श्रावकाचार, आचार्य अमितगति, अधिकार संख्या ८, श्लोक संख्या २९, सं० पं० वंशीधर, जीवराज ग्रंथमाला, शोलापुर, प्रथम संस्करण वि० सं० १९७९ ।

इस प्रकार श्रावक अर्थात् सद्गृहस्थ के लिए दान, पूजा आदि मुख्य कार्य है। इनके अभाव में कोई भी मनुष्य सद्गृहस्थ नहीं बन पाता। मुनि-धर्म में ध्यान और अध्ययन करना मुख्य है। इनके विना मुनिधर्म का पालन करना व्यर्थ है।[1] याग, यज्ञ, ऋतु, पूजा, सपर्या, इज्या, अध्वर, मख और मह ये सब पूजाविधि के पर्यायवाची शब्द हैं।[2] नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से छह प्रकार की पूजा का विधान है।[3] अरहन्तादि का नाम उच्चारण करके विशुद्ध प्रदेश में जो पुष्प क्षेपण किए जाते हैं, वह नाम पूजा कहलाती है।[4] वस्तु विशेष में अरहन्तादि के गुणों का आरोपण करना वस्तुतः स्थापना कहलाती है। यह दो प्रकार से उल्लिखित है, यथा—

१. सद्भाव स्थापना
२. असद्भाव स्थापना

पिछले पृष्ठ का शेष—

(ब) देव पूजा गुरूपास्तिः स्वाध्यायसंयमस्तपः।
दानं चेतिगृहस्थानां षट्कर्माणि दिने-दिने।
—पंचविंशतिकां, आचार्य पद्मनंदि, अधिकार संख्या ६, श्लोक संख्या ७, जीवराज ग्रंथमाला, शोलापुर, प्रथम संस्करण, सन् १९३२।

१. दाणं पूयामुक्खं सावयधम्मेण सावया तेण विणा।
झाणाज्झयणं मुक्खं जइ-धम्मे तं विणा तहा सोवि॥
—रयणसार, कुन्दकुदाचार्य, कुन्दकुन्द भारती, श्री वीर-निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति, इन्दौर, वीर निर्वाण संवत् २५००, गाथांक १०, पृष्ठ ५६।

२. यागोयज्ञः क्रतुः पूजा सपर्येज्याध्वरोमखः।
मह इत्यपि पर्यायवचनान्यर्चनाविधेः॥
—महापुराण, जिनसेनाचार्य, सर्ग संख्या ६७, श्लोक संख्या १९३, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्रथम संस्करण सन् १९५१ ई०।

३. णाम-ट्ठवणा-दव्वे-खिते काले वियाणा भावे य।
छव्विह पूया भणिया समासओ जिणवरिंदेहि॥
—श्रावकाचार, आचार्य वसुनंदि, गाथा संख्या ३८१, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्रथम संस्करण वि० सं० २००७।

४. उच्चारि ऊण णामं अरूहाईणं विसुद्ध देसम्मि।
पुप्फाणि जं खिविज्जंति वण्णिया णाम पूया सा॥
—श्रावकाचार, आचार्य वसुनंदि, गाथांक ३८२, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम संस्करण, वि० सं० २००७।

आकार वस्तु में अरहन्तादि के गुणों का जो आरोपण किया जाता है, उसे सद्भाव स्थापना पूजा कहा जाता है और अक्षत वराटक अर्थात् कौड़ी या कमलगट्टा आदि में अपनी बुद्धि से यह अमुक देवता है, ऐसा संकल्प करके उच्चारण करना सो यह असद्भाव स्थापना पूजा कहलाती है।[1] जलादि द्रव्य से प्रतिमादि द्रव्य की जो पूजा की जाती है, उसे द्रव्य पूजा कहते हैं। द्रव्य पूजा सचित, अचित तथा मिश्र भेद से तीन प्रकार की कही गई है। प्रत्यक्ष उपस्थित जिनेन्द्र भगवान और गुरु आदि का यथायोग्य पूजन करना सचित पूजा कहलाता है। तीर्थंकर आदि के शरीर की और कागज आदि पर लिपिवद्ध शास्त्र की जो पूजा की जाती है, वह अचित पूजा है और जो दानों की पूजा की जाती है, वह मिश्र पूजा कहलाती है।[2]

जिनेन्द्र भगवान की जन्म कल्याणक भूमि, निष्क्रमण कल्याणक भूमि, केवल ज्ञानोत्पत्ति स्थान, तीर्थचिह्न स्थान और निषेधिका अर्थात् निर्वाण भूमियों में पूर्वोक्त प्रकार से पूजा करना वस्तुतः क्षेत्रपूजा कहलाती है।[3] जिस दिन तीर्थंकरों के पंचकल्याणक—गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान तथा निर्वाण-हुए हैं,

---

१. सब्भावासब्भावादुविहा ठवणा जिणेहि पण्णत्ता ।
सायारवं तवत्थुम्मि जं गुणारोवणं पढ़मा ।।
अक्खय—वराडओ वा अमुगो, एसोत्ति णियवुद्धीए ।
संकप्पिऊण वयणं एसा विइया असब्भावा ।।

—श्रावकाचार—आचार्य वसुनंदि, गाथांक ३८३-३८४, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम संस्करण, वि० सं० २००७।

२. दव्वेण य दव्वस्स य जापूजा जाण दव्वपूजा सा ।
दव्वेण गंध-सलिलाइ पुव्वभणिएण कायव्वा ।।
तिविहा दव्वे पूजा सच्चिता चितमिस्सभेएण ।
पच्चक्खजिणाईणं सचित पूजा जहा जोग्गं ।।
तेसिं च सरीराणं दव्वसुदस्सवि अचित पूजा सा ।।
जा पुण दोण्हं कीरइ णायव्वा मिस्स पूजा सा ।।

—श्रावकाचार, आचार्य वसुनंदि, गाथांक ४४८, ४४९, ४५०, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम संस्करण वि० सं० २००७।

३. जिण जम्मण-णिक्खमणे णाणुप्पतीए तित्थ चिण्हेसु ।
णिसिहीसु खेतपूजा पुव्व विहाणेण कायव्वा ।।
—श्रावकाचार, आचार्य वसुनंदि, गाथांक ४५२, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम संस्करण, वि० स० २००७।

भगवान् का अभिषेक कर नंदीश्वर पर्व आदि पर्वों पर जिन महिमा करना काल पूजा कहलाती है।[1] मन से अर्हन्तादि के गुणों का चिंतवन करना भावपूजा कहलाती है।[2] भावपूजा में जो परमात्मा है, वह ही मैं हूँ तथा जो स्वानुभवगम्य मैं हूँ, वही परमात्मा है, इसलिए मैं ही मेरे द्वारा उपासना किया जाने योग्य हूँ, दूसरा कोई अन्य नहीं। इस प्रकार ही आराध्य-आराधक भाव की व्यवस्था है।[3]

आगम-शास्त्र परम्परा के आधार पर पूजा का प्रचलन श्रमण-संस्कृति के आरम्भ से ही रहा है। श्रमण संस्कृति सिन्धु, मिश्र, बेवीलोन तथा रोम की संस्कृतियों से कहीं अधिक प्राचीन है।[4] भागवतकार ने आद्यमनु स्वायम्भुव के प्रपौत्र नाभि के पुत्र ऋषभ को दिगम्बर श्रमण और ऊर्ध्वगामी मुनियों के धर्म का आदि प्रतिष्ठाता माना है। उनके सौ पुत्रों में से नौ पुत्र श्रमण मुनि बने।[5]

मोहन जोदड़ो की खुदाई में कुछ ऐसी मोहरें प्राप्त हुई हैं, जिन पर

---

१. गब्भावयार-जम्माहिसेय-णिक्खमण णाण-णिव्वाणं।
जम्हि दिणे संजादं जिणण्ह वणं तद्दिणे कुज्जा॥
णंदीसरट्ठवसेसु तहा अण्णेसु उचिय पव्वेसु।
जं कीरइ जिणमहिमा विण्णेया काल पूजा सा॥
—श्रावकाचार, आचार्य वसुनंदि, गाथांक ४५३, ४५५, वही।

२. भावपूजा मनसा तद्गुणानुस्मरणं।
—भगवती आराधना, आचार्य अमितगति, गाथा ४७, पंक्ति संख्या २२; सखारामदोसी, शोलापुर, प्रथम सं०, सन् १९३५ ई०, पृष्ठांक १५६।

३. यः परात्मा स एवाहं योऽहं स परमस्ततः।
अहमेव मयोपास्यो नान्यः कश्चिदिति स्थितिः॥
—समाधिशतक, वीरसेवा मंदिर, देहली, प्रथम संस्करण १९५८ ई०, श्लोक संख्या ३१।

४. भारत में संस्कृति एवं धर्म—डा० एम० एल० शर्मा, रामा पब्लिशिंग हाउस, बड़ौत (मेरठ), प्रथम संस्करण, १९६९, पृष्ठ ७७।

५. नवाभवन् महाभागाः मुनयोह्यर्थशंसिनः।
श्रमणाः वातरशनाः आत्म विद्याविशारदाः॥
—श्रीमद्भागवत, महर्षि वेदव्यास, एकादश स्कन्ध, अध्याय द्वितीय, श्लोक बीस, पो० गीता प्रेस, गोरखपुर, पंचम संस्करण संवत् २००६; पृष्ठ ६६९।

योग मुद्रा में कुछ जैन मूर्तियाँ अंकित हैं। वहाँ पर एक मोहर ऐसी भी मिली है, जिस पर भगवान ऋषभदेव का चित्र खड़ी मुद्रा अर्थात् कायोत्सर्ग योगासन में चित्रित है। कायोत्सर्ग योगासन का उल्लेख वृषभ के सम्बन्ध में किया गया है। ये मूर्तियाँ पाँच हजार वर्ष पुरानी हैं। इससे प्रकट होता है कि सिन्धु घाटी के निवासी ऋषभदेव की भी पूजा करते थे और उस समय लोक में जैनधर्म भी प्रचलित था।[1]

फलक १२ और ११८ आकृति ७ मार्शल कृत मोहनजोदड़ो कायोत्सर्ग नामक योगासन में खड़े हुए देवताओं को सूचित करती है। यह मुद्रा जैन योगियों की तपश्चर्या में विशेष रूप से मिलती है, जैसे मथुरा संग्रहालय में स्थापित तीर्थंकर श्री ऋषभ देवता की मूर्ति में। ऋषभ का अर्थ है बैल, जो आदिनाथ का लक्षण है। मुहर संख्या एफ-जी० एच० फलक दो पर अंकित देवमूर्ति में एक बैल ही बना है, सम्भव है कि यह ऋषभ ही का पूर्व रूप हो। यदि ऐसा हो तो शैव धर्म की तरह जैनधर्म का मूल भी ताम्रयुगीन सिन्धु सभ्यता तक चला जाता है।[2]

इस प्रकार आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व भगवान ऋषभदेवादि की पूजा करने का उल्लेख मिलता है। श्रमण संस्कृति में नमस्कारमंत्र अनादिकालीन माना जाता है। इस मंत्र में पंच परमेष्ठियों की वंदना की गई है। पूजा का आदिम रूप णमो अर्थात् नमन, नमस्कार रूप में मिलता है। आचार्य कुंदकुंद ने 'समयसार' में 'वंदितु' शब्द द्वारा सिद्धों को नमस्कार किया है।[3]

नमन और वंदनापरक पूजनीय भावना के लिए किसी अभिव्यंजना रूप

---

१. भारत में संस्कृति एवं धर्म, डा० एम० एल० शर्मा, रामा पब्लिशिंग हाउस, बड़ौत (मेरठ), प्रथम संस्करण १९६९, पृष्ठ १९।

२. हिन्दू सभ्यता, डा० राधाकुमुद मुकर्जी, अनुवादक—श्री वासुदेवशरण अग्रवाल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-६, सन् १९५५, पृष्ठ २३-२४।

३. वंदितु सव्वसिद्धे धुवमचलमणोवमं गदिं पत्ते।
वोच्छामि समय पाहुड मिणमोसुद केवली भणिदं॥
—समयसार, आचार्य कुंदकुंद, गाथांक १, कुंदकुंद भारती, ७ ए-राजपुर रोड, दिल्ली-११० ००६, प्रथम आवृत्ति, मई १९७८, पृष्ठ १।

की आवश्यकता होती है। रूप किसी वस्तु के आकार पर निर्भर करता है।[1] बिना आकार या रूप ग्रहण किए कोई भी अभिव्यक्ति न तो हो सकती है और न अभिव्यक्ति की संज्ञा ही पा सकती है। अभिव्यक्ति जिस रूप में सम्पन्न होती है वह रूप कालान्तर में काव्यरूप बन जाता है। पूजा एक सशक्त काव्यरूप है।

जैन-हिन्दी-काव्य में प्रयुक्त काव्य रूपों को मूलतः दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है, यथा—

१. बद्ध

२. मुक्त

बद्धवर्ग में वर्णनात्मक तथा प्रबन्धात्मक काव्यरूप और मुक्त वर्ग में संख्या, छंद तथा विविध रूप में काव्यरूप रखे जा सकते हैं। जैन हिन्दी काव्यों में प्रयुक्त छत्तीस वर्णनात्मक काव्य रूपों में पूजा काव्यरूप का स्थान सुरक्षित है।[2] पूजा एक भक्त्यात्मक काव्यरूप है। इसके प्रथम प्रयोग का श्रेय जैन आचार्यों, मुनियों तथा कवियों को प्राप्त है। संस्कृत-प्राकृत तथा अपभ्रंश-भाषा साहित्य से होता हुआ यह काव्यरूप हिन्दी में अवतरित हुआ। विशेष वर्ग और सम्प्रदाय में मौखिक और लिखित परम्परा में पूजाकाव्य रूप सुरक्षित रहा है, फलस्वरूप भाव-भाषा तथा कलात्मक समृद्धि के होते हुए भी यह काव्यरूप काव्यशास्त्र के आचार्यों द्वारा उपेक्षित रहा है।

पूजाकाव्य के लिखित रूप का विकासात्मक संक्षिप्त अध्ययन निम्न प्रकार से किया जा सकता है। विवेच्य काव्यरूप का व्यवस्थित स्वरूप पाँचवीं शती में उपलब्ध होता है। आचार्य पूज्यपाद विरचित 'जैनाभिषेक' नामक काव्य में इस काव्य रूप के प्रथम दर्शन होते हैं। दसवीं शती के अभयनंदि कृत श्रेयोविधान तथा पूजाकल्प, आचार्य इन्द्रनंदि कृत अंकुरारोपण, ग्यारहवीं शती के आचार्य मल्लिषेण विरचित वज्रपंजर विधान, पद्मावती कल्प; बारहवीं शती के पं० आशाधर कृत जिनयज्ञ कल्प, नित्य महोद्योत, तेरहवीं

---

१. हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम भाग, सम्पादक डा० धीरेन्द्र वर्मा आदि, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस, प्रथम संस्करण, संवत् २०१५, पृष्ठ ८४८।

२. जैन कवियों के हिन्दी काव्य का काव्यशास्त्रीय मूल्यांकन, आगरा विश्वविद्यालय की १९७४ में डी० लिट्० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध, डा० महेन्द्र सागर प्रचंडिया, द्वितीय अध्याय, पृष्ठ-११-१२।

शती के आचार्य पद्मनदि कृत कुलकुण्ड पार्श्वनाथ विधान तथा देवपूजा नामक महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं। पन्द्रहवीं शती के आचार्य श्रुतसागर कृत सिद्ध चक्राष्टक पूजा तथा श्रुतस्कन्ध पूजा उल्लेखनीय पूजाकाव्य हैं।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य का मूलाधार आचार्य पद्मनंदि विरचित उपासनात्मक कृतियों में विद्यमान है। यहाँ यह काव्यरूप व्यवस्थित रूप से अठारहवीं शती में उपलब्ध होता है। अठारहवीं शती के समर्थ कविर्मनीषी द्यानतराय विरचित ग्यारह पूजा काव्य प्राप्त हैं। उन्नीसवीं शती में अनेक जैन-हिन्दी कवियों द्वारा यह समर्थ काव्य रूप उपासनात्मक अभिव्यंजना के लिए गृहीत हुआ है। इस दृष्टि से कविवर रामचन्द्र कृत सत्ताईस पूजाएँ, कविवर वृन्दावन कृत पांच पूजा काव्य, श्री मनरंगलाल कृत छब्बीस पूजा-काव्य-कृतियाँ, श्री बख्तावररत्न रचित पच्चीस पूजाएँ, श्री कमलनयन तथा श्री मल्लजी कृत एक-एक पूजाकाव्य विभिन्न आराध्य शक्तियों पर आधारित रचे गये हैं।

बीसवीं शती में पूजाकाव्य प्रचुर परिमाण में रचा गया है। कविवर रविमल कृत तीस चौबीसी पूजा, श्री सेवक कृत तीन पूजाएँ, श्री भविलाल जू कृत सिद्धपूजा, श्री जिनेश्वरदास कृत तीन, श्री दौलतराम कृत दो, श्री कुंजीलाल विरचित तीन, श्री हेमराज कृत गुरुपूजा, श्री जवाहरलाल कृत दो, श्री आशाराम कृत श्री सोनागिर सिद्ध क्षेत्रपूजा, श्री हीराचन्द्र कृत दो, श्री नेम जी रचित अकृत्रिम चैत्यालय पूजा, श्री रघुसुत कृत दो, श्री दीपचन्द्र कृत श्री बाहुबली पूजा, श्री पूरणमल कृत श्री चांदनपुर महावीर स्वामी पूजा, श्री भगवानदास कृत श्री तत्त्वार्थ सूत्र पूजा, श्री मुन्नालाल कृत श्री खण्डगिरि क्षेत्र पूजा, श्री सच्चिदानंद कृत श्री पंचपरमेठी पूजा, श्री युगलकिशोर जैन 'युगल' कृत देवशास्त्र गुरुपूजा और श्री राजमल पवैया कृत श्री पंचपरमेष्ठी पूजा अधिक उल्लेखनीय हैं।

पूजा एक समर्थ काव्यरूप है। यह काव्यरूप संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश से होता हुआ हिन्दी में अवतरित हुआ है। अठारहवीं शती से पूर्व संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषा में प्रणीत पूजाकाव्य का प्रयोग भक्त्यात्मक समुदाय और समाज में होता रहा है। अठारहवीं शती से जैन हिन्दी काव्य में यह काव्यरूप व्यवस्थित रूप से रचा गया और यह परम्परा बीसवीं शती तक, आज तक निरन्तर चलती आ रही है।

इस काव्यरूप के माध्यम से जहाँ एक ओर कल्याणकारी धार्मिक अभि-

व्यंजना हुई है जिसमें धर्म, ज्ञान तथा भवत्यात्मक सत्य का अतिशय उद्घाटन हुआ है, वहाँ दूसरी ओर काव्यरूप अलंकार, छंद, रस, प्रतीक-योजना, भाषा तथा शैली विषयक साहित्यिक तत्त्वों की भी सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। शैली तात्त्विक दृष्टि से पूजाकाव्य रूप का अपना निजी महत्त्व है। आह्वान, स्थापना, सन्निधिकरण, पूजन-अष्टद्रव्य द्वारा अष्टकर्मों के क्षयार्थ शुभसंकल्पपूर्वक अर्घ्यक्षेपण, पंच-कल्याणक, जयमाला तथा विसर्जन जैन पूजाकाव्य के शैली विषयक उल्लेखनीय अंग हैं।

ज्ञान

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य की एक सुदीर्घ परम्परा रही है। हिन्दी के मध्य-काल से इस काव्य रूप का निर्बाध प्रयोग हिन्दी में हुआ है। देव, शास्त्र, गुरु के अतिरिक्त विविध मुखी ज्ञान-शक्तियों पर आधृत जैन हिन्दी-पूजा-काव्य रचा गया है। विवेच्य काव्य में जैनधर्म से सम्बन्वित अनेक उपयोगी तथ्यों एवं विचारों की सफल अभिव्यंजना हुई है।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य ज्ञान का एक गम्भीर सागर है। उसकी गम्भीरता का किनारा शब्द-पाठ से तो पाया जा सकता है, किन्तु भाव की गहराई में तल को स्पर्श करना सुगम तथा सरल नहीं है। ऊपर-ऊपर तैर जाना एक बात है और चिन्तन का गम्भीर अवगाहन कर अन्तस्तल को स्पर्श करना दूसरी बात है। भक्त डुबकी पर डुबकी लगाता ही आ रहा है और उसका यह सातत्य क्रम आज भी जारी है।

धर्म क्या है ? इस सम्बन्ध में दो मौलिक किन्तु बहुप्रचलित व्याख्याएँ हैं। एक महर्षि वेदव्यास की—'धारणाद्धर्मः' अर्थात् जो धारण किया करता है, उद्धार करता है अथवा जो धारण करने योग्य है, उसे ही वस्तुतः धर्म कहा जाता है। दूसरी व्याख्या है जैन परम्परानुमोदित—'वत्युसहावो' धम्मो अर्थात् वस्तु का अपना स्वरूप-स्वभाव ही उसका धर्म है।

मानव-जीवन के विकास का मूलाधार धर्म है। उससे उसका परिशोधन भी होता है। संसार में धर्म-तत्त्व के अतिरिक्त अन्य कोई तत्त्व अधिक पवित्र नहीं है। धर्म और सम्प्रदाय दोनों एक नहीं हैं। सम्प्रदाय धर्म का खोल है, धर्म नहीं है, पर जब भी धर्म को व्यावहारिक रूप से रहना होगा, तब वह किसी न किसी सम्प्रदाय में ही रहेगा। वैदिक, जैन और बौद्ध ये तीनों धर्म के आधारभूत सम्प्रदाय विशेष हैं।

राग-द्वेष के विजेता को जिन कहते हैं।[1] जिन की वाणी में विश्वास रखने वाला ही जैन कहलाता है। जिनेन्द्र की वाणी को जैन परम्परा में आगम कहा गया है। आगम के तत्त्व-ज्ञान पर आधृत पूजा-काव्य की रचना हुई है।

जैन हिन्दी-पूजा-काव्य का व्यवस्थित रूप हमें अठारहवीं शती से प्राप्त होता है। ऐतिहासिक क्रम से विवेच्य काव्य में प्रयुक्त ज्ञान-राशि का अध्ययन-अनुशीलन करना यहाँ मूल अभिप्रेत रहा है। जैन हिन्दी पूजा-काव्य का प्रमुख तथा प्रारम्भिक आलम्बन देव, शास्त्र तथा गुरु रूप रहा है। अस्तु, यहाँ इन्हीं शक्तियों के माध्यम से विवेच्य काव्य में प्रयुक्त ज्ञान-सम्पदा का विवेचन करेंगे।

विवेच्य काव्य में प्रयुक्त ज्ञान-तत्त्वों के विषय में अध्ययन करने से पूर्व यह आवश्यक है कि पूज्य, पूजा और पूजक के उद्देश्य विषयक ज्ञान पर संक्षेप में चर्चा हो जानी चाहिए।

इष्टदेव, शास्त्र और गुरु का गुण-स्तवन वस्तुतः पूजा कहलाता है। मिथ्यात्व, राग-द्वेष आदि का अभाव कर पूर्ण ज्ञान तथा सुखी होना ही इष्ट है। उसकी प्राप्ति जिसे हो गई वही वस्तुतः इष्ट-देव हो जाता है। अनन्त चतुष्टय के धनी अरहन्त और सिद्ध भगवान ही इष्ट देव हैं और वे ही परम पूज्य हैं।

शास्त्र तो सच्चे देव की वाणी होती है और इसीलिए उसमें मिथ्यात्व राग-द्वेष आदि का अभाव रहता है। वह सच्चे सुख का मार्ग-दर्शक होने से सर्वथा पूज्य है। नग्न-दिगम्बर भावलिंगी गुरु भी उसी पथ के पथिक, वीतरागी सन्त होने से पूज्य हैं। लौकिक दृष्टि से विद्या—गुरु, माता-पिता आदि भी यथायोग्य आदरणीय एवं सम्माननीय हैं, परन्तु उनके राग-द्वेष आदि का पूर्णतः अभाव न होने से मोक्षमार्ग की महिमा नहीं है, अस्तु उन्हें पूज्य

---

१. "अनेकजन्माटवीप्रापणहेतून् समस्तमोहरागद्वेपादीन् जयतीत जिनः।" अर्थात् अनेक जन्म रूप अटवी को प्राप्त कराने के हेतुभूत समस्त मोह रागद्वेषादिक को जो जीत लेता है, वह जिन है।

—नियमसार, श्री कुन्दकुन्दाचार्य, जीव अधिकार, टीका श्री मगनलाल जैन, श्री सेठी दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला बनर्जी स्ट्रीट, बम्बई-३, प्रथम संस्करण सन् १९६०, पृष्ठ ४।

नहीं माना जा सकता। अष्ट द्रव्य से पूजनीय तो वीतराग सर्वज्ञ देव, वीतरागी मार्ग के निरूपक शास्त्र तथा नग्न-दिगम्बर भाव-लिंगी गुरु ही हैं।

ज्ञानी जीव लौकिक लाभ की दृष्टि से भगवान की आराधना नहीं करता है। उसमें तो सहज ही भगवान के प्रति भक्ति का भाव उत्पन्न होता है। जिस प्रकार धन चाहने वाले को धनवान की महिमा आए विना नहीं रहती, उसी प्रकार वीतरागता के सच्चे उपासक अर्थात् मुक्ति के पथिक को मुक्तात्माओं के प्रति भक्ति का भाव आता ही है। ज्ञानी-भक्त सांसारिक-सुख की कामना नहीं करते, पर शुभ भाव होने से उन्हें पुण्य-बन्ध अवश्य होता है और पुण्योदय के निमित्त से सांसारिक भोग सामग्री भी उन्हें प्राप्त होती है। पर उनकी दृष्टि में उसका कोई मूल्य नहीं। पूजा-भक्ति का सच्चा लाभ तो विषय-कषाय से सर्वथा वचना है।

इस प्रकार जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में पूज्य, पूजा और पूजक के उद्देश्य विषयक ज्ञान का स्पष्टीकरण हो जाने से अब विवेच्य काव्य में प्रयुक्त ज्ञान-तत्त्व के विषय में विवेचना करना असंगत न होगा।

मिथ्याभावों से इच्छाओं और आकांक्षाओं की उत्पत्ति हुआ करती है। संसार के समस्त प्राणी इनकी पूर्ति के प्रयत्न में निरन्तर आकुल-व्याकुल रहा करते हैं। इनकी पूर्ति में इन्हें सुख की सम्भावना हुआ करती है। पूजा काव्य में संसारी जीवन-यात्रा का मूलाधार-अष्टकर्मों की, चर्चा हुई है।[1] ये सभी कर्म निमित्त वनकर आत्मा को तदनुसार विकारोन्मुख किया करते हैं। आत्मा का हित निराकुल सुख में हैं पर यह जीव अपने ज्ञान-स्वभावी आत्मा को भूलकर मोह-राग-द्वेष-रूप विकारी भावों को करता है अरतु दुःखी हुआ करता है।

कर्म के उदय में जब यह जीव मोह-राग-द्वेष-रूपी विकारी भावरूप होता है, उन्हें भावकर्म कहते हैं और उन मोह-राग-द्वेष-भावों का निमित्त पाकर

---

१. अष्टकरम वन-जाल, मुकति माँहि तुम सुख करी।
खेऊँ धूप रसाल, मम निकाल वन जाल से॥

—श्री वृहत् सिद्धचक्र पूजा भाषा, द्यानतराय, जैन पूजा पाठ संग्रह, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता ७, पृष्ठ २३७।

कार्माण वर्गणा कर्मरूप परिणमित होकर आत्मा से सम्बद्ध हो जाती है, उन्हें द्रव्य कर्म कहते हैं।[1]

जैनदर्शन में आठ प्रकार के कर्मों का उल्लेख हुआ है।[2] इन्हें दो भागों में विभाजित किया गया है। यथा—

१. घातिया कर्म,
२. अघातिया कर्म।

घातियाकर्म जीव के अनुजीवी कर्मों को घात करने में निमित्त होते हैं, वे वस्तुतः घातिया कर्म कहलाते हैं। ये चार प्रकार के होते है; यथा—

१. ज्ञानावरणी—वे कर्म परमाणु जिनसे आत्मा के ज्ञान-स्वरूप पर आवरण हो जाता है अर्थात् आत्मा अज्ञानी दिखलाई देती है, उसे ज्ञानावरणी कर्म कहते हैं।

२. दर्शनावरणी—वे कर्म परमाणु जो आत्मा के अनन्त-दर्शन पर आवरण करते हैं, दर्शनावरणी कर्म कहलाते हैं।

३. मोहनीय—वे कर्म परमाणु जो आत्मा के शान्त आनन्दस्वरूप को विकृत करके उसमें क्रोध, अहंकार आदि कषाय तथा राग-द्वेष रूप परिणति उत्पन्न कर देते है, मोहनीय कर्म कहलाते हैं।

४. अन्तराय—वे कर्म परमाणु जो जीव के दान, लाभ, भोग, उपभोग और शक्ति में विघ्न उत्पन्न करते हैं, अन्तराय कर्म कहलाते हैं।

अघातिया कर्म आत्मा के अनुजीवी गुणों के घात में निमित्त नहीं हुआ करते हैं। ये भी चार प्रकार के होते हैं। यथा—

१. वेदनीय—जिनके कारण प्राणों को सुख या दुःख का बोध होता है, वेदनीय कर्म कहलाते हैं।

२. आयु—जीव अपनी योग्यता से जब नारकी, तिर्यंच, मनुष्य या देव शरीर में रुका रहे तब जिस कर्म का उदय हो उसे आयुकर्म कहते है।

---

१. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग १, पं० हुकुमचन्द भारिल्ल, श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापू नगर, जयपुर-४, पृष्ठ २२।

२. 'आद्यो ज्ञान-दर्शनावरण-वेदनीय मोहनीयायुर्नाम-गोत्रान्तरायाः।"
—तत्वार्थ सूत्र, आचार्य उमास्वाति, अध्याय ८, सूत्र ४, जैन संस्कृति संशोधन मंडल, हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस-५, द्वितीय संस्करण सन् १९५२, पृष्ठ २८४।

३. नाम—जिस शरीर में जीव हो उस शरीरादि की रचना में जिस कर्म का उदय हो उसे नाम कर्म कहते हैं।

४. गोत्र—जीव को उच्च या नीच आचरण वाले कुल में उत्पन्न होने में जिस कर्म का उदय हो, उसे गोत्र कर्म कहते हैं।[1]

अष्ट-कर्मों के पूर्णतः क्षय हो जाने पर प्राणी आवागमन परक भव-चक्र से मुक्ति प्राप्त करता है। घातिया-अघातिया सभी कर्म-कुल को पूर्णतः क्षय करने के लिए पूजक विवेच्य काव्य में जिनेन्द्र-भक्ति का आश्रय लेता है। अठारहवीं शती के जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में इन कर्मों की क्रमशः चर्चा हुई है। श्री वृहत् सिद्धचक्र पूजा काव्य में कविवर द्यानतराय ने स्पष्ट लिखा है कि जिस प्रकार मूर्ति के ऊपर पट डालने से उसका रूप परिलक्षित नहीं होता उसी प्रकार ज्ञानावरणी कर्म से जीव अज्ञानी हो जाता है।[2] ज्ञानावरणी कर्म नष्ट होने पर केवल ज्ञान प्रकट होता है, यहाँ केवल ज्ञानधारी सिद्ध भगवान की मनसा, वाचा, कर्मणा उपासना करने की संस्तुति की गई है।[3] जिस प्रकार दरवान भूपति के दर्शन नहीं करने देता, उसी प्रकार दर्शनावरणीकर्म ज्ञानी को देखने में बाधा उपस्थित करता है।[4] दर्शनावरणी कर्म क्षय होने पर केवल दर्शन रूप प्रकट होता है। दर्शनावरणी कर्म क्षय के लिए सिद्धोपासना आवश्यक है।[5] कर्मवेदनी कर्मोदय से साता-असाता वेदनाएँ

---

१. अपभ्रंश वाङ्मय में व्यवहृत पारिभाषिक शब्दावलि, आदित्य प्रचंडिया 'दीति', महावीर प्रकाशन, अलीगंज, एटा, सन् १९७७, पृष्ठ ३।

२. मूरति ऊपर पट करौ, रूप न जानै कोय।
ज्ञानावरणी करमतैं, जीव अज्ञानी होय॥
—श्री वृहत् सिद्धचक्र पूजा भाषा, द्यानतराय, श्री जैन पूजापाठ संग्रह, ६२ नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७ पृष्ठ २३७।

३. ज्ञानावरणी पंच हत, प्रकट्यो केवल ज्ञान
द्यानत मनवच काय सौं, नमौं सिद्ध गुण खान
—श्री वृहत् सिद्ध चक्रपूजा भाषा, द्यानतराय, वही पृष्ठ २३७।

४. जैसे भूपति दरश को, होन न दे दरवान।
तैसे दरशन आवरण, देख न देई सुजान॥
—श्री वृहत् सिद्धचक्रपूजा भाषा, द्यानतराय, वही पृष्ठ २३८।

५. दरशन आवरण, हतै, केवल दर्शन रूप।
द्यानत सिद्ध नमों सदा, अमल-अचल चिद्रूप॥
—श्री वृहत् सिद्धचक्रपूजा भाषा, द्यानतराय, वही पृष्ठ २३८।

भोगनी होती हैं।[1] सिद्धोपासना से वेदनीय कर्म का नाश हो जाता है।[2] मोहनीय कर्म उदय से जीव का सम्यक्त्व गुण प्रच्छन्न हो जाता है।[3] सिद्ध-भगवान की पूजा करने से मोहनीय कर्म नाश हो जाता है।[4] आयुकर्म स्वभावतः जीव को चहुंगति में स्थिर कर देता है।[5] भगवान सिद्ध में आयु-कर्म क्षय करने का गुण विद्यमान है।[6] नामकर्म के उदय से चेतन के नानारूप मुखर हो उठते हैं।[7] गोत्र-कर्म के उत्पन्न होने से जीव को ऊंच-नीच कुल की प्राप्ति हुआ करती है।[8] भगवान सिद्ध की शुद्ध-भाव से पूजा करने पर गोत्र-

---

१. शहद मिली असिधार, सुख दुःख जीवन को करै।
कर्म वेदनीय सार, साता—असाता देत हैं॥
—श्री बृहत सिद्ध चक्र पूजा भाषा, द्यानतराय, श्री जैन पूजा पाठ संग्रह, ६२ नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ २३८।

२. पुण्य-पाप दोऊ डार, कर्म वेदनी वृक्ष के।
सिद्ध जलावन हार, द्यानत निरबाधा करो॥
—श्री बृहत् सिद्धचक्रपूजा भाषा, द्यानतराय, वही पृष्ठ २३९।

३. ज्यों मदिरा के पानतैं, सुध-बुध सबै भुलाय।
त्यों मोहनी-कर्म उदे, जीव गहिल हो जाय॥
—श्री बृहत् सिद्धचक्र पूजा भाषा, द्यानतराय, वही पृष्ठ २३९।

४. अट्ठाईसों मोह की, तुम नाशक भगवान।
अटल शुद्ध अवगाहना, नमों सिद्ध गुणखान॥
—श्री बृहत् सिद्धचक्र पूजा भाषा, द्यानतराय, वहीं पृष्ठ २४०।

५. जैसे नर को पांव, दियो काठ में थिर रहे।
तैसे आयु स्वभाव, जिय को चहुँगति थिति करें॥
—श्री बृहत् सिद्धचक्र पूजा भाषा, द्यानतराय, वही पृष्ठ २४०।

६. द्यानत चारों आयु के, तुम नाशक भगवान।
अटल शुद्ध अवगाहना, नमों सिद्ध गुणखान॥
—श्री बृहत् सिद्धचक्र पूजा भाषा, द्यानतराय, वही पृष्ठ २४१।

७. चित्रकार जैसे लिखे, नाना चित्र अनूप।
नाम-कर्म तैसे करे, चेतन के बहु-रूप॥
—श्री बृहत् सिद्धचक्र पूजा भाषा, द्यानतराय, श्री जैनपूजा पाठ संग्रह, ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ २४१।

८ ज्यों कुम्हार छोटो बड़ो, भांडो घड़ा जनेय।
गोत्र-कर्म त्यों जीव को, ऊँच नीच कुल देय॥
—श्री बृहत् सिद्धचक्र पूजा भाषा, द्यानतराय, वही पृष्ठ २४२।

कर्म का नाश होता है।[1] अन्तराय कर्मोदय से दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य आदि प्रसंगों में भी जीव इनसे प्राय: विहीन रहता है।[2] इस प्रकार सिद्ध-उपासना द्वारा इस कर्म का नाश सहज में हो जाता है।[3]

इसी प्रकार कर्म-विरत होने के लिए उन्नीसवीं शती के कविवर मनरंगलाल कृत श्री शीतलनाथ पूजा में[4] तथा कविवर वृन्दावनदास विरचित श्री महावीर स्वामी पूजा मे[5] पूजोपासना का उल्लेख किया है। बीसवीं शती में कविवर पूरनमल द्वारा रचित श्री महावीर स्वामी पूजा में[6] तथा कविवर मुन्नालाल कृत श्री खण्डगिरि क्षेत्रपूजा में[7] अष्टकर्म नाश करने का उल्लेख हुआ है।

---

१. ऊँच-नीच दो गोत्र, नाश अगुरुलघु गुण भए।
   द्यानत आतम जोत, सिद्ध शुद्ध वंदो सदा ॥
   —श्री बृहत् सिद्धचक्र पूजा भाषा, द्यानतराय, वही पृष्ठ २४२।
२. भूप दिलावें द्रव्य को, भण्डारी दे नाहिं।
   हीन देय नहि सम्पदा, अन्तराय जगमाहिं ॥
   —श्री बृहत् सिद्धचक्र पूजा भाषा, द्यानतराय, वही पृष्ठ २४३।
३. अन्तराय पांचों हते, प्रगट्यो सुबल अनन्त।
   द्यानत सिद्ध नमों सदा, ज्यों पाऊँ भव अन्त ॥
   —श्री बृहत् सिद्ध पूजा भाषा, द्यानतराय, श्री जैन पूजापाठ संग्रह, ६२, नन्दिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ २४३।
४. जे अष्ट कर्म महान अतिबल घेरि, मो चेरा कियो।
   तिन केर नाश विचारि के ले, धूप प्रभु ढिग क्षेपियो ॥
   —श्री शीतलनाथ पूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थ यज्ञ, जवाहरगंज, जबलपुर, म० प्र०, चतुर्थ संस्करण, सन् १९५०, पृष्ठ ७५।
५. हरिचन्दन अगर कपूर, चूर सुगंध करा।
   तुम पद तर खेवत भूरि, आठों कर्म जरा ॥
   श्री महावीर स्वामी पूजा, वृन्दावन, राजेश नित्यपूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, अलीगढ़, प्रथम संस्करण १९७६, पृष्ठ १३४।
६. अष्ट-कर्म के दहन को, पूजा रची विशाल।
   पढ़े सुनें जो भाव से, छूटे जग जंजाल ॥
   —श्री महावीर स्वामी पूजा, पूरनमल, श्री जैन पूजापाठ संग्रह, ६२, नन्दिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७ पृष्ठ १६४।
७. अष्ट-कर्म कर नष्ट मोक्षगामी भए।
   तिनके पूजहुँ चरन सकल मंगल ठए ॥
   —श्री खण्डगिरि क्षेत्रपूजा, मुन्नालाल; श्री जैन पूजा पाठ संग्रह, ६२; नन्दिनी सेठ रोड, कलकत्ता ७, पृष्ठ १५५।

विवेच्यकाव्य में अठारहवीं शती से लेकर वीसवीं शती तक पूजक अष्ट कर्मों के क्षय होने की चर्चा करता है। पूजाकारों को विश्वास है कि इन अष्टकर्मों का नाश पूजा के द्वारा सहज है।

दोष का अर्थ है अवगुण। जैनदर्शन के अनुसार असातावेदनी कर्म के तीव्र तथा मंद उदय से चित्त में विभिन्न प्रकार के राग उत्पन्न होकर चारित्र में दोष उत्पन्न कर देते हैं।[1] ये अठारह प्रकार के उल्लिखित हैं। यथा—

१. क्षुधा — वेदनीय के उदय से भूख का अनुभव करना।

२. तृषा — वेदनीय के उदय से प्यास का अनुभव करना।

३. भय — लोक-परलोक मरण-वेदना आदि का भय।

४. राग — शुभ-अशुभ दो प्रकार का है। धर्मादि में रहना शुभराग है।

५. क्रोध — क्रोध कषाय का उत्पन्न होना।

६. मोह — ऋषि, यति, पुत्रादि से वात्सल्य रखना।

७. चिन्ता — अशुभ विचारना।

८. रोग — शरीर में पीड़ा आदि उत्पन्न होना।

९. मृत्यु — शरीर का नाश होना।

१०. पसीना — श्रम से जल विन्दुओं का प्रकट होना।

११. खेद — जो वस्तु लाभ से खेद उत्पन्न करे।

१२. जरा — शरीर का जर्जर होना।

१३. रति — मन की प्रिय वस्तु में प्रगाढ़ प्रीति रति है।

१४. आश्चर्य — किसी अपूर्व वस्तु में विस्मय होना।

१५. निद्रा — दर्शनावरणी के उदय से ज्ञान ज्योति का अचेत होना निद्रा है।

१६. वन्ध — चारों गतियों में भ्रमण कर मनुष्य गति में शरीर को प्राप्त करना।

---

१. 'दोपाश्च रागादयः।'
समाधि शतक, जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग २, जिनेन्द्रवर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, प्रथम संस्करण, सं० २०२८, पृष्ठांक ४५० ।

१७. आकुलता— चेतन-अचेतन पदार्थों से वियोग प्राप्त करने पर चित्त में घबराना।

१८. मद — ऐश्वर्य की प्राप्ति से आत्मा में अहंकार होना।[1]

आगम का अभिवक्ता जिनेन्द्र-देव समस्त दोषों रहित सर्वज्ञ, वीतराग, आत्मीक गुणों से विभूषित होता है।[2]

विवेच्य-काव्य में अठारह दोषों का उल्लेख आरम्भ से ही हुआ है। अठारहवीं शती के कविवर द्यानतराय प्रणीत 'श्री देवशास्त्र गुरुपूजा' में अठारह दोषों को जीतने के उपरान्त सिद्ध-शक्ति को प्राप्त करने का उल्लेख मिलताहै।[3] उन्नीसवीं शती के कविवर श्री बख्तावररत्न प्रणीत 'श्री चतुर्विंशति जिनपूजा' में अन्तर्यामी अरहन्त भगवान द्वारा अठारह दोषों को जीतने की अभिव्यंजना हुई है।[4] कविवर मनरंगलाल कृत 'श्री मल्लिनाथ पूजा'[5] तथा कविरामचन्द्र

---

१. छुहतण्ह भीरुरोसो रागो मोहो चिंता जरारुजामिच्चू।
स्वेदं खेदं मदो रइ विम्हियणिद्दा जणुव्वेगो॥
—नियमसार, जीव अधिकार, कुन्दकुन्दाचार्य, श्री सेठी दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, धनजी स्ट्रीट, वम्बई-३, १९६०, पृष्ठांक १२।

२. णिस्सेसदोस रहिओ केवल णाणाइ परम विभव जुदो।
सो परमप्पा उच्चइ तव्विवरीओ ण परमप्पा॥
—नियमसार, जीव अधिकार, कुन्दकुन्दाचार्य, श्री सेठी दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, धनजी स्ट्रीट, वम्बई-३, पृष्ठ १७।

३. "चउ कर्मकि त्रेसठ प्रकृति नाशि।
जीते अष्टादश दोष राशि॥"
—श्री देवशास्त्रगुरु पूजा, द्यानतराय, श्री जैनपूजा पाठ संग्रह, ६२; नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ २०।

४. वसु सहस नाम के धारी, तातें नित धोक हमारी।
जो दोष अठारह नामी, तुम नाशे अन्तर्यामी॥
—श्री चतुर्विंशति जिनपूजा, बख्तावररत्न, वीरपुस्तक भण्डार, मनिहारों का रास्ता, जयपुर, सं० २०१८, पृष्ठ ३।

५. जय आनन चारि प्रसन्न नमों।
अरु दोष अठारह शून्य नमों॥
—श्री मल्लिनाथ पूजा, मनरंगलाल, पं० शिखरचन्द्र जैन, जवाहरगंज, जबलपुर, म० प्र०, चतुर्थ संस्करण सन् १९५०, पृष्ठ १३९।

कृत 'श्री कुन्थुनाथ जिनपूजा'[1] में अठारह दोष राहित्य जीवनोत्कर्ष की अभि-व्यंजना परिलक्षित है। इसी प्रकार बीसवीं शती में कविवर सच्चिदानन्द कृत 'श्रीपंचपरमेष्ठीपूजा' में[2], कविवर हीराचन्द्र कृत 'श्री चतुर्विंशतितीर्थंकर-समुच्चयपूजा' में[3], कवि श्री कुंजीलाल विरचित 'श्री देवशास्त्र गुरुपूजा' में[4] अठारह दोषों का उल्लेख हुआ है।

जैन हिन्दी पूजा काव्य में आत्मा के गुणों का घात करने वाले घाति कर्म-ज्ञानावरणी कर्म, दर्शनावरणी कर्म, अन्तराय कर्म तथा मोहनीय कर्म हैं; उनका निरवशेष रूप से प्रध्वंस कर देने के कारण जो निःशेष दोष रहित हैं अर्थात् अठारह महा दोषों से मुक्त हो चुके हैं, ऐसे परमात्मा अर्हत् परमेश्वर हैं।

---

१. दोष अठारह यातें होवें,
क्षुधा तृपति ना नित खाते।
सद घेवर मोदक पूजन ल्यायो,
हरो वेदना दुख यातें॥

—श्री कुन्थुनाथ जिनपूजा, कवि रामचन्द्र, नेमीचन्द्र, बाकलीवाल जैन ग्रन्थ कार्यालय, मदन गंज, किशनगढ़, राजस्थान, प्रथम संस्करण १९५१, पृष्ठ १४८।

२. जयी अष्टदश दोष अर्हतदेवा, करें नित्य शतइन्द्र चरणों की सेवा।
दरश ज्ञान सुख नंत वीरज के स्वामी, नसे घातिया कर्म सर्वज्ञ नामी।

—श्री पंचपरमेष्ठी पूजा, सच्चिदानन्द, नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, दि० जैन उदासीन आश्रम, ईसरी बाजार, हजारी बाग, सं० २४८७, पृष्ठ ३४।

३. घाति चतुष्टय नाशकर, केवल ज्ञान लहाय।
दोष अठारह टार कर, अर्हत् पद प्रगटाय॥

—श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर समुच्चय पूजा, कविवर हीराचन्द्र दि० जैन उदासीन आश्रम, ईसरी बाजार, हजारी बाग, सं० २४८७, पृ० ७४।

४. यह शान्ति रूप मुद्रा नैनों में आ समाई।
अरहन जिनेन्द्र भगवन् तुम विश्व विजयराई॥
चारों करम विनाशे त्रेसठ प्रकृति नसाई।
यह दोष अठारह को जीते तुम्हीं जिनराई॥

—श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, कुंजीलाल, वही पृष्ठ ११५।

पूजक ऐसे ही गुणधर अर्हत्-सिद्ध-शक्ति की इन दोषों को क्षय करने के लिए पूजा करते हैं।[1]

पूज्य आत्मन् में अनन्त गुणों का समुच्चय होता है। विवेच्य काव्य में पूज्य में अनन्त चतुष्टय का होना व्यंजित है। अनन्तचतुष्टय वस्तुतः यौगिक-शब्द है। यहाँ अनन्त शब्द आत्मा का पर्याय है तथा चतुष्टय का अर्थ है चार तत्त्वों का समूह। जैनदर्शन में आत्मा का स्वभाव अनन्तचतुष्टय बताया गया है। अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य तथा अनन्त सुख का सम्यक् समीकरण वस्तुतः अनन्त चतुष्टय कहलाता है। अष्टकर्मों के बन्धन से मुक्त, निरुपमेय, अचल, क्षोभ रहित तथा जंगम रूप से विनिर्मित, सिद्धालय में विराजमान कायोत्सर्ग प्रतिमा निश्चय से सिद्ध परमेष्ठी की होती है।[2] जीव आत्मा निज स्वभाव द्वारा चार घातिया-दर्शनावरणीय ज्ञानावरणीय, मोहनीय तथा आन्तराय-नामक कर्मों को क्षय कर अनन्तचतुष्टय गुणों की प्राप्ति कर अनन्तानन्द की अनुभूति करता है।[3]

जैन हिन्दी पूजा काव्य में अनन्त चतुष्टय का वर्णन अठारहवीं शती से ही हुआ है। कविवर द्यानतराय द्वारा रचित श्री देवपूजा में ज्ञानी का लक्षण स्पष्ट

---

१. जय दोष अठारा रहित देव,
मुझ देहु सदा तुम चरण सेव।
हूँ करूँ विनती जोरि हाथ,
भव तारन तरन निहारि नाथ ॥

—श्री महावीर जिन पूजा, कविवर रामचन्द्र, नेमीचन्द्र वाकलीवाल जैन ग्रन्थ कार्यालय, मदनगंज, किशनगढ़, राजस्थान, सन् १९५१, पृष्ठ २११।

२ दंसण अणंत णाणं अनंत वीरिय अणंत सुक्खा य।
सासय सुक्खय देहा मुक्का कम्मट्ठबंधे हिं ॥
णिरुवममचलमखोहा णिम्मविया जंगमेण रूवेण।
सिद्धट्ठाणम्मि ठिया वोसरपडिमा धुवा सिद्धा ॥

—बोध प्राभृत अधिकार, कुन्द-कुन्द प्राभृत संग्रह, आचार्य कुन्द-कुन्द, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, सन् १९६०, पृष्ठ ८७।

३. वल सौख्य ज्ञान दर्शनानि चत्वारोऽपि प्रकटा गुणा भवंति।
नष्टे घाति चतुष्के लोका लोकं प्रकाशयति ॥

—भाव पाहुड, अष्ट पाहुड, कुन्द-कुन्दाचार्य, पाटनी दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, मारोठ, राजस्थान, पृष्ठांक २६४।

करते हुए अनन्त चतुष्टय का प्रयोग किया गया है।[1] उन्नीसवीं शती के कविवर मनरंगलाल कृत 'श्री सुमतिनाथ पूजाकाव्य' में अनन्त चतुष्टय धारी देव के स्वरूप का चित्रण हुआ है।[2] इसी प्रकार बीसवीं शती के कवि सच्चिदानन्द द्वारा रचित श्री पंचपरमेष्ठी पूजा' में जीवन्मुक्त अर्हत के गुणों की चर्चा में अनन्त चतुष्टय का प्रयोग हुआ है।[3] श्री चम्पापुर सिद्ध क्षेत्र पूजा में कविवर दौलतराम द्वारा आराध्यदेव के अनन्त चतुष्टय का वर्णन हुआ है।[4]

घातिया कर्मों के क्षय होने पर केवल ज्ञान के उदय होने की सम्भावना हुआ करती है। आचार्य अमृतचन्द्र सूरी केवल ज्ञान की चर्चा करते हुए स्पष्ट कहते हैं। जो किसी बाह्य पदार्थ की सहायता से रहित हो, आत्म-स्वरूप से उत्पन्न हो, आवरण से रहित हो, क्रम रहित हो, घातिया कर्मों के क्षय से उत्पन्न हुआ हो तथा समस्त पदार्थों को जानने वाला हो, वस्तुतः उसे केवल ज्ञान कहते हैं।[5]

---

१. एक ज्ञान केवल जिनस्वामी। दो आगम अध्यातम नामी।
तीन काल विधि परगत जानी। चार अनन्त चतुष्टय ज्ञानी॥
—श्री देवपूजा, द्यानतराय, बृहज्जिनवाणी संग्रह, पृष्ठ ३०३।

२. करि चारिय घातिय घात जबै,
लहि नंत चतुष्टय पट्ट तबै।
दर्शन अरु ज्ञान सुसौख्य बलं,
इन चारहु ते तुव देव अलं॥
—श्री सुमति नाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, पं० शिखर चन्द्र शास्त्री, जवाहर गंज, जबलपुर, म० प्र० चतुर्थ संस्करण १९५०, पृष्ठ ४५।

३. अनन्त चतुष्टय के धनी, छियालीस गुण युक्त।
नमहु त्रियोग सम्हार के अर्हन जीवन्मुक्त॥
—श्री पंचपरमेष्ठी पूजा, सच्चिदानन्द, नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, दि० जैन उदासीन आश्रम, ईसरी बाजार, हजारीबाग, वीर सं० २४८७, पृष्ठ ३१।

४. हे अनन्त चतुष्टय युक्त स्वाम,
पायो सब सुखद सयोग ठाम॥
—श्री चम्पापुर सिद्ध क्षेत्र पूजा, दौलतराम, श्री जैन पूजापाठ संग्रह, ६२ नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता—७, पृष्ठ १४०।

५. असहायं स्वरूपोत्थं निरावरणम क्रमम्।
घाति कर्म क्षयोत्पन्नं केवलं सर्वभावगम्॥
—तत्वार्थसार, प्रथम अधिकार, श्री अमृतचन्द्रसूरी, श्री गणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला, डूमराव बाग, अस्सी, वाराणसी ५, प्रथम संस्करण सन् १९७०, पृष्ठ १५।

सिद्ध परमेष्ठी सम्पूर्ण द्रव्यों व उनकी पर्यायों से भरे हुए सम्पूर्ण जगत् को तीनों कालों में जानते है तो भी वे मोह रहित ही रहते हैं। स्वयं उत्पन्न हुए ज्ञान और दर्शन से युक्त भगवान् देवलोक और असुरलोक के साथ मनुष्य लोक की अगति, गति, चयन, उपपाद, वन्ध, मोक्ष, ऋद्धि, स्थिति, युति, अनुभाग, तर्क, फल, मन, मानसिक, भुक्त, कृत, प्रतिसेवित आदि कर्म, अरहः कर्म, सब लोकों, सब जीवों और सब भावों को सम्यक् प्रकार से युगपत् जानते हैं, देखते हैं और विहार करते हैं।[1]

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में केवलज्ञान शब्द की विशद व्याख्या हुई है। केवल ज्ञान प्राप्त किये विना किसी भी प्राणी को मोक्ष प्राप्त करना सुगम-सम्भव नहीं है। कविवर द्यानतराय 'श्री वृहत् सिद्धचक् पूजा भाषा' नामक काव्य में स्पष्ट करते हैं कि ज्ञानवरणी कर्म के पूर्णतः क्षय हो जाने पर ही केवलज्ञान प्रकट हो पाता है। पूजक केवल ज्ञानी सिद्ध भगवान की मन, वचन, कर्म से पूजा करता है।[2]

उन्नीसवीं शती के कविवर वख्तावररत्न ने 'श्री विमलनाथ जिनपूजा' नामक काव्य में भगवान द्वारा केवलज्ञान प्राप्त करने की चर्चा की है। केवल ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त ही भगवान् कल्याणकारी उपदेश देते हैं फलस्वरूप अनेक प्राणी कल्याण को प्राप्त हुए हैं।[3] इसी प्रकार कविकृत 'श्री कुन्थुनाथ जिनपूजा' में केवल ज्ञान प्राप्त करने पर ही प्रभु द्वारा जन-कल्याणकारी उपदेश दिए जाने का उल्लेख है।[4] कविवर रामचन्द्रकृत

---

१. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग २, क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन. नई दिल्ली, प्रथम संस्करण सन् १९७१, पृष्ठ १४७।

२. ज्ञानावरणी पंच हत्, प्रकट्यो केवल ज्ञान।
द्यानत मनवच काय सों, नमो सिद्ध गुणखान ॥
—श्री वृहत सिद्धचक्र पूजा भापा, द्यानतराय, श्री जैन पूजा पाठ संग्रह, ६२ नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ २३७।

३. पायो केवल ज्ञान, दीनो उपदेश भव्य वहु तारे।
शिखर-समेद महानं, पाई शिव सिद्ध अष्ट गुण धारे ॥
—श्री विमलनाथ जिनपूजा वख्तावररत्न, वीर पुस्तक भण्डार, मनिहारों का रास्ता, जयपुर, सं० २०१८, पृष्ठ ९३।

४. चैत उजियारी दुतिया जु है, जिन सुपायो केवल ज्ञान है।
सभा द्वादश में वृप भापियों, भव्य जन सुन के रस चाखियो ॥
—श्री कुन्थुनाथ जिनपूजा, पंचकल्याणक, वख्तावर रत्न, वीर पुस्तक भंडार, मनिहारों का रास्ता, जयपुर, सं० २०१८, पृष्ठ ११४।

'श्री अजितनाथ जिनपूजा' में प्रभु द्वारा पोष शुक्ला एकादशी को केवल ज्ञान प्राप्त करने का उल्लेख मिलता है।[1] 'श्री मुनि सुव्रतनाथ जिनपूजा' में कवि ने 'केवल धर्म' संज्ञा में केवल ज्ञान का उल्लेख किया है।[2] 'श्री महावीर जिन पूजा में कवि ने घातिया कर्म चूर करने के उपरान्त भगवान् द्वारा ज्ञान प्राप्त करने की चर्चा की है।[3]

बीसवीं शती में कवि कुंजीलाल द्वारा प्रणीत 'श्री महावीर स्वामी पूजा' में चार घातिया कर्म नाश कर वैशाख शुक्ला दशमी को प्रभु ने केवल ज्ञान प्राप्त किया, ऐसा उल्लिखित है।[4] कवि हीराचन्द्र कृत 'श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर समुच्चय पूजा' में प्रभु द्वारा चार घातिया कर्म नष्ट कर केवल ज्ञान प्राप्त करने का उल्लेख हुआ है।[5] कविवर सेवक द्वारा प्रणीत 'श्री आदिनाथ

---

१. पौह सुकल एकादसी, केवल ज्ञान उपाय।
कह्यो धर्म पद जुग जजे, महाभक्ति उर लाय॥
—श्री अजितनाथ जी की पूजा, रामचन्द्र नेमीचन्द्र वाकलीवाल जैन ग्रन्थ कार्यालय, मदनगंज, किशनगढ़, राजस्थान, प्रथम संस्करण, सन् १९५१, पृष्ठ २६।

२. नौमी वदि वैसाख हो, हने घाति दुखदाय।
कह्यौ धर्म केवलि भए जजूं चरण गुनगाय॥
—श्री मुनि सुव्रत नाथ जिनपूजा, रामचन्द्र, नेमीचन्द्र वाकलीवाल जैन, ग्रन्थ कार्यालय, मदनगंज, किशनगढ़, राजस्थान, प्रथम संस्करण, सन् १९५१, पृष्ठ १७४।

३. दसमी सित वैसाख ही, घाति कर्म चक चूर।
केवल ज्ञान उपाइयों, जजूं चरण गुण भूर॥
—श्री महावीर जिनपूजा, रामचन्द्र, नेमीचन्द्र वाकलीवाल जैन ग्रन्थ कार्यालय, मदनगंज, किशनगढ़, राजस्थान, प्रथम संस्करण, सन् १९५१, पृष्ठ २०९।

४. वैशाख सुदी दशमी, ध्यानस्थ वखानी।
चोकर्म नाशि नाथमए, केवल ज्ञानी॥
—श्री महावीर स्वामीं पूजा, कुंजीलाल, नित्य नियम विशेप पूजा संग्रह, दि० जैन उदासीम आश्रम, ईसरी वाजार, हजारी वाग, वीर संवत् २४८७, पृष्ठ ४३।

५. घाति चतुष्टय नाश कर, केवल ज्ञान लहाय।
दोप अठारह टार कर, अर्हत् पद प्रगटाय॥
—श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर समुच्चय पूजा, हीराचन्द्र, नित्य नियम विशेप पूजन संग्रह, दि० जैन उदासीन आश्रम, ईसरी वाजार, हजारी वाग, वीर सं० २४८७, पृष्ठ ७४।

जिनपूजा' में फाल्गुण-कृष्णा एकादशी को प्रभु केवलज्ञान से सम्पन्न हुए उल्लिखित है। केवल ज्ञानोपलब्धि पर इन्द्र द्वारा पूजा-अर्जन का उल्लेख कवि द्वारा हुआ है।[1] 'श्री खण्डगिरि क्षेत्रपूजा' काव्य में कविवर मुन्नालाल दुद्धर- तपश्चरण करने के उपरान्त केवल ज्ञान प्राप्त करने की चर्चा करते हैं, केवल ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् इन्द्र द्वारा प्रभु-पूजा करने का प्रसंग काव्य में सफलतापूर्वक व्यंजित किया गया है।[2]

अन्य मनुष्यों तथा केवलियों की अपेक्षा तीर्थंकरों में छियालीस गुणों का समावेश होता है।[3] इन छियालीस गुणों को निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। यथा—

१. अनन्त चतुष्टय
२. चौंतीस अतिशय
३. आठ प्रातिहार्य

अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य तथा अनन्त सुख-विषयक विवेचन किया जा चुका है। चौंतीस अतिशयों का विवेचन करना अपेक्षित है। भगवान के चौंतीस अतिशयों को विषय-बोध के आधार पर तीन भागों में विभाजित किया गया है। यथा—

१. जन्म के दश अतिशय।
२. केवल ज्ञान के ग्यारह अतिशय।
३. देवकृत तेरह अतिशय।

---

१. फाल्गुण वदि एकादशी, उपज्यों केवल ज्ञान।
इन्द्र आय पूजा करी, मैं पूजों इह थान॥
—श्री आदिनाथ जिनपूजा, सेवक, श्री जैन पूजा पाठ संग्रह, ६२, नलिनी सेठ रोड कलकत्ता-७, पृष्ठ ६७।

२. इस विधि तप दुद्धर करन्त जोय,
सो उपजै केवल ज्ञान सोय।
सब इन्द्र आज अति भक्ति धार।
पूजा कीनी आनन्द धार।
—श्री खण्डगिरि क्षेत्रपूजा, मुन्नालाल, श्री जैन पूजापाठ संग्रह, ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १५८।

३. वृहद् जैन शब्दार्णव, भाग २, मास्टर बिहारीलाल अमरोहा, मूलचन्द्र किशनदास कापड़िया पुस्तकालय, सूरत, सं० २४६०, पृष्ठ ५८८।

जन्म के दश अतिशयों का वर्णन 'तिलोयपण्णत्ति' में निम्न प्रकार से उल्लिखित हैं। यथा—

१. स्वेद रहितता।
२. निर्मल शरीरता।
३. वज्र वृषभनाराच संहनन अर्थात् उनके शरीर की हड्डी, हड्डियों के जोड़, जोड़ों की कील वज्र के समान दृढ़ होती है।
४. समचतुरस्र शरीर संस्थान अर्थात् उनके शरीर का प्रत्येक अंग और उपांग ठीक आकार में सुडौल होता है।
५. दूध के समान धवल रुधिर।
६. अनुपम रूप।
७. नृप चम्पक के समान उत्तम गन्ध को धारण करना।
८. १००८ उत्तम लक्षणों का धारण।
९. अनन्त बल।
१०. हित-मित एवं मधुर भाषण।[1]

केवल ज्ञान के ग्यारह अतिशयों का क्रम निम्न प्रकार है। यथा—

१. अपने पास से चारों दिशाओं में एक सौ योजन तथा सुभिक्षता अर्थात् अकाल का अभाव।
२. आकाशगमन अर्थात् तीर्थंकर केवल ज्ञानी पृथ्वी से ऊपर अधर चलते हैं।
३. हिंसा का अभाव।
४. भोजन का अभाव, अर्थात् केवल ज्ञान हो जाने पर उनको न भूख लगती है न वे भोजन करते हैं, अनन्त बल के कारण उनका शरीर दृढ़ बना रहता है।
५. उपसर्ग का अभाव।
६. सबकी ओर मुख करके स्थित होना।
७. छाया रहितता अर्थात् उनके शरीर की छाया नहीं पड़ती है।
८. निर्निमेष दृष्टि।
९. विद्याओं की ईशता।

---

१. तिलोयपण्णत्ति, यतिवृषभाचार्य, अधिकार संख्या ४ गाथा संख्या ८९६ से ८९८, जीवराज ग्रन्थमाला, शोलापुर, प्रथम संस्करण, वि० सं० १९९९।

१०. सजीव होते हुए भी नख और रोमों का समान रहना अर्थात् उनके नख और केश बढ़ा नहीं करते ।

११. अठारह महाभाषा तथा सात सौ क्षुद्रभाषा युक्त दिव्य-ध्वनि अर्थात् केवल ज्ञान हो जाने पर उनको समस्त प्रकार का पूर्ण ज्ञान होता है, कोई भी विद्या, ज्ञान अपरिचित नहीं रहता ।[1]

देवकृत तेरह अतिशयों का क्रम निम्न प्रकार है, यथा—

१. तीर्थंकदों के महात्म्य से संख्यात योजनों तक असमय में ही पत्र-फूल और फलों की वृद्धि से संयुक्त हो जाता है ।

२. कंटक और रेती आदि को दूर करती हुई सुखदायक वायु चलने लगती है ।

३. जीव पूर्व-वैर को छोड़कर मैत्री-भाव से रहने लगते हैं ।

४. उतनी भूमि दर्पण तल के सदृश स्वच्छ और रत्नमय हो जाती है ।

५. सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से मेघ कुमार देव सुगन्धित जल की वर्षा करते हैं ।

६. देव- विक्रिया से फलों के भार से नम्रीभूत शालि और जो आदि सस्य की रचना करते हैं ।

७. सब जीवों को नित्य आनन्द उत्पन्न होता है ।

८. वायु कुमार देव विक्रिया से शीतल पवन चलता है ।

९. कूप और तालाव आदिक निर्मल जल से पूर्ण हो जाते हैं ।

१०. आकाश उल्कापातादि से रहित होकर निर्मल हो जाता है ।

११. सम्पूर्ण जीवों को रोग आदिक वाधाएँ नहीं होती हैं ।

१२. यक्षेन्द्रों के मस्तकों पर स्थित और किरणों से उज्ज्वल ऐसे चार दिव्य धर्म चक्रों को देखकर जनों को आश्चर्य होता है ।

१३. तीर्थंकरों के चारों दिशाओं में छप्पन सुवर्ण कमल, एक पादपीठ और दिव्य एवं विविध प्रकार के पूजन द्रव्य होते हैं ।[2]

---

१. तिलोयपण्णत्ति, यतिवृषभाचार्य, अधिकार संख्या ४, गाथा संख्या ८९९ से, जीवराज ग्रन्थमाला, शोलापुर, प्रथम संस्करण, वि० सं० १९९९ ।

२. तिलोयपण्णत्ति, यति वृषभाचार्य अधिकार संख्या ४, गाथांक ९०७ से ९१४, जीवराज ग्रन्थमाला शोलापुर, प्रथम संस्करण वि० सं० १९९९ ।

प्रातिहार्य शब्द पारिभाषिक है। जैनदर्शन में इसका अभिप्राय है दिव्य महत्त्वशाली पदार्थ। भगवान के आठ प्रातिहार्य उल्लिखित हैं। यथा—

१. अशोक वृक्ष।
२. तीन छत्र।
३. रत्नखचित सिंहासन।
४. भक्तियुक्त गणों द्वारा वेष्ठित रहना अर्थात् मुख से दिव्यवाणी प्रकट होना।
५. दुन्दभि नाद।
६. पुष्प-वृष्टि।
७. प्रभामण्डल।
८. चौसठ चमरयुक्तता।[1]

जैन हिन्दी पूजाकाव्य में केवल ज्ञानी तीर्थंकर-वन्दना प्रसंग में उनमें विद्यमान छियालीस गुणों की अभिव्यंजना हुई है। अठारहवीं शती से लेकर बीसवीं शती तक पूजा-काव्य में छियालीस गुणों की चर्चा हुई है। अठारहवीं शती के कविवर द्यानतराय प्रणीत 'श्री देवपूजा भाषा' के जयमाल अंश में जिनेन्द्र में छियालीस गुणों का उल्लेख किया गया है।[2] उन्नीसवीं शती के कविवर बख्तावर रत्न विरचित 'श्री धर्मनाथ जिनपूजा' में जयमाल प्रसंग में तीर्थंकर के गुणों में छियालीस गुणों की चर्चा बड़े महत्व की है। पूजक ऐसे दिव्यगुणधारी जिनेन्द्र की उपस्थिति को कल्याणकारी मानकर पूजा करता है।[3]

---

१. जंबूदीव पण्णत्ति संगहो, अधिकार संख्या १३, गाथा संख्या १२२-१३० जैन संस्कृति संरक्षण संघ, शोलापुर, वि० सं० २०१४।

२. गुण अनंत को कहि सकें छियालीस जिनराय।
प्रगट सुगुन गिनती कहूं, तुम ही होहु सहाय॥
—श्री देवपूजा भाषा, द्यानतराय, बृहत् जिनवाणी संग्रह, पंचम अध्याय, सम्पादक-प्रकाशक-पन्नालाल वाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़, राजस्थान सन् १९५६, पृष्ठ ३०२।

३. गुण छालिस तुम मांहि विराजे देवजी,
तितालिस गण ईश करैं तुम सेव जी।
भव्य जीव निस्तारन को तुमने सही,
करो विहार महान आर्य देशन कही॥
—श्री धर्मनाथ जिनपूजा, बख्तावरत्न, वीरपुस्तक भण्डार, मनिहारों का रास्ता, जयपुर, सं० २०१८, पृष्ठ १०४।

'श्री श्रेयांसनाथ जिन पूजा' में प्रभु का छियालीस गुणों से समलंकृत सम्मेद शिखर पर अपने पहुँचने का प्रसंग उल्लिखित है।[1]

बीसवीं शती के सच्चिदानन्द विरचित 'श्री पंचपरमेष्ठी पूजा' में सिद्ध-जिनेश्वर की चर्चा कर उनमें विद्यमान छियालीस गुणों का उल्लेख किया है।[2] कविवर हीराचन्द्र द्वारा रचित 'श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर समुच्चय पूजा' में प्रभु के ज्ञान कल्याणक प्रसंग में छियालीस गुणों की चर्चा अभिव्यक्त है।[3]

जैनदर्शन के अनुसार व्यक्ति अपने कर्मों का विनाश करके स्वयं परमात्मा बन जाता है। उस परमात्मा की दो अवस्थाएँ हैं—

१. शरीर सहित जीवन्मुक्त अवस्था।
२. शरीर रहित देह-मुक्त अवस्था।

पहली अवस्था को यहाँ अरहन्त और दूसरी अवस्था को सिद्ध कहा जाता है। अर्हन्त भी दो प्रकार के होते हैं। यथा -

१. तीर्थंकर
२. सामान्य

विशेष पुण्य सहित अर्हन्त जिनके कि कल्याणक महोत्सव मनाए जाते हैं, तीर्थंकर कहलाते हैं और शेष सर्वसामान्य अर्हन्त कहलाते हैं। केवल ज्ञान अर्थात् सर्वज्ञत्व युक्त होने के कारण उन्हें केवली भी कहते हैं।[4] इन सभी शुभ-शक्तियों के छियालीस गुणों की चर्चा विवेच्य काव्य में आद्यन्त हुई है।

---

१. इस छियालीस गुण सहित ईश, विहरत आए सम्मेद शीश।
तहाँ प्रकृति पिचासी छीन कीन, शिव जाए विराजे शर्म लीन॥
—श्री श्रेयांसनाथ जिनपूजा, बखतावररत्न, वीर पुस्तक भण्डार, मनिहारों का रास्ता, जयपुर, सं० २०१८, पृष्ठ ८१।

२. अनन्त चतुष्टय के धनी छियालीस गुणयुक्त।
नमहुं त्रियोग सम्हार के अर्हन्त जीवन्मुक्त॥
—श्री पंचपरमेष्ठी पूजा, श्री सच्चिदानन्द, नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, दि० जैन उदासीन आश्रम, ईसरी बाजार, हजारी बाग, पृष्ठ ३१।

३. छियालीस गुण प्राप्त कर, सभा जुद्वादश माँहि।
भव्य जीव उपदेश कर, पहुँचाये शिव ठाँहि॥
—श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर समुच्चय पूजा, हीराचन्द्र, नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, दि० जैन उदासीन आश्रम, ईसरी बाजार, हजारी बाग, पृष्ठ ७४।

४. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग १, क्षु० जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण सन् १९७०, पृष्ठ १४०।

विवेच्यकाव्य में अर्हन्त के छियालीस गुणों के उपरान्त अकारादि तथा शताब्दि क्रम से धर्म के दश लक्षणों की सातत्य अभिव्यंजना हुई है। विश्व के सभी धर्मों में धर्म के लक्षणों की चर्चा हुई है और उन्हें सर्वत्र दश-भागों में ही विभक्त किया गया है। जैन धर्म के अनुसार धर्म के दश-लक्षणों को निम्न रूप में विभाजित किया गया है।[1] यहाँ प्रत्येक लक्षण से पूर्व उत्तम शब्द का व्यवहार हुआ है जिसका अर्थ है श्रेष्ठ अर्थात् भावों की उज्ज्वलता।[2] यथा—

१. उत्तम क्षमा
२. उत्तम मार्दव
३. उत्तम आर्जव
४. उत्तम शौच
५. उत्तम सत्य
६. उत्तम संयम
७. उत्तम तप
८. उत्तम त्याग
९. उत्तम आकिंचन्य
१०. उत्तम ब्रह्मचर्य।

क्षमा — भावों में निर्मलता के साथ-साथ सहन-शीलता का होना वस्तुतः उत्तम क्षमा कहलाता है।[3]

---

१. क्षमा मृद्वृजुते शौचं ससत्यं संयमस्तपः।
त्यागोऽकिञ्चनता ब्रह्म धर्मो दशविधः स्मृतः॥
—तत्त्वार्थसार, षष्ठाधिकार, श्री अमृतचन्द्र सूरि, श्री गणेश प्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला, डुमरावबाग, अस्सी, वाराणसी—५, प्रथम संस्करण १९७०, श्लोकांक १३, पृष्ठ १३३।

२. दशलक्षणधर्म: एक अनुचिन्तन, क्षु० शीतलसागर, ए० एम० डी० जैन धर्म प्रचारिणी संस्था, अवागढ़, उ० प्र०, प्रथम संस्करण १९७८, पृष्ठ २।

३. क्रोधोत्पत्ति निमित्तानामत्यन्तं सति संभवे।
आक्रोश ताडनादीनां कालुष्योपरमः क्षमा॥
—तत्त्वार्थसार, षष्ठाधिकार, श्री अमृतचन्द्र सूरि, श्री गणेश प्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला, डुमराव बाग, अस्सी, वाराणसी—५, प्रथम संस्करण १९७०, श्लोकांक १४, पृष्ठ १३४।

मार्दव—निश्चय सम्यग्दर्शन सहित होने वाले आत्मा के मृदु-कोमल परिणामों को उत्तम मार्दव कहते हैं। ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप, शरीर इन अष्ट-मदों के द्वारा मान कषाय की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। इसके अभाव से आत्मा में नम्रता जन्म लेती है, यही वस्तुतः मार्दव भाव कहलाता है।[1]

आर्जव—निश्चय सम्यग्दर्शन के साथ होने वाले भव्य जीव के ऋजु अर्थात् सरल परिणामों को उत्तम आर्जव कहते हैं। मन, वचन और काय इन तीन योगों की सरलता का होना अर्थात् मन से जिस बात को विचारा जाय वही वचन से कही जावे तथा वचन से कही गई बात आचरण में ढाली जाय यह सब कुछ वस्तुतः आर्जव धर्म कहलाता है। इस धार्मिक लक्षण में माया नामक कषाय का पूर्णतः अभाव हो जाता है।[2]

शौच—निश्चय सम्यग्दर्शन के साथ होने वाले आत्मा के शुचि अर्थात् पवित्र, निर्मल, शुद्ध भावों को उत्तम शौच कहते हैं। प्राणी तथा इन्द्रिय सम्बन्धी परिभोग और उपभोग नामक चतुर्मुखी लोभवृत्ति का पूर्णतः अभाव होने पर शौच धर्म का प्रादुर्भाव होता है।[3]

सत्य—निश्चय सम्यग्दर्शन के साथ अपने आत्मा के सत् अर्थात् शुद्ध, स्वाभाविक एवं शाश्वत् भाव को देख जानकर उसमें तल्लीन होना वस्तुतः

---

१. अभावो योऽभिमानस्य परेः परिभवे कृते।
जात्यादीनामनावेशान्मदानां मार्दवं हि तत्॥
—तत्वार्थसार, षष्ठाधिकार, श्लोकांक १५, श्रीमद् अमृतचन्द्र सूरि, श्री गणेश प्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला, डुमराव बाग, अस्सी, वाराणसी-५, प्रथम संस्करण १९७०, पृष्ठ १६४।

२. 'वाङ्मनः काययोगानामवक्रत्वं तदार्जवम्।'
—तत्वार्थसार, षष्ठाधिकार, श्री अमृतचन्द्र सूरि, श्री गणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला, डुमराव बाग, अस्सी, वाराणसी-५, प्रथम संस्करण १९७०, पृष्ठ १६४।

३. परिभोगोपभोगत्वं जीवितेन्द्रियभेदतः।
चतुर्विधस्य लोभस्य निवृत्तिः शौचमुच्यते॥
—तत्वार्थसार, षष्ठाधिकार, श्री अमृतचन्द्र सूरि, श्री गणेश प्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला, डुमराव बाग, अस्सी, वाराणसी-५, प्रथमसंस्करण १९७०, श्लोकांक १६, पृष्ठ १६४।

उत्तम सत्य कहलाता है। धर्मवृद्धि के प्रयोजन से जो निर्दोष वचन कहे जाते हैं वही सत्य धर्म होता है।[1]

संयम—निश्चय सम्यग्दर्शन के साथ अपने आत्मा के शुद्ध स्वभाव में निरत होना, संयत होना उत्तम संयम कहलाता है। प्राणि और इन्द्रिय अर्थात् प्राणी-घात और ऐन्द्रिक-विषयों से विरक्ति-भावना को आत्मसात करना ही संयम होता है।[2]

तप—आत्म स्वभाव ज्ञान-दर्शन पर श्रद्धा न रख कर स्व-पर पदार्थों के शुद्ध ज्ञाता-द्रष्टा रहना उत्तम तप धर्म है। कर्मों का क्षय करने के लिए जो तपा जावे वह वस्तुतः तप कहलाता है। स्वपर-उपकार के लिए सत्पात्र को दान-अभय, भोजन, औषधि तथा ज्ञान-देने की भावना से त्याग धर्म प्रकाशित होता है।[3]

आकिंचन्य—निश्चय सम्यग्दर्शन के साथ यह मेरा है इस प्रकार के अभिप्राय का जो अभाव है वह वस्तुतः आकिंचन्य धर्म कहलाता है।[4]

ब्रह्मचर्य—निश्चय सम्यग्दर्शन के साथ ब्रह्म अर्थात् आत्मस्वभाव में टिकना

---

१. ज्ञान चारित्र शिक्षादौ स धर्मः सुनिगद्यते।
धर्मोपबृंहणार्थं यत्साधु सत्यं तदुच्यते॥

—तत्वार्थ सार, षष्ठाधिकार, श्री अमृतचन्द्र सूरि, श्री गणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला, डुमराव बाग, अस्सी, वाराणसी-५, प्रथमसंस्करण १९७०, श्लोकांक १७, पृष्ठ १६५।

२. इन्द्रियार्थेषु वैराग्यं प्राणिनां वधवर्जनम्।
समितौ वर्तमानस्य मुनेर्भवति संयमः॥

—तत्वार्थसार, षष्ठाधिकार, श्रीअमृतचन्द्र सूरि, श्रीगणेश प्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला, डुमराव बाग, अस्सी, वाराणसी-५, श्लोक संख्या १८, पृष्ठ १६५।

३. परं कर्मक्षयार्थं यत्तप्यते तत्तपः स्मृतम्।
—तत्वार्थसार, षष्ठाधिकार, श्रीअमृतचन्द्र सूरि, वही, पृष्ठ १६५।

४. ममेदमित्युपात्तेषु शरीरादिषु केषुचित्।
अभिसन्धि निवृत्तिर्या तदाकिंचन्यमुच्यते॥
—तत्वार्थसार, षष्ठाधिकार, श्रीअमृतचन्द्रसूरि, श्लोकांक २० वही, पृष्ठ १६५।

स्थिर होना ही उत्तम ब्रह्मचर्य है। इस धर्म के उदय होने पर स्त्री-आसन, स्मरण तथा सम्बधित कथावार्ता का प्रसंग स्वतः समाप्त हो जाता है।[1]

इस प्रकार जब तक ये धर्म-लक्षण आत्मा में विकसित नहीं हो जाते, तब तक आत्मा आकुलित अर्थात् दुःखी रहती है।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में दशधर्म का व्यवहार प्रत्येक शती में रचित पूजा रचनाओं में हुआ है। अठारहवीं शती के कविवर द्यानतराय विरचित 'श्री देव-पूजा' के जयमाल अंश में दशलक्षण धर्म को भविजनतारने का माध्यम अभिव्यक्त किया गया है।[2] इसके अतिरिक्त कविवर ने इन धार्मिक लक्षणों के महत्व को ध्यान में रखकर एक पूरा दशलक्षण धर्म-पूजा नामक काव्य ही रच डाला है। कवि ने इन दश धर्मो के द्वारा चहुंगति-जन्य दारूण-दुःखों से मुक्ति प्राप्त करने का संकेत व्यक्त किया है।[3]

उन्नीसवीं शती के कविवर बख्तावर रत्न विरचित 'श्री अनन्तनाथ जिन पूजा' की जयमाल में दशधर्म का उल्लेख हुआ है।[4] इसी प्रकार बीसवीं शती

---

१. स्त्रीसंसक्तस्य शय्यादेरनुभूतांगनास्मृतेः।
तत्कथायाः श्रुतेश्च स्याद्ब्रह्मचर्यं हि वर्जनात्॥
—तत्वार्थसार, षष्ठाधिकार, श्रीअमृतचन्द्र सूरि, श्री गणेश प्रसाद वर्णी ग्रन्थ माला, डुमरावबाग, अस्सी, वाराणसी-५, श्लोकांक २१, पृष्ठ १६६।

२. नवतत्वन के भाखन हारे।
दश लक्षन सों भविजन तारे॥
—श्री देवपूजा, द्यानतराय, बृहज्जिनवाणी संग्रह, पंचम अध्याय, संपादक-प्रकाशक-पन्नालाल बाकलीवाल, मदनगञ्ज, किशनगढ़, राजस्थान, सन् १९५६, पृष्ठ ३०३,।

३, उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव भाव हैं।
सत्य शौच संयम तप त्याग उपाव हैं॥
आकिंचन ब्रह्मचर्य धर्म दशसार हैं।
चहुँ गति दुःखतें काढ़ि मुकति करतार है॥
—श्री दशलक्षण धर्मपूजा, द्यानतराय, सत्यार्थ यज्ञ, जवाहरगंज, जबलपुर, म०प्र०, चतुर्थ संस्करण सन् १९५०, पृष्ठ २२७।

४. दशधर्म तमें सब भेद कहे,
अनुयोग सुने भव शर्म लहे।
—श्री अनन्तनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न, वीरपुस्तकभंडार, मनिहारों का रास्ता, जयपुर, सं० २०१८, पृष्ठ ९८।

के कविवर हीराचन्द्र कृत 'श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर समुच्चय पूजा' में तीर्थंकर धर्मनाथ को दश लक्षण धारी कहा है।[1] कविवर भगवानदास कृत 'श्री तत्त्वार्थ सूत्रपूजा' में दशधर्म द्वारा इस हंस-प्राण का तिरजाना उल्लिखित है।[2] इस प्रकार इस दश लक्षण धर्म की उपयोगिता स्पष्ट हो जाती है।

विवेच्य काव्य में अभिव्यक्त ज्ञान-सम्पदा में समवशरण की अभिव्यंजना वस्तुतः अद्वितीय है। समवशरण यौगिक शब्द है। समवस्थानं शरणं आश्रय स्थलं समवशरणम् अर्थात् सम्यक् प्रकार से बैठे हुए समस्त प्राणियों की आश्रय स्थली।

अर्हत् भगवान् के उपदेश देने की सभा का नाम समवशरण कहलाता है; जहाँ बैठकर तिर्यंच, मनुष्य व देव-पुरुष व स्त्रियाँ सब उनकी अमृत वाणी से कर्ण तृप्त करते हैं। इसकी रचना विशेष प्रकार से देव-गण किया करते हैं। इसकी प्रथम सात भूमियों में बड़ी आकर्षक रचनाएँ, नाट्यशालाएँ, पुष्प-वाटिकाएँ वापियाँ, चैत्यवृक्ष आदि होते हैं। मिथ्या दृष्टि अभव्य जन अधिकतर इसकी शोभा-देखने में उलझ जाते हैं। अत्यन्त भावुक व श्रद्धालु व्यक्ति ही अष्टम भूमि में प्रवेश कर साक्षात् भगवान् के दर्शन तथा उनकी अमृतवाणी से नेत्र, कान तथा जीवन सफल करते हैं।[3]

समवशरण के माहात्म्य विषयक विवेचन करते हुए 'तिलोयपण्णत्ति' नामक प्राकृत महाग्रन्थ में कहा गया है कि एक-एक समवशरण में पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण विविध प्रकार के जीव जिनदेव की वन्दना में प्रवृत्त

---

१. धर्मनाथ हो जग उपकारी,
रत्नत्रय दशलक्षण धारी।
शान्तिनाथ शान्ति के करता,
दुःख शोकमय आदिक हरता॥
—श्री चतुर्विंशतितीर्थंकर सम्मुच्चय पूजा, हीराचन्द्र, नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, दि० जैन उदासीन आश्रम, ईसरी बाजार, हजारीबाग, वीर सं० २४८७, पृष्ठ ७६।

२. अति मानसरोवर झील खरा, करुणारस पूरित नीर भरा।
दश धर्म बहे शुभ हंसतरा, प्रणमामि सूत्र जिनवानि वरा॥
—श्री तत्वार्थ सूत्रपूजा, भगवानदास, श्री जैन पूजापाठ संग्रह, ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ ४१२।

३. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग ४, क्षु० जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १९७३, पृष्ठ ३३०।

होते हुए स्थित रहते हैं। कोठों के क्षेत्र से यद्यपि जीवों का क्षेत्रफल असंख्यात गुणाहै, तथापि वे सब जीव जिनदेव के माहात्म्य से एक दूसरे से अस्पृष्ट रहते हैं। जिन भगवान् के माहात्म्य से वालक प्रभृति जीव प्रवेश करने अथवा निकलने में अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर संख्यात योजन चले जाते हैं। इसके अतिरिक्त वहाँ पर जिन भगवान के माहात्म्य से आतंक, रोग, मरण, उत्पत्ति, वैर, कामवाधा तथा तृष्णा और क्षुधा परक पीड़ाएँ नहीं होती हैं।[1]

अर्हत् भगवान को केवलज्ञान प्राप्त होने पर समवशरण नामक धर्म-सभा की रचना देवों द्वारा सम्पन्न हुआ करती है। समवशरण का विवेच्य काव्य में अठारहवीं शती से ही प्रयोग हुआ है। कवि द्यानतराय कृत 'श्री वीस तीर्थंकर पूजा' के जयमाल अंश में भव-जनों के उद्धारार्थ जिनराज की समव-शरण-सभा सुशोभित है।[2] उन्नीसवीं शती के कविवर वृन्दावनदास विरचित 'श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजा' के जयमाल अंश में पाप और शोक-विमोचनी धर्म-सभा समवशरण का विशद् उल्लेख हुआ है।[3] बीसवीं शती के कवि भगवान दास कृत 'श्री तत्वार्थ सूत्र पूजा' में समवशरण सभा के माहात्म्य विषयक विशद्

---

१. जिणवंदणापयट्टा पल्लासंखेज्जभाग परिमाणा। चेट्ठंति विविह जीवा एक्केक्के समवसरणेसु। कोट्ठाणं खेतादो जीवक्खेतं फलं असंखगुणं। होदूण अपुट्ठ तिहु जिणमाहप्पेण गच्छंति। संखेज्जजोयणाणिं वालप्पहुदी पवेसणिग्गमणे। अंतोमुहुत्तकाले जिणमाहप्पेण गच्छंति। आतंकरोग-मरणुप्पतीओ वेर कामवाधाओ। तण्हाछुह पीडाओ जिणमाहप्पपण हवंति।
—तिलोयपण्णति, यति वृषभाचार्य, अधिकार संख्या ४, गाथा संख्या क्रमशः ९२९, ३०, ३१, ३२, ३३ जीवराज ग्रन्थमाला, शोलापुर, प्रथम संस्करण वि० सं० १९९९।

२. समवशरण शोभित जिनराजा,
भवजन तारन तरन जिहाजा।
सम्यक् रत्नत्रय निधि दानी,
लोकालोक प्रकाशक ज्ञानी ॥
—श्री वीसतीर्थंकर पूजा, द्यानतराय, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटल वर्क्स, अलीगढ़, सन् १९७६, पृष्ठ ९०।

३. लहि समवसरण-रचना महान, जाके देखत सब पाप-हान।
जहँ तरु अशोक शोभै उतंग, सब शोकतनो चूरै प्रसंग ॥
—श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजा, वृन्दावनदास, ज्ञानपीठ पूजांजलि, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १९५७, पृष्ठ ३३७।

व्याख्या हुई है।[1] 'श्री महावीर स्वामी पूजा' में कविवर कुंजी लाल ने प्रभु द्वारा केवलज्ञान प्राप्त होने पर जन-कल्याणकारी उपदेश सभा-समवशरण की रचना का उल्लेख किया है।[2] जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य के अतिरिक्त हिन्दी काव्य में समवशरण विषयक उल्लेख दुर्लभ हैं।

विवेच्य काव्य में सप्तभंगी नामक उपयोगी कथन-शैली की महत्वपूर्ण अभिव्यंजना हुई है। प्रमाण वाक्य से अथवा नयवाक्य से एक ही वस्तु में अविरोध रूप से जो सत्-असत् आदि धर्म की कल्पना की जाती है, उसे सप्तभंगी कहते हैं।[3] कहने के अधिक से अधिक सात भंग अर्थात् तरीके हो सकते हैं। प्रत्येक वस्तु अपने स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल व स्वभाव की अपेक्षा से सत् है, वही वस्तु परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल व परभाव की अपेक्षा से असत् है। इस प्रकार सत् असत् या अस्ति, नास्ति दो विपरीत गुण प्रत्येक वस्तु में भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं के कारण होते हैं। अस्ति व नास्ति दो पक्ष हुए। इन अस्ति व नास्ति दोनों पक्षों को एक साथ ले लेने से तीसरा पक्ष अस्ति-नास्ति हुआ। यदि कोई व्यक्ति वस्तु के अस्ति व नास्ति दोनों विरोधी गुणों को एक साथ कहना चाहे तो नहीं कह सकता। इसलिए अव्यक्तव्य चौथा भंग अर्थात्

---

१. विमल विमल वाणी, श्रीजिनवर वखानी,
सुन भए तत्वज्ञानी ध्यान-आत्म पाया है।
सुरपति मनमानी, सुरगण सुखदानी,
सुभव्य उर आना, मिथ्यात्व हटाया है।।
समझहिं सव नीके, जीव समवशरण के,
निज-निज भापा माँहि, अतिशय दिखानी है।
निरअक्षर-अक्षर के, अक्षरन सों शव्द के,
शव्द सों पद वनें, जिन जु वखानी है।।

—श्री तत्वार्थसूत्र पूजा, भगवानदास, श्री जैन पूजापाठ संग्रह, ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ ४११।

२. वैसाख सुदी दशमी, ध्यानस्थ वखानी,
चोकर्म नाशि नाथ भए, केवल ज्ञानी।
इन्द्रादि समोशर्ण की, रचना तहाँ ठानी,
उपदेश दिया विश्व को जगतारनी वानी।।

—श्री महावीर स्वामी पूजा, कुंजीलाल, नित्य नियम विशेप पूजन संग्रह; दि० जैन उदासीन आश्रम, ईसरी वाजार, हजारी वाग, पृष्ठ ४३-४४।

३. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग ४, क्षु० जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १९७३, पृष्ठ ३१५।

ढंग हुआ। इस प्रकार अस्ति, नास्ति, अस्तिनास्ति व अव्यक्तव्य चार भंग निश्चित होते हैं। प्रत्येक के साथ अव्यक्तव्य लगा देने से अस्ति अव्यक्तव्य, नास्ति अव्यक्तव्य, अस्ति-नास्ति अव्यक्तव्य तीन और भंग हो जाते हैं। इन्हें व्यवस्थित रूप से निम्न रूप में रख सकते हैं[1] यथा—

१. स्याद् अस्ति।
२. स्याद् नास्ति।
३. स्याद् अस्ति-नास्ति।
४. स्याद् अव्यक्तव्य।
५. स्याद् अस्ति अव्यक्तव्य।
६. स्याद् नास्ति अव्यक्तव्य।
७. स्याद् अस्ति-नास्ति अव्यक्तव्य।

केवल सात भंग ही होते हैं इससे अधिक भंगों का प्रयोग करने से पुनरुक्ति दोष होता है।[2]

अठारहवीं शती के कविवर द्यानतराय विरचित 'श्री देवपूजा' में जिनवाणी को सप्तभंग शैली में प्रकाशित किया गया है।[3] 'श्री देव-शास्त्र-गुरू पूजा' नामक काव्य में कवि द्यानतराय ने गणधर द्वारा द्वादशांग वाणी को

---

१. सिय अत्थि णत्थि उभयं अव्वत्तव्वं पुणो य तत्तिदयं।
दव्वं खु सत्तभंगं आदेसवसेण संभवदि॥
—पंचास्तिकाय, गाथांक १४, कुन्द-कुन्द प्राभृत संग्रह, आचार्य कुन्द-कुन्द, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, प्रथम संस्करण सन् १९६०, पृष्ठ २१।

२. अपभ्रंश वाङ्मय में व्यवहृत पारिभाषिक शब्दावलि, आदित्य प्रचंडिया 'दीति', महावीर प्रकाशन, अलीगंज, एटा, उ० प्र०, १९७७, पृष्ठ ८-९।

३. छहों दरव गुन पर जय भासी।
पंच परावर्तन परकासी॥
सात भंग वाणी - परकाशक।
आठों कर्म महारिपु नाशक।
श्री देवपूजा, द्यानतराय, बृहद् जिनवाणी संग्रह, सम्पादक-प्रकाशक पन्नालाल वाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़, राजस्थान, सन् १९५६, पृष्ठ ३०३।

सप्तभंग शैली में व्यंजित किया है।[1] उन्नीसवीं शती के कविवर वख्तावररत्न कृत 'श्री अरनाथ जिन पूजा' में जिनवाणी का सप्तभंग शैली में खिरने का उल्लेख हुआ है।[2] बीसवीं शती में कवि हेमराज द्वारा रचित 'श्री गुरुपूजा' काव्य की जयमाल प्रसंग में मन में जिनवाणी को सप्तभंग शैली में स्मरण किया गया, उल्लिखित है।[3]

इस प्रकार जिनवाणी का वैज्ञानिक विवेचन सप्तभंग शैली में व्यक्त किया गया है। किसी भी सत्य की अभिव्यक्ति के लिए सप्तभंग के अतिरिक्त और अन्य कोई माध्यम उपलब्ध नहीं है। सप्तभंग शैली के विषय में जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में प्रारम्भ से ही उल्लेख मिलता है। दैनिक जीवन में वैखरी का व्यापक और वैज्ञानिक साधन सप्तभंग के अतिरिक्त और अन्य दूसरा उपलब्ध नहीं है।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में रत्नत्रय का प्रयोग हुआ है। सम्यक् रत्नत्रय को मोक्ष मार्ग कहा गया है।[4] ये रत्न तीन प्रकार के होते हैं। यथा—

१. सम्यक् दर्शन
२. सम्यक् ज्ञान
३. सम्यक् चारित्र

---

१. जो स्याद्वादमय सप्त भंग।
गणधर गूंथे बारह सुअंग॥
—श्री देवशास्त्रगुरुपूजा, द्यानतराय, श्री जैनपूजापाठ संग्रह, ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता—७, पृष्ठ २०।

२. योजन साडे तीन हो, समवसरण रच देव।
सप्तभंग वाणी खिरे सुन-सुन नर शरधेव॥
—श्री अरनाथ जिनपूजा, वख्तावररत्न, वीर पुस्तक भण्डार, मनिहारों का रास्ता, जयपुर, सं० २०१८, पृष्ठ १२२।

३. पंच महाव्रत दुद्धर धारें, छहों दरब जानें सुहितं।
सात भंग वानी मन लावें, पावें आठ रिद्ध उचितं॥
—श्री गुरुपूजा, हेमराज, बृहद्जिनवाणीसंग्रह, सम्पादक-प्रकाशक पन्नालाल वाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़, राजस्थान, सन् १९५६, पृष्ठ ३१२।

४. सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः।
—तत्वार्थसूत्र, प्रथम अध्याय, प्रथम श्लोक, आचार्य उमास्वामि, जैन संस्कृति संशोधक मंडल, हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस—५, द्वितीय संस्करण १९५२, पृष्ठ ९७।

जीवादि तत्वार्थों का सच्चा श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है। इसमें सच्चे देव, शास्त्र और गुरु के प्रति श्रद्धान होता है।[1]

जीवादि सप्त तत्वों का संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय से रहित ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है।[2]

परस्पर विरुद्ध अनेक कोटि को स्पर्श करने वाले ज्ञान को संशय कहते हैं। विपरीत एक कोटि के निश्चय करने वाले ज्ञान को विपर्यय कहते हैं। 'यह क्या है ?' अथवा 'कुछ है' केवल इतना अरुचि और अनिर्णय पूर्वक जानने को अनध्यवसाय कहते हैं।[3]

आत्मस्वरूप में रमण करना ही चारित्र है। मोह-राग-द्वेष से रहित आत्मा का परिणाम साम्यभाव है और साम्यभाव की प्राप्ति ही चारित्र है। इसमें पाँच व्रत—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, पांच समिति—ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेप, प्रतिस्थापन, तथा तीन गुप्ति—मनो, वचन, काय—का संयोग रहता है।[4]

रत्नत्रय का उपयोग केवल अठारहवीं शती के कविवर द्यानतराय द्वारा रचित पूजा-काव्यों में हुआ है। यह प्रयोग उन्नीसवीं और बीसवीं शती में

---

१. श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमपतोभृताम् ।
त्रिमूढापोढमष्टांगं सम्यग्दर्शनमस्मयम् ॥
—श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार, स्वामी समन्तभद्राचार्य, वीर सेवा मंदिर, सस्ती ग्रन्थमाला, दरियागंज, प्रथम संस्करण, वि० नि० सं० २४७६, पृष्ठ ४।

२. पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कृतित्व, डा० हुकमचन्द्रभारिल्ल, पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-४ बापूनगर, जयपुर, प्रथम संस्करण १९७३, पृष्ठ १८१।

३. कर्तव्यो ध्यवसायः सदनेकान्तात्मकेपु तत्वेपु ।
संशय विपर्ययानध्यवसाय विविक्तकमात्मरूपं तत् ॥
—पुरुषार्थ—सिद्धयोपाय, श्री अमृतचन्द्र सूरि, दी सेण्ट्रल जैन पब्लिशिंग हाउस, अजिताश्रम, लखनऊ, यू० पी०, प्रथम संस्करण १९३३, पृष्ठ २४।

४. असुहादो विणिविती सुहे पविती य जाण चारितं ।
वद समिदिगुत्तिरूवं ववहारणयादु जिणभणियम् ॥
—वृहद् द्रव्य संग्रह : श्री नेमीचन्द्राचार्य, श्रीमद् राजचन्द्र जैन शास्त्र माला, अगास, प्रथम संस्करण वि०सं० २०२२, श्लोकांक ४५, पृष्ठ १७५।

नहीं हुआ है। अठारहवीं शती के कविवर द्यानतराय द्वारा रचित 'श्रीदेवपूजा' में रत्नत्रय का सफल प्रयोग हुआ है।[1] इसी कवि ने रत्नत्रय पर आधारित श्रीदर्शन पूजा, श्रीज्ञानपूजा एवं श्रीचारित्र पूजा काव्य ही रचे हैं। 'श्रीदर्शनपूजा' में सम्यग्दर्शन सार रूप में व्यंजित है।[2] 'श्रीज्ञान-पूजा' में सम्यग्ज्ञान को मोह-मेटने के लिए व्यक्त किया है।[3] 'श्रीचारित्रपूजा' में तीर्थंकर द्वारा सम्यक् चारित्र को सार रूप मानकर ग्रहण करने की बात कही गई है।[4] कवि ने 'श्री रत्नत्रयपूजा भाषा' में दर्शन, ज्ञान और चारित्र को मुक्ति प्राप्त्यर्थ रत्नत्रय का उल्लेख किया है।[5] उन्नीसवीं और बीसवीं शती में रचित जैन हिन्दी-पूजा काव्य में सम्यक् रत्नत्रय का प्रयोग नहीं हुआ है।

सिद्ध-पद पाने के लिए सोलह-कारण-भावनाओं का चिन्तवन आवश्यक है। भावना—पुण्य-पाप, राग-विराग, संसार-मोक्ष का कारण है। कुत्सित भावनाओं का त्याग कर उत्तम भावनाओं का चिन्तवन करना श्रेयस्कर है।

---

१. मिथ्यातपन निवारन चन्द समान हो।
मोह तिमिर वारन को कारण भानु हो॥
काम कषाय मिटावन मेघ मुनीश हो।
द्यानत सम्यक्रत्नत्रय गुनईश हो॥
—श्री देवपूजा, द्यानतराय, बृहद् जिनवाणी संग्रह, सम्पादक प्रकाशक—पन्नालाल बाकलीवाल, मदन गंज, किशनगढ़, राजस्थान, सन् १९५६, पृष्ठ ३०५।

२. नीर सुगन्ध अपार, त्रिषा हरै मल छय करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजों सदा॥
—श्री दर्शनपूजा, द्यानतराय, राजेश नित्यपूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, अलीगढ़, सन् १९७६, पृष्ठ १९३।

३. पंचभेद जाके प्रकट, ज्ञेय प्रकाशन भान।
मोह तपन हर चन्द्रमा, सोई सम्यग्ज्ञान॥
—श्री ज्ञानपूजा, द्यानतराय, राजेशनित्य पूजापाठ संग्रह, वही, पृष्ठ १९५।

४. विषय रोग औषधि महा, दवकषाय जलधार।
तीर्थंकर जाकों धरें, सम्यक् चारित्रसार॥
—श्री चारित्रपूजा, द्यानतराय, राजेश नित्य नियम पूजा, वही, पृष्ठ १९७।

५. सम्यक् दर्शन, ज्ञान, व्रत शिव मग तीनों मयी।
पार उतारण जान, 'द्यानत' पूजों व्रत सहित॥
—श्री रत्नत्रय पूजाभाषा, द्यानतराय, राजेश नित्य नियम पूजा संग्रह राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, अलीगढ़, १९७६ पृष्ठ १९२।

तत्वार्थसूत्र में सोलह-भावनाओं का उल्लेख निम्न प्रकार से हुआ है।[1] यथा—

१. दर्शन विशुद्धि
२. विनय सम्पन्नता
३. शील
४. व्रतों का अतिचार रहित पालन करना
५. ज्ञान में सतत उपयोग
६. सतत संवेग
७. शक्ति के अनुसार त्याग
८. शक्ति के अनुसार तप
९. साधु-समाधि
१०. वैयावृत्य करना अर्थात् जैन सन्तों की सेवा-सुश्रूषा करना
११. अरहन्त-भक्ति
१२. आचार्य-भक्ति
१३. बहुश्रुत-भक्ति
१४. प्रवचन-भक्ति
१५. आवश्यक क्रियाओं को न छोड़ना अर्थात् देवपूजा, गुरु की उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान करना।
१६. मोक्षमार्ग की प्रभावना और प्रवचन वात्सल्य।

अठारहवीं और बीसवीं शती में रचित पूजा-काव्य में ये सभी भावनाएँ व्यवहृत हैं। उन्नीसवीं शती में रचित पूजाओं में इन भावनाओं की अभिव्यक्ति नहीं हुई है। अठारहवीं शती के द्यानतराय कृत 'श्री देवपूजा' में प्रमाद निवारण कर सोलह भावनाओं के चिन्तवन का फल अविकारी होना चर्चित है।[2]

---

१. दर्शन विशुद्धिविनय सम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतीचारोऽभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग संवेगो शक्तितस्त्याग तपसो साधु समाधिर्वैयावृत्य करण मर्हदाचार्य बहुश्रुत प्रचवन भक्तिरावश्य का परिहाणिर्मार्ग प्रभावना प्रवचन वत्सलत्वमिति तीर्थंकरत्वस्य।

—तत्त्वार्थ सूत्र, अध्याय ६, सूत्र सं० २४, उमास्वामि, श्री अखिल विश्वजैन मिशन, अलीगंज, एटा, १९५७ पृष्ठांक ८८।

२. पन्द्रह-भेद प्रमाद निवारी।
सोलह भावन फल अविकारी॥

—श्री देवपूजा, द्यानतराय, बृहद जिनवाणी संग्रह, सम्पादक-प्रकाशक पन्नालाल बाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़, (राज०), सन् १९५६; पृष्ठ ३०३।

इन भावनाओं के माहात्म्य पर आधारित कवि द्वारा सोलहकारण भाव-चिन्तवन में तीर्थंकर बनना होता है, जिनकी सहर्ष इन्द्रादि पूजा कर पुण्यलाभ अर्जित करते हैं।[1] पूजाकार का विश्वास है कि जो भक्त अथवा पूजक दर्शन विशुद्धि का चिन्तवन करता है उसे आवागमन से मुक्ति मिल जाती है।[2] विनय भावना के चिन्तवन करने से शिव-वनिता-सौख्य उपलब्ध होता है।[3] शीलभावना के द्वारा दूसरों की आपदा-हरण करने का यश प्राप्त होता है।[4] ज्ञानभावना के चिन्तवन करने से मोहरूपी अंधकार का समापन हो जाता है।[5]

---

१. सोलह कारण भाव तीर्थंकर जे भए।
हरषें इन्द्र अपार मेरु पै ले गये॥
पूजा कवि निज धन्य लख्यो वहु चावसों,
हमहूँ षोडश कारन भावें भाव सों॥

—श्री सोलह कारण भावना पूजा, द्यानतराय, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, अलीगढ़, सन् १९७६, पृष्ठ १७४।

२. दरश विशुद्धि धरे जो कोई।
ताको आवागमन न होई॥

—श्री सोलह कारण पूजा, द्यानतराय, राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, सन् १९७६, पृष्ठ १७४।

३. विनय महा धारे जो प्रानी।
शिव वनिता की सखी वखानी॥

—श्री सोलह कारण पूजा, द्यानतराय, राजश नित्यपूजापाठ संग्रह, सन् १९७६ पृष्ठ १७६।

४. शील सदादिढ़ जो नरपालें।
सो औरन की आपद टालें॥

—श्री सोलहकारण पूजा, द्यानतराय, राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, पृष्ठ १७६।

५. ज्ञान अभ्यास करें मनमाहीं।
जाके मोह महातम नाहीं॥

—श्री सोलहकारण पूजा, द्यानतराय, राजेशनित्यपूजा पाठ संग्रह, पृष्ठ १७६।

संवेग-भावना का अभ्यास करने पर स्वर्ग-मुक्ति के पद सुलभ हो जाते हैं।[1] त्याग-भावना अर्थात् दान देने से मन हर्षित तथा यश-सम्पन्न होता है तथा भविष्य सुखी होता है।[2] तप-भावना द्वारा कर्मक्षय हो जाते हैं।[3] साधु-समाधि-भावना का चिन्तवन करने से त्रि-जग के भोग-भोगने का अवसर सुलभ होता है और शिवत्व की प्राप्ति होती है।[4] वैयावृत्य-भावना के चिन्तवन द्वारा सांसारिकता से मुक्ति मिलती है।[5] अरहन्त-भक्ति भावना द्वारा समस्त कषायों का परिहार हो जाता है।[6] आचार्य-भक्ति के परिणामस्वरूप निर्मल आचार धारण करने का सुअवसर

---

१. जो संवेगभाव विस्तारै।
सुरग-मुकति पद आप निहारै॥
—श्री सोलहकारण पूजा, द्यानतराय, राजेश नित्यपूजा पाठ संग्रह, पृष्ठ १७६।

२. दान देय मन हरप विशेषे।
इह भव जस, पर-भव सुख देखे॥
—श्री सोलह कारण पूजा, द्यानतराय, राजेश नित्य नियम पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १७६।

३. जो तप तपे खिपैं अभिलापा।
चूरैं करम शिखर गुरू भापा॥
—श्री सोलह कारण पूजा, द्यानतराय, राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १७६।

४. साधु-समाधि सदा मन लावै।
तिहूँ जग भोग भोगि शिव जावै॥
—श्री सोलह कारण पूजा, द्यानतराय, राजेश नित्यपूजा पाठ संग्रह, पृष्ठ १७६।

५. निशि-दिन वैयावृत्ति करैया।
सो निहचें भव नीर तिरैया॥
—श्री सोलह कारण पूजा, द्यानतराय, राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, पृष्ठ १७६।

६. जो अरहन्त-भगति मन आने।
सो जन विपय कपाय न जाने॥
—श्री सोलहकारणपूजा, द्यानतराय, राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, पृष्ठ १७७।

मिलता है।[१] श्रुत-भक्ति के माध्यम से सम्पूर्ण श्रुत-सम्पदा उपलब्ध होती है।[२] प्रवचन-भक्ति के चिन्तवन द्वारा परमानन्द की प्राप्ति होती है।[३] षट् आवश्यक भावना के चिन्तवन करने से रत्नत्रय का सुफल योग प्राप्त होता है।[४] धर्म-प्रभावना करने पर शिव-मार्ग का सम्यक् परिचय हो जाता है।[५] वात्सल्य भावना के चिन्तवन द्वारा तीर्थंकर पदवी प्राप्त होती है।[६]

कविवर का कहना हैं कि सोलह भावनाओं का व्रतपूर्वक शुभ चिन्तवन करने पर इन्द्र-नरेन्द्र द्वारा समादर तथा पूजक को अन्ततोगत्वा शिव-पद की

---

१. जो आचारज भगति करें हैं।
सो निरमल आचार धरे हैं॥

—श्री सोलह कारण पूजा, द्यानतराय, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह पृष्ठ १७७।

२. वहु श्रुतवंत भगति जो करई।
सो नर सम्पूरन श्रुति धरई॥

—श्री सोलह कारण पूजा, द्यानतराय, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटल वर्क्स, अलीगढ़, पृष्ठ १७७।

३. प्रवचन भगति करे जो ज्ञाता।
लहै ज्ञान परमानन्द दाता॥

—श्री सोलह कारण पूजा, द्यानतराय, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १७६।

४. षट् आवश्यककार्य जो साधे।
सो ही रत्नत्रय आराधे॥

—श्री सोलह कारण पूजा, द्यानतराय, राजेश नित्यपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १७७।

५. धरम प्रभाव करे जो ज्ञानी।
तिन शिव मारग रीति पिछानी॥

—श्री सोलह कारण पूजा, द्यानतराय, राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, पृष्ठ १७७।

६. वत्सल अंग सदा जो ध्यावै।
सो तीर्थंकर पदवी पावै॥

—श्री सोलह कारण पूजा, द्यानतराय, राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, पृष्ठ १७७।

प्राप्ति होती है।[1] इस प्रकार इन सोलह कारणों से जीव तीर्थंकर नाम-गोत्र कर्म को बाँधते हैं।[2]

लौकिक जीवन की सफलता उसके अलौकिक पक्ष को प्रभावित किया करती है। जीवन को निष्कंटक तथा सफल बनाने के लिए विवेच्य काव्य में 'समिति' का प्रयोग हुआ है। जैन दर्शन के अनुसार प्राणि-पीड़ा के परिहार के लिए सम्यक् प्रकार से प्रवृत्ति करना समिति कहलाता है।[3]

संयम-शुद्धि के लिए जिनेन्द्र भगवान ने पाँच प्रकार के समिति-भेद किए हैं।[4] यथा—

(१) ईर्या समिति

(२) भाषा समिति

(३) एषणा समिति

(४) आदान-निक्षेपण समिति

(५) प्रतिष्ठापन समिति

ईर्या समिति की व्याख्या करते हुए 'नियमसार' में स्पष्ट कहा गया है कि जो श्रमण प्रासुक मार्ग पर दिन में चार हाथ प्रमाण आगे देखकर अपने कार्य

---

१. एही सोलह भावना, सहित धरे व्रत जोय।
देव इन्द्र नरवंद्य पद, द्यानत शिव पद होय॥
—श्री सोलह कारण पूजा, द्यानतराय, राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटल वर्क्स, अलीगढ़, पृष्ठ १७१।

२. महाबन्ध पुस्तक सं० १, प्रकरण संख्या ३४-३५, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन काशी, प्रथम संस्करण १९५१, पृष्ठांक १६।

३. प्राणि पीड़ा परिहारार्थं सम्यगयनं समितिः।
—सर्वार्थ सिद्धि, देवसेनाचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम संस्करण, १९५५, पृष्ठ ७।

४. इरिया-भासा—एसण जा सा आदाण चेव णिक्खेवो।
संजम सोहिणि मितेखंति जिणा पंच समिदी ओ॥
—कुंद कुंद प्राभृत संग्रह, कुन्दकुन्दाचार्य, चारित्र अधिकार, जैन संस्कृति संरक्षक सन, शोलापुर, प्रथम स० १९६०, पृष्ठांक ६४।

के लिए प्राणियों को पीड़ा से बचाते हुए गमन करता है, वस्तुतः ईर्या-समिति कहलाती है।[1]

भाषा समिति—पैशुन्य वचन अर्थात् चुगल खोर के मुख से निकले हुए वचन, हास्य वचन, कर्कश वचन, पर-निन्दा, आत्म-प्रशंसात्मक वचनों को छोड़कर अपने और दूसरों के हितरूप वचन बोलना वस्तुतः भाषा-समिति कहलाती है।[2]

एषणा समिति—कृत, कारित तथा अनुमोदना दोष से रहित प्रासुक और प्रशस्त तथा अन्य के द्वारा प्रदत्त भोजन को समभाव से ग्रहण करना वस्तुतः एषणा समिति कहलाती है।[3]

आदान-निक्षेपण-समिति—पुस्तक, कमण्डलु आदि पदार्थों के उठाने-धरने में सावधानता रूप परिणाम को आदान-निक्षेपण समिति कहा है।[4]

प्रतिष्ठापन समिति—छिपे हुए और निष्कण्टक प्रासुक भूमि-स्थान में मल-मूत्र आदि का त्याग करना वस्तुतः प्रतिष्ठापन समिति का लक्षण है।[5]

---

१. पासुग मग्गेण दिवा अवलोगंतो जुगप्पमाणंहि ।
गच्छइ पुरदो समणो इरिया समिदी हवे तस्स ॥
—नियम सार, व्यवहार चारित्र अधिकार, गाथांक ६१, कुन्दकुन्दाचार्य, श्री सेठी दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, धन जी स्ट्रीट, बम्बई-३, प्रथम संस्करण १९६०, पृष्ठ ११८ ।

२. पेसुण्ण हास कक्कस परणिंदप्पप्पसंसियं वयणं ।
परिचत्ता सपरहिंद भापा समिदी वदंतस्स ॥
—नियमसार, व्यवहार चारित्र अधिकार, गाथांक ६२, कुन्दकुन्दाचार्य, श्री सेठी दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, धनजी स्ट्रीट, बम्बई-३, प्रथम संस्करण १९६०, पृष्ठ १२१ ।

३. कदकारिदाणु मोदणरहिदं तह पासुगं पसत्थं च ।
दिण्णं परेण भत्तं समभुत्ती एसणा समिदी ॥
—नियमसार, व्यवहार चारित्र अधिकार, गाथांक ६३, कुन्दकुन्दाचार्य श्री सेठी दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, धनजी स्ट्रीट, बम्बई—३, प्रथम संस्करण १९६० पृष्ठ १२३ ।

४. पोथइ कमंडलाइं गहण विसग्गेसु पयतपरिणामो ।
आदावणणिक्खेवण समिदी होदित्ति णिद्दिट्ठा ॥
नियमसार, व्यवहार चारित्र अधिकार, गाथांक ६४, वही, पृष्ठ १२६ ।

५. पासुग भूमि पदेसे गूढे रहिए परोपरोहेण ।
उच्चारादिच्चागो पइट्ठा समिदी हवे तस्स ॥
—नियमसार, व्यवहार चारित्र अधिकार, गाथांक ६५, वही, पृष्ठ १२८ ।

इस प्रकार पंच-समिति पूर्वक प्रवृत्तिकर्ता के असंयम के निमित्त से आने वाले कर्मों का आस्रव अर्थात् प्रवेश बन्ध नहीं होता है।[1]

अठारहवीं और उन्नीसवीं शती में रचित जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में समिति का सफलतापूर्वक प्रयोग हुआ है। अठारहवीं शती के कविवर द्यानतराय कृत 'श्री चारित्र पूजा' में पंचसमिति का व्यवहार हुआ है।[2] उन्नीसवीं शती के कविवर रामचन्द्र द्वारा रचित 'श्री पुष्पदन्त जिनपूजा' काव्य में पंचसमिति का प्रयोग उल्लिखित है।[3] 'श्री अजितनाथ जिनपूजा' काव्य के जयमाल प्रसंग में पंचसमिति के पालक प्रभु जिनेन्द्र देव की वन्दना व्यक्त हुई है।[4] बीसवीं शती के जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में समिति का प्रयोग प्रायः नहीं मिलता है।

आत्मशुद्धि तथा निर्मल जीवनचर्या के लिए समिति की भांति कषाय का ज्ञानपूर्वक व्यवहार परमावश्यक है। जैन दर्शनानुसार जो आत्मा के क्षमा आदि गुणों का घात करे, उसे कषाय कहते हैं। कषाय भेद की दृष्टि से चार प्रकार की कषाय उल्लिखित है।[5] यथा—

---

१. इत्थं प्रवर्तमानस्य न कर्माण्यास्रवन्ति हि।
असंयम निमित्तानि ततो भवति संवरः॥
—तत्वार्थसार, षष्ठाधिकार, श्रीमद् अमृतचन्द्र सूरि, श्री गणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला, डुमराव बाग, अस्सी, वाराणसी ५, प्र० सं० १९७०, पृष्ठ १६३।

२. पच समिति त्रय गुपतिग हीजै।
नरभव सफल करहु तन छीजे॥
—श्री चारित्र पूजा, द्यानतराय, राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, अलीगढ़, प्रथम संस्करण १९७६, पृष्ठ १९९।

३. तीन गुपति व्रत पंच महापन समिति ही।
द्वादश तप उपदेश सुधारे सन्त ही॥
—श्री पुष्पदन्त जिनपूजा, रामचन्द्र, जैन ग्रन्थ कार्यालय, मदनगंज, किशनगढ़, सं० १९५१, पृष्ठ ७५।

४. जय पंच समिति पालक जिनन्द।
त्रय गुप्ति करन वसि धरम कन्द॥
—श्री अजितनाथ जिनपूजा, रामचन्द्र, पृष्ठ २८, वही।

५. तत्त्वसार, द्वितीयाधिकार, श्रीमंत अमृतचन्द्र सूरी, श्रीगणेशचन्द्र वर्णी ग्रन्थमाला, डुमरावबाग अस्सी, वाराणसी ५, प्रथम संस्करण १९७० ई०; पृष्ठांक ३२।

१. क्रोध
२. मान
३. माया
४. लोभ

मात्र अठारहवीं शती के कविवर द्यानतराय विरचित 'श्री देवपूजा' में कषाय का प्रयोग द्रष्टव्य है।[1]

अनेक ऐसे ज्ञान-तत्वों की अभिव्यक्ति विवेच्य काव्य में द्रष्टव्य है जिनका उल्लेख अठारहवीं शती में उपलब्ध नहीं है। विकास की दृष्टि से ये सभी तत्व विशुद्ध जीवनोत्कर्ष के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। यहाँ हम उनका क्रमशः अध्ययन करेंगे।

अनुप्रेक्षा का अपर नाम भावना है। सुदीर्घ संसार से मुक्त होने के लिए जैन दर्शन में द्वादश- अनुप्रेक्षाओं के चिन्तवन करने की व्यवस्था है।[2]

आनन्ददायक द्वादश अनुप्रेक्षाओं का विभाजन निम्न रूप से किया गया है।[1] यथा—

१. अध्रुव
२. अशरण
३. एकत्व

---

१. नाश पचीस कषाय करी हैं।
देश घाति छब्बीस हरी हैं॥
—श्री देवपूजा, द्यानतराय, वृहद् जिनवाणी संग्रह, सम्पादक, प्रकाशक पन्नालाल बाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़, राजस्थान, सन् १९५६, पृष्ठ ३०३।

२. णमिऊण सव्व सिद्धे झाणुत्तम खविद दीह संसारे।
दस-दस दो दो य जिणे दस दो अणुपेहणं वोच्छे॥
-कुन्द-कुन्द प्राभृत संग्रह, अनुप्रेक्षा अधिकार, गाथांक १, कुन्द-कुन्दाचार्य, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, प्रथम संस्करण १९६०, पृष्ठ १३६।

३. अद्धुवम सरण मेगत्तमण्ण संसार लोगम सुचित्तं।
आसव-संवर-णिज्जर धम्मं बोहिं च चिंतेज्जो॥
—कुन्द-कुन्द प्राभृत संग्रह, अनुप्रेक्षा अधिकार, गाथांक २, कुन्दकुन्दाचार्य जैन संरक्षक संघ, शोलापुर, प्रथम संस्करण, १९६०, पृष्ठ १३६।

४. अन्यत्व
५. संसार
६. लोक
७. अशुचिता
८. आस्रव
९. संवर
१०. निर्जरा
११. धर्म
१२. बोधि

अध्रुव-भावना—द्वादश अनुप्रेक्षा नामक ग्रन्थ में स्वामी कार्तिकेय ने अध्रुव-भावना के विषय में चर्चा करते समय कहा है कि जो कुछ उत्पन्न हुआ है, उसका नियम से विनाश होता है। परिणामस्वरूप होने से कुछ भी शाश्वत नहीं है।[1] जन्म-मरण सहित है, यौवन—जरा सहित है, लक्ष्मी विनाश सहित है, इस प्रकार सब पदार्थ क्षणभंगुर सुनकर, महामोह को छोड़ना अपेक्षित है। विषयों के प्रति विरक्ति-भावना वस्तुतः उत्तम-सुख की प्रदायिनी शक्ति है।[2]

अशरण भावना—मरण काल आने पर तीनों लोकों में मणि, मंत्र, औषधि, रक्षक, हाथी, घोड़े, रथ और समस्त विधाएँ जीवों को मृत्यु से बचाने में समर्थ नहीं हैं।[3] आत्मा ही जन्म, जरा, मरण, रोग और भय से

१. जं किं पि वि उप्पण्णं तस्स विणासो हवेइ णियमेण।
परिणाम सरूवेण विणय किं पि वि सासयं अत्थि ॥
जम्मं मरणेण समं संपज्जइ जुव्वण जरासहियं ॥
लच्छी विणास सहिया इय सव्वं भंगुरं मुणह।
—कार्तिकेयानुप्रेक्षा, तत्वसमुच्चय, डा० हीरालाल जैन, भारत जैन महामंडल, वर्धा, प्रथम सं० १९५२, गाथांक ४, ५, पृष्ठ २६।

२. चइऊण महामोहं विसये सुणिऊण भंगुरे सव्वे।
णिव्विसयं कुणह मणं जेण सुहं उत्तमं लहइ ॥
—कार्तिकेयानुप्रेक्षा, तत्वसमुच्चय, डा० हीरालाल जैन, गाथांक ८, पृष्ठ २६, वही।

३. मणि-मंतोसह-रक्खा हय-गय-रहओ य सयल विज्जाओ।
जीवाणं णं हि सरणं तिसु लोए मरण समयम्हि ॥
—कुन्द-कुन्द प्राभृत संग्रह, अनुप्रेक्षा अधिकार, गाथांक ८, कुन्दकुन्दाचार्य जैन संस्कृति संरक्षक, संघ, शोलापुर, प्रथम सं० १९६०, पृष्ठ १३८।

आत्मा की रक्षा करता है इसलिए कर्मों के बन्ध उदय और सत्ता से रहित शुद्ध आत्मा ही शरण है।[1]

एकत्व भावना—जीव अकेला कर्म करता है, अकेला ही सुदीर्घ संसार में भ्रमण करता है, अकेला ही जन्म लेता है, अकेला ही मरता है और अकेला ही अपने किए हुए कर्म का फल भोगता है।[2] जो सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट अर्थात् रहित हैं, वे ही भ्रष्ट हैं। सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट जीव को मोक्ष नहीं होता जो चारित्र से भ्रष्ट हैं वे चारित्र धारण कर लेने पर मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं किन्तु जो सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हैं वे मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकते।[3]

अन्यत्व-भावना—माता-पिता, सहोदर भ्राता, पुत्र, कलत्र आदि परिजनों का समूह जीव के साथ सम्बद्ध नहीं है, ये सब अपने-अपने कार्यवश होते हैं।[4] यह शरीर आदि जो बाह्य द्रव्य है वह सब मुझसे भिन्न है। आत्मज्ञान दर्शन रूप हैं, इस प्रकार सुधी श्रावक अन्यत्व का चिन्तवन करता है।[5]

---

१. जाइ-जर-मरण-रोग-भय दो रक्खेदि अप्पणो अप्पा।
तम्हा आदा सरणं वंधोदय सत् कम्मवदिरित्तो॥

—कुन्द-कुन्द प्राभृत संग्रह, अनुप्रेक्षा अधिकार, गाथांक ११, कुन्द-कुन्दाचार्य, जैन संस्कृति संरक्षक सध, शोलापुर, प्र०सं० १९६०, पृष्ठ १३८।

२. एक्को करेदि कम्मं एक्को हिंडदि य दीह संसारे।
एक्को जायदि मरदि य तस्स फलं भुंजदे एक्को॥

—कुन्द-कुन्द प्राभृत संग्रह, अनुप्रेक्षा अधिकार, गाथांक १४, पृष्ठ १३९, वही।

३. दंसणभट्ठा भट्ठा दंसणभट्ठस्स णत्थि णिव्वाणं।
सिज्झंति चरियभट्ठा दसणभट्ठा ण सिज्झंति॥

—कुन्द-कुन्द प्राभृत संग्रह, अनुप्रेक्षा अधिकार, गाथांक १९, वही।

४. माद्रा-पिदर-सहोदर-पुत्त-कलतादि बन्धु संदोहो।
जीवस्य ण संवंधो णियकज्जवसेण वट्टंति॥

—कुन्द-कुद प्राभृत संग्रह, अनुप्रेक्षा अधिकार, गाथा २१, वही।

५. अण्णं इमं सरीरादिगं पि होज्ज बाहिरं दव्वं।
णाणं दंसण मादा एवं चिंतेहि अण्णत्तं॥

—कुन्द-कुन्द प्राभृत संग्रह, अनुप्रेक्षा अधिकार, गाथांक २३, कुन्दकुन्दाचार्य, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, प्र० सं० १९६०, पृष्ठ १४०।

संसार-भावना—संसार का अर्थ है भटकना। जीव एक शरीर को त्यागकर दूसरा ग्रहण करता है। इसी प्रकार नया ग्रहण कर पुनः उसे त्यागता है। यह ग्रहण-त्याग का क्रम निरन्तर चल रहा है। मिथ्यात्व अर्थात् विपरीत व एकान्तादिक रूप से वस्तु का श्रद्धान तथा कषाय अर्थात् क्रोध, मान, माया, लोभ से युक्त इस जीव का अनेक देहों अर्थात् योनियों में भटकन होता है। वस्तुतः यही संसार है।[1] सांसारिक स्वरूप को समझकर मोहत्याग कर आत्म-स्वभाव में ध्यान करना संसार-भटकन से मुक्ति प्राप्त करना है।[2]

लोकभावना—जीव आदि पदार्थों के समवाय को लोक कहते हैं। लोक के तीन भेद हैं। अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक।[3] अशुभ उपयोग से नरक तथा तिर्यंच गति प्राप्त होती है, शुभ उपयोग से देवगति और मनुष्य गति का सुख प्राप्त होता है, तथा शुद्ध उपयोग से मुक्ति की प्राप्ति होती है। इस प्रकार लोक-भावना का चिन्तवन करना श्रेयस्कर है।[4]

अशुचि-भावना—यह शरीर अस्थियों से बना है, मांस से लिपटा हुआ है और चर्म से ढका हुआ है तथा कीट-समूहों से भरा है अतः सदा गन्दा

---

१. एक्कं चजति सरीर अण्णं गिण्हेदि णवणवं जीवो।
पुणु पुणु अण्णं अण्णं गिण्हदि मुंचेदि वहुवारं ॥
एक्कं जं संसरणं णाणदेहेसु हवदि जीवस्स।
सो संसारो भण्णदि मिच्छकसायेहिं जुतस्स ॥
—तत्व समुच्चय, अध्याय ७, गाथांक १२, १३, डा० हीरालाल जैन, भारत जैन महामण्डल, वर्धा, प्रथम संस्करण १९५२, पृष्ठ २७।

२. इव संसारं जाणिय मोहं सव्वायरेण चइऊण।
तं झायह ससहावं संसरणं जेण णासेह ॥
—तत्व समुच्चय, अध्याय ७, गाथांक १४, डा० हीरालाल जैन, वही, पृष्ठ २७।

३. जीवादिपयट्ठाणं समवाओ सो णिरुच्चए लोगो।
तिविहो हवेइ लोगो अहमज्झिम उड्ढभेएण ॥
—कुन्द-कुन्द प्राभृत संग्रह, अनुप्रेक्षा अधिकार, गाथांक ३९, कुन्दकुन्दाचार्य, जैनसंस्कृति संघ, शोलापुर, प्र० सं० १९६०, पृष्ठ १४४।

४. असुहेण णिरय-तिरियं सुह उवजोगेण दिविजणरसोक्खं।
सुद्धेण लहइ सिद्धि एवं लोयं विचिंतिज्जो।
—कुन्द-कुन्द प्राभृत संग्रह, अनुप्रेक्षा अधिकार, गाथांक ४२, वही, पृष्ठ १४४।

रहता है।[1] देह से भिन्न, कर्मो से रहित और अनन्त सुख का भण्डार आत्मा ही श्रेष्ठ है। इस प्रकार सदा उसका ही चिन्तवन करना श्रेयस्कर है।[2]

आस्रव-भावना—एकान्त मिथ्यात्व, विनय मिथ्यात्व, विपरीत मिथ्यात्व, संशय मिथ्यात्व और अज्ञान नामक पाँच मिथ्यात्वों; हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह नामक पाँच प्रकार की अविरति; क्रोध, मान, माया और लोभ नामक चार कषायों तथा तीन प्रकार का योग-मन, वचन और काय-आस्रव के कारण हैं।[3] कर्मों के आस्रव रूप क्रिया से, परम्परा से भी मोक्ष नहीं होता। आस्रव संसार में भटकने का कारण है, अस्तु वह निंद्य है। जब तक आस्रव है तब तक मोक्ष नहीं मिल सकता फलस्वरूप आस्रव को रोकना ही हितकर है।[4]

संवर-भावना—आस्रव का निरोध संवर है।[5] सम्यक्त्व के चल मलिन और अगाढ़ दोषों को छोड़कर सम्यग्दर्शन रूपी दृढ़ कपाटों के द्वारा मिथ्यात्व रूप आस्रव द्वार रुक जाता है। निर्दोष सम्यग दर्शन के धारण करने से आस्रव का प्रथम मुख्य द्वार मिथ्यात्व बन्द हो जाता है और उसके द्वारा

---

१. दुग्गंधं वीभच्छं कलिम लभरिदं अचेयणं मुत्तं ।
सडणप्पडण सहावं देहं इदि चिंतये णिच्च ॥
—कुन्द-कुन्द प्राभृत संग्रह, अनुप्रेक्षा अधिकार, गाथांक ४४, पृष्ठ १४५, वही ।

२. देहादो वदिरित्तो कम्म विरहिओ अणंत सुहणिलओ ।
चोक्खो हवेइ अप्पा इदि णिच्च भावणं कुज्जा ॥
—कुन्दकुन्द प्राभृत संग्रह, अनुप्रेक्षा अधिकार, गाथांक ४६, वही, पृष्ठ १४५ ।

३. मिच्छत्तं अविरमणं कसाय-जोगा यआसवा होंति ।
पण-पण-चउ-तियभेदा, सम्मं परिकित्तिदा समए ॥
—कुन्दकुन्द प्राभृत संग्रह, अनुप्रेक्षा अधिकार, गाथांक ४७, कुन्दकुन्दाचार्य, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, १९६०, पृष्ठ १४५ ।

४. पारंपजाएण दु आसव किरियाए णत्थि णिव्वाणं ।
संसार गमण कारणमिदि णिंदं आसवो जाण ॥
—कुन्दकुन्द प्राभृत संग्रह, अनुप्रेक्षा अधिकार, गाथांक ५९. वही ।

५. 'आस्रव निरोधः संवरः',—तत्वार्थसूत्र, अध्याय ९, सूत्र १, उमास्वामी, अखिल विश्व जैन मिशन, अलीगंज, एटा, १९५७, पृष्ठ १२० ।

आने वाले कर्म रुक जाते हैं। इस सत्य का चिन्तवन वस्तुतः संवर भावना कहलाती है।[1]

निर्जरा-भावना—बंधे हुए कर्मों के प्रदेशों के क्षय होने को ही निर्जरा कहते हैं। जिन कारणों से संवर होता है उन्हीं से निर्जरा भी होती है।[2] निर्जरा भी दो प्रकार की कही गई है, यथा—

१. उदयकाल आने पर कर्मों का स्वयं पककर झड़ जाना।

१. तप के द्वारा उदयावली वाह्य कर्मों को वलात् उदय में लाकर खिराना।

चारों गति के जीवों के पहली निर्जरा होती है और व्रती पुरुषों के दूसरे क्रम की निर्जरा होती है।[3]

धर्म-भावना—सर्वज्ञ देव का स्वरूप ज्ञानमय है। सर्वज्ञता प्राप्त करने के साधनों का चिन्तवन करना वस्तुतः धर्म-भावना है। मुनि और गृहस्थ भेद से धर्म क्रमशः दशभेद क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य तथा ग्यारह भेद-दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषध, सचित त्याग, रात्रिभुक्त व्रत, ब्रह्मचर्य, आरम्भ त्याग, परिग्रह त्याग, अनुमति त्याग और उद्दिष्ट त्याग—का मूल्य सम्यग्दर्शन पूर्वक होने पर ही निर्भर करता है।[4] इसका चिन्तवन करना श्रेयस्कर है।

---

१. चल-मलिणमगाढं च वज्जिय सम्मतदिढकवाडेण।
मिच्छतातवदारणिरोहो होदित्ति जिणेहि णिदिट्ठं॥
—कुन्द-कुन्द प्राभृत संग्रह, अनुप्रेक्षा अधिकार, गाथांक ६१, कुन्दकुन्दाचार्य, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, १९६०, पृष्ठ १४८।

२. वंध पदेस सग्गलणं णिज्जरणं इदि जिणेहि पण्णत्तं।
जेण हवे संवरणं तेण दु णिज्जरणमिदि जाण॥
—कुन्द-कुन्द प्राभृत संग्रह, अनुप्रेक्षा अधिकार, गाथांक ६६, पृष्ठ १४९, वही।

३. सा पुण दुविहा णेया सकालपक्का तवेण कयमाणा।
चदुग दियाणं पढमा वयजुताणं हवे विदिया॥
—कुन्द-कुन्द प्राभृत संग्रह, अनुप्रेक्षा अधिकार, गाथांक ६७, वही।

४. एयारस—सदभेयं धम्मं सम्मत पुव्वयं भणियं।
सागारणगाराणं उत्तम सुहसंपजुतहिं॥
—कुन्द-कुन्द प्राभृत संग्रह, अनुप्रेक्षा अधिकार, गाथांक ६८, कुन्दकुन्दाचार्य, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, प्र० सं० १९६०, पृष्ठ १४९।

बोधि भावना—दुर्लभ मनुष्यजन्म पाकर मोक्ष प्राप्त करने के लिए रत्नत्रय में आदर भाव रखना ही बोधि दुर्लभ भावना है इस प्रकार इस मनुष्य गति को दुर्लभ से भी दुर्लभ जानकर और उसी प्रकार दर्शन, ज्ञान तथा चरित्र को भी दुर्लभ से दुर्लभ समझकर दर्शन, ज्ञान, चारित्र का आदर-पूर्वक चिन्तवन करना अपेक्षित है।[1] इन द्वादश अनुप्रेक्षाओं के चिन्तवन की उपयोगिता प्रायः असंदिग्ध है। स्वामी कुन्दकुन्द के अनुसार इन भावनाओं के चिन्तवन करने से चिन्तक निर्वाण को प्राप्त कर सकता है।[2]

उन्नीसवीं शती के कविवर श्री वृन्दावन विरचित 'श्री चन्द्रप्रभ जिन पूजा' की जयमाल में अनुप्रेक्षा के चिन्तवन का उल्लेख हुआ है।[3] 'श्री ऋषभनाथ जिन पूजा' काव्य में कविवर बख्तावररत्न ने अनुप्रेक्षा के अनुचिन्तवन से पुण्यराशि प्राप्त होने की चर्चा की है।[4] कविवर मनरंग लाल कृत 'श्री श्रेयांसनाथ जिन पूजा' की जयमाल में द्वादश-भावना के चिन्तवन का उल्लेख

---

१. इय सव्व दुलह दुलहं दंसण-णाणं तहा चरित्तं च।
मुणि ऊण य संसारे-महायरं कुणह तिण्हं वि॥
—तत्वसमुच्चय, अध्याय ७, गाथांक ४३, डा० हीरालाल जैन, भारत जैन महामण्डल, वर्धा, सन् १९५२, पृष्ठ २९।

२. इदि णिच्छय ववहारं जं भणियं कुंद कुंद मुणिणाहे।
जो भावइ सुद्ध मणो सो पावइ परमणिव्वाणं॥
—कुंद-कुन्द प्राभृत संग्रह, अनुप्रेक्षा अधिकार, गाथांक ९१, प्रथम संस्करण १९६०, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, पृष्ठ १५३।

३. लखि कारण ह्वे जगतं उदास।
चिन्त्यो अनुप्रेक्षा सुख निवास॥
—श्री चन्द्रप्रभजिनपूजा, वृन्दावन, ज्ञानपीठ पूजांजलि, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्रथम संस्करण, १९५७, पृष्ठ ३३७।

४. इह कारन लख जग तें उदास।
भाई अनुप्रेक्षा पुण्य रास॥
—श्री ऋषभनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न, वीर पुस्तक भण्डार, मनिहारों का रास्ता, जयपुर, सं० २०१८, पृष्ठ १३।

हुआ है।[1] कविवर रामचन्द्र प्रणीत 'श्रीमहावीर जिनपूजा' में सांसारिकभय से मुक्ति पाने के लिए अनुप्रेक्षा का चिन्तवन आवश्यक चित्रित किया है।[2]

बीसवीं शती के कविवर जिनेश्वरदास कृत 'श्री नेमिनाथ जिनपूजा' में बारह भावना का उल्लेख हुआ है।[3] कविवर युगल किशोर जैन 'युगल' द्वारा प्रणीत 'श्री देव शास्त्र-गुरु पूजा' में सम्पूर्ण बारह भावनाओं का पृथक्-पृथक् रूप से चित्रण हुआ है।[4]

इस प्रकार आत्मा में वैराग्य-भावना उत्पन्न करने के लिए द्वादश-अनुप्रेक्षाओं का चिन्तवन आवश्यक है। वैराग्योत्पत्ति काल में बारह भावनाओं का चिन्तवन व्यवहार नय की अपेक्षा निश्चय नय पूर्वक करना मोक्ष मार्ग को प्रशस्त करता है।

द्रव्य की दृष्टि से विचार किया जाए तो सारा जगत स्थिर प्रतीत होता है परन्तु पर्याय दृष्टि से कोई भी स्थिर नहीं है। विश्व में दो ही शरण हैं। निश्चय से तो निज शुद्धात्मा ही शरण है और व्यवहार नय से पंचपरमेष्ठी। पर-मोह के कारण यह जीव अन्य पदार्थों को शरण मानता है। निश्चय से पर-पदार्थों के प्रति मोह-राग-द्वेष भाव ही संसार को जन्म देता है। इसलिए जीव चारों गतियों में दुःख भोगता है। आत्मा एक ज्ञान स्वभावी ही है। कर्म के निमित्त की अपेक्षा कथन करने से अनेक विकल्पमय भी उसे कहा है।

---

१. द्वादश भावन भाई महान।
अध्रुव को आदिक भेद जान॥
—श्री श्रेयांसनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थ-यज्ञ, जवाहरगंज, जबलपुर, चतुर्थ संस्करण सं० १९५०, पृष्ठ ८४।

२. लखि पूरव भव अनुप्रेक्ष चिन्त।
भयभीत भये भवतें अत्यन्त॥
—श्री महावीर जिनपूजा, रामचन्द्र, नेमीचन्द्र बाकलीवाल, जैन ग्रन्थ कार्यालय, मदनगंज, किशनगढ़, प्रथम संस्करण १९५१, पृष्ठ २१०।

३. व्याह समय पशुदीन निरखिकें राज तजो दुःख कूप।
बारह भावना भावे नेमि जी भए दिगम्बर रूप॥
श्री नेमिनाथ जिनपूजा, जिनेश्वरदास, जैनपूजा पाठ संग्रह, ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ ११३।

४. श्रीदेव-शास्त्र-गुरु पूजा, युगल, जैनपूजापाठ संग्रह, ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ ३०-३१।

इनके नाश होने पर मुक्ति प्राप्त होती है। प्रत्येक पदार्थ अपनी-अपनी सत्ता में ही विकास कर रहा है, कोई किसी का कर्ता-हर्त्ता नहीं है। जब जीव ऐसा चिन्तवन करता है तो फिर पर से ममत्व नहीं होता है।

अशुचि भावना से प्रेरित होकर शरीर-आसक्ति भी निरर्थक प्रतीत हो उठती है। निश्चय दृष्टि से देखा जाय तो आत्मा केवल ज्ञानमय है। विभाव भाव रूप परिणाम तो आस्रव भाव हैं जो कि नष्ट होना चाहिए।

निश्चय से आत्मस्वरूप में लीन हो जाना ही संवर है। उसका कथन समिति, गुप्ति और संयम रूप से किया जाता है जिसे धारण करने से पापों का शमन होता है। ज्ञानस्वभावी आत्मा ही संवर मय है। उसके आश्रय से ही पूर्वोपार्जित कर्मो का नाश होता है और यह आत्मा अपने स्वभाव को प्राप्त करता है।

लोक अर्थात् षट् द्रव्य का स्वरूप विचार करके अपनी आत्मा में लीन होना चाहिए। निश्चय और व्यवहार को अच्छी तरह जानकर मिथ्यात्व भावों को दूर करना चाहिए। आत्मा का स्वभाव ज्ञानमय है अतः वह निश्चय से दुर्लभ नहीं है। संसार में आत्मज्ञान को 'दुर्लभ' तो व्यवहार नय से कहा गया है। आत्मा का स्वभाव ज्ञानदर्शन मय है। दया, क्षमा आदि दश धर्म और रत्नत्रय सब इसमें ही गर्भित हो जाते हैं।

विवेच्य काव्य में इन बारह भावनाओं की विशद व्याख्या हुई है। कोई भी पूजक यदि इस काव्य का नित्य सुपाठ करे तो उत्तरोत्तर उत्कर्ष को प्राप्त कर सकता है।

संसार में समस्त प्राणी दुःखी दिखलाई पड़ते हैं। फलस्वरूप वे सभी दुःख से बचने का उपाय भी करते हैं। प्रयोजनभूत तत्वों का जिस वस्तु का जो स्वभाव है वह तत्व है।[1] जैन दर्शन में तत्व-भेद करते हुए उन्हें निम्न सात भागों में विभाजित किया गया है।[2] यथा—

---

१. 'तद् भावस्तत्वमा'
—सर्वार्थसिद्धि, देवसेनाचार्य, अध्याय संख्या २, सूत्रसंख्या ४२, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम संस्करण, सन् १९५५, पृष्ठ ५।

१. जीवा जीवास्रव बंध संवर निर्जरा मोक्षस्तत्वम्।
—तत्वार्थ सूत्र, उमास्वामी, प्रथम अध्याय, सूत्रांक ४, अखिल विश्व जैन मिशन, अलीगंज, एटा, सन् १९५७, पृष्ठ ३।

१. जीव—जो चेतना अथवा ज्ञानोपयोग, दर्शनोपयोग से सहित हो उसे जीव कहते हैं।
२. अजीव—जो चेतना अथवा ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग से रहित हो, उसे अजीव कहते हैं।
३. आस्रव—आत्मा में नवीन कर्मों के प्रवेश को आस्रव कहते हैं।
४. वन्ध—आत्मा के प्रदेशों के साथ कर्म परमाणुओं का नीर-क्षीर के समान एक क्षेत्रावगाह रूप होकर रहना वन्ध है।
५. संवर—आस्रव का रुक जाना संवर कहलाता है।
६. निर्जरा—पूर्ववद्ध कर्मों का एक देश क्षय होना निर्जरा है।
७. मोक्ष—समस्त कर्मों का आत्मा से सदा के लिए पृथक् हो जाना मोक्ष कहलाता है।

जीव और अजीव ये दो मूल तत्व हैं। इनमें जीव उपादेय है और अजीव छोड़ने योग्य है। जीव, अजीव का ग्रहण क्यों करता है, इसका कारण वतलाने के लिए आस्रव तत्व का कथन किया गया है। अजीव का ग्रहण करने से जीव की क्या अवस्था होती है यह वतलाने के लिए वन्धतत्व का निर्देश है। जीव अजीव का सम्वन्ध कैसे छोड़ सकता है, यह समझने के लिए संवर और निर्जर का कथन है और अजीव का सम्वन्ध छूट जाने पर जीव की क्या अवस्था होती है, यह वतलाने के लिए मोक्ष का वर्णन किया गया है। सात तत्वों में जीव और अजीव ये दो मूल तत्व हैं और शेष पाँच तत्व उन दो तत्वों के संयोग तथा वियोग से होने वाली अवस्था विशेष है।[१]

विवेच्य काव्य में इतने उपयोगी तत्वों का उल्लेख उन्नीसवीं और बीसवीं शती में उपलब्ध है। उन्नीसवीं शती के कविवर वख्तावररत्न द्वारा प्रणीत 'श्री ऋषभनाथ जिनपूजा' की जयमाला में सप्त तत्वों का प्रयोग हुआ

१. उपादेय तथा जीवोऽजीवो हेयतयोदितः।
हेयस्यास्मिन्नुपादान हेतुत्वेनास्रवः स्मृतः॥
हेयस्यादान रूपेण वन्धः स परिकीर्तितः।
सवरो निर्जरा हेयहानहेतुतयोदितौ।
हेय प्रहाण रूपेण मोक्षो जीवस्य दर्शितः॥
—तत्वार्थ सार, प्रथम अधिकार, श्रीमदअमृतचन्द्र सूरि, श्रीगणेश प्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला, डुमराव वाग, अस्सी, वाराणसी-५, प्रथम संस्करण, सन् १९७०, पृष्ठ ३।

है।[1] अठारहवीं शती के कवि भगवानदास कृत 'श्री तत्वार्थ सूत्र पूजा' नामक काव्य में सप्ततत्वों की चर्चा हुई है।[2]

विवेच्य पूजा काव्य में पंचपरमेष्ठी भक्ति का महत्वपूर्ण स्थान है। इनके विषय में भक्ति-सन्दर्भ में चर्चा हुई है। यहाँ साधु-परमेष्ठी के चारित्रिक गुणों में अट्ठाइस मूल गुणों का अध्ययन करना अभीप्सित है। बीसवीं शती में रचित पूजा काव्य में अट्ठाइस मूल गुणों का उल्लेख हुआ है। पूजा-काव्य में व्यंजित इस ज्ञान-सम्पदा के विषय में विचार करना असंगत न होगा।

जो दर्शन और ज्ञान से पूर्ण मोक्ष के मार्गभूत सदा शुद्ध चारित्र को प्रकट रूप से साधते हैं वे वस्तुतः मुनि साधु-परमेष्ठी हैं, उन्हें नमस्कार किया गया है।[3]

मुनि-साधु परमेष्ठी के चारित्रिक गुणों में अट्ठाइस मूल गुणों का उल्लेखनीय स्थान है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच महाव्रत, ईर्या, भाषा, एषणा, आदना निक्षेपण और उत्सर्ग ये पाँच समितियाँ; स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, इन पंच इन्द्रिय-निग्रह; सामायिक, स्तवन वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग ये षट् आवश्यक; पृथ्वी शयन, स्नान न करना, दिगम्बर रहना, केश लौंच करना, खड़े होकर भोजन करना,

---

१. ताको बरनत सुर थकाय, सो मोपै किम बरनो सुजाय।
तहाँ सप्त तत्त्व परकाश सार, इकलाख पूर्व कीनो विहार ॥
—श्री ऋषभनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न, वीर पुस्तकभण्डार, मनिहारों का रास्ता, जयपुर, सं० २०१८ पृष्ठ १४।

२. षट् द्रव्य को जामें कह्यो जिनराज वाक्य प्रमाण सो।
किय तत्त्व सातों का कथन जिन आप्त-आगम मानसों ॥
तत्त्वार्थ-सूत्रहिं शास्त्र सो पूजो भविक मन धारि के।
लहि ज्ञान तत्त्व विचार भवि शिव जा भवोदधि पार के ॥
—श्री तत्त्वार्थ सूत्र पूजा, भगवानदास, ६२, नलिनी रोड, कलकत्ता—७ पृष्ठ ४१०।

३. दंसण णाण समग्गं मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं।
साधयदि णिच्च सुद्धं साहू स मुणी णमो तस्स ॥
—बृहद्द्रव्यसंग्रह, श्री नेमीचन्द्राचार्य, तृतीय अध्याय, गाथा संख्या ५४, श्री रायचन्द्र जैन शास्त्रमाला, अगास, तृतीय संस्करण, सन् १९६६, पृष्ठ २००।

दन्त धावन न करना तथा दिन में एक बार भोजन करना, ये साधु के अट्ठाइस मूल गुण हैं।[1] इनका परिपालन मुनि चारित्र्य का स्वभाव है।

बीसवीं शताब्दि के कविवर श्री हेमराज विरचित 'श्री गुरुपूजा' नामक काव्य की जयमाल-अंश में साधु की चारित्रिक चर्या का यशगान करते हुए कवि ने अट्ठाइस मूल गुणों का उल्लेख किया है। इन गुणों के नित्य चिन्तवन करने से कल्याण-मार्ग प्रशस्त होता है।[2]

विवेच्य जैन हिन्दी पूजा काव्य में अभिव्यक्त ज्ञान विषयक सम्पदा का अनुचिंतन करने से लगता है कि जीव अथवा आत्मा एक अत्यन्त परोक्ष पदार्थ है। संसार के सभी दार्शनिकों ने इसे तर्क से सिद्ध करने की चेष्टा की है। स्वर्ग, नरक, मुक्ति आदि अति परोक्ष पदार्थों का मानना भी आत्मा के अस्तित्व पर ही आधारित है। आत्मा न हो तो इन पदार्थों के मानने का कोई प्रयोजन नहीं है यही कारण है कि जीव के स्वतन्त्र अस्तित्व का निषेध करने वाला चार्वाक इन पदार्थों के अस्तित्व को पूर्णतः अस्वीकार करता है। आत्मा का निषेध सारे ज्ञान-काण्ड और क्रिया-काण्ड के निषेध का एक अभ्रान्त प्रमाण पत्र है। पारलौकिक जीवन से निरपेक्ष लौकिक जीवन को समुन्नत और सुखकर बनाने के लिये भी यद्यपि ज्ञानाचार और क्रियाचार को

---

१. अहिंसा दीणि उत्ताणि महव्वयाणि पंच य।
समिदीओ तदो पंच-पंच इंदियणिग्ग हो॥
छब्भेयावास भूसिज्जा अण्हाणत्त चेल दा।
लोयतं ठिदि भुत्ति च अदंत धावणमेव य॥

—कुन्द-कुन्द-प्राभृत संग्रह, भक्ति अधिकार, कुन्दकुन्दाचार्य जैनसंस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, प्रथम संस्करण, सन् १९६०, गाथांक ५ तथा ६, पृष्ठांक १६१।

२. पच्चीसों भावन नित भावें, छब्बिस अंग-उपंग पढे।
सत्ताईसों विषय विनाशें, अट्ठाईसों गुण सुपढ़े॥
शीत समय सर चोहटवासी, ग्रीषमगिरि शिर जोग धर।
वर्षा वृक्ष तरें थिर ठाढे, आठ करम हनि सिद्ध वरं॥

—श्री गुरुपूजा, हेमराज, वृहद् जिनवाणी संग्रह, पंचम अध्याय, सम्पादक-प्रकाशक-पन्नालाल वाकलीवाल, मदनगज, किशनगढ़, राजस्थान, सन् १९५६, पृष्ठ ३१३।

आवश्यकता तो है और इसे किसी न किसी रूप में चार्वाक भी स्वीकार करता है तो भी परलोकाश्रित क्रियाओं का आत्मादि पदार्थो का अस्तित्व नहीं मानने वालों के मत में कोई मूल्य नहीं है।

जैन दर्शन एक आस्तिक दर्शन है। वह आत्मा और उससे सम्बन्धित स्वर्ग, नरक और मुक्ति आदि का स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकारता है। आत्मा के सम्बन्ध में उसके समन्वयात्मक विचार हैं। जैन दर्शन अनेकान्तवादी है अस्तु आत्मा को भी विभिन्न दृष्टिकोणों से देखता है। आत्मा का वर्णन करने के लिये जैन दर्शन में नौ विशेषताएँ व्यक्त की हैं। यहाँ जैन हिन्दी पूजा-काव्य में व्यवहृत आत्मा की सभी विशेषताओं का संक्षेप में मूल्यांकन करना असंगत न होगा।

जीव सदा जीता रहता है, वह अमर है। उसका वास्तविक प्राण चेतना है जो उसकी तरह ही अनादि और अनन्त है। उसके कुछ व्यावहारिक प्राण भी होते है जो विभिन्न योनियों के अनुसार बदलते रहते हैं। आत्मा नाना योनियों में विभिन्न शरीरों को प्राप्त करता हुआ कर्मानुसार अपने व्यावहारिक प्राणों को बदलता रहता है किन्तु चेतना की दृष्टि से न वह मरता है और न जन्म धारण करता है। शरीर की अपेक्षा वह भौतिक होने पर भी आत्मा की अपेक्षा वह अभौतिक है। जीव की व्यवहार नय और निश्चय की अपेक्षा कथंचित भौतिकता और कथंचित अभौतिकता मानकर जैनदर्शन इस विशेषण के द्वारा चार्वाक आदि के साथ समन्वय करने की क्षमता रखता है। यही इसके सप्तभंग-स्याद्वाद तत्व की विशेषता है।

आत्मा का दूसरा विशेषण उपयोगमय है। अर्थात् ज्ञान, दर्शनात्मक है। यह नैयायिक और वैशेषिक दर्शनों से समता रखता है। ये दोनों दर्शन भी आत्मा को ज्ञान का आधार मानते हैं। जैन दर्शन भी आत्मा को आधार और ज्ञान को उसका आधेय मानता है। अन्य दृष्टि से आत्मा को ज्ञानाधिकरण की अपेक्षा ज्ञानात्मक भी माना गया है। आत्मा और ज्ञान जब किसी भी अवस्था में भिन्न नहीं हो सकते तब उसे ज्ञान का आश्रय मानने का आधार क्या है? इस दृष्टि से तो आत्मा ज्ञान का आधार नहीं अपितु उपयोगमय अर्थात् ज्ञान दर्शनात्मक ही है।

आत्मा का तीसरा विशेषण है अमूर्त। चार्वाक आदि जीव को अमूर्त नहीं मानते। जैन दर्शन में स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध विषयक पौद्गलिक गुणों से

वंचित होने से आत्मा को अमूर्त माना गया है तथापि अनादिकाल से कर्मों से बँधा हुआ होने से उसे मूर्त भी कहा जा सकता है। शुद्ध-स्वरूप की अपेक्षा से वह अमूर्त है और कर्म-वन्ध रूप पर्याय की अपेक्षा से वह मूर्त भी है।

आत्मा का चौथा विशेषण है कर्त्ता। सांख्य दर्शन आत्मा को कर्त्ता नहीं मानता। वहाँ वह मात्र भोक्ता है। कर्तृत्व तो केवल प्रकृति में है किन्तु जैनदर्शन में आत्मा व्यवहार नय से पुद्‌गल कर्मों का, अशुद्ध निश्चय नय से चेतन कर्मों अर्थात् राग, द्वेषादि का और शुद्ध निश्चय नय से अपने ज्ञान, दर्शन आदि शुद्ध भावों का कर्त्ता है।

आत्मा का पाँचवा विशेषण है भोक्ता। बौद्ध-दर्शन क्षणिकवादी होने के कारण कर्त्ता और भोक्ता का ऐक्य मानने की स्थिति में नहीं है। जैनदर्शन के अनुसार आत्मा सुख-दुःख रूप पुद्‌गल-कर्मों का व्यवहार नय से भोक्ता है और निश्चय नय से वह अपने कर्मफल की अपेक्षा चेतन-भावों का ही भोक्ता है।

स्वदेह परिणाम आत्मा का छठा विशेषण है। इसके अर्थ हैं आत्मा को जितना वड़ा शरीर मिलता है उसी के अनुसार उसका परिमाण हो जाता है। नैयायिक, वैशेषिक, मीमांसक और सांख्य दर्शन आत्मा को व्यापक मानते हैं। जैनदर्शन में व्यवहार नय के अनुसार आत्मा के प्रदेशों का संकोच और विस्तार होता है। निश्चय नय के अनुसार वह लोकाकाश की तरह असंख्यात प्रदेशी अर्थात् लोक के वरावर वड़ा है। इस प्रकार इसका इन चारों दर्शनों के साथ समन्वय हो जाता है।

संसारस्थ आत्मा का सातवाँ विशेषण है। सदा-शिव दर्शन मान्यता के अनुसार आत्मा कभी संसारी नहीं होता, कर्म-परिणामों से वह अछूता सर्वदा शुद्ध वना रहता है। जैनदर्शन के व्यवहार नय की अपेक्षा से संसारी जीव अर्थात् अशुद्ध जीव शुक्ल ध्यान में अपने कर्मों को संवर-निर्जरा परक पूर्ण क्षय कर मुक्त होता है, निश्चय नय की अपेक्षा से वह शुद्ध है।

आत्मा का आठवाँ विशेषण है सिद्ध। यह पारिभाषिक शब्द है, इसका अर्थ है ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से रहित होना। आचार्य भट्ट और चार्वाक के अनुसार आत्मा का आदर्श स्वर्ग है। यहाँ मोक्ष की कल्पना नहीं है। चार्वाक तो जीव की सत्ता को ही स्वीकार नहीं करते। जैनदर्शन

के अनुसार आत्मा अपने कर्म-बन्ध काटकर सिद्ध हो जाता है। अभव्य जीव सिद्धत्व को प्राप्त नहीं कर सकते।

आत्मा का नवम विशेषण है—स्वभाव से ऊर्ध्व गमन। यह भी दार्शनिक शब्द है जिसके अर्थ हैं आत्मा का वास्तविक स्वभाव ऊर्ध्वगमन है। यदि इसके विपरीत उसका गमन होता है तो उसका कारण कर्म परिपाक है। कर्म-विरत होने पर आत्मा जहाँ तक धर्मद्रव्य उपलब्ध रहता है, उर्ध्वगमन करता है। मांडलिक ग्रन्थकार की मान्यता है कि जीव सतत गतिशील है।

इस प्रकार विवेच्य काव्य में जीव आत्मा से सम्बन्धित अनेक ऐसे ज्ञान तत्वों का प्रयोग हुआ है जिनके व्यवहार से जीव उत्तरोत्तर उत्कर्ष प्राप्त करता है। जीवन के लिए अनिवार्य है धर्म किन्तु उसका रूप एकान्त वाह्याचार कभी नहीं है। आचारः प्रथमो धर्मः अर्थात् आचार ही सर्वप्रथम धर्म है। आचार में मनुष्य के उन क्षेमकर प्रयत्नों की गणना है जो अन्तर्मुख हों। सदाचारी का हृदय अहंकार से रहित शुद्ध, समभावी तथा सहानुभूति, क्षमा, शान्ति आदि धार्मिक तत्वों से सम्पन्न रहता है।

सदाचार और धर्म में कोई भेद नहीं है। सदाचार से जीवन भौतिकता से हटकर आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर होता है। सदाचार स्वयं ही आध्यात्मिकता है। इससे जीवन में स्फूर्ति और चैतन्य आता है।[1]

---

१. अर्हत् प्रवचन, उपोद्घात, सम्पादक पं० चैनसुखदास, न्यायतीर्थ, आत्मोदय ग्रन्थमाला, जयपुर, प्रथम संस्करण, १९६२, पृष्ठ १६।

भक्ति

श्रावक अथवा सुधी सामाजिक अर्थात् सद्गृहस्थ की दैनिक जीवनचर्या आवश्यक षट्कर्मो से अनुप्राणित हुआ करती है।[1] इन षट्कर्मो में देव-पूजा, गुरु-सेवा, स्वाध्याय, संयम तथा तप श्रावक के दैनिक आवश्यक कर्त्तव्य में देवपूजा का स्थान सर्वोपरि है। राग प्रचुर होने से गृहस्थों के लिए जिन-पूजा वस्तुतः प्रधान धर्म है।[2] श्रद्धा और प्रेम तत्त्व के समीकरण से भक्ति का जन्म होता है। श्रद्धा-भक्ति एवं अनुराग अथवा जन्म-मरण भय के मिश्रण से पूजा की उत्पत्ति होती है।[3] जिन, जिनागम, तप तथा श्रुत में पारायण आचार्य में सद्भाव विशुद्धि से सम्पन्न अनुराग वस्तुतः भक्ति कहलाता है।[4] पूजा के अन्तरंग में भक्ति की भूमिका प्रायः महत्त्वपूर्ण है। जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में प्रयुक्त भक्ति-भावना पर विचार करने से पूर्व जैन धर्म की भक्ति-भावना विषयक संक्षिप्त चर्चा करना यहाँ असमीचीन न होगा।

जैन धर्म का मेरुदण्ड ज्ञान है। ज्ञान प्राप्त करने के लिए भक्ति एक आवश्यक साधन है। भक्ति मन की वह निर्मल दशा है जिसमें देव तत्त्व का

---

१. देव पूजा गुरुपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने-दिने॥
—पंचविंशतिका, पद्मनंदि, ६/७, जीवराज ग्रंथमाला, प्रथम संस्करण सन् १९६२।

२. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग ३, क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञान पीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, वि० सं० २०२९, पृष्ठ ७३।

३. सार्द्ध शताब्दी स्मृति ग्रंथ, जिन पूजा का महत्त्व, लेखक श्री मोहनलाल पारसान, श्री जैन श्वेताम्बर पंचायती मंदिर, सार्द्ध शताब्दी महोत्सव समिति, १३९ काटन स्ट्रीट, कलकत्ता ७, प्रथम संस्करण १९६५। पृष्ठ ५३।

४. जिने जिनागमे सूरौ तपः श्रुतपरायणे।
सद्भाव शुद्धि सम्पन्नोऽनुरागो भक्ति रुच्यते॥
—यशस्तिलक और इंडियन कल्चर, प्रो० के० के० हैण्डीकी, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, प्रथम संस्करण १९४९, पृष्ठ २६२।

माधुर्य मन को अपनी ओर आकृष्ट करता है।[१] जब अनुराग स्त्री विशेष के लिए न रहकर, प्रेम, रूप और तृप्ति की समष्टि किसी दिव्य तत्त्व या राम के लिए हो जावे तो वही भक्ति की सर्वोत्तम मनोदशा है।[२] भक्ति वस्तुतः अनुभव-सिद्ध स्थिति का अपर नाम है। भक्त में जब इस स्थिति का प्रादुर्भाव होता है तब उसके जीवन, विचार तथा आचार पद्धति में प्रायः परिवर्तन परिलक्षित हो उठते हैं।[३] ज्ञान प्राप्त्यर्थ पूजक भगवान जिनेन्द्र की पूजा करता है। जैन भक्ति में श्रद्धा तत्त्व की भूमिका उल्लेखनीय है। जिनेन्द्र भगवान में श्रद्धा रखने का अर्थ है अपनी आत्मा में अनुराग उत्पन्न करना। यही वस्तुतः सिद्धत्व की स्थिति है। इसी को दार्शनिक शब्दावलि में मोक्ष कहा गया है।[४] जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में राग को कर्मबन्ध का प्रमुख कारण स्थिर किया गया है किन्तु जिनेन्द्र भक्ति में अनुराग रखने का आग्रह उसमें तादात्म्य स्थिर करना है।[५] जिनेन्द्र और आत्मस्वरूप में कोई अन्तर नहीं है। भक्त जिनेन्द्र भक्ति में मूलतः तन्मय हो जाना चाहता है।

जैन धर्म में साधुओं और सुधी श्रावकों की नित्य की चर्या-प्रयोग में आने वाली भक्ति भावना को दश अनुभागों में विभाजित किया गया है।[६] यथा—

---

१. हिन्दी जैन काव्य में व्यवहृत दार्शनिक शब्दावलि और उसकी अर्थ व्यञ्जना, कु० अरुणलता जैन, पी-एच० डी० उपाधि हेतु आगरा विश्व विद्यालय द्वारा स्वीकृत शोधप्रबन्ध, सन् १९७७, पृष्ठ ५४३।

२. कल्याण, भक्ति अंक, वर्ष ३२, अंक १, जनवरी १९५८, गोरखपुर, भक्ति का स्वाद, लेखक डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, पृष्ठ १४४।

३. हिन्दी जैन काव्य में व्यवहृत दर्शनिक शब्दावलि और उसकी अर्थ व्यञ्जना, कु० अरुणलता जैन, पी-एच० डी० उपाधि के लिए आगरा विश्व-विद्यालय द्वारा स्वीकृत शोधप्रबन्ध; सन् १९७७, पृष्ठ ५४३।

४. हिन्दी जैन काव्य में व्यवहृत दार्शनिक शब्दावलि और उसकी अर्थ व्यञ्जना, कु० अरुणलता जैन, पी-एच० डी० उपाधि के लिए आगरा विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत शोधप्रबन्ध, सन् १९७७, पृष्ठ ५४४।

५. जैन भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि, डॉ० प्रेम सागर जैन, भारतीय ज्ञान पीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १९५३, पृष्ठ ६४।

६. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग ३, क्षु० जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण वि० सं० २०२९, पृष्ठ २०८।

१—सिद्ध-भक्ति
२—श्रुत—भक्ति
३—चारित्र—भक्ति
४—योगि—भक्ति
५—आचार्य—भक्ति
६—पंच परमेष्ठि—भक्ति
७—तीर्थंकर—भक्ति
८—चैत्य—भक्ति
६—समाधि—भक्ति
१०—वीर—भक्ति

इसके अतिरिक्त निर्वाणभक्ति, नंदीश्वर भक्ति और शांति भक्ति का भी उल्लेख मिलता है। जैन-हिन्दी-पूजा काव्य मे ये सभी भक्तियाँ प्रयुक्त हैं यहाँ केवल वीर भक्ति का उल्लेख नहीं है। इन भक्तियों के अतिरिक्त जैन काव्य में नवधा भक्ति का भी विवरण उपलब्ध हैं। यह साधु-जनों के आहार दान के समय व्यवहार में प्रचलित है।[1]

भारतीय सभी धार्मिक मान्यताओं में ब्रह्म के रूप में निर्गुण और सगुण नामक दो प्रकार की भक्त्यात्मक स्थितियों का उल्लेख मिलता है। जैन भक्ति में निराकार आत्मा और वीतराग भगवान के स्वरूप में जो तादात्म्य विद्यमान है वह अन्यत्र प्राय: सुलभ नहीं है। सामान्यत: निर्गुण और सगुण के पारस्परिक खण्डनात्मक उल्लेख मिलते हैं किन्तु जैन धर्म में सिद्ध भक्ति के रूप में निष्कल ब्रह्म एवं तीर्थंकर भक्ति में सकल ब्रह्म का केवल विवेचन हेतु पृथक उल्लेख अवश्य मिलता है अन्यथा दोनों मे समानता है। जैन भक्ति में निर्गुण और सगुण भक्ति की कोई पृथक-पृथक व्यवस्था नहीं है।[2] आठ कर्मों से रहित और अनन्त चतुष्टय गुणों का धारी मोक्ष में विराजमान जीव वस्तुतः परमात्मा कहलाता है।[3]

---

१. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग ३, क्षुल्लक जिनेन्द्रवर्णी भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण सन् १९७२, पृष्ठ २१०।

२. जैन भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि, डॉ० प्रेमसागर जैन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण सन् १९५३, पृष्ठ १२।

३ अष्ट पाहुड, कुंदकुंदाचार्य, श्री पाटनी दि० जैन ग्रंथमाला, मारोठ, प्रथम संस्करण सन् १९५०, गाथांक १५०-१५१।

परमात्मा अथवा सिद्ध प्रायः निराकार होते हैं। जैन हिन्दी-काव्य में सर्वत्र सिद्ध की महिमा का प्रतिपादन परिलक्षित है। भक्त अथवा पूजक की मान्यता है कि उनकी वंदना अथवा भक्ति से परम शुद्धि तथा सम्यक् ज्ञान प्राप्त होता है। केवल ज्ञान प्राप्त होने पर अमित आनंद की अनुभूति हुआ करती है।[1]

जैनधर्म निवृत्ति मूलक है। यहाँ अशुभोपयोग, शुभोपयोग तथा शुद्धोपयोग नामक तीन श्रेणियों में प्राणी का पुरुषार्थ विभाजित किया गया है। पर-पदार्थ के प्रति ममत्व-भाव रखते हुए पर को कष्ट देने का विचार तज्जन्य व्यवहार कर्त्ता का अशुभोपयोग कहलाता है।[2] यह जघन्य कोटि का कर्म है। सांसारिक पदार्थों के प्रति ममत्व रखते हुए पर-प्राणियों को किसी प्रकार से हानि न पहुँचाना वस्तुतः शुभोपयोग के अन्तर्गत आता है।[3] किन्तु सांसारिक-पदार्थों के प्रति पूर्णतः अनासक्त होकर स्व-पर कल्याणार्थ कर्म विरत होने के लिए तपश्चरण शील होना वस्तुतः शुद्धोपयोग कहलाता है।[4] जैन भक्ति में भक्त के सम्मुख निवृत्तिमूलक शुद्धोपयोग का उच्चादर्श विद्यमान रहता है। वह निरर्थक आवागमन से मुक्ति पाने के लिए अरहन्तदेव के दिव्य गुणों का चिन्तवन करता है और पूजापाठ के द्वारा अष्ट द्रव्यों से वसु-कर्मों के क्षयार्थ

---

१. सब इष्ट अभीष्ट विशिष्ट हितू,
उत्कृष्ट वरिष्ट गरिष्ट मितू।
शिव तिष्ठत सर्व सहायक हो,
सब सिद्ध नमों सुखदायक हों॥
—श्री सिद्ध पूजा, हीरानंद, ज्ञानपीठ पुष्पाञ्जलि, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण सन् १६३६, पृष्ठ १२१।

२. 'यत्र तु मोहद्वेषाव प्रशस्तरागश्च तत्राशुभ इति।'
—वृहद् नय चक्र, श्री देव सेनाचार्य माणिकचन्द्र ग्रंथमाला, बम्बई, प्रथम संस्करण, वि० सं० १९७७, पृष्ठ ३०९।

३. जो जाणदि जिणिंदे पेच्छदि सिद्धे तहेव अणंगारे।
जीवेसु साणुकंपो उवओगो सो सुहोतस्स॥
—वृहद् नयचक्र, श्री देवसेनाचार्य, माणिकचन्द्र ग्रंथमाला, बम्बई, प्रथम संस्करण वि० सं० १९७७, पृष्ठ ३११।

४. सुविदितपयत्थसुत्तो संजम तव संजुदो विगदरागो।
समणो सम सुहदुक्खो भणिदो सुद्धोवओगोत्ति॥
—प्रवचनसार, गाथा १४, श्री मत्कुन्दकुंदाचार्य, श्री सहजानन्द शास्त्र-माला १८५-ए, रणजीतपुरी, सदर, मेरठ, सन् १९७६, पृष्ठ २३।

शुभ संकल्प करता है। इसके द्वारा क्रमशः अष्टद्रव्य का क्षेपण कर अमुक-अमुक कर्म त्यागने का संकल्प किया जाता है।[1] इस प्रकार जैन-पूजा-काव्य में भक्ति का अभिप्राय भगवान से किसी प्रकार की सांसारिक मनोकामना पूर्ण करने-कराने की अपेक्षा नहीं की जाती। यहाँ पूजक अथवा भक्त अपने मिथ्यात्व का सर्वथा त्याग करने हेतु प्रभु के समक्ष शुभ संकल्पशील होता है। साथ ही वह प्रभु-गुणों का चिन्तवन कर तद्रूप बनने की भावना का चारु चिन्तवन करता है।

उपर्यंकित भक्ति विषयक चर्चा का प्रयोग जैन हिन्दी-पूजा-काव्य में विविध पूजाओं के संदर्भ में हुआ है। यहाँ उन सभी प्रकार की भक्तियों का क्रमशः इस प्रकार विवेचन करेंगे फलस्वरूप जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में प्रयुक्त भक्ति का स्वरूप स्पष्ट हो सके।

सिद्ध भक्ति—

सिद्ध भक्ति पर विचार करने से पूर्व सिद्ध भक्ति के विषय में विश्लेषण करना असंगत न होगा। सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र सहित अष्टकर्मकुल से रहित, सम्यक्त्वादि अष्टगुणों से संयुक्त है। नय, संयम, चारित्र, भूत, वर्तमान तथा भविष्यतकाल में आत्मस्वभाव में स्थित मोक्ष प्राप्त हैं, ऐसे जीव वस्तुतः सिद्ध कहलाते हैं।[2] सिद्ध निष्कल निराकार होते हैं। उनमें औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तेजस और कार्माण शारीरिक

---

१. ओ३म् ह्रीं श्री जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।'

—श्री शांतिनाथ जिनपूजा, वृन्दावन, राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, अलीगढ़, प्रथम संस्करण १९७६, पृष्ठ ११०।

२. अठ्ठविहकम्ममुक्के अठ्ठगुणढ्ढे अणोवमे सिद्धे।
अठ्ठमपुढविणिविठ्ठे णिठ्ठियकज्जे य वंदिमो णिच्चं॥

—सिद्ध भक्ति, गाथा १, दशभक्त्यादि संग्रह, सम्पादक श्री सिद्धसेन गोयलीय, अखिल विश्व जैन मिशन, सलाल साबर कांठा, गुजरात, प्रथम संस्करण वीर निर्वाण सं० २४८१, पृष्ठ ११३।

व्यवस्था नहीं होती है।[1] वे निराकार परमात्मा कहलाते हैं।[2] विचारपूर्वक देखें तो लगता है कि सिद्ध साकार और निराकार दोनों ही हैं। साकार से अभिप्राय अनन्त गुणों से युक्त और निराकार से तात्पर्य स्पर्श, गन्ध, वर्ण और रस से रहित। जैनधर्म में सिद्ध के अनन्त गुणों को सम्यक्त्व,

---

१. (अ) औदारिक शब्द का अर्थ है पेटवाला। औदारिक शरीर तिर्यंच एवं मनुष्य गति के जीवों के हुआ करता है।

—जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग १, क्षु० जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण वि० सं० २०२७, पृष्ठ ५०० ।

(ब) विक्रिया का अर्थ है शरीर के स्वाभाविक आकार के अतिरिक्त विभिन्न आकार का बनाना वैक्रियक कहलाता है।

—तत्त्वार्थ सूत्र, अध्याय २, सूत्र ४६, उमास्वामि, अखिलविश्व जैन मिशन प्रकाशन, अलीगंज, एटा, प्रथम संस्करण सन् १९५७, पृष्ठ ३२ ।

(स) जिस शरीर में प्रतिक्षण आगमन तथा निर्गमन की क्रिया चलती रहती है वह शरीर आहारक कहलाता है।
—जैनेन्द्र सिद्धांत कोश, भाग १, क्षु० जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २०२७, पृष्ठ ३०८ ।

(द) तेज और प्रभा से उत्पन्न होता है उसे तैजस शरीर कहते हैं।
—राजवार्तिक, अध्याय २, सूत्र ३६, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम संस्करण वि० सं० २००८ ।

(य) कर्मों का समुदाय ही कार्माण शरीर है। जीव के प्रदेशों के साथ बँधे अष्ट कर्मों के सूक्ष्म पुद्गल स्कन्धों के संग्रह का नाम कार्माण शरीर है।
—जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग २, क्षु० जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २००८, पृष्ठ ७५ ।

२. जैन भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि, डॉ० प्रेमसागर जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम संस्करण १९६३, पृष्ठ ८७ ।

दर्शन, ज्ञान, वीर्य, सूक्ष्मता, अवगाहन, अगुरुलघु और अव्याबाध नामक इन अष्टभागों में विभाजित किया गया है।[1]

सिद्ध और अरहन्त में अन्तर स्पष्ट करते हुए जैनशास्त्रों में स्पष्ट उल्लेख है। आठ कर्म-कुल का नाश होने पर सिद्ध-पद प्राप्त होता है जबकि चार घातिया कर्मों का क्षय करने से ही अर्हत्पद उपलब्ध हो जाता है।[2] अर्हन्त सकल परमात्मा कहलाते हैं। वे शरीरधारी होते हैं जबकि सिद्ध निराकार होते हैं। सिद्ध अरहन्तों के लिए पूज्य होते हैं।

सिद्धों की भक्ति से परम शुद्ध सम्यक्ज्ञान प्राप्त होता है। सिद्धों की वंदना करने वाला उनके अनन्त गुणों को सहज में ही पा लेता है। उनकी भक्ति मात्र से ही भक्त उनके पद को सहज में प्राप्त कर सकता है।[3] सिद्धों को भक्ति से सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र रूप तीन प्रकार के कल्याणकारी रत्न उपलब्ध होते हैं।[4]

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में सिद्ध की महिमा का प्रतिपादन हुआ है। उनकी वन्दना में अनेक काव्य रचे गए हैं। इन काव्यों में सिद्धों की भक्ति करने से परम शुद्धि तथा सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति का उल्लेख मिलता है। केवल ज्ञान

---

१. संमत्त णाण दंसण वीरियसुहुमं तहेव अवगहणं।
   अगुरुलहुमव्वावाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं।
   —सिद्धभक्ति, गाथा ८, दशाभक्त्यादिसंग्रह, सिद्ध सेन गोयलीय, अखिल विश्व जैन मिशन, सलाल (सावर कांठा), गुजरात, पृष्ठ ११४।
२. जैन भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि, डॉ० प्रेमसागर जैन, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्रथन संस्करण १९५३, पृष्ठ ६९।
३. कृत्वा कायोत्सर्गं चतुरष्टदोपविरहितं सुपरिशुद्धम।
   अतिभक्ति संप्रयुक्तो यो वंदते स लघु लभते परमसुखम्।
   —सिद्धभक्ति, दशभक्त्यादिसंग्रह, सम्पा० श्री सिद्धसेन जैन गोयलीय, अखिल विश्व जैन मिशन, सलाल, सावरकांठा, गुजरात, पृष्ठ ११२।
४. कालेपु त्रिपुमुक्ति संगमजुपः स्तुत्यास्त्रिभिर्विष्टपेस्ते रत्नत्रय मंगलानि दधतां भव्येषु रत्नकराः।
   —यशस्तिलक ऐण्ड इंडियन कल्चर, प्रो० के० के० हैण्डीकी, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, प्रथम संस्करण १९४९, पृष्ठ ३११।

के साथ ही अनन्त सुख की भी उपलब्धि होती है।[1] भक्त अथवा पूजक सिद्ध भक्ति में इतना तन्मय हो जाता है कि वह उनके गुणों का गान करता हुआ स्वयं उनके निकट पहुँचने की कामना कर उठता है।[2]

श्रुति भक्ति—

श्रुत का अर्थ है—सुना हुआ। गुरु शिष्य परम्परा से सुना हुआ समूचा ज्ञान श्रुतज्ञान कहलाता है। शास्त्रों में शब्दित होने के पश्चात भी वह श्रुतज्ञान ही कहा जाता रहा। जैनाचार्यों के अनुसार वे समग्रशास्त्र वस्तुतः श्रुत कहलाते हैं जिनमें भगवान की दिव्य-ध्वनि व्यंजित है।[3] आगम वाणी का संकलन ही श्रुत कहलाता है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है। श्रुत भी एक प्रकार से ज्ञान है। श्रुतज्ञान आत्मज्ञान में सहायक होता है। श्रुतज्ञान और केवलज्ञान में पदार्थ-विषय की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं है। हाँ प्रत्यक्ष और परोक्ष भेद से अवश्य अन्तर परिलक्षित है।

आचार्य सोमदेव श्रुत भक्ति को सामायिक कहते हैं। श्रुत भक्ति की उपासना अष्टद्रव्य से करने की स्वीकृति दी है। सरस्वती की भक्ति से अन्तरंग में व्याप्त अज्ञानान्धकार का पूर्णतया विसर्जन होता है।[4] श्रुत के

---

१. सब इष्ट अभीष्ट विशिष्ट हितू।
उत्किष्ट वरिष्ट गरिष्ट मितू॥
शिव तिष्ठत सर्व सहायक हों।
सब सिद्ध नमों सुख दायक हों॥
—श्री सिद्धपूजा, हीराचन्द, भारतीय ज्ञानपीठ पुष्पांजलि, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी. प्रथम संस्करण १९५७, पृष्ठ १२१।

२. ऐसे सिद्ध महान, तिन गुण महिमा अगम है।
वरनन कह्यो वखान, तुच्छ बुद्धि भविलालजू॥
करता की यह विनती सुनो सिद्ध भगवान।
मोहि बुलालो आप ढिग यही अरज उर आन॥
श्री सिद्ध पूजा, भविलालजू, राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, अलीगढ़, प्रथम संस्करण १९७६, पृष्ठ ७६।

३. आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्ट—विरोधकम।
तत्वोपदेशकृत् सार्वं शास्त्रं का पथ-चट्टनम्॥
—समीचीनधर्मशास्त्र, आचार्य समन्तभद्र, सं० जुगलकिशोर मुख्तार, वीर सेवा मंदिर, दिल्ली, प्रथम संस्करण १९५५, पृष्ठ ४३।

४. स्याद्वाद भूधरभवा मुनिमाननीया देवैरनन्य शरणैः समुपासनीया।
स्वान्ताश्रिताखिलकलंकहर प्रवाहा वागापगास्तु मम बोध गजावगाहा॥
—यशस्तिलक, आचार्य सोमदेव, काव्यमाला ७० बम्बई, प्रथम संस्करण सन् १९०१, पृष्ठ ४०१।

दो भेद किए गए हैं—यथा—(१) द्रव्यश्रुत, (२) भावश्रुत। शास्त्रों को द्रव्यश्रुत में परिगणित किया गया है। जैन धर्म में शास्त्र-पूजन को अचित्त द्रव्यपूजन की कोटि में रखा है।[1] भगवान जिनेन्द्र की मूर्ति के समान ही शास्त्रों की भी प्रतिष्ठा होने लगी और तारण-पंथ ने तो अर्हत की मूर्ति को न पूजकर शास्त्रों की पूजा में अपने विश्वास की स्थापना की है।[2]

भावश्रुत को ज्ञान कहते हैं। वह शास्त्रीय अध्ययन के अतिरिक्त प्रत्यक्ष रूपी भी है। जिनेन्द्र भगवान के कहे गए गणधरों के रचित अंग और अंग बाह्य सहित तथा अनन्त पदार्थों को विषय करने वाले श्रुतज्ञान को नमस्कार किया गया है।[3]

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में सरस्वती पूजन का अतिशय महत्त्व है। यह तीर्थंकर की ध्वनि है जिसे गणधरों द्वारा श्रवणकर शब्दायित किया गया है। इसकी पूजा करने से जन्म-जरा तथा मरण की व्यथा से मुक्ति मिला करती है।[4]

---

१. तेसिं च सरीराण दव्वसुदस्स वि अचित पूजा सा।
—वसुनंद श्रावकाचार, आचार्य वसुनंदि, सम्पादक पं० हीरालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम संस्करण १९५२, गाथा ४५०, पृष्ठ १३०।

२. जैन भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि, डॉ० प्रेम सागर जैन, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्रथम संस्करण १९५३, पृष्ठ ८१।

३. श्रुतमपि जिनवर विहितं गणधररचितं द्वयनेक भेदस्थम्।
अङ्गाग बाह्य भावित्त मनन्त विषयं नमस्यामि॥
—श्रुतभक्ति, गाथा ४, आचार्य पूज्यपाद, दशभक्त्यादि संग्रह, अखिल विश्व जैन मिशन, सलाल, साबरकांठा, गुजरात, प्रथम संस्करण वी० नि० सं० २४८१, पृष्ठ ११८।

४. छीरोदधिगंगा विमल तरंगा, सलिल अभंगा सुख संगा।
भरि कंचन झारी, धार निकारी, तृषा निवारी, हित चंगा॥
तीर्थंकर की धुनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि, ज्ञान मई।
सो जिनवर वानी, शिव सुखदानी, त्रिभुवन मानी पूज्य भई॥
जनम जरा मृत छय करे, हरै कुनय जड़रीति।
भवसागर सों ले तिरै, पूजै जिनवच प्रीति॥
—श्री सरस्वती पूजा, द्यानतराय, राजेशनित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, अलीगढ़, प्रथम संस्करण १९७५, पृष्ठ ३७५।

इस प्रकार श्रुतभक्ति का फल स्पष्ट करते हुए कविवर योगीन्दु ने स्पष्ट लिखा है कि जो परमात्म प्रकाश नामक जिनवाणी का नित्य नाम लेते हैं, उनका मोह दूर हो जाता है और अन्ततोगत्वा वे त्रिभुवन के नाथ बन जाते हैं।[1]

जैनधर्म में श्रुतज्ञान की अर्चना, पूजा वन्दना और नमस्कार करने से सब दुःखों और कर्मों का क्षय हो जाना उल्लिखित है। इतना ही नहीं श्रुतभक्ति के द्वारा व्यक्ति को बोधिलाभ, सुगति गमन, समाधिमरण तथा जिनगुण सम्पदा भी उपलब्ध होती है।[2] सरस्वती पूजन के फल की चर्चा करते हुए कहा गया है कि इससे केवल ज्ञान की उपलब्धि होती है। फलस्वरूप अनन्तदर्शन और अनन्त वीर्य जैसी अमोघ शक्तियाँ प्राप्त होती हैं।[3] कविवर द्यानतराय ने श्रुतिभक्ति करते हुए स्पष्ट कहा है कि जिस वाणी की कृपा से लोक-परलोक की प्रभुता प्रभावित हुआ करती है। उन जगवंद्य जिनवाणी को नित्य नमस्कार करना वस्तुतः श्रुतभक्ति है।[4]

---

१ जे परमप्प-पयासयहं अणुदिण णाउलयंति।
तुट्टइ मोहु तडत्ति तहं तिहुयण णाह हवंति॥
—परमात्मप्रकाश, योगीन्दु, सम्पादक—श्री आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये, श्री मद्रायचन्द्र जैन ग्रन्थमाला, श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डल, बम्बई, प्रथम संस्करण १९३७, पृष्ठ ३४२।

२. सुदभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्स आलोचेउ अंगोवंगपइण्णए पाहुडयपरियम्मसुत्तपढमा णिओगपुव्वगय चूलिया-चेव सुत्तत्थथुइ धम्मकहाइयं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेसि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ वोहिलाहो, सुगइ गमणं, समाहिमरणं जिणगुण संपत्ति होउ मज्झं। —श्रुतभक्ति, आचार्य कुन्द-कुन्द, दशभक्त्यादि संग्रह, सिद्धसेन जैन गोयलीय, अखिल विश्व जैन मिशन, सलाल, साबर कांठा, गुजरात, प्रथम संस्करण वी० नि० सं० २४८१, पृष्ठ १३९।

३. एवमभिष्टुवतो मे ज्ञानानि समस्त लोक चक्षूंपि।
लघु भवताज्ज्ञानर्द्धि ज्ञानफलं सौख्यमच्यवनम्॥
—श्रुतभक्ति, गाथा ३०, दशभक्त्यादि संग्रह, सिद्धसेन जैन गोयलीय, अखिल विश्व जैन मिशन, सलाल, साबरकांठा, गुजरात, प्रथम संस्करण वी० नि० सं० २४८१, पृष्ठ १३७।

४. ओंकार धुनिसार, द्वादशांग वाणी विमल।
नमौ भक्ति उरधार, ज्ञान करै जड़ता हरै॥
जा वानी के ज्ञान ते, सूझै लोक आलोक।
द्यानत जग जयवंत हो, सदा देत हो धोक॥
—श्री सरस्वती पूजा, जयमाला, द्यानतराय, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, अलीगढ़, प्रथम संस्करण १९७६ ई०, पृष्ठ ३६६।

हिन्दी-जैन-पूजा-काव्य में जैन आगम के अनुसार श्रुतभक्ति का प्रतिपादन हुआ है।

चारित्र भक्ति—

आचरण का अपरनाम चारित्र है। अच्छा और बुरा विषयक इसके दो भेद किए गए हैं। चारित्र भक्ति में श्रेष्ठ चारित्र का चिन्तवन होता है। संसार-वन्ध के कारणों को दूर करने की अभिलाषा करने वाले ज्ञानी पुरुष कर्मों की निमित्त भूत क्रिया से विरत हो जाते हैं, इसी को वस्तुतः सम्यक् चारित्र कहते हैं। चारित्र अज्ञानपूर्वक न हो अतः सम्यक् विशेषण जोड़ा गया है।[1] जो जाने सो ज्ञान और जो देखे सो दर्शन तथा इन दोनों के समायोग को चारित्र कहते हैं।[2]

ज्ञान विहीन क्रिया कर्मकाण्ड कहलाती है। इसीलिए इसे सम्यक् चारित्र नहीं कहा जा सकता। इसके लिए सच्चा भाव अपेक्षित है अर्थात् इसे आभ्यन्तर चारित्र भी कहा गया है। चारित्र भक्ति के सन्दर्भ में आचार के पाँच प्रभेद जिनवाणी में उल्लिखित हैं यथा—(१) ज्ञानाचार, (२) दर्शनाचार (३) तपाचार (४) वीर्याचार (५) चारित्राचार। चारित्रपरक महिमा वर्णन वस्तुतः चारित्रभक्ति कहलाती है। संयम, यम और ध्यानादि से संयुक्त चारित्र भक्ति की महिमा अद्वितीय है, इसके अभाव में मुनि-तप भी व्यर्थ है।[3]

---

१. संसार कारण निवृत्ति प्रत्यागूर्णस्य ज्ञानवतः कर्मादान निमित्त क्रियोपरमः सम्यक् चारित्रम्।
—सर्वार्थसिद्धि, आचार्य पूज्यपाद, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम संस्करण, वि. सं. २०१२, पृष्ठ ५।

२. जं जाणइ तं णाणं जं पिच्छइ तं च दंसणं भणियं।
णाणस्स पिच्छयस्स य समवण्णा होइ चारित्तं॥
—अष्टपाहुड, आचार्य कुंद कुंद, श्रीपाटनी दि० जैन ग्रंथमाला, मारोठ, मारवाड़, गाथांक ३।

३. ज्ञानं दुर्भग देह मण्डनमिव स्यात् स्वस्य खेदावहं।
धत्ते साधु न तत्फल-श्रियमयं सम्यक्त्वरत्नांकुर॥
—यशस्तिलक, आचार्य सोमदेव, यशस्तिलक एण्ड इण्डियन कल्चर, प्रो० के० के० हैण्डीकी, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, प्रथम संस्करण १९४९, पृष्ठ ३०९।

हिन्दी जैन-पूजा-काव्य परम्परा में चारित्र भक्ति का उल्लेख 'रत्नत्रय पूजा' में उपलब्ध है। श्रद्धा और ज्ञान पूर्वक चारित्र, चतुर्गतियों में व्याप्त विषरूपी दुःखाग्नि को प्रशान्त करने के लिए सुधा-सरोवरी के समान सुखद होता है।[1] कविवर द्यानतराय का कथन है कि सम्यक् चारित्र पूजा में चारित्र भक्ति का सुन्दर निरूपण हुआ है। कषाय शान्ति के लिए उत्तम चारित्र-भक्ति परमौषधि है। इसी को तीर्थंकर धारण कर कल्याण को प्राप्त होते हैं।[2] सम्यक् चारित्र भक्ति की महिमा का उल्लेख करते हुए कविर्मनीषी द्यानतराय का विश्वास है कि सम्यक् चारित्र रूपी रतन को संभालने से नरक-निगोद के दुःखों से त्राण प्राप्त होता है साथ ही शुभ कर्मयोग की घाटिका पर धर्म की नाव में बैठकर शिवपुरी अर्थात् मोक्ष को प्राप्त किया जा सकता है।[3]

योगिभक्ति—

अष्टांग योग का धारी वस्तुतः योगी कहा जाता है।[4] योगी संज्ञा गणधरों

---

१. चहुगति फणि विषहरन मणि, दुःख पावक जलधार।
शिवसुख सुधासरोवरी, सम्यक्त्रयी निहार॥
—श्री रत्नत्रय पूजा भाषा, द्यानतराय, राजेशनित्यपूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, अलीगढ़, प्रथम संस्करण १९७६, पृष्ठ १९१।

२. विषय रोग औषधि महा,
दव कषाय जलधार।
तीर्थंकर जाकौ धरैं,
सम्यक् चारितसार॥
—श्री सम्यक् चारित्र पूजा, द्यानतराय, श्री जैन पूजा पाठ संग्रह, भागचन्द पाटनी, ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७ पृष्ठ ७४।

३. सम्यक् चारित रतन सम्भालो, पंच पाप तजिके व्रत पालो।
पंचसमिति त्रयगुपति गहो जै, नरभव सफल करहु तर छीजै॥
छीजै सदा तन को जतन यह, एक संयम पालिये।
बहुरूल्यो नरक-निगोद-माहीं, कषाय-विषयनि टालिये।
शुभ-करम-जोग सुघाट आयो, पार हो दिन जात है।
'द्यानत' धरम की नाव बैठो, शिवपुरी कुशलात है॥
—श्री सम्यक्चारित्रपूजा, द्यानतराय, श्री जैन पूजा पाठ संग्रह, श्री भागचन्द्र पाटनी, ९२ नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ ७५।

४. योगोध्यान सामग्री अष्टांगानि,
विद्यन्ते यस्स सः योगी।
—जिनसहस्रनाम, पं. आशाधर, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्रथम संस्करण १९५४, पृष्ठ ९०।

के लिए जैनधर्म में प्रयुक्त है। बुद्धि-ऋद्धिधारी होने से उनमें संसार संरक्षण शक्ति विद्यमान रहती है फलस्वरूप उनकी पूजा-अर्चा किये जाने का उल्लेख 'महापुराण' में उपलब्ध है।[1]

जैनधर्म में मुनिचर्या में योगिभक्ति के शुभदर्शन सहज में किए जा सकते हैं। योगीजन जन्म, जरा उर-रोग शोक आदि पर योग साधना द्वारा विजय प्राप्त करते हैं। राग-द्वेष को शान्त कर शान्ति स्थापनार्थ वन-स्थलों में जाकर योग साधना करते हैं। हिन्दी-जैन-पूजा-काव्य परम्परा में मुनियों, तीर्थंकरों पर आधृत अनेक पूजा-कृतियों में उपसर्ग जीतने के प्रसंगों में योगि-भक्ति के सन्दर्भ उपलब्ध होते हैं। 'मुनि विष्णुकुमार महामुनि नामक पूजा' में हुए उपसर्ग पर विजय वर्णन का विशद विवेचन हुआ हैं। अपनी योगि भक्ति के द्वारा उन्होंने मुनि को आहार सुलभ कराया तथा स्वयं भी आहार ग्रहण किया था।[2] इन योगियो की पूजा करने पर योगि-भक्ति मुखर हो उठी है।

आचार्य भक्ति—

'चर' धातु अङ उपसर्ग तथा णायत प्रत्यय के योग से आचार्य शब्द की निष्पत्ति होती है। इस भक्ति में ज्ञान, संयम, वीतराग प्रियता तथा मुनि जनों को कर्मक्षयार्थ शिक्षा-दीक्षा देने की सामर्थ्य विद्यमान

---

१. महायोगिन् नमस्तुभ्यं महाप्रज्ञ नमो स्तुते।
नमो महात्मने तुभ्यं नमः स्तोते महर्द्धये॥
—महापुराण, भाग १, जिनसेनाचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्रथम संस्करण वि. सं. २००७, पृष्ठ ३५।

२. विष्णु कुमार महामुनि को ऋद्धि भई।
नाम विक्रया तास सकल आनन्द ठई॥
सो मुनि आए हथनापुर के बीच में।
मुनि बचाए रक्षा कर वन बीच में॥
तहाँ भयोआनन्द सर्व जीवन घनों।
जिमि चिन्तामणि रत्न एक पायो मनो॥
सब पुर जै जै कार शब्दउच्चरत भए।
मुनि को देय आहार आप करते भए॥
—श्री विष्णुकुमार महामुनि पूजा, रघुसुत, श्री जैनपूजा पाठ संग्रह, श्री भागचन्द्र पाटनी, ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १७३।

रहती है।[1] आचार्य पूज्यपाद ने आचार्य की व्याख्या करते हुए कहा है कि उनमें स्वयं व्रतों का आचरण करने की भावना होती है और दूसरों को व्रत साधना के लिए प्रेरणा देते हैं।[2]

आचार्य में अनुराग अर्थात् उनके गुणों में अनुराग करना वस्तुतः आचार्य भक्ति कहलाती है।[3] आचार्य भक्ति में भक्त के द्वारा उन्हें उपकरण दान के साथ ही शुद्ध भावना पूर्वक उनके पैरों का पूजन किया जाता है।[4] आचार्य भक्ति के फल का उल्लेख करते हुए जैनधर्म में स्पष्ट कहा गया है कि आचार्यों की भक्ति करने वाला अपने अष्टकर्मों को क्षय करके संसार-सागर से पार हो जाता है।[5]

जैन-हिन्दी पूजा-काव्य परम्परा में आचार्य भक्ति के अनेक प्रसंग उल्लिखित हैं। बीसवीं शती के कविवर सुधेश जैन विरचित 'श्री आचार्य शान्ति सागर का पूजन' नामक काव्यकृति में इस भक्ति के अभिदर्शन होते हैं। कवि के आत्म निवेदन में कितना सार अभिव्यज्जित है। आपने अपने तपश्चरण द्वारा हे आचार्यवर सम्पूर्ण रति मनोरथों को जीत लिया है अस्तु

---

१. जिण विम्वणाणमयं संजम सुद्धं सुदीय राय च।
जं देह दिक्ख सिक्खा कम्मक्खय कारणे सुद्धा॥
—अष्टपाहुड़, आचार्य कुन्द कुन्द, गाथांक १६, श्री पाटनी दि० जैन ग्रंथमाला, मारोठ, मारवाड़, प्रथम संस्करण १९५०।

२. तत्र आचारन्ति तस्माद् व्रतानि इति आचार्यः।
—सर्वार्थसिद्धि, आचार्य पूज्यपाद, सम्पादक पं० फूलचन्द्र, सिद्धान्त शास्त्री भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथमसंस्करण वि. सं. २०१२, पृष्ठ ४४२।

३. अर्हयदाचार्येषु वहु श्रुतेषु प्रवचने च भाव विशुद्धि युक्तोऽनुरागो भक्तिः।
—सर्वार्थसिद्धि, आचार्य पूज्यपाद, पं० फूलचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम संस्करण वि. सं. २०१२, पृष्ठ ३३९।

४. पाद पूजनं दान सम्मानादि विधानं मनः शुद्धि युक्तोऽनुरागश्चार्य भक्ति रुच्यते।
—तत्वार्थ वृत्ति, आचार्य श्रुतसागर, सम्पादक पं० महेन्द्र कुमार, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, वि० सं० २००५, प्रथम संस्करण, पृष्ठ २२८-२२९।

५. गुरु भक्ति संजमेण य तरंति संसार सायरं घोरं।
छिण्णंति अट्ठकम्मं जम्मण मरणं ण पावंति॥
—आचार्य भक्ति, दशभक्त्यादि संग्रह, सिद्धसेन जैन गोखलीय, अखिल विश्व जैन मिशन, सलाल, सावरकांठा, गुजरात, प्रथम संस्करण वी० नि० सं० २४८१, पृष्ठ १६४।

सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने के लिए आपकी पूजा करता हूँ। कवि का विश्वास है कि उसे आचार्य भक्ति द्वारा सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति हो सकेगी।[1]

पंचपरमेष्ठि भक्ति—अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा सर्व साधुजनों का समीकरण वस्तुतः पंचपरमेष्ठि कहा जाता है। साधु से अरहन्त तक उत्तरोत्तर गुणों की अभिवृद्धि के कारण यह क्रम उल्लिखित है। यद्यपि सिद्ध श्रेष्ठ हैं तथा उनके द्वारा लोकोपकार की सम्भावना नहीं रहती है। अस्तु अरहन्त का क्रम प्रथम रखा गया है।[2] यहाँ संक्षेप में इन गुणधारियों की शक्ति स्वरूप की चर्चा करना असंगत न होगा—

अर्हन्त—अर्ह् पूजयामि धातु से अर्हन्त शब्द का गठन हुआ है। इसके अर्थ पूज्यभाव के लिए पूजाकाव्य में प्रयुक्त हैं। चार घातिया कर्मों का नाश कर अनंन्त-चतुष्टय को प्राप्त कर जो केवल ज्ञानी परम आत्मा अपने स्वरूप में स्थिर है, वह वस्तुतः जरा, व्याधि, जन्म-मरण चतुर्गति विषगमन, पुण्य-पाप इन दोषों को उत्पन्न कराने वाले कर्मों का शमन कर केवल ज्ञान प्राप्त करना वस्तुतः अर्हन्त के प्रमुख लक्षण हैं।[3]

अर्हन्त के दो भेद किए गए हैं—यथा—(१) तीर्थकर (२) सामान्य। विशेष पुण्य सहित अर्हन्त जिनके कल्याणक महोत्सव मनाए जाते हैं और

---

१. तुमने पड़ने दी न हृदय पर सुख भोगों की छाया भी।
अतः तुम्हारी विरति देखकर रतिपति पास न आया भी॥
और विकृति का हेतु न बन सकी दिगम्बर काया भी।
तो रति ने भी मान पराजय तुम्हें अजेय बताया ही॥
तथा वासना ने हो असफल निज मुख मुद्राम्लान की।
पुष्पों से मैं पूजन करता, दो निधि सम्यक् ज्ञान की॥
—श्री आचार्य शान्ति सागर पूजन, सुधेश जैन, सुधेश साहित्य सदन, नागौद, म० प्र०, प्रथम संस्करण १९५८, पृष्ठ ३।

२. अनन्त चतुष्टय के धनी छियालीस गुणयुक्त।
नमहुँ त्रियोग सम्हार के अर्हन जीवन्मुक्त॥
—श्री पंचपरमेष्ठि पूजा, सच्चिदानंद, नित्यनियम विशेष पूजन संग्रह, ब्र० पतासीबाई, श्री दि० जैन उदासीन आश्रम, ईसरी बाजार, हजारीबाग, प्रथम संस्करण वि० सं० २०१७, पृष्ठ ३१।

३. जरवाहि जम्ममरणं चउ गए गमणं च पुण्ण पावंच।
हतूण दो सकम्मे हुउ णाण मयं च अरहंतो॥
—अष्टपाहुड, कुंदकुन्दाचार्य, गाथांक ३०, श्री पाटनी दि० जैन ग्रन्थ माला, मारोठ, मारवाड़, पृष्ठ १२८।

जिनके कल्याणक नहीं मनाए जाते वे सामान्य अर्हन्त कहलाते हैं । ये सभी सर्वज्ञत्व युक्त होते हैं अतः उन्हें केवली कहा गया है ।[1]

सिद्ध—शरीर रहित अर्थात् देह मुक्त अर्हन्त वस्तुतः सिद्ध कहलाते हैं ।[2]

आचार्य—१०८ गुणों का धारी निर्ग्रन्थ दिगम्बर साधु जो अनुभवी तथा जिसमें अन्य साधुओं को दीक्षित करने की सामर्थ्य होती है वस्तुतः आचार्य कहलाते हैं ।[3]

उपाध्याय—पंच परमेष्ठियों में उपाध्याय का क्रम चतुर्थ है ।[4] जीवन का परम लक्ष्य-मोक्ष प्राप्त्यर्थ उपाध्याय के संरक्षण में जिनवाणी का स्वाध्याय करना होता है ।[5]

साधु—जिन दीक्षा में प्रव्रजित प्राणी वस्तुतः साधु कहलाता है ।[6] अवधि ज्ञानी, मनः पर्ययज्ञानी और केवल ज्ञानियों को साधु अथवा मुनि कहते हैं ।[7] मनन मात्र भाव स्वरूप होने से मुनि होता है ।

---

१. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग २, क्षु० जिनेन्द्रवर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, प्रथम संस्करण सं० २०२७, पृष्ठांक १४० ।

२ अपभ्रंश वाङ्मय में व्यवहृत पारिभाषिक शब्दावलि, आदित्य प्रचण्डिया दीति, महावीर प्रकाशन, अलीगंज (एटा) उ० प्र०, १९७७, पृष्ठ ६ ।

३. हिन्दी जैन काव्य में व्यवहृत दार्शनिक शब्दावलि और उसकी अर्थव्यञ्जना कु० अरुणलता जैन, पी-एच. डी. उपाधि के लिए आगरा विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत शोधप्रबन्ध, १९७७, पृष्ठ ६१३ ।

४. अरूहा सिद्धायरिया उज्झाया साहू पंच परमेट्ठी ।
ते विहु चिट्ठहि आधे तम्हा आदा हुमे सरणं ॥
—मोक्ष पाहुड, जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग ३, क्षु० जिनेन्द्रवर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्र० सं० २०२९, पृष्ठांक २३ ।

५. देत धरम उपदेश नित रत्नत्रय गुणवान ।
पच्चीस गुणधारी महा उपाध्याय सुखखान ।
श्री पंचपरमेष्ठी पूजा, सच्चिदानन्द, नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, ब्र० पतासीबाई, दि० जैन उदासीन आश्रम, ईसरी बाजार, हजारी बाग, प्रथम संस्करण २४८७, पृष्ठ ३२ ।

६. अपभ्रंश वाङ्मय में व्यवहृत पारिभाषिक शब्दावलि, आदित्य प्रचण्डिया दीति, महावीर प्रकाशन, अलीगंज (एटा) उ० प्र०, १९७७, पृष्ठ ६ ।

७. मनन मात्र भाव तया मुनिः ।
—समय सार, आचार्यकुन्दकुन्द, प्रकाशक—श्री कुन्दकुन्द भारती, ७-ए, राजपुर रोड, दिल्ली—११०००६, प्रथम आवृत्ति, मई १९७८, पृष्ठ ११२ ।

इस प्रकार पंच परमेष्ठी परम पद शुद्ध आत्मा है। अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु मेरी आत्मा में ही प्रकट हो रहे हैं, अस्तु आत्मा ही मुझे शरण हैं।[1] पंच परमेष्ठी की भक्ति -आराधना करने से आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तीनों ही प्रकार की शक्तियों का शुभ चिन्तवन हो जाता है। इनके द्वारा मोह का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है।[2]

जैन हिन्दी पूजा काव्य परम्परा में पंच परमेष्ठि के अनेक पूजा-काव्य प्रणीत हुए हैं। कविवर सच्चिदानंद कृत पूजा में पूजक मंगल कामना करता है कि मैं परमेष्ठि की पूजाकर, अपने कर्म-अरि दल का नाश कर तद्रूप पद प्राप्त कर पाऊँ। जीवन्मुक्त सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय मुनिराज की वंदना की गई है। फलस्वरूप सहज स्वभाव का विकास सम्भव है।[3]

इस प्रकार पंच परमेष्ठि भक्ति के द्वारा पूजक को कर्मों का नाश रत्नत्रय की प्राप्ति तथा शुभ गति की प्राप्ति होती है। समाधिमरण को प्राप्त कर भगवान जिनेन्द्र देव के गुणों की सम्पत्ति प्राप्त करने की सम्भावना होती है।[4]

---

१. अरूहा सिद्धायरिया उज्झाया साहु पंच परमेट्ठी।
ते विहु चिट्ठहि आधे तम्हा आदा हुमे सरणं॥
—अष्टपाहुड, आचार्य कुन्दकुन्द, गाथा १०४, श्री पाटनी दि० जैन ग्रन्थमाला, मारोठ, मारवाड़।

२. स्तम्भं दुर्गमनं प्रति प्रयततो मोहस्य सम्मोहनम्।
पापात्यंच नमस्क्रियाक्षर मयी साराधना देवता॥
—धर्मध्यानदीपक, मांगीलाल हुकुमचन्द पांड्या, कलकत्ता, प्रथम संस्करण, पृष्ठ २।

३. जल फल आठों द्रव्य मनोहर शिव सुख कारन में लाया।
अरिदल नाशक तुव स्वरूप लख पद पूजूं चित हुलसाया॥
जीवन्मुक्त सिद्ध आचारज उपाध्याय मुनिराज नमूं।
सहज स्वभाव विकास भयो अव आप आप में थाप रमूं॥
—श्री पंचपरमेष्ठि पूजा, सच्चिदानन्द, नित्यनियम विशेष पूजन संग्रह, ब्र० पतासीवाई, दि० जैन उदासीन आश्रम, ईसरी वाजार, हजारीवाग, पृष्ठ ३४।

४. दशभक्त्यादि संग्रह, सिद्धसेन जैन गोयलीय, अखिल विश्व जैन मिशन, सलाल, सावरकांठा, गुजरात, प्रथम संस्करण वी० नि० सं० २४८१, पृष्ठ १६६।

तीर्थंकरभक्ति—तीर्थ की स्थापना करने वाला तीर्थंकर कहलाता है।[1] संसार रूपी सागर जिस निमित्त से तिरा जाता है, उसे वस्तुतः तीर्थ कहते हैं।[2] इस भक्ति की प्रमुख विशेषता है कि पूजक में लघुता, शरण तथा गुण कीर्तन, नाम-कीर्तन तथा दास्य भाव का होना आवश्यक है।[3]

तीर्थंकर गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, मोक्ष, नामक पाँच महा कल्याणकों से सुशोभित हैं जो आठ महा प्रातिहार्यो सहित विराजमान हैं, जो चौंतीस विशेष अतिशयों से सुशोभित हैं, जो देवों के बत्तीस इन्द्रों के मणिमय मुकुट लगे हुए मस्तकों से पूज्य हैं जिनको समस्त इन्द्र आकर नमस्कार करते हैं, वलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ती, ऋषि, मुनि, यति, अनगार आदि सव जिनकी सभा में आकर धर्मोपदेश सुनते हैं और जिनके लिए स्तुति की जाती है ऐसे श्री ऋषभदेव से लेकर श्री महावीर पर्यंत चौबीसों महापुरुष तीर्थङ्कर परमदेव की अर्चा, पूजा, बन्दना की जाती है। तीर्थंकर भक्ति से दुःखों का नाश, कर्मो का नाश, रत्नत्रय की प्राप्ति आदि कल्याणकारी गुणों की उपलब्धि होती है।[4]

तीर्थंकर भक्ति पर आधृत पूजा काव्य की एक सुदीर्घ परम्परा रही है। प्रत्येक शताब्दि में इन तीर्थकरों की पूजाएँ रची गई हैं जिनका पारायण जैन

---

१. जिनसहस्रनाम, पं० आशाधर, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्रथम संस्करण सन् १९५४, पृष्ठ ७८।

२. तीर्यते संसार सागरो येन तत्तीर्थम्।
—जिनसहस्रनाम, पं० आशाधर, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्रथम संस्करण सन् १९५४, पृष्ठ ७८।

३. जैन भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि, डॉ० प्रेमसागर जैन, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्रथम संस्करण सन् १९६३, पृष्ठ ११०-१११।

४. चउवीस तित्थयर भक्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं। पंचमहा कल्लाण संपण्णाणं, अट्ठमहापाडिहेर सहियाणं, चउतीस अतिसयविसेस संजुत्ताणं, वत्तीसदेविंद मणिमउड मत्थयमहियाणं, वलदेववासुदेव चक्कहररिसि मुणि जइ अणगारोवगूढाणं, थुइसय सहस्सणिलयाणं, उसहाइवीरपच्छिम मङ्गल महापुरिसाणं णिच्चकालं अंचेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कमक्खओ बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण संपत्ति होउ मज्झं।
—तीर्थङ्कर भक्ति, दशभक्त्यादि संग्रह, सिद्धसेन जैन गोयलीय, अखिल विश्व जैन मिशन, सलाल, सावरकांठा, गुजरात, प्रथम संस्करण, वीर निर्वाण संवत २४८१, पृष्ठ १७३-१७४।

परिवारों में नित्य नियम के साथ किया जाता है। अठारहवीं शती में कविवर द्यानतराय द्वारा प्रणीत 'श्री बीस तीर्थंकर पूजा' उल्लेखनीय काव्यकृति है। इसमें विदेह-क्षेत्र में विद्यमान बीस तीर्थंकरों की भक्ति भवसागर से मुक्त होने के लिए की गई है।[1] उन्नीसवीं शती में चौबीस तीर्थंकरों की अनेक कवियों द्वारा पूजाएँ रची गई हैं। भ० ऋषभदेव से लेकर भ० महावीर तक रची गई पूजाओं में तीर्थंकर भक्ति का सुन्दर प्रतिपादन हुआ है। चौबीस तीर्थंकरों में तेइसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ विषयक कविवर बख्तावर-रत्न की पूजा रचना जैन-समाज में प्रचलित है। इसमें भ० पार्श्वनाथ के गुणगान के साथ तीर्थंकर भक्ति का सुन्दर चित्रण हुआ है।[2] कवि ने पूजक की कामना व्यक्त करते हुए स्पष्ट कहा कि तीर्थंकर पार्श्वनाथ की भक्ति करने से जीवन के सारे क्लेश दुःख नष्ट हो जाते हैं साथ ही सांसारिक सुख सम्पत्ति के साथ शिव-मार्ग की मंगल प्रेरणा प्राप्त होती है।[3] इसी परम्परा

---

१. इन्द्र फणीन्द्र नरेन्द्र वंद्य, पद निर्मलधारी।
शोभनीक संसार सार गुण, हैं अधिकारी॥
क्षीरोदधि सम नीर सों पूजों तृषा निवार।
सीमन्धर जिन आदि दे बीस विदेह मंझार॥
श्री जिनराज हो भव, तारण तरण जिहाज हो।
ॐ ह्रीं सीमन्धर, जुगमन्धर, बाहु, सुबाहु, संजातक, स्वयंप्रभ, ऋषभानन, अनन्तवीर्य, सूरप्रभ, विशाल कीर्ति, वज्रधर, चन्द्रानन, भद्रबाहु, भुजंगम, ईश्वर, नेमिप्रभ, वीरसेन, महाभद्र, देवयशोडतया, अजितवीर्य विंशति विद्यमान तीर्थंकरेभ्यो जन्म, मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।
—श्री बीस तीर्थंकर जिन पूजा, द्यानतराय, नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, अलीगढ़, प्रथम सस्करण १९७६, पृष्ठ ५६-५७।

२. दियो उपदेश महाहितकार, सुभव्यन बोधि समेद पधार।
सुवर्ण भद्र जहाँ कूट प्रसिद्ध, वरी शिवनारि लही वसुरिद्ध॥
जजूं तुम चरन दुहूं कर जोर, प्रभु लखिये अब ही मम ओर।
कहे बख्तावर रत्न बनाय, जिनेश हमें भव पार लगाय॥
—श्री पार्श्वनाथ पूजा, बख्तावररत्न, राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटल वर्क्स, अलीगढ़, प्रथम संस्करण १९७६, पृष्ठ १२४।

३. जो पूजे मनलाय भव्य पारस प्रभु नित ही।
ताके दुःख सब जाय भीत व्यापै नहिं कित ही॥
सुख सम्पति अधिकाय पुत्र मित्रादिक सारे।
अनुक्रम सों शिव लहें 'रतन' इम कहें पुकारे।
—श्री पार्श्वनाथ जिन पूजा, बख्तावररत्न, राजेशनित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, अलीगढ़, प्रथम संस्करण १९७६, पृष्ठ १२४।

में कविवर वृन्दावनदास विरचित भ० महावीर पूजा का भी अतिशय व्यवहार प्रचलित है। तीर्थंकर भक्ति में देव-राजा-रंक सभी कोटि के पूजक भक्ति भाव से पूजा करते हैं और भवताप को नष्ट कर अतीन्द्रिय आनन्द को प्राप्त करते हैं।[1]

शान्ति भक्ति—आकुलता का अन्त शान्ति को जन्म देता है। परपदार्थों के प्रति ममत्व भाव रखने पर अशान्ति की उत्पत्ति हुआ करती है। वीतराग प्रभु का चिन्तवन करने से वीतराग भाव उत्पन्न होता है फलस्वरूप चित्त की निराकुलता मुखरित होती है। शान्ति को दो भागों में विभाजित किया गया है, यथा—१—क्षणिक शान्ति २—शाश्वत शान्ति। क्षणिक अथवा शाश्वत शान्ति प्राप्त करने के लिए की गई भक्ति वस्तुतः शान्ति भक्ति कहलाती है। जिनेन्द्र देव की भक्ति करने से अचिन्त्य माहात्म्य, अतुल तथा अनुपम सुख-शान्ति प्राप्त होती है।[2] तीर्थंकर शान्ति के प्रतीक हैं। उनके गुणों का चिन्तवन करने से शान्ति की प्राप्ति होती है। पूजक चौबीस तीर्थंकरों से शांति के लिए प्रार्थना करता है।[3] इतना ही नहीं जैन धर्म में शान्ति कामना की

---

१. जय त्रिशलानंदन हरिकृत वंदन, जगदानन्दन चन्दवरं।
भवताप निकन्दन तनमन वंदन, रहित सपंदन नयनधरं॥
—श्री महावीर स्वामी पूजा, वृंदावन, राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, अलीगढ़, प्र० सं० १९७६, पृष्ठ १३६।

२. अव्याबाधमचिन्त्य सारमतुलं त्यक्तोपमं शाश्वतं।
सौख्यं त्वच्चरणारविंद युगलस्तुत्यैव संप्राप्यते॥
—शान्ति भक्ति, आचार्य पूज्यपाद, श्लोक ६, दशभक्त्यादि संग्रह, सिद्धसेन जैन गोयलीय, अखिल विश्व जैन मिशन, सलाल, साबर कांठा, गुजरात, पृष्ठ १७३।

३. येऽभ्यर्चिता मुकुट कुंडलहार रत्नैः।
शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुत पादपद्माः॥
ते मे जिनाः प्रवरवंश जगत्प्रदीपाः।
तीर्थंकराः सतत शांति करा भवन्तु॥
—शान्तिभक्ति, आचार्य पूज्यपाद, श्लोक १३, दशभक्त्यादि संग्रह, सिद्धसेन जैन गोयलीय, अखिल विश्व जैन मिशन, सलाल, साबरकांठा, गुजरात, पृष्ठ १८०—१८१।

उदारता वस्तुतः उल्लेखनीय है। यहाँ पूजक द्वारा चैत्यालय तथा धर्म-रक्षा, आचार्य, उपाध्याय तथा साधु के लिए, राष्ट्र के लिए, नगर के लिए तथा राजा के लिए शान्ति-कामना की गई है।[1]

हिन्दी जैन-पूजा-काव्य में तीर्थंकर को माध्यम मानकर पूजक शान्ति भक्ति के अर्जन की बात करता है। विशेषकर शान्तिनाथ भगवान की पूजा के द्वारा अपूर्व शान्ति भक्ति की गई है। इस दृष्टि से कविवर वृन्दावनदास विरचित 'श्री शान्तिनाथ पूजा' उल्लेखनीय है। पूजक कवि मन, वचन और कार्य पूर्वक शान्ति नाथ प्रभु की पूजा करता है और कामना करता है कि उसके जन्मगत पातक शान्त हो जावे तथा मन-वांछित सुख प्राप्त हो। इतना ही नहीं वह अन्ततोगत्वा शिवपुर की सत्ता प्राप्त करने की मंगल कामना करता है।[2] शान्ति स्थापना के लिए शान्ति यंत्र की पूजा का भी विधान है।[3] शान्ति भक्ति की आवश्यकता असंदिग्ध है। जागतिक जीवनचर्या के लिए भी शान्ति की आवश्यकता अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है और आध्यात्मिक

---

१. संपूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्र सामान्य तपोधनानाम।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शांति भगवान जिनेन्द्रः ॥
शान्ति भक्ति, आचार्य पूज्यपाद, श्लोक १४, दशभक्त्यादिसंग्रह, सिद्धसेन जैन गोयलीय, अखिल विश्व जैन मिशन, सलाल, साबर कांठा गुजरात, पृष्ठ १८१।

२. शांतिनाथ जिनके पद पंकज, जो भवि पूजें मन, वच, काय।
जन्म-जन्म के पातक ताके, ततछिन तजि के जाय पलाय ॥
मन वांछित सो सुख पावै नर, वांचे भगति भाव अतिलाय।
तातें वृंदावन नित वन्दे, जातें शिवपुर राज कराय ॥
—श्री शांतिनाथ जिनपूजा, वृंदावन दास, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटल वर्क्स, अलीगढ़, प्र० सं० १९७६, पृष्ठ ११७।

३. श्री जैन स्तोत्र संदोह, भाग २, श्री सागरचन्द्र सूरि, अहमदाबाद, प्रथम संस्करण १९३६, श्लोकांक ३३।

उत्कर्ष में शान्ति की भूमिका बड़े महत्त्व की है। अस्तु शान्ति भक्ति में स्व-पर कल्यार्थ मंगल कामना की गई है।[1]

समाधि भक्ति—चित्त के समाधान को ही समाधि कहते हैं।[2] सविकल्पक और निर्विकल्पक नामक दो प्रकार की समाधि होती हैं। मंत्र अथवा पंच परमेष्ठी के गुणों पर चित्त का टिकाना सविकल्पक समाधि में होता है।[3] जबकि भगवान सिद्ध अथवा निराकार शुद्धात्मा में चित्त का केन्द्रित करना वस्तुतः निर्विकल्पक समाधि का विषय है।[4] समाधिधारण कर मोक्ष प्राप्त कर्त्ता से समाधिमरण की याचना करना वस्तुतः समाधि भक्ति कहलाती है।[5] समाधि पूर्वक प्राणान्त करना समाधिमरण की संज्ञा प्राप्त करना होता है। अन्त समय में चित्त को पंचपरमेष्ठी में स्थिर करना सरल नहीं है तब चित्त को स्तुति-स्तोत्र-पाठ तथा समाधि स्थल के प्रति आदरभाव व्यक्त करने में लीन

---

१. पूजे जिन्हें मुकुट हार-किरीट लाके,
इन्द्रादिदेव अरु पूज्य पदाब्ज जाके।
सो शांतिनाथ वरवंश जगत्प्रदीप।
मेरे लिए करहिं शांति सदा अनूप ॥

संपूजकों को प्रतिपालकों को, यतीन को औ यतिनायकों को।
राजा प्रजा राष्ट्र सुदेश को ले, कीजे सुखी है जिन शांति को दे ॥
होवैं सारी प्रजा को सुख, वलयुत हो धर्मधारी नरेशा।
होवैं वर्षा समयपर तिल भर न रहे व्याधियों का अन्देशा ॥

होवैं चोरी न जारी, सुसमय वरते हो न दुष्काल भारी।
सारे ही देश धारें जिनवर वृष को जो सदा सौख्यकारी ॥
घातिकर्म जिननाशकरि, पायो केवल राज।
शांति करो सब जगत में, वृषभादिक जिनराज ॥

—शांतिपाठ, राजेशनित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स अलीगढ़, प्रथम संस्करण १९७६, पृष्ठ २०३।

२. धनंजय नाममाला, धनंजय, सम्पादक पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम संस्करण वि० सं० २००९, पृष्ठ १०५।

३. परमात्म प्रकाश, योगीन्दु, दूहा १९२, सम्पादक डॉ० ए० एन० उपाध्ये, परमश्रुत प्रभावक मण्डल, बम्बई, प्रथम संस्करण सन् १९३७ पृष्ठ ९।

४. वही, पृष्ठ ९।

५. समीचीन धर्मशास्त्र, आचार्य समन्तभद्र, वीर सेवा मन्दिर, सरसांवा, प्रथम संस्करण सन् १९५५, पृष्ठ १९३।

करना होता है। यह प्रक्रिया वस्तुतः समाधि भक्ति कहलाती है।[1] इस समाधि भक्ति में रत्नत्रय को निरुपण करने वाले शुद्ध परमात्मा के ध्यान स्वरूप शुद्ध आत्मा की सदा अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वंदना करता हूँ और नमस्कार करता हूँ। फलस्वरूप दुःख और कर्म-कुल का कटना होगा। रत्नत्रय को प्राप्त कर सतगति प्राप्त होगी।[2]

जैन-हिन्दी-पूजा काव्य परम्परा में आचार्य श्री शांतिसागर विषयक पूजा काव्यकृति में कविवर सुधेश ने उसके जयमाल अंश में समाधिभक्ति का सुन्दर विवेचन किया है। पूजक भक्त समाधिभक्ति के संदर्भ में अपने में शक्ति अर्जन करने की बात करता है।[3]

निर्वाण भक्ति—

जैन आगम में निर्वाणभक्ति और मोक्ष परस्पर में पर्याय वाची

---

१. जैन भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि, डॉ० प्रेमसागर जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम संस्करण १९६३, पृष्ठ १२१।

२. रयणत्तय परुव परमप्पज्झाणलक्खणं समाहि भत्तीयें णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमसामि, दुक्खक्खयो, कम्मक्खओ, वोहिलाहो, सुगइगमणं समाहि मरणं, जिणगुण संपति होउ मज्झं।

—समाधिभक्ति, दशभक्त्यादि संग्रह, सिद्धसेन जैन गोयलीय, अखिल विश्व जैन मिशन, सलाल, सावरकांठा, गुजरात, प्रथम संस्करण वी० नि० स० २४८१, पृष्ठ १८८।

३. होने नहीं पाया तुम्हें शैथिल्य का अभ्यास।
समता सहित पूरे किए छत्तीस दिन उपवास॥
फिर 'ओउम् नमः सिद्धः' कह दी त्याग अँतिमश्वास।
तुम धन्य हुए, धन्य वे जो थे तुम्हारे पास॥
जो धन्य, भादव शुक्ल-द्वितीया का सुप्रातः काल!
हे शांतिसागर ! मैं तुम्हारी गा रहा जयमाल।
की इंगिनी समाधि की जिन शास्त्र के अनुकूल।
होंगे अवश्य सात भव में कर्म अब निर्मूल॥
तुम सी मुझे भी शक्ति दे तव पदकमल की धूल॥
जिससे भवोदधि पार कर पाऊँ स्वयं वह फूल॥
आया नहीं करते जहाँ पर कर्म के भूचाल।
हे शांति सागर मैं तुम्हारी गा रहा जयमाल॥

—आचार्य शांति सागर पूजन, सुधेश जैन, सुधेश साहित्य-सदन, नागौद म० प्र०, प्रथम संस्करण १९५८, पृष्ठ ७।

माने गए हैं।[1] समूचे कर्म-कुल क्षय होने पर वस्तुतः मोक्ष-दशा प्राप्त होती है।[2] जब सम्पूर्ण कर्मों का बुझना होता है तभी निर्वाण अवस्था कहलाती हैं[3]। जैन धर्म के अनुसार जितने भी निर्वाण प्राप्त कर्त्ता हैं उनकी भक्ति वस्तुतः निर्वाण भक्ति कहलाती है। इस भक्ति का माहात्म्य संसार-सागर से पार कराने की शक्ति-सामर्थ्य में निहित है। इसीलिए इसे तीर्थ भी कहा गया है।[4] चौबीस तीर्थंकर पाँच क्षेत्रों से निर्वाण को प्राप्त हुए। आद्य तीर्थंकर ऋषभनाथ कैलाश, भ० वासुपूज्य चम्पापुर, भ० नेमिनाथ गिरिनार, भ० महावीर पावापुर क्षेत्र से निर्वाण को प्राप्त हुए और शेष सभी तीर्थंकर श्री सम्मेद शिखर से मोक्ष को गए अस्तु ये सभी निर्वाण-क्षेत्र बंदनीय हैं।[5]

जैन-हिन्दी-पूजा काव्य परम्परा में कविवर द्यानतराय विरचित निर्वाण क्षेत्र-पूजा काव्य में चौबीस तीर्थंकरों के निर्वाण स्थलों को सिद्ध भूमि कहा

---

१. जैन भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि, डॉ० प्रेमसागर जैन, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्रथम संस्करण सन् १९६३, पृष्ठ १२४।

२. 'कृत्स्य कर्म विप्रमोक्षो मोक्षः।'
—तत्त्वार्थसूत्र, उमास्वामी, सम्पादक पं० कैलाशचन्द्र जैन, भारतीय दिगम्बर जैन संघ, चौरासी, मथुरा, प्रथम संस्करण वि० सं० २४७७, पृष्ठ २३१।

३. निर्वात स्म निर्वाण, सुखीभूत अनन्त सुखं प्राप्तः।
—जिन सहस्रनाम, पं० आशाधर, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी प्रथम संस्करण, सन् १९५४, पृष्ठ ९८।

४. 'तीर्यते संसार-सागरो येन तत्तीर्थम्'
—सहस्रनाम, पं आशाधर, सम्पादक पं० हीरालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम संस्करण, वि० सं० २०१० पृष्ठ ७८।

५. अठ्ठावयम्मि उसहो चंपाये वासुपूज्य जिणणाहो।
उज्जते णेमिजिणो पावाए णिव्वुदो महावीरो ॥
वीसं तु जिणवरिंदा अमरासुरवंदिदा धुदकिलेसा।
सम्मेदे गिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥
—निर्वाण भक्ति, आचार्य कुन्दकुंद, दशभक्त्यादि संग्रह, पं० सिद्धसेन जैन गोयलीय, सलाल, सावरकांठा, गुजरात, प्रथम संस्करण वी० नि० सं० २४८१, पृष्ठ २०२।

गया है। उस भूमि की मन, वचन तथा काय से पूजा करने का निदेश है।[1] निर्वाण क्षेत्र की महिमा को नमस्कार कर निर्वाण भक्ति को सम्पन्न किया जाता है। इस भक्ति के करने से समस्त पापों का शमन होता है और सुख सम्पत्ति की प्राप्ति होती है।[2]

चैत्यभक्ति—

चित् धातु में 'त्य' प्रत्यय होने से चैत्य शब्द का गठन हुआ है। चित् का अर्थ है चिता। चिता पर बने स्मृति चिन्हों को चैत्य कहते हैं।[3] जैन परम्परा अनादिकाल से चैत्य-वृक्षों को पूज्य मानती आ रही है। तीर्थंकरों के समवशरण की संरचना में चैत्यवृक्षों की मुख्यतः रचना होती रही है।[4] चैत्य शब्द में आलय शब्द-सन्धि करने पर चैत्यालय शब्द की रचना हुई।[5] इस प्रकार चैत्यालय वस्तुतः दो प्रकार के होते हैं—यथा—१. अकृत्रिम चैत्यालय, २. कृत्रिम चैत्यालय। ये चैत्यालय चारों प्रकार के देवों के भवन, प्रासादों-विमानों तथा स्थल-स्थल पर अधोलोक, मध्यलोक तथा ऊर्ध्वलोक में स्थित

१—परम पूज्य चौवीस जिहँ जिहँ थानक शिव गए।
सिद्धभूमि निश दीस, मन, वचतन पूजा करो॥
—श्री निर्वाण क्षेत्र पूजा, द्यानतराय, ज्ञान पीठ पूजाञ्जलि, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम संस्करण सन् १९५७, पृष्ठ ३९७।

२— बीसों सिद्धभूमि जा ऊपर, शिखर सम्मेद महागिरि भूपर।
एक वार वंदे जो कोई, ताहि नरक-पशु गति नहिं होई॥
जो तीरथ जावै पाप मिटावै, ध्यावै गावै भगति करै।
ताको जस कहिये, संपत्ति लहिये, गिरि के गुण को बुध उचरै॥
—श्री निर्वाण क्षेत्र पूजा, द्यानतराय, श्री जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, ६२ नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता ७, पृष्ठ ९४।

३—जैन भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि, डॉ० प्रेमसागर जैन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, संस्करण १९६३, पृष्ठ १३५।

४—तिलोयपण्णति, प्रथमभाग, ३/३६/३७, यतिवृषभ, सम्पादक डॉ० ए० एन० उपाध्ये एवं डॉ० हीरालाल जैन, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, प्रथम संस्करण, सन् १९४३, पृष्ठ ३७।

५— जैन भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि, डॉ० प्रेमसागर जैन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्रथम संस्करण १९६३, पृष्ठ १३७।

हैं। ज्योतिष्क और व्यंतर देवों के असंख्याता संख्यात चैत्यालय स्थित हैं।[1] कृत्रिम चैत्यालय मनुष्य कृत हैं तथा वे मनुष्य लोक में व्यवस्थित हैं।

चैत्यवृक्ष, चैत्य सदन, प्रतिमा, बिम्ब और मंदिरों की पूजा-अर्चा चैत्य-भक्ति कहलाती है। चैत्यभक्ति के द्वारा परस्पर वैरभाव सौहार्द-विश्वास में परिणत हो जाते हैं।[2]

चैत्य भक्ति का महाफल विषयक उल्लेख जैन हिन्दी पूजा काव्य में किया गया है। धन-धान्य, सम्पत्ति, पुत्र, पौत्रादिक सुखोपलब्धि होती है, साथ ही कर्म-नाशकर शिवपुर का सुख भी प्राप्त होता है।[3]

नंदीश्वर भक्ति—

मध्यलोक में आठवां द्वीप जम्बूद्वीप है। यह लवणसागर से घिरा हुआ है।[4] इस द्वीप में १६ वापियाँ, ४ अंजन गिरि, १६ दधिमुख और ३२ रतिकर नाम के कुल ५२ पर्वत हैं। प्रत्येक पर्वत पर एक-एक चैत्यालय है।[5]

१—कृत्याकृत्रिमचारूचैत्यनिलयान् नित्यं त्रिलोकीगतान्।
वन्दे भावनव्यन्तरान् द्युतिवान् स्वर्गामरावासगान्॥
—कृत्रिमचैत्यालय, ज्ञानपीठ पूजांजलि, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्रथम संस्करण १९५७, सं० डॉ० ए० एन० उपाध्ये, पृष्ठ १२४।

२—जयति भगवान्हेमाम्भोज प्रचार विजृम्भिता—
वमर मुकुटच्छायोद्गीर्ण प्रभापरिचुम्बितौ।
कलुष हृदया मानोदभान्ताः परस्पर वैरिणः।
विगत कलुषाः पादौ यस्य प्रपद्यविशश्वसुः॥
—चैत्य भक्ति, आचार्यपूज्यपाद, दशभक्त्यादि संग्रह, पं० सिद्धसेन जैन गोयलीय, अखिल विश्व जैन मिशन, सलाल, साबरकांठा, गुजरात, पृष्ठ २२६।

३—तिहूँ जग भीतर श्री जिनमन्दिर, बने अकीर्तम अति सुखदाय।
नरसुर खगकर वन्दनीक, जे तिनको भविजन पाठ कराय॥
धनधान्यादिक संपति तिनके, पुत्रपौत्र सुख होत भलाय।
चक्री सुर खग इन्द्र होय के, करमनाश शिवपुर सुख थाय॥
—श्री अकृत्रिम चैत्यालय पूजा, कविवर नेम, जैन पूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, ९२ नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ २५५।

४—जम्बूद्वीप लवणादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः।
—तत्त्वार्थसूत्र, उमास्वामि, अध्याय ३, श्लोक ७, सम्पादक पं० सुखलाल संघवी, भारत जैन महामण्डल वर्धा, प्रथम संस्करण १९५२, पृष्ठ १२७।

५—जैनेन्द्र सिद्धांत कोश, भाग २, क्षु० जिनेन्द्रवर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १९७१, पृष्ठ ५०३।

प्रत्येक अष्टान्हिका पर्व में अर्थात् कार्तिक, फाल्गुन आषाढ़ मास के अन्तिम आठ-आठ दिनों में देव लोग उस द्वीप में जाकर तथा मनुष्य लोग अपने मंदिरों व चैत्यालयों में उस द्वीप की स्थापना करके खूब भक्ति भाव से इन बावन चैत्यालयों की पूजा करते हैं। यही नंदीश्वर भक्ति कहलाती है।[1]

नंदीश्वर भक्ति माहात्म्य की चर्चा करते हुए जैन धर्म में स्पष्ट लिखा है जो प्रातः, मध्यान्ह और सन्ध्या तीनों ही काल नन्दीश्वर की भक्ति में स्तोत्र पाठ करता है, उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है।[2] हिन्दी जैन पूजा काव्य परम्परा में नन्दीश्वर द्वीप पूजा में नन्दीश्वर भक्ति का विशद विवेचन हुआ है। अष्टान्हिका पर्व सर्व पर्वो में श्रेष्ठ माना जाता है। इस अनुष्ठान पर नन्दीश्वर द्वीप की स्थापना कर पूजा की जाती है।[3] कविवर द्यानतराय के अनुसार कार्तिक, फाल्गुन तथा आषाढ़ मास के अन्तिम आठ दिनों में नन्दीश्वर द्वीप की पूजा की जाती है।[4] पूजा काव्य में नन्दीश्वर भक्ति

१—आषाढ़ कार्तिकाख्ये फाल्गुन मासे च शुक्लपक्षेऽष्टम्याः।
आरभ्याष्टदिनेषु च सौधर्म प्रमुख विबुध पतयो भक्त्या॥
तेषु महामहमुचितं प्रचुराक्षत गंधपुष्पधूपै दिव्यैः।
सर्वज्ञ प्रतिमानाम प्रतिमानां प्रकुर्वंते सर्वहितम्॥
—नंदीश्वरभक्ति, दशभक्त्यादि संग्रह, श्री सिद्धसेन गोयलीय, अखिल विश्व जैन मिशन, सलाल, साबरकांठा, गुजरात, प्रथम संस्करण वी० नि० सं० २४८१ पृष्ठ २०६।

२—संध्यासु तिसृषुनित्यं पठेद्यदि स्तोत्रमेतदुत्तम यशसाम्।
सर्वज्ञाना सार्व लघु लभते श्रुतधरेडितं पदममितम्॥
—नंदीश्वर भक्ति, आचार्य पूज्यपाद, दशभक्त्यादिसंग्रह, सिद्धसेन जैन गोयलीय, अखिल विश्व जैन मिशन, सलाल साबर कांठा, गुजरात वी० नि० सं० २४८१, पृष्ठ २१६।

३—सरव पर्व में बड़ो अठाई परव है।
नंदीश्वर सुर जाहिं लिए वसुदरव है॥
हमें सकति सो नाहिं इहाँ करि थापना।
पूजों जिन गृह प्रतिमा है हित आपना॥
—श्री नंदीश्वर द्वीप पूजा, द्यानतराय, जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द पाटनी, ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ ५५।

४—कार्तिक फागुन साढ़के, अन्त आठ दिनमाहिं।
नंदीश्वर सुरजात हैं, हम पूजें इह ठाहिं॥
—श्री नंदीश्वर द्वीप पूजा, द्यानतराय, जैन पूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता--७, पृष्ठ ५७।

की महिमा स्थिर करते हुए उसे शिवसुख प्राप्ति का प्रमुख आधार माना है।[1]

उपर्यंकित विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जैन कवियों ने भक्ति के विभिन्न-स्वरूपों का प्रवर्त्तन कर स्व-पर कल्याण की मंगल कामना की है। जैन धर्म में पूजा की परम्परा संस्कृत-प्राकृत से होकर हिन्दी में अवतरित हुई है। अठारहवीं शती से बीसवीं शती तक पूजा-काव्य की यह सुदीर्घ परम्परा हिन्दी काव्य को समृद्ध बनाती है।

जैनधर्म ज्ञान प्रधान होते हुए भी भक्ति को अंगीकार करता है। यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि ज्ञान की भी भक्ति की गई है ज्ञान प्राप्त्यर्थ भक्त अथवा पूजक जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता है। पूजा में आराध्य के गुणों में श्रद्धान का होना आवश्यक बताया गया है। जैन दर्शन में मूलतः गुणों की पूजा की गई है।

पर-पदार्थों के कार्य-व्यापार की प्रयोगशाला वस्तुतः संसार है। यहाँ इन पदार्थों के प्रति राग रखने से कर्मबन्ध होने की बात कही गई है। उल्लेखनीय बात यह है कि जिनेन्द्र भक्ति में अनुराग रखने से कर्मबन्ध की छूट है। भक्त अथवा पूजक जिनेन्द्र देव के गुणों का चिन्तवन कर उन्हीं में तन्मय हो जाता है फलस्वरूप उसके बन्ध मुक्त होते हैं, नए कर्म-बन्ध के लिए प्रायः अवकाश ही नहीं मिलता।

जैनागम में उल्लिखित भक्तियों के सभी स्वरूपों का प्रयोग हिन्दी-जैन-पूजा-काव्य में परिलक्षित है। देवशास्त्र गुरु की पूजा का अतिशय महत्त्व है क्योंकि इस पूजा में अधिकांश रूप में भक्ति-भेदों का समन्वय मुखरित है। निर्गुण तथा सगुण ब्रह्म के रूप में दो प्रकार की भक्ति सभीधर्मों में मानी गई है किन्तु जैनधर्म में इनके पृथक् अस्तित्व होते हुए भी इनका अन्तरंग एक ही बताया गया है। निराकार आत्मा में और वीतराग साकार भगवान में समानता का विधान एक मात्र जैन पूजा की नवीन उद्भावना है, यह अन्यत्र कहीं सम्भव नहीं है। सिद्धभक्ति में निष्कल ब्रह्म तथा तीर्थंकर भक्ति में

१—नंदीश्वर जिनधाम, प्रतिमा महिमा को कहै।
द्यानत लीनो नाम, यहै भगति शिव सुखकरै।
—श्री नंदीश्वर द्वीप पूजा, द्यानतराय, जैन पूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ ५८।

सकल ब्रह्म का उल्लेख अवश्य हुआ है तथापि दोनों के मूल में कोई भेद नहीं हैं। भेदक तत्त्व है राग और यहाँ दोनों शक्तियाँ वीतराग-गुण से सम्पन्न है सिद्ध और अरहंत देव भक्ति परक पूजाकाव्य में व्यञ्जित हैं। पूजक इन शक्तियों की भक्ति करने पर परम शुद्धि और सम्यक् ज्ञान को प्राप्त करता है। जैनधर्म के अनुसार केवल ज्ञान वस्तुतः अनन्त सुख की प्राप्ति का मूलाधार है।

श्रुतभक्ति मूलतः जिनेन्द्रवाणी पर आधृत है। जिनवाणी का लिखित रूप जैनशास्त्र हैं। प्रसिद्ध पूजाकाव्य प्रणेता द्यानतराय द्वारा श्रुत मूलतः दो भागों में विभक्त की गई है—प्रथमभावश्रुत अर्थात् ज्ञान और दूसरी द्रव्यश्रुत अर्थात् शब्दायित जिनवाणी। शास्त्र पूजा अथवा श्रुतभक्ति करने से पूजक की जड़ता का विसर्जन होता है और ज्ञानोपलब्धि होती है। ज्ञान ही मुक्ति के लिए प्रमुख सोपान है।

गुरु भक्ति में आचार्य, उपाध्याय और साधुओं की पूजा सम्मिलित है। मुनियों और आचार्यों द्वारा योगि-भक्ति का उपयोग हुआ करता है। सल्लेखना अथवा मृत्यु महोत्सव समाधिभक्ति का उल्लेखनीय प्रयोग है। अनित्य-भावना के मर्म को जानकर साधक इस शरीर की क्षण भंगुरता को समझकर उसे ज्ञानपूर्वक क्रमशः त्यागता है। शरीर त्याग ही वस्तुतः सांसारिक मृत्यु कहलाती है। मृत्यु का यह मांगलिक प्रयोग जैनभक्ति की अपनी उल्लेखनीय विशेषता है। इस भक्ति के द्वारा जीवन के समग्र कापायिक कर्मकुल शान्त हो जाते है।

जैनाचार्यों ने निर्वाण भक्ति की मौलिक किन्तु महत्त्वपूर्ण व्यवस्था की है। इस भक्ति में तीर्थंकरों के पंचकल्याणकों-गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, मोक्ष-की स्तुति तथा निर्वाण-स्थलों की वंदना की जाती है। निर्वाण भक्ति के द्वारा पूजक अथवा साधक का चित्त राग से विमुख होकर वीतराग की ओर प्रशस्त होता है। वीतरागता आने पर ही मोक्ष दशा को पाया जा सकता है।

चैत्य और चैत्यालय भक्ति के साथ जैन भक्ति में नंदीश्वर भक्ति का प्रयोग उल्लेखनीय तथा अभिनव है। इस भक्ति के द्वारा वर्तमान संसार का स्वरूप विस्तार को प्राप्त करता है। मध्य लोक में नंदीश्वर द्वीप की स्थिति आज भी भौगोलिक-विज्ञान के लिए गवेषणा का विषय है।

इन सभी भक्तियों के साथ शान्ति-भक्ति का स्थान बड़े महत्त्व का है। जैन कवियों द्वारा शान्ति-भक्ति पर आधृत अनेक पूजा-काव्य रचे गए हैं। तीर्थकरों की देशनाएँ सर्वथा शान्तिमुखी हैं फिर तीर्थङ्कर शांतिनाथ विषयक पूजा इस भक्ति का मुख्याधार है।

इस प्रकार हिन्दी जैन पूजा काव्य में अठारहवीं शती से लेकर बीसवीं शती तक विवेच्य भक्ति और उसके सभी प्रभेदों का उपयोग हुआ है। अब यहाँ इन सभी पूजाओं के माध्यम से भक्ति-विकास सम्बन्धी अध्ययन करेंगे।

कालक्रम से पूजाओं के माध्यम से भक्तिभावना का विकासात्मक अध्ययन—

आत्मा विषयक सद्‌गुणों में अनुराग-भाव को भक्ति कहा गया है।[1] इन गणों की विकासात्मक श्रेष्ठ परिणति पंचपरमेष्ठी अपने गुणोत्कर्ष के कारण प्रमुख उपास्य शक्तियाँ हैं।[2] अरहन्त और सिद्ध वस्तुतः देव की कोटि में आते हैं और आचार्य, उपाध्याय तथा साधु-गुरुओं के क्रम में आते हैं। अरहन्त-वाणी को जिनवाणी कहा जाता है।[3] कालान्तर में इसी को जिनागम अथवा शास्त्र जी की संज्ञा दी गई। इस प्रकार पूजा का मुख्य आधार-आराध्य-देवशास्त्र गुरु है। इनके प्रति अनुराग करना वस्तुतः भक्ति को जन्म देता है।

जैन धर्म में भक्ति-भावना को मूलतः दश भागों में विभाजित किया

---

१. पंडित टोडरमल व्यक्तित्व और कृतित्व, डॉ० हुकुमचन्द्र भारिल्ल, पं० टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए—४, बापूनगर, जयपुर, प्रथम संस्करण १९७३, पृष्ठ १७६।

२. णमोअरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्व साहूणं॥
—मंगल मंत्र णमोकार एक अनुचिन्तन, डॉ० नेमीचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी-५, प्रथम संस्करण १९६७, पृष्ठ १।

३. जम्मुमहद्दहाओ दुवालसंगी महानई बूढ़ा।
ते गणहर कुल गिरिणो सव्वे वंदामि भावेण॥
—चेइयवदण महाभासं, श्री शान्तिसूरि, सम्पादक पं० बेचरदास, श्री जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, प्रथम संस्करण, वि० सं० १९७७, पृष्ठ १।

गया है ।[1] कालान्तर में शान्ति, निर्वाण और नंदीश्वर भक्तियाँ भी सम्मिलित हो गई । इन सभी भक्तियों का हिन्दी जैन-पूजा काव्य में उपयोग हुआ है ।

जैन हिन्दी-पूजा काव्य मूलतः संस्कृत-प्राकृत भाषाओं से अनुप्राणित रहा है । आरम्भ में भारतीय जैन समुदाय और समाज में इन्हीं पूजाओं के पाठ करने का प्रचलन रहा है । आज भी अनेक अनुष्ठानों पर संस्कृत तथा प्राकृत पूजाओं का प्रयोग किया जाता है और इससे भक्ति की अतिशय परिणति मानी जाती है । पन्द्रहवीं शती से हिन्दी भाषा में आचार्यों, मुनियों तथा मनीषियों द्वारा अनेक काव्य रचे गए हैं । अठारहवीं शती में हिन्दी में भक्त्यात्मक-अभिव्यञ्जना के लिए पूजाकाव्य रूप को गृहीत किया गया ।

जैन आगम में वर्णित भक्ति भावना और उसके विविध अंगो को आधार मानकर जैन हिन्दी कवियों द्वारा प्रणीत विविध पूजा काव्य कृतियों में इनकी विशद व्याख्या हुई है । यहाँ विवेच्य काव्य में जैन भक्ति के विकासात्मक पक्ष पर संक्षेप मे अनुशीलन कर, भक्त्यात्मक विकास में इन कवियों के योगदान परक अध्ययन करेंगे ।

जैन हिन्दी काव्य-पूजा का प्रारम्भ अठारहवीं शती से हो जाता है ।[2] इस शताब्दि के सशक्त पूजाकाव्य प्रणेता कविवर द्यानतराय द्वारा विविध विषयों पर अनेक पूजा काव्य रचे गए हैं । इनमें देव, शास्त्र और गुरु विषयक पूजा काव्य का महत्वपूर्ण स्थान है । क्योंकि इसमें एक साथ ही सिद्ध-भक्ति तीर्थङ्कर भक्ति, तथा गुरू भक्ति तथा श्रुतभक्ति का सम्यक् प्रतिपादन हो जाता है ।[3]

१—दशभक्त्यादिसंग्रह, सिद्धसेन जैन गोयलीय, अखिल विश्व जैन मिशन, सलाल, साबरकांठा, गुजरात, प्रथम संस्करण, वी० नि० सं० २४८१, पृष्ठ ९६ से २२६ ।

२—जैन कवियों के हिन्दी काव्य का काव्यशास्त्रीय मूल्याङ्कन, डॉ० महेन्द्र सागर प्रचण्डिया, आगरा विश्वविद्यालय द्वारा १९७५ में स्वीकृत डी० लिट्० उपाधि के लिए शोध प्रवन्ध, पृष्ठ ४४ ।

३—श्री देवशास्त्र गुरू पूजा, द्यानतराय, ज्ञानपीठ पूजांजलि, भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी, प्रथम संस्करण १९५७, पृष्ठ १०६ ।

श्री देवपूजा[1] तथा श्री सरस्वती पूजा[2] विषयक पृथक-पृथक पूजाएँ रची गई हैं।

श्री नंदीश्वर पूजा के माध्यम से नंदीश्वर भक्ति का प्रतिपादन हुआ है।[3] निर्वाणभक्ति के लिए 'श्री निर्वाण क्षेत्र पूजा' की भी रचना हुई है।[4] जैनधर्म के अनुसार विदेह क्षेत्र में[5] वीस तीर्थङ्कर की विद्यमानता उल्लिखित है।[6] कविवर द्यानतराय द्वारा इन तीर्थङ्करों की भक्तिपरक पूजाकाव्य की रचना हुई है।[7]

इसके अतिरिक्त इस शताब्दि में रची गई पूजाओं में श्री सिद्ध चक्र पूजा, श्री रत्नत्रय पूजा, श्री पंचमेरू पूजा, सोलहकारण पूजाएँ उल्लेखनीय हैं। श्री सिद्ध चक्र पूजा में सिद्ध भक्ति का ही प्रतिपादन हुआ है।[8] सम्यक् दर्शन,

---

१—श्री देवपूजा, द्यानतराय, वृहज्जिनवाणी संग्रह, सम्पादक—पं० पन्नालाल वाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़, प्रथम संस्करण १९५६, पृष्ठ ३००।

२—श्री सरस्वती पूजा, द्यानतराय, राजेशनित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, अलीगढ़, प्रथम संस्करण १९७६, पृष्ठ ३७५।

३—श्री नंदीश्वर द्वीप पूजा, द्यानतराय, श्री जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ ५५।

४—श्री निर्वाण क्षेत्र पूजा पाठ, द्यानतराय, सत्यार्थ यज्ञ, सम्पादक-प्रकाशक-पं० शिखरचन्द्र जैनशास्त्री, जवाहर गंज जबलपुर (म० प्र०), अगस्त १९५० ई०, पृष्ठ २३९।

५—जैनेन्द्र सिद्धान्तकोश, भाग ३, क्षु० जिनेन्द्रवर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १९७२, पृष्ठ ५५१।

६—ओउम् ह्रीं सीमन्धर, जुगमन्धर, बाहु- सुबाहु, संजातक, स्वयंप्रभ, ऋषभानन, अनन्तवीर्य, सूरप्रभ, विशालकीर्ति, वज्रधर, चन्द्रानन, भद्रबाहु, भुजंगम, ईश्वर, नेमप्रभ, वीरसेण, महाभद्र, देवयशो, अजितवीर्येति विंशति विद्यमान तीर्थंकरेभ्यो जन्म मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा। —श्री वीस तीर्थंकर पूजा, द्यानतराय, धार्मिक पूजापाठ संग्रह, सम्पादक तथा संकलयिता—क्षु० श्री शीतल सागर जी महाराज, बजाज किला रोड, अवागढ़ (एटा) (उ० प्र०), श्री वीर नि० सं० २५०४, पृष्ठ २५।

७—श्री वीस तीर्थंकर पूजा, द्यानतराय, धार्मिक पुजापाठ संग्रह, सम्पादक तथा संकलयिता—क्षु० श्री शीतल सागर, बजाज किला रोड, अवागढ़ (एटा) (उ० प्र०), श्री वीर नि० सं० २५०४, पृष्ठ २५।

८—श्री सिद्ध चक्र पूजा, हीरानंद, ज्ञानपीठ पूजांजलि, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी, प्रथम संस्करण १९५७ ई०, पृष्ठ ११६।

सम्यक्ज्ञान और सम्यक् चारित्र वस्तुतः रत्नत्रय कहलाते हैं। जैनधर्म के अनुसार यह मोक्ष का मार्ग है।[१] इसमें दर्शन,[२] ज्ञान[३] और चारित्र[४] का चिन्तवन कर पूजा-पाठ किया गया है। इस भक्ति से मोक्षमार्ग प्रशस्त होता है। श्री पंचमेरूपूजा का आधार विदेह क्षेत्र के मध्यभाग में स्थित सुमेरूपर्वत है। यह पर्वत तीर्थङ्करों के अभिषेक का आसन रूप माना जाता है।[५] कविवर द्यानतराय ने श्री पंचमेरु पूजा में तीर्थङ्करों के अभिषेक अनुष्ठान का स्मरण कर भक्ति की है फलस्वरूप दुखों का मोचन और सुख-सम्पत्ति का विमोचन होता है।[६]

---

१. सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः।
—तत्त्वार्थ सूत्र, प्रथम अध्याय, प्रथम श्लोक सूत्र, आचार्य उमास्वामी, सम्पादक पं० सुखलाल संघवी, भारत जैन महामंडल, वर्धा, प्रथम संस्करण १९५२, पृष्ठ ९७।

२. दर्शनमात्मविनिश्चितिरात्म परिज्ञानमिष्यते बोधः।
स्थितिरात्मनि चरित्रं कुत एतेभ्यो भवति बन्धः॥
—पुरुषार्थ सिद्धयुपाय, श्री अमृत चन्द्रसूरि, दी सेन्ट्रल जैन पब्लिशिंग हाउस, अजिताश्रम, लखनऊ, प्रथम संस्करण १९३३, पृष्ठ ८१।

३. सम्यग्ज्ञानं पुनः स्वार्थ व्यवसायात्मकं विदुः।
मतिश्रुतावधिज्ञानं मनः पर्यय केवलम्॥
—तत्त्वार्थसार, श्री अमृत चन्द्रसूरि, संपादक-पंडित पन्नालाल साहित्या-चार्य, श्री गणेश प्रसाद वर्णी ग्रंथमाला, डुमराव बाग, अस्सी, वाराणसी-५, प्रथम संस्करण सन् १९७०, पृष्ठांक ६-७।

४. असुहादो विणि वित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं।
वद समिदि गुत्तिरूवं ववहारणयादु जिणभणियम्॥
—वृहद् द्रव्य संग्रह, श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव, श्रीपरमश्रुत प्रभावक मंडल श्रीमदरायचन्द्र जैन शास्त्रमाला, अगास, बोरीआ, गुजरात, प्रथम संस्करण श्रीवीर निर्वाण संवत् २४९२, पृष्ठ १७५।

५—जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग ३, क्षु० जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १९७२, पृष्ठ ४६४।

६—तीर्थंकरों के न्हवन जलतें भये तीरथ शर्मदा,
तातैं प्रदच्छन देत सुर-गन पंचमेरून की सदा।
दो जलधि ढाई द्वीप में सब गनत-मूल विराजही,
पूजौं असी जिनधाम-प्रतिमा होहि सुख दुख भाजही॥
—श्री पंचमेरुपूजा, द्यानतराय, ज्ञानपीठ पूजांजलि, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, प्रथम संस्करण, १९५७, पृष्ठ ३०२।

इस शताब्दि में रचित 'श्री दशलक्षणधर्म पूजा' के द्वारा पूजक जीवन की सार्थकता को चरितार्थ करता है। धर्म के दश लक्षण जैनधर्म में इस प्रकार किए गए हैं[1] यथा—

१—उत्तम क्षमा
२—उत्तम मार्दव
३—उत्तम आर्जव
४—उत्तम शौच
५—उत्तम सत्य
६—उत्तम संयम
७—उत्तम तप
८—उत्तम त्याग
९—उत्तम आकिंचन्य
१०—उत्तम ब्रह्मचर्य

कविवर द्यानतराय ने इस पूजा के माध्यम से धर्म के इन तत्त्वों का चिन्तवन करते हुए भक्ति करने की संस्तुति की है फलस्वरूप चतुर्गतियों में व्याप्त दुःखों से मुक्ति प्राप्त कर मोक्ष को प्राप्त किया जा सकता है।[2]

इसी क्रम में सोलह कारण पूजा का स्थान बड़े महत्व का है। पूजाकार ने सोलह भावनाओं का चिन्तवन करने से मोक्ष का कारण बताया है[3]

१—उत्तमः क्षमा मार्दवार्जव शौचसत्य संयमतपस्त्यागाकिञ्चन्य ब्रह्मचर्याणि धर्मः।
—तत्त्वार्थ सूत्र, अध्याय नवम्, श्लोक संख्या ६, उमास्वामी, सम्पादक-पं० सुखलाल संघवी, भारत जैन मण्डल वर्धा, प्रथमसंस्करण १९५२ ई०, पृष्ठ ३०३।

२—उत्तम छिमा मारदव आरजव भाव हैं।
सत्य शौच संयम तप त्याग उपाव हैं॥
आकिंचन ब्रह्मचरन धरम दशसार हैं।
चहुँगति-दुख तें काढ़ि मुकति करतार हैं॥
—श्री दशलक्षण धर्म पूजा, द्यानतराय, ज्ञानपीठ पूजांजलि, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, प्रथम संस्करण १९५७ ई०, पृष्ठ ३०६।

३—दर्शन विशुद्धिविनयसम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णं ज्ञानोपयोग संवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी संघ साधु समाधि वैयावृत्यकरण मर्हदाचार्य बहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्ग प्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकृत्त्वस्य।
—तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय षष्ठ, तेइस श्लोक संख्या, उमास्वामी, जैन संस्कृति संशोधन मण्डल, हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस-५, द्वितीय संस्करण १९५२, पृष्ठ २२६।

यथा—१—दर्शनविशुद्धि, २—विनयसम्पन्नता, ३—शीलव्रतेष्वनतिचार, ४—अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग, ५—संवेग, ६—शक्तितस्त्याग, ७—साधु समाधि, ८—वैयावृत्यकरण, ९—अर्हत्भक्ति, १०—आचार्यभक्ति, ११—बहुश्रुतभक्ति, १२—प्रवचनभक्ति, १३—आवश्यकअपरिहाणि, १४—मार्गप्रभावना, १५—शक्तितत्तप, १६—प्रवचन वत्सलत्व। ये सोलह भावनाएँ तीर्थंकर प्रकृति के आश्रव के लिये हैं अर्थात् इनसे तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो जाता है।

इन सोलह भावनाओं में से दर्शनविशुद्धि का होना अत्यन्त आवश्यक है। अन्य सभी भावनायें हों अथवा कम भी हों फिर भी तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो सकता है। अथवा किन्हीं एक दो आदि भावनाओं के साथ सभी भावनायों अविनाभावी हैं तथा अपायविचेय धर्मध्यान भी विशेष रूप से तीर्थंकर प्रकृति बन्ध के लिए कारण माना गया है। यह ध्यान तपोभावना में ही अन्तर्भूत हो जाता है।[1]

'सोलह' शब्द संख्या परक है। इसमें 'कारण' शब्द भी सार्थक है जिसका अर्थ है मोक्ष में कारण। इन सभी भावनाओं के चिन्तवन से तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध होता है। अर्थात् संसार से मुक्त होकर सिद्ध गति प्राप्त करना।[2] कविवर द्यानतराय की धारणा है कि जो भी पूजक अथवा भक्त व्रत पूर्वक सोलह कारण पूजा करता है उसे शिव-पद की प्राप्ति होती है।[3]

इस प्रकार जैन भक्ति-भावना के प्रमुख उपादानों की उपयोगिता अठारहवीं शती के पूजाकारों द्वारा अपने काव्य में सफलतापूर्वक अभिव्यक्त हुई है।

१—सम्यग्ज्ञान, हिन्दी मासिक, सोलहकारण अंक, सम्पादक-पंडित मोतीलाल जैन शास्त्री, दि० जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर (मेरठ) वर्ष ५, अंक २, १९७८ ई०, पृष्ठ २।

२—तत्त्वार्थसूत्र, विवेचन कर्ता-पं० सुखलाल संघवी, जैन संस्कृति संशोधन मंडल, हिन्दू विश्व विद्यालय, बनारस-५, द्वितीय संस्करण १९५२, पृष्ठ २२८।

३—एही सोलह भावना, सहित धरे व्रत जो।
देव-इन्द्र नर वंद्य पद, द्यानत शिव पद होय॥

—श्री सोलह कारण पूजा, द्यानतराय; ज्ञानपीठ पूजांजलि, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, प्रथमसंस्करण १९५७ ई०, पृष्ठ ३०१।

इस भक्ति भावना का शुभ परिणाम दुःख से निवृत्ति और शिव पद में प्रवृत्ति उत्पन्न करना है।

उन्नीसवीं शताब्दि में पूजा-काव्य रूप को भक्त्यात्मक अभिव्यञ्जना केलिए अपेक्षाकृत अधिक अपनाया गया है । इस शती में अठारहवीं शती में प्रणीत पूजाओं में अभिव्यक्त भक्ति सुरक्षित रही है। विशेषता यह है कि इस शती के कवियों द्वारा श्रीचौबीस तीर्थंकर पूजा का प्रणयन हुआ है।[1] समवेत रूप से चौबीस तीर्थंकरों की पूजा के अतिरिक्त वैयक्तिक रूप से भी प्रत्येक तीर्थंकर के नाम पर आधृत अनेक कवियों द्वारा तीर्थंकर पूजाएं रची गई हैं जिनमें तीर्थंकर-भक्ति का सम्यक् विवेचन हुआ है। जैन भक्त समाज में तीर्थंकर नेमिनाथ,[2] पार्श्वनाथ,[3] तथा महावीर[4] विषयक पूजाओं का प्रचलन सर्वाधिक है। जिन मंदिर की मूल प्रतिमा जिस तीर्थंकर की होती है, उस मंदिर में उसी तीर्थंकर की पूजा का माहात्म्य बढ़ जाता है। नित्य पूजा विधान के लिए चौबीस तीर्थंकर की समवेत पूजा का क्रम प्रायः अपनाया गया है।

तीर्थंकरों के जीवन की प्रमुख पांच घटनाएं वस्तुतः कल्याणक कहलाती हैं। गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और मोक्ष इन पांच कल्याणकों पर आधृत पूजा-

---

१—वृषभ, अजित, संभव, अभिनंदन,
सुमति, पदम, सुपार्श्व जिनराय।
चन्द्र, पहूप, शीतल, श्रेयांस, नमि,
वासु पूज्य पूजित सुर राय॥
विमल अनन्त धरम जस उज्ज्वल,
शान्ति कुंथु अर मल्लि मनाय।
मुनि सुव्रत नमि नेमि पार्श्व प्रभु,
वर्द्धमान पद पुष्प चढ़ाय॥

—श्री समुच्चय चौबीसी जिन पूजा, सेवक, बृहज्जिनवाणी संग्रह, मदनगंज, किशनगढ़, प्रथम संस्करण १९५६, पृष्ठ ३३४।

२—श्री नेमिनाथजिन पूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थयज्ञ, सम्पादक व प्रकाशक-पंडित शिखरचन्द्र जैन शास्त्री, जवाहरगंज, जबलपुर (म० प्र०), १९५० ई०, पृष्ठ १५३।

३—श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न, ज्ञानपीठ पूजांजलि, भारतीय ज्ञानपीठ, बनारस, प्रथम संस्करण १९५७ ई०, पृष्ठ ३६५।

४—श्री महावीर स्वामी पूजा, वृंदावनदास, राजेशनित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, अलीगढ़, प्रथम संस्करण १९७६ ई०, पृष्ठ १३२।

काव्य प्रणयन इस शताब्दि की अभिनव देन मानी जाएगी।[1] एक-एक कल्याणक पर पूजा का पूरा तंत्र व्यवहृत है अर्थात् स्थापना से लेकर जयमाल और विसर्जन तक चौबीस तीर्थंकरों के प्रत्येक कल्याणक पर आधृत पूजा का गठन हुआ है। गर्भ कल्याणक पूजा माहात्म्य की चर्चा करते हुए कवि का कथन है कि उस पूजा को पढ़ें,-सुने वह व्यक्ति शिव पद को अवश्य प्राप्त करेगा।[2] जन्म कल्याणक-का मूल्यांकन करते हुए पूजाकार ने लिखा है कि सुरपति प्रभु के जन्म पर ताण्डव करते हैं और क्षेत्र में अपार हर्षानन्द मनाते हैं।[3] तप कल्याणक की पूजा करते समय कवि प्रभु से प्रार्थना करता है कि आपके गुणों की व्याख्या इन्द्र, धणेन्द्र तथा नरेन्द्र भी नहीं कर सके फिर यह सामान्य कवि पूजक किस प्रकार कर सकता है। ज्ञानहीन समझकर शिवपुर का मार्ग प्रशस्त कीजिये, इस अंश में भक्त अथवा पूजक का प्रभु के प्रति अनुग्रहात्मक संकेत परिलक्षित होता है।[4] ज्ञानकल्याणक पूजा में तपश्चरण द्वारा घातिया कर्मों का नाश कर प्रभु द्वारा ज्ञानार्जन करना हुआ है फलस्वरूप ज्ञान-प्रकाश से सारा लोक आलोकित हो उठा है।[5] मोक्ष कल्याणक पूजा में

१—श्री पंचकल्याणक पूजा, कमलनयन, हस्तलिखित ग्रन्थ, जैन शोध अकादमी, अलीगढ़ में सुरक्षित।

२—यह विधि गर्भ कल्याण की पूजा करो विशाल।
पढ़े सुने जे नारि-नर पावें शिव दर हाल॥
—श्री पंच कल्याणक पूजा, कमलनयन, हस्तलिखित ग्रंथ, जैन शोध अकादमी, आगरा रोड, अलीगढ़ में सुरक्षित।

३—तव सुरपति अति चाव सों, तांडव नृत्य करान।
जिन मुख-चन्द्र विलोकि के हरष्यों हिय न समान॥
—श्री पंचकल्याणक पूजा, कमलनयन, हस्तलिखित ग्रंथ, जैन शोध अकादमी, आगरा रोड अलीगढ़ मे सुरक्षित।

४—तुम गुणमाल विशाल वरनि कवि को कहै,
इन्द्र धनेन्द्र नरेन्द्र पार कोऊ ना लहै।
मैं गति हीन अयान ज्ञान बिन जानिए,
दीजै शिवपुर थान अरज मेरी मानिए।
—श्री पंचकल्याणक पूजा, कमलनयन, हस्तलिखित ग्रंथ, जैनशोध अकादमी, आगरा रोड, अलीगढ़ में सुरक्षित।

५—ये तीर्थंकर सत मत तप करि घातिया।
घोत चारि करम रिपु रहे हैं अघातिया॥
तिन के नाशन कारन उद्यमवान है।
प्रकट्यो केवल ज्ञान सुमान समान है॥
—श्री ज्ञान कल्याणक पूजा, कमलनयन, हस्तलिखित ग्रंथ, जैन शोध अकादमी, आगरा रोड, अलीगढ़ में सुरक्षित।

कविवर कमलनयन ने स्पष्ट लिखा है कि जो इस पूजा को पढ़ता है सुनता है और धारण करता है उसे सांसारिक-सम्पदा तो प्राप्त होती ही है और अन्ततोगत्वा शिव-पद की भी प्राप्ति होती है।[1]

इस प्रकार अठारहवीं शती में तीर्थभक्ति का विकासात्मक रूप हमें उन्नीसवीं शती में रचित तीर्थंकर पूजाकाव्य में परिलक्षित होता है। श्री पंच कल्याणक पूजा इस युग की अभिनव देन है अस्तु इस भक्ति का सूक्ष्म रूप भी मुखर हो उठा है। साधारण जन-कुल में भी तीर्थंकर भक्ति की महिमा का प्रसार-प्रचार हुआ है फलस्वरूप उसमें सदाचार की प्रेरणा उत्पन्न हुई है। इतना ही नहीं इस शती के पूजा प्रणेताओं ने सिद्ध क्षेत्रों अर्थात् उन पवित्र स्थानों पर आधृत पूजाएं रची हैं जिनसे तीर्थंकरादि मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। इस दृष्टि से श्री गिरिनार सिद्धक्षेत्र पूजा तथा श्री सम्मेद शिखर पूजा विशेष महत्त्व रखती हैं।

गुरुभक्ति का सम्पादन श्री सप्तर्षिपूजा के माध्यम से सम्पन्न हुआ है। कविवर मनरंगलाल विरचित 'श्री सप्तर्षि पूजा' इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।[2]

कविवर मल्ल द्वारा क्षमावाणी पूजा का प्रणयन भक्त्यात्मक परम्परा में अपना विशेष महत्त्व रखती है। अठारहवीं शती में श्री दशलक्षण धर्मपूजा के अन्तर्गत क्षमा विषयक अवश्य चर्चा हुई थी किन्तु यहाँ कवि ने 'श्री क्षमावाणी पूजा' में क्षमा धर्म की महिमा का प्रवर्त्तन किया है। इससे जीवन में रत्नत्रय की भव्य भावना उत्पन्न होती है जो मोक्ष-मार्ग में साधक हैं।[3]

१—पूजा जिन चौवीस सुपूज्य कल्याण की।
पढ़ें सुनै दे कान सुरग शिवदान की॥
सुत-दारा धन-धान्य पाय सम्पत्ति भली।
नर-सुर के सुख भोगि करै शिवपुर रली॥
—श्री मोक्ष कल्याणक पूजा, कमलनयन, हस्तलिखित ग्रंथ, जैनशोध अकादमी, आगरा रोड, अलीगढ़ में सुरक्षित।

२—श्री सप्तऋषि पूजा, मनरंगलाल, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, अलीगढ़, प्रथम संस्करण सन् १९७६, पृष्ठ १४०।

३—अंग क्षमा जिनधर्म तनों दृढ़मूल बखानों।
सम्यक् रतन संभाल हृदय में निश्चय जानों॥
तज मिथ्या विष-मूल और चित्त निर्मल ठानो।
जिन धर्मी सो प्रीत करो सब पातक मानों॥
रतनत्रय गह भविक जन जिन आज्ञा सम चालिए।
निश्चय कर आराधना करम रास को जालिए॥
—श्री क्षमावाणी पूजा, कविमल्लजी, ज्ञानपीठ पूजांजलि, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, प्रथम संस्करण १९५७ ई०, पृष्ठ ४०२।

इस प्रकार अठारहवीं शती में प्रणीत पूजा काव्य में भक्ति भावना की जो स्थापना हुई है उसका विकास हमें १९ वीं शती में रचित हिन्दी जैन-पूजा काव्य में परिलक्षित होता है। इस शताब्दि में पूजा के अनेक नवीन आधार मुखर हो उठे हैं। इन सभी पूजाओं का मन्तव्य लौकिक उन्नयन और पारलौकिक आध्यात्मिक-उत्कर्ष की स्थापना करना है। दूसरी विशेषता यह है कि इस काल के कवियों द्वारा विविध-मुखी भक्ति की आधार मूलक शक्तियों के अन्तरंग का सूक्ष्म उद्घाटन भी हुआ है। इस दृष्टि से कल्याणक और अतिशय तथा सिद्धक्षेत्र की पूजाएँ उल्लेखनीय हैं।

जैन हिन्दी पूजा काव्य धारा का उत्तरोत्तर उत्कर्ष हुआ है। बीसवीं शती में प्रस्ताविक भक्ति भावना का पोषण तो हुआ ही है साथ ही अनेक नवीन तत्वों पर भी पूजाएँ रची गई हैं। उन्नीसवीं शती की भाँति सिद्ध क्षेत्रों पर आधृत पूजा, श्री सम्मेदाचल पूजा, श्री खण्डगिरि पूजा, श्री चम्पापुर पूजा, श्री पावापुर पूजा तथा श्री सोनागिरि पूजा इस काल की अभिनव कृतियाँ हैं जिनके द्वारा तीर्थंकर भक्ति का पोषण हुआ है। शास्त्र भक्ति के अन्तर्गत इस काल में 'श्री तत्वार्थ सूत्र पूजा' कवि की सर्वथा मौलिक उद्भावना है।

क्षेत्र भक्ति के अन्तर्गत श्री सम्मेद शिखर पूजा का बड़ा महत्त्व है। यह क्षेत्र हजारी बाग, पारसनाथ हिल, ईशरी में स्थित है।[1] इस क्षेत्र में अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनन्दन नाथ, सुमति नाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, विमलनाथ, अनंतनाथ, धर्मनाथ शांतिनाथ, कुन्थनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नमिनाथ तथा पार्श्वनाथ नामक बीस तीर्थंकर मुक्ति को प्राप्त हुए हैं।[2] तीर्थंकरों के साथ अन्य व्यासी करोड़ चौरासी लाख पैंतालीस हजार सात सौ वियालीस मुनिजन सिद्ध पद प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त हुए हैं।[3] यह सिद्ध क्षेत्रों में सबसे बड़ा

१—जैन तीर्थ और उनकी यात्रा, श्री कामता प्रसाद जैन, भारतीय दिगम्बर जैन परिषद्, दिल्ली, प्रथम संस्करण १९६२ ई०, पृष्ठ १९।

२—श्री सम्मेदाचल पूजा, जवाहरलाल, बृहजिनवाणी संग्रह, सम्पादक-पंडित पन्नालाल बाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़, प्रथम संस्करण १९५६ ई०, पृष्ठ ४७२ से ४८५।

३—श्री सम्मेदाचल पूजा, जवाहरलाल, बृहजिनवाणी संग्रह, सम्पादक-पंडित पन्नालाल बाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़, प्रथम संस्करण १९५६ ई० पृष्ठ ४८५।

और महत्वपूर्ण है। इसके दर्शन की महिमा अनन्त है।[1] श्री खण्डगिरि पूजा में खण्डगिरि क्षेत्र की भक्ति की गई है। यह क्षेत्र अंग-भंग के पास कलिंग देश वर्तमान में उड़ीसा में स्थित है।[2] इस क्षेत्र से राजा दशरथ के सुत तथा पंच शतक मुनियों ने अष्ट कर्म क्षय कर मोक्ष प्राप्त किया था।[3] इस क्षेत्र पूजा की महिमा जागतिक समृद्धि प्रदान करने के साथ ही शिवपद प्राप्त कराने पर निर्भर करती है।[4] श्री पावापुर सिद्ध क्षेत्र पूजा में पावापुर क्षेत्र की वंदना की गई है। यह क्षेत्र आधुनिक पटना में स्थित है।[5] यहाँ से चौबीसवें तीर्थंकर भ० महावीर निर्वाण-पद को प्राप्त हुए।[6] इस क्षेत्र की वंदना करने से धन-धान्यादिक सुखद पदार्थों की प्राप्ति तो होती ही है साथ

१—जे नर परम सुभावन ते पूजा करें।
हरिहलि चक्री होंय राज्य षटखंड करें।।
फेरि होंय धरणेन्द्र इन्द्र पदवी धरें।
नाना विधि सुख भोगि बहुरि शिवतिय वरें।।

—श्री सम्मेदाचल पूजा, जवाहर लाल, बृहज्जिनवाणी संग्रह, सम्पादक-पं० पन्नालाल वाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़, प्रथमसंस्करण १९५६ ई०, पृष्ठ ४८६।

२—जैन तीर्थ और उनकी यात्रा, श्री कामता प्रसाद जैन, श्री दिगम्बर जैन परिषद् प्रकाशन, दिल्ली, तृतीय संस्करण १९६२, पृष्ठ १०३।

३—दशरथ राजा के सुत अति गुणवान जी।
और मुनीश्वर पंच सैकड़ा जान जी।।

—श्री खण्डगिरि क्षेत्र पूजा, मुन्नालाल, जैन पूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता—७, पृष्ठ १५५।

४—श्री खण्डगिरि उदयगिरि जो पूजैं त्रैकाल।
पुत्र-पौत्र सम्पति लहैं पावै शिव सुख हाल।।

—श्री खण्डगिरि क्षेत्र पूजा, मुन्ना लाल, जैन पूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी ६२, नलिनी सेठरोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १५८।

५—जैन तीर्थ और उनकी यात्रा, श्री कामता प्रसाद जैन, दि० जैन परिषद् प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ ४०।

६—जिहिं पावापुर छित अघाति, हत सन्मति जगदीश।
भए सिद्ध शुभथान सो, जजोनाथ निज शीश।।

—श्री पावापुर सिद्ध क्षेत्र पूजा, दौलतराम, जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द पाटनी, ६२, नलिनीसेठ रोड, कलकत्ता—७, पृष्ठ १४७।

ही शिवपद के लिए प्रेरणा भी मिलती है।[1] इसी परम्परा में श्री सोनागिरि पूजा भी सोनागिरि क्षेत्र की वंदना करने के लिए प्रेरणा देती है। सोनागिरि दतिया स्टेशन से पूर्व रेलवे स्टेशन पर स्थित है।[2] यहाँ से पाँच करोड़ से अधिक मुनि मुक्त हुए साथ ही तीर्थंकर चन्द्र प्रभु भी निर्वाण को प्राप्त हुए।[3] इस क्षेत्र की वन्दनात्मक महिमा इस पूजा के पठन तथा श्रवण करने मात्र से प्राणी को शिवपुर का मार्ग प्रशस्त होता है।[4]

सरस्वती पूजा-भक्ति में तत्त्वार्थ सूत्र की पूजा का बड़ा महत्त्व है। तत्त्वार्थ सूत्र में दश अध्याय हैं[5], जिनमें जैन धर्म का पूर्ण तात्त्विक विवेचन को सूत्रात्मक शैली में अभिव्यक्त किया है।[6] इसी मौलिक परम्परा में व्रत-

---

१—धन्य धान्यादिक शर्म इन्द्रपद लहे सो शर्म अतीन्द्री थाय।
अजर अमर अविनाशी शिवथल वर्णी दौल रहै शिर नाय॥
—श्री पावापुर सिद्ध क्षेत्र पूजा, दौलतराम, जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता—७, पृष्ठ १४९।

२—जैन तीर्थ और उनकी यात्रा, श्री कामता प्रसाद जैन, परिषद् प्रकाशन, दिल्ली, तृतीय संस्करण सन् १९६२, पृष्ठ १०३।

३—पदमद्रह को नीर ल्याय गंगा से भरके।
कनक कटोरी माँहि हेम थारन में धरके॥
सोनागिरि के शीश भूमि निर्वाण सुहाई।
पंच कोडि अरु अर्द्ध मुक्ति पहुँचे मुनिराई॥
चन्द्र प्रभु जिन आदि सकल जिनवर पद पूजो।
स्वर्ग मुक्ति फल पाय जाय अविचल पद हूजो॥
—श्री सोनागिरि सिद्ध क्षेत्र पूजा, आशाराम, जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, ६२, नलिनीसेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १५०।

४—सोनागिरि जयमालिका, लघुमति कहो बनाय।
पढ़े सुने जो प्रीति से, सो नर शिवपुर जाय॥
—श्री सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पूजा, आशाराम, जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, ६२, नलिनी सेठ रोट, कलकत्ता-७, पृष्ठ १५४।

५—तत्त्वार्थसूत्र, उमास्वामी, भारत जैन महामण्डल, वर्धा, द्वितीय संस्करण १९५२ ई०।

६—षट्द्रव्य को जामे कह्यो जिनराज वाक्य प्रमाण सों।
किय तत्त्व सातों का कथन जिन आप्त आगम मानसों॥
तत्त्वार्थ सूत्रहि शास्त्र सो पूजो भविक मन धारि के।
लहि ज्ञान तत्त्व विचार भवि शिव जा भवोदधि पार के॥
—श्री तत्त्वार्थसूत्र पूजा, भगवानदास, जैन पूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, ६२, नलिनीसेठ रोड, कलकत्ता—७, पृष्ठ ४१०।

अनुष्ठानों पर भी पूजाओं की रचना हुई है। इस दृष्टि से सेवक प्रणीत श्री अनंत व्रत पूजा, रघुसुत द्वारा विरचित श्री रक्षावन्धन पूजा तथा श्री रत्नत्रय पूजा का अतिशय महत्त्व है। श्री रक्षावन्धन पूजा में अनंतनाथ भगवान के गुणों का चिन्तवन कर केवलज्ञान प्राप्ति होने की चर्चा की गई है, मंत्रोच्चार के उपरान्त अनन्तसूत्र बाँधने की परिपाटी भी है।[1] इसी प्रकार श्री रक्षा वन्धन पूजा का आधार मुनियों की सुरक्षा-भावना रही है। अकम्पनाचार्य आदि सात सौ मुनियों ने भयंकर उपसर्ग को सहन कर तपश्चरण की कीर्ति स्थापित की है।[2] इस पूजा पाठ से पूजक को स्वर्ग-पद की प्राप्ति होती है।[3]

साधु भक्ति के लिए इस शताब्दि में श्री देवशास्त्र गुरु पूजा के अतिरिक्त श्री बाहुबली पूजा का प्रणयन अपना अतिशय महत्त्व रखता है। इस पूजा में श्री बाहुवली जी के गुणों का चिन्तवन कर मन-वच-काय से भक्ति की गई है।[4] चैत्य भक्ति के लिए श्री कृत्रिम चैत्यालय पूजा काव्य की रचना मूल्यवान है।[5]

१—जय अनंतनाथ करि अनंतवीर्य।
हरि घाति कर्म धरि अनंतधीर्य॥
उपजायो केवल ज्ञान भान।
प्रभु लखे चचार सव सु जान॥

—श्री अनंतव्रत पूजा, सेवक, जैन पूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ २६८।

२—श्री अकम्पन मुनि आदि सव सात सै।
कर विहार हस्थनापुर आए सात सै॥
तहां भयो उपसर्ग वढ़ो दु काज जू।
शान्तभाव से सहन कियो मुनिराज जू॥

—श्री रक्षावन्धन पूजा, रघुसुत, राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, अलीगढ़, प्रथम संस्करण, १९७६ ई०, पृष्ठ ३६२।

३—श्री रक्षावन्धन पूजा, रघुसुत, वही, पृष्ठ ३६७।

४—श्री वाहुबली पूजा, दीपचन्द, नित्यनियम विशेष पूजा पाठ संग्रह सम्पादक व प्रकाशक—ब्र० पतासीवाई जैन, ईसरी बाजार (हजारी बाग, पृष्ठ ६२।

५—श्री अकृत्रिम चैत्यालय पूजा, नेम, जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ २५१।

इस प्रकार जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य के द्वारा जैन भक्ति का प्रतिपादन हुआ है। शताब्दि क्रम से अध्ययन करने पर यह सहज में स्पष्ट हो जाता है कि देव शास्त्र गुरू पूजा-काव्य का प्राणतत्व है। यह तत्व पूजा परम्परा में आदि से अन्त तक व्यवहृत है। इस दृष्टि से विभिन्न शताब्दियों में नाना पूजाओं के द्वारा भक्ति के विविध रूप स्थिर हुए हैं। विवेच्य काव्य द्वारा भक्ति के विविध रूपों का विकासात्मक संक्षिप्त अध्ययन किया गया है।

पूजाकाव्यधारा में कविर्मनीषी द्यानतराय, मनरंगलाल, रामचन्द्र, वृंदावन-दास का स्थान बड़े महत्त्व का है। पूजाकाव्यकारों ने इन्हीं कवियों द्वारा स्थापित आदर्श का अनुकरण किया है।

———

विधि-विधान

देवपूजा, गुरु उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप तथा दान ये षट् कर्म जैन श्रावक के नैत्यिक चर्या के आवश्यक अंग माने गए हैं।[1] यहाँ पूजा तज्जन्य सुफल विषयक संक्षेप में चर्चा कर पूजा-विधि-विधान का विवेचन करना हमें अभिप्रेत है।

पूज्य का आदर करना वस्तुतः पूजा है। रागद्वेष विहीन वीतराग वस्तुतः आप्त पुरुष तथा पूज्य है। इस भौतिकवादी युग में व्यक्ति लोकरंजना के कार्यों में इतने अधिक ग्रसित रहते हैं कि वे जिन पूजन के मंगल कार्य के लिए समय ही नहीं निकाल पाते। मोहनीय कर्मोदय[2] से जीवन में इतनी कुण्ठा व्याप्त रहती है कि कल्याणमार्ग में प्रवृत्त ही नहीं हो पाते। जिनेन्द्र-पूजा वह संजीवनी रसायन है जो अमंगल में भी मंगल का सूत्रपात कर देती है। जीवन में जागरूकता ला देती है। वीतराग भगवान जिनेन्द्र की जब पूजक पूजा करता है तब वह भगवान जिनदेव के गुणों का चिन्तवन करता हुआ उनका वाचन-कीर्तन करता है। वह जितनी देर पूजा करता है उतनी ही देर वीतराग भगवान् के संसर्ग अथवा प्रसंग से अशुभ गतिविधि को शुभ किंवा प्रशस्त मार्ग में परिणत कर देता है। यह है भगवान जिनेन्द्र देव की पूजा का सफल।

पूजा करने का मुख्य हेतु आत्मशुद्धि है। इसलिए यह विधि सम्पन्न करते समय उन्हीं का आलम्बन लिया जाता है, जिन्होंने आत्मशुद्धि करके या तो

---

१. देवपूजा गुरुपास्तिः, स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानचेति गृहस्थानां, षट्कर्माणि दिने-दिने॥
—पंचविंशतका, आचार्य पद्मनंदि, अधिकार संख्या ६, श्लोक ७, जीवराज ग्रंथमाला शोलापुर, प्रथम संस्करण १९३२।

२. वे कर्म परमाणु जो आत्मा के शान्त आनंद स्वरूप को विकृत करके, उसमें क्रोध, अहंकार आदि कषाय तथा राग द्वेष रूप परिणति उत्पन्न कर देते हैं, मोहनीय कर्म कहलाते हैं।
अपभ्रंश वाङ्मय में व्यवहृत पारिभाषिक शब्दावलि, आदित्य प्रचण्डिया 'दीति', महावीर प्रकाशन, अलीगंज (एटा), उ० प्र०, १९७७, पृष्ठ ३।

मोक्ष प्राप्त कर लिया है या जो अरहन्त अवस्था को प्राप्त हो गए हैं। आचार्य, उपाध्याय और साधु तथा जिन-प्रतिमा और जिनवाणी ये भी आत्म-शुद्धि में प्रयोजक होने से उसके आलम्बन माने गए हैं। यहाँ यह प्रश्न होता है कि देवपूजा आदि कार्य बिना राग के नहीं होते और राग संसार का कारण है, इसलिए पूजाकर्म को आत्मशुद्धि में प्रयोजक कैसे माना जा सकता है। समाधान यह है कि जब तक सराग अवस्था है तब तक जीव के राग की उत्पत्ति होती ही है। यदि वह लौकिक प्रयोजन की सिद्धि के लिए होता है तो उससे संसार की वृद्धि होती है किन्तु अरहन्त आदि स्वयं राग और द्वेष से रहित होते हैं। लौकिक प्रयोजन से इनकी पूजा की भी नहीं जाती है, इस लिए इनमें पूजा आदि के निमित्त से होने वाला राग मोक्ष मार्ग का प्रयोजक होने से प्रशस्त माना गया है।

भगवान जिनेन्द्र देव की भक्ति करने से पूर्व संचित सभी कर्मों का क्षय होता है। आचार्य के प्रसाद से विद्या और मंत्र सिद्ध होते हैं। ये संसार से तारने के लिए नौका के समान हैं। अरहन्त, वीतराग-धर्म, द्वादशांग वाणी, आचार्य, उपाध्याय और साधु इनमें जो अनुराग करते हैं उनका वह अनुराग प्रशस्त होता है। इनके अभिमुख होकर विनय और भक्ति करने से सब अर्थों की सिद्धि होती है। इसलिए भक्ति राग पूर्वक मानी गई है, किन्तु यह निदान नहीं है क्योंकि निदान सकाम होता है और भक्ति निष्काम यही वस्तुतः दोनों में अन्तर है।

इस प्रकार पूजा-कर्म की उपयोगिता असंदिग्ध है। प्रश्न है पूजा करने की विधि क्या है? अब यहाँ इतने उपयोगी नैत्यिक कर्म के विधि-तंत्र तथा विधान-विज्ञान सम्बन्धी संक्षेप में विवेचन करेंगे।

किसी भी अनुष्ठान का अपना विशेष विधान होता है। जैन पूजा-विधान की भी अपनी विधान-पद्धति है। यह पूजा-प्रकृति के अनुसार ही अनुप्राणित हुआ करती है।

जैनदर्शन भाव प्रधान है। किसी भी कार्य सम्पादन के मूल में भाव और उसकी प्रक्रिया विषयक भूमिका वस्तुतः महत्वपूर्ण होती है। वास्तविकता यह है कि बिना भावना के किसी कार्य-सम्पादन की सम्भावना नहीं की जा सकती। इसी आधार पर पूजा करने से पूर्व पूजा करने का भाव-संकल्प स्थिर करना परमावश्यक है। इसीलिए शौचादि से निवृत्त होकर भक्त अथवा

पुजारी को मंदिर के लिए प्रस्थान करने से पूर्व अपने हृदय में जिन पूजन का शुभ भाव उत्पन्न करना होता है। पूजन का संकल्प लेकर भक्त द्वारा तीन बार 'णमोकार मंत्र' का उच्चारण किया जाता है और तब उसका देवालय जाना आवश्यक होता है। जिनमंदिर में प्रवेश करते ही पुनः तीन बार 'णमोकार मंत्र' का उच्चारण करना आवश्यक होता है और यदि घर पर स्नान न किया हो तो उसे मंदिर-स्थित स्नानागार में जाकर शरीर-शुद्धि करना अपेक्षित है। छने हुए स्वच्छ जल से स्नान कर भक्त को मंदिर जी में धुले हुए पवित्र वस्त्रों को धारण कर सामग्री कक्ष में प्रवेश करना चाहिए। पूजा-विधान सामान्य रूप से दो भागों में विभाजित किया गया है, यथा—

(१) भावपूजा
(२) द्रव्यपूजा

भावपूजा श्रमण-साधुजनों अथवा ज्ञानवंत श्रेष्ठ श्रावक द्वारा ही सम्पन्न किया जाना होता है। सरागी श्रावक के लिए द्रव्य पूजा करना आवश्यक होता है। द्रव्य-पूजा करने के लिए पूजक को सामग्री संजोनी पड़ती है।

सामग्री तैयार करने की विधि :

अक्षत्, फलादि सामग्री को स्वच्छ जल में पखारना चाहिए। केशर तथा चंदन को घिसकर एक पात्र में एकत्र कर लेना चाहिए। आगे अक्षत् और नैवेद्य (खोपड़े की टुकड़ियाँ या शकलें) को केशर चंदन में रंग लेना आवश्यक है। यदि केशर का अभाव हो तो 'हरसिंगार' के पुष्प-पराग को चंदन के साथ घिस कर तैयार करना चाहिए।

अष्टद्रव्य का स्वरूप—

अष्ट कर्मों को क्षय करने के लिए जिन पूजन में अष्ट द्रव्यों का ही विधान है। इन सभी द्रव्यों को एक बड़े थाल में क्रमशः व्यवस्थित करना चाहिए, यथा—

(१) जल —स्वच्छ जल को जलपात्र में भर लेना चाहिए।
(२) चन्दन—स्वच्छ जल में चन्दन केशर मिलाकर एक पात्र में भर लेना है।
(३) अक्षत —श्वेत पखारे हुए पूर्ण चावलों को थाल में रखना चाहिए।
(४) पुष्प —श्वेत पखारे हुए चावलों को चन्दन केशर में रंग कर अक्षत् को रखना होता है।

(५) नैवेद्य—गिरी की चिटे अथवा टुकड़ियों को पखारकर अथवा शुद्ध खांड में पाग कर रखना चाहिए।

(६) दीप—गिरी की चिटें अथवा टुकड़ियों को केशर चंदन में रंगकर अथवा यदि सम्भव हो तो घृत और कपूर का जला हुआ दीप रखा जाता है।

(७) धूप—चंदन चूरा तथा धूप चूरा, कभी-कभी यदि चंदन चूरा पर्याप्त न हो तो अक्षत में उसे ही मिलाकर व्यवस्थित कर लिया जाता है।

(८) फल—बादाम, लौंग, बड़ी इलायची, काली मिर्च, कमल-घटक, करेंदी आदि शुष्क फलों का प्रक्षालन कर थाल में रखना चाहिए।

महार्घ—

थाल के बीच में इन अष्ट द्रव्यों का मिश्रण महार्घ का रूप ग्रहण करता है। इन अष्ट द्रव्यों को थाल में संजो कर उनका क्रम निम्न फलक के अनुसार होना चाहिए—

४
३ ५
२ महार्घ ६
१ ७
८

पूजन पात्रों की संख्या—

पूजन में काम आने वाले पात्रों के प्रकार और संख्या निम्न प्रकार से आवश्यक होती है, यथा—

१. थाल नग २
२. तश्तरी नग २
३. कलश नग २ (छोटे आकार के जल, चंदन के लिए)
४. चम्मच नग २
५. स्थापना पात्र-ठोना-नग १
६. जल-चन्दन चढ़ाने का पात्र-नग १

७. धूपदान—नग १

८. छन्ना नग ५ (१ छन्ना सामग्री को ढकने के लिए, तीन छन्ने प्रभु प्रक्षालन के लिए तथा १ छन्ना वेदिका को धोकर पोंछने के लिए।)

९. काष्ठ की चौकियाँ नग २, थाल आदि रखने के आकार की सामान्य चौकियाँ।

प्रभुवेदिका में प्रवेश करने की विधि—

वेदी, जहाँ प्रभु-प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं, में पूजक को प्रवेश करते समय तीन बार—निःसही:, निःसही:, निःसही:, का उच्चारण करना चाहिए। इस उच्चारण में मूल बात यह है कि यदि प्रभु-वेदिका में किसी भी योनि के जीवगण-व्यन्तर-देव आदि उपासनार्थ पहले से उपस्थित हों तो उनसे व्यर्थ में टकराहट न हो जावे और वे इस त्रयोच्चारण को सुनकर स्वयं बच जावें तथा राग-द्वेष जन्य समग्र व्यवधान-समाप्त हो जावे। पूजन सामग्री तथा उपकरणों को यथास्थान पर रखने के पश्चात् पूजक को प्रत्येक वेदी पर प्रभु बिम्ब के सम्मुख नत मस्तक हो णमोकार मंत्र पढ़ना चाहिए।

प्रतिमा-अभिषेक

अभिषेक (जल से नहलाना) करने से पहिले श्वेत स्वच्छ तीन छन्नों को क्रमशः एक छन्ना प्रभु चरणों में बिछा देना चाहिये। एक छन्ना से कलश ढोने से पूर्व प्रभु प्रतिमा को शुष्क प्रक्षालन कर लेना आवश्यक है। कलश ढोकर प्रतिमा रूप-स्वरूप का प्रक्षालन करना परमावश्यक है अन्त में दूसरे छन्ने से प्रतिमा का परिपोंछन करना होता है ताकि प्रतिमा पर किसी भी अंग में जल कण शेष न रहें। इस प्रकार के शुभ काम के करते समय अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में निम्न मंगल पाठ करना आवश्यक है, यथा—

पंचमंगल पाठ

पणविवि पंच परमगुरु, गुरु जिन शासनो।
सकल सिद्धि दातार सु विघन विनाशनो॥
शारद अरु गुरु गौतम सुमति प्रकाशनो।
मंगल कर चउ-संघहि पाप पणासनो॥[1]

---

१. पंचमंगलपाठ, कविवर रूपचंद, संगृहीतग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस-५, प्रथम संस्करण, १९५७ ई०, पृष्ठ ९४।

गर्भ कल्याणक—

जाके गर्भ कल्याणक, धनपति आइयो।
अवधिज्ञान परमान, सु इन्द्र पठाइयो॥
रचि नव बारह जोजन, नयरि सुहावनी।
कनक रयण मणि मण्डित, मंदिर अति वनी॥[1]

जन्म कल्याणक—

मति-श्रुत-अवधि विराजित जिन जब जनमियो।
तिहुँ लोक भयो छोभित सुरगन भरमियो॥
कल्पवासि-घर घंट अनाहद वज्जियो।
जोतिषघर हरिनाद, सहज गलगज्जियो॥[2]

तप कल्याणक—

श्रम जल रहित सरीर, सदा सब मल-रहिउ।
छीर-वरन वर रुधिर प्रथम आकृति लहिउ॥
प्रथमसार संहनन, सरूप विराजहीं।
सहज सुगन्ध सुलच्छन मंडित छाजहीं॥[3]

ज्ञान कल्याणक—

तेरहवें गुणस्थान, संयोगि जिनेसुरो।
अनंत-चतुष्टय-मंडिय भयो परमेसुरो॥
समवसरन तव धनपति बहुविधि निरमयो।
आगम जुगति प्रमान गगन तल परि ठयो॥

निर्वाण कल्याणक—

केवल दृष्टि चराचर देख्यो जारिसो।
भव्यनि प्रति उपदेस्यो, जिनवर तारिसो॥

---

१. पंचमंगल पाठ, रूपचन्द, ज्ञानपीट पूजांजलि, पृष्ठ ९४-९५।

२. वही, पृष्ठ ९५-९८।

३. वही, पृष्ठ ९८-१००।

४. वही, पृष्ठ १००-१०२।

भवभय भीत भविकजन सरणे आइया।
रत्नत्रय-लच्छन सिव पंथ लगाइया ॥[1]

थाल में स्थापना-संरचना—

छन्ने से पूजा के पात्रों को साफ करना चाहिए। सबसे पहिले स्थापना-पात्र (ढोना) पर स्वास्तिक चिह्न (卐) चन्दन अथवा केशर से लगाना चाहिये। जल चन्दन चढ़ाने वाले कलश पात्र पर स्वास्तिक चिह्न लगाना चाहिये। महार्घ की थालिका के अतिरिक्त दूसरी थालिका (रकेबी) में स्वास्तिक चिह्न लगाना चाहिये तथा बड़े थाल में क्रमशः बीच में तीन स्वास्तिक चिह्न देव, शास्त्र और गुरु के प्रतीकार्थ रचना चाहिये। बीच वाले स्वास्तिक चिह्न के ऊपर तीन बिन्दुओं की संरचना सम्यक् दर्शन, सम्यक्-ज्ञान और सम्यक्-चारित्र्य के लिए करनी होती है। बीच के स्वास्तिक चिह्न के चारों ओर दश बिन्दुओं की रचना करनी चाहिये जो दिक् पालों के प्रतीक रूप होते हैं। दर्शन, ज्ञान, चारित्र बिन्दुओं के ऊपर एक अर्द्ध चन्द्रिका की रचना करनी चाहिये जो मोक्ष-स्थली का प्रतीक है। शास्त्र जी नामक स्वास्तिक चिह्न के नीचे एक स्वास्तिक चिह्न बनाना चाहिये जो बीस तीर्थंकरों की पीठिका का प्रतीक है। इस स्वास्तिक चिह्न और देव स्वस्तिका के मध्य एक अर्धचन्द्रिका की संरचना होनी चाहिये जो अकृत्रिम चैत्यालयों की प्रतीक है। देव स्वस्तिका और मोक्षस्थली के बीच में एक अर्द्धचन्द्रिका बनानी चाहिये जो सिद्धालय की प्रतीक है। इसी प्रकार गुरु और मोक्ष स्थली के मध्य एक अर्द्धचन्द्रिका बनानी आवश्यक है जो चौबीस तीर्थंकरों की पीठिका का प्रतीक है और अन्त में गुरु और नीचे बने स्वस्तिक चिह्न के बीच में अर्द्धचन्द्रिका की रचना आवश्यक है जो पूजन करने वाली वेदी पर विराजमान प्रभु स्थली का प्रतीक है। बड़े

१. पंचमंगलपाठ, कविवर रूपचंद, संगृहीत ग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, प्रथम संस्करण, १९५७ ई०, पृष्ठ १०२-१०४।

थाल में इन स्थापनाओं की बड़ी सावधानी से रचना करनी चाहिये इसे सुविधानुसार हम निम्न फलक में निम्न प्रकार व्यक्त कर सकते हैं, यथा—
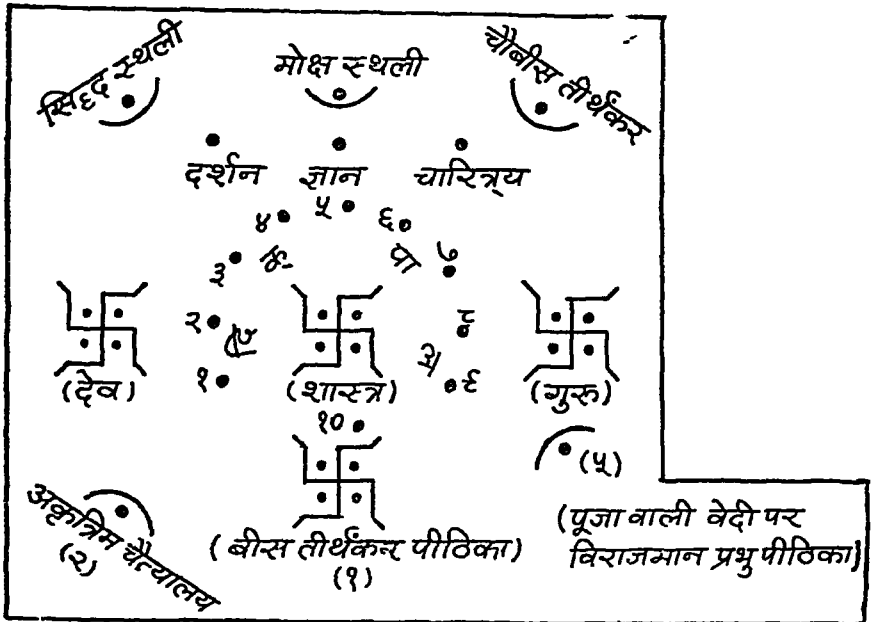
पुजारी पर चन्दन-चर्चन—

पूजा करने वाले भक्तपुजारी को अपने शारीरिक अवयवों पर थालिका में स्वस्तिक चिह्नों की संरचना के पश्चात् चन्दन का चर्चन करना चाहिये। सबसे पहिले कलाई स्थल पर चन्दन धारी, भुजाकेन्द्र पर चन्दन-विन्दु, कर्णपतेलिका पर चन्दन-विन्दु, कण्ठ-प्रदेश पर चन्दन-विन्दु, वक्ष-स्थल पर चन्दन-विन्दु तथा नाभि-प्रदेश में चन्दन-विन्दु का लेपन करना चाहिये। यदि पुजारी जनेऊधारी है तो उसे जनेऊ पर भी चन्दन का चर्चन करना अपेक्षित है। अन्त में पुजारी अपने ललाट पर चन्द्राकार तिलक चर्चित करता है।

पूजन का समारम्भ—

प्रथमतः पुजारी को खड्गासन में सावधानपूर्वक नौ बार णमोकार मंत्र का शुद्ध उच्चारण कर दर्शन, ज्ञान और चारित्र की तीन विन्दु स्थलियों पर नौ-नौ पुष्पों को क्रमशः इस प्रकार चढ़ाना चाहिये कि वे एक दूसरे से सम्मिलित न होने पावे।

विनयपाठ का प्रवाचन—

सस्वर विनयपाठ का वाचन करना होता है, यथा—

इह विधि ठाडो होयके, प्रथम पढ़े जो पाठ।
धन्य जिनेश्वर देव तुम नाशे कर्म जु आठ॥
अनन्त चतुष्टय के धनी, तुमही हो सिरताज।
मुक्तिवधू के कंत तुम, तीन भुवन के राज॥[1]

मध्यस्थ चिह्नित स्वास्तिक पर पुष्पों को चढ़ाना चाहिए तथा इसके पश्चात् निम्नाष्टक का शुद्ध उच्चारण करना चाहिये—

जय जय जय। नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु।
णमोअरिहन्ताणं, णमोसिद्धाणं, णमो आइरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं॥[2]

'ॐ ह्रीं अनादि मूलमन्त्रेभ्यो नमः' ऐसा कहकर पुष्पों का क्षेपण करना चाहिये।

चत्तारिमंगलं-अरिहन्ता मंगलं, सिद्धा मंगलं,
साहू मंगलं केवलिपण्णत्तो धम्मोमंगलं।
चत्तारिलोगुत्तमा-अरिहन्तालोगुत्तमा, सिद्धालोगुत्तमा,
साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मोलोगुत्तमो।
चत्तारिसरणं पवज्जामि, अरिहन्ते सरणं पवज्जामि,
सिद्धे सरणं पवज्जामि साहू सरणं पवज्जामि।
केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि॥

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा कहकर पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिए।[3]

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा।
ध्यायेत्पंच-नमस्कारं सर्व-पापैः प्रमुच्यते॥
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्परमात्मानं स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः॥

---

१ राजेन्द्र नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, प्रथम संस्करण १९७६, पृष्ठ ३०-३२।

२. जैनपूजापाठ संग्रह, प्रकाशक-भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ ११।

३. राजेन्द्र नित्यपूजापाठ संग्रह, प्रकाशक-राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, प्रथम संस्करण १९७६, पृष्ठ ३३।

अपराजितमन्त्रोऽयं सर्व-विघ्न-विनाशनः ।
मंगलेषु च सर्वेषु प्रथमं मंगलं मतः ॥
ऐसो पंच-णमोयारो सव्व-पाव-प्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं ॥
अर्हमित्यक्षरं ब्रह्मवाचकं परमेष्ठिनः ।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहम् ॥
कर्माष्टक-विनिर्मुक्तं मोक्ष-लक्ष्मी-निकेतनम् ।
सम्यक्त्वादि-गुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ॥
विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनी-भूत-पन्नगाः ।
विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥[1]

इसके पश्चात् चन्द्राकार बने स्थापना पर क्रमशः पहले केन्द्र पर निम्न अर्घ चढ़ाना चाहिये, यथा—

पंचकल्याणक का अर्घ—

उदकचन्दनतंदुल पुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः ।
धवलमंगलज्ञानरवाकुले जिनगृहे जिननाथमहं यजे ॥

ॐ ह्रीं भगवान के गर्भ-जन्म-तप-ज्ञान-निर्वाणपंचकल्याणकेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।[2]

पंचपरमेष्ठि का अर्घ—

उदक-चन्दन-तंदुल-पुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः ।
धवल मंगलगान रवाकुले जिनगृहे जिन मिष्टमहं यजे ॥

ॐ ह्रीं श्री अरहन्त सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वं साधुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।[3]

---

१. ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस-५, १९५७ ई०, पृष्ठ २७-२९ ।

२. जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १२ ।

३. जैनपूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १२ ।

सहस्रनाम का अर्घ—

उदक चन्दन तंदुल पुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः।
धवल मंगलगान रवाकुले, जिनगृहे जिननाथ महं यजे ॥
ॐ ह्रीं श्री भगवज्जिनसहस्रनामेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।[1]

स्वस्तिमंगल वाचन—

श्री मज्जिनेन्द्रमभिवंद्यजगत्त्रयेशं,
स्याद्वादनायकमनन्त चतुष्टयार्हं ।
श्रीमूल संघसुदृशां सुकृतैकहेतु—
जैनेन्द्र-यज्ञ-विधिरेष मयाभ्यधायि ॥[2]

(यह मध्य में चिन्हित स्वास्तिक पर पुष्पांजलि क्षेपण किया जायगा)

जिनेन्द्रस्वस्ति मंगल—

श्री वृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अजितः,
श्री सम्भवः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अभिनन्दनः ॥
श्री सुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्री पद्मप्रभः,
श्री सुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्री चन्द्रप्रभः ॥
श्री पुष्पदन्तः स्वस्ति, स्वस्ति श्री शीतलः,
श्री श्रेयांसः स्वस्ति, स्वस्ति श्री वासुपूज्यः ।
श्री विमलः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अनन्तः,
श्री धर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्री शान्तिः ॥
श्री कुंथुः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अरनाथः,
श्री मल्लिः स्वस्ति, स्वस्ति श्री मुनिसुव्रतः ।
श्री नमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्री नेमिनाथः, ,
श्री पार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्री वर्द्धमानः ॥

मध्य चिह्नित स्वस्तिक पर पुष्पांजलि का क्षेपण कीजिये ।[3]

---

१. राजेश नित्यपूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६ ई०, पृष्ठ ३४ ।

२. स्वस्तिमंगल, राजेश नित्यपूजापाठ संग्रह, प्रकाशक-राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६ ई०, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ३५-३६ ।

३. जैन पूजापाठ संग्रह, प्रकाशक-भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १४ ।

दशदिक्पालों के अर्घ—

नित्याप्रकंपाद्‌भुतकेवलौघा: स्फुरन्मन: पर्ययशुद्धवोधा: ।
दिव्यावधिज्ञानवलप्रवोधा: स्वस्ति क्रियासु: परमर्षयोन: ॥[1]

(यहां से प्रत्येक श्लोक के अन्त में पुष्पांजलि मध्यस्थ चिह्नित स्वस्तिक के चारों ओर क्षेपण करना चाहिए ।) क्रमश: १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०. विन्दुओं पर क्षेपण करना चाहिये ।

कोष्ठस्थ-धान्योपममेक वीजं संभिन्नसंश्रोतृ-पदानुसारी ।
चतुर्विधं वुद्धि वलं दधाना: स्वस्ति क्रियासु: परमर्षयोन: ॥
संस्पर्शनं संश्रवणं च दूरादास्वादन-घ्राण-विलोकनानि ।
दिव्यान्मतिज्ञानवलाद्वहन्त: स्वस्ति क्रियासु: परमर्षयो न: ॥[2]

(मध्यस्थ चिह्नित स्वस्तिक पर पुष्पांजलि क्षेपण कीजिए)

देवशास्त्रगुरू की पूजन—

देव-शास्त्र-गुरुपूजा का विधिवत पूजन करना चाहिए ।[3]

टिप्पणी—यदि पुजारी-भक्त के पास समयाभाव है तो पूर्ण पूजन करने की अपेक्षा उनके निम्न अर्घों को चढ़ाना चाहिये ये अर्घ श्लोक तथा मंत्र निम्न प्रकार हैं ।

(१) वीस तीर्थंकर के अर्घ—

उदक चंदन तंदुल पुष्प कैश्चरुसुदीपसुधूप फलार्घकैः ।
धवल मंगल गान रवाकुले जिनगृहे जिनराजमहं यजे ॥

ॐ ह्रीं श्री समंधर-युग्मंधर-वाहु-सुवाहु-संजात-स्वयंप्रभ-ऋषभानन अनन्त वीर्यसूर्यप्रभ विशालकीर्ति-वज्रधर-चन्द्रानन-चंद्र वाहु-भुजंगम-ईश्वर-नेमिप्रभ-वीरषेण-महाभद्र-देवयशो जितवीर्यति विंशतिविद्यमान तीर्थंकरेभ्योअर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।[4]

(नीचे वाले स्वस्तिक चिह्न पर ही अर्घ चढ़ाना चाहिये)

---

१. जैन पूजापाठ संग्रह, प्रकाशक-भागचन्द पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७ पृष्ठ १४ ।

२. जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १५ ।

३. द्यानतराय, श्री देवशास्त्र गुरूपूजा, संगृहीतग्रंथ, जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७ पृष्ठ १६-२१ ।

४. जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ ३६ ।

(२) अकृत्रिम चैत्यालयों के अर्घ—

कृत्याकृत्रिम-चारु-चैत्यनिलयान् नित्यं त्रिलोकीगतान् ।
वंदे भावन-व्यंतरान् द्युतिवरान् स्वर्गामिरावासगान् ।
सदगन्धाक्षत-पुष्प-दाम-चरुकैः सद्दीपधूपैः फलैः—
द्रव्यैर्नीरमुखैर्यजामि सततं दुष्कर्मणांशांतये ॥१॥

ॐ ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालय सम्बधि जिन विंवेभ्योऽघ्र्यं निर्वपामीति स्वाहा ।[1]

(परिक्रमा की ओर द्वितीयांक चन्द्राकार मंडित चिन्ह पर अर्घ चढ़ाइये जैसा कि फलक क्रमांक २ पर लिखा हुआ है ।)

नौ बार णमोकार मंत्र का पाठकर पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिए ।

सिद्धपूजा अर्घ—

ऊर्ध्वाधोरयुतं सबिन्दुसपरं ब्रह्मस्वरावेष्टितं
वर्गापूरित-दिग्गताम्बुज-दलं तत्सन्धि-तत्वान्वितम्
अन्तः पत्र-तटेष्वनाहतयुतं ह्रींकार-संवेष्ठितं
देवं ध्ययाति यः स मुक्ति-सुभगो वैरीभ-कण्ठीरवः ॥[2]
गन्धाढ्यं सुपयो मधुव्रत-गणैः संगं वरं चन्दनं,
पुष्पौघं विमलं सदक्षतचयं रम्यं चरुं दीपकम् ।
धूपं गन्धयुतं ददामि विविधं श्रेष्ठं फलं लब्धये,
सिद्धानां युगपत्क्रमाय विमलं सेनोत्तरं वांछितम् ॥[3]

ॐ ह्रीं सिद्ध चक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।

तीसरे क्रम के बने चन्द्राकार पर अर्घ क्षेपण करना चाहिए ।

चौबीसी तीर्थंकर पूजार्घ—

वृषभ अजित संभव अभिनंदन,
सुमतिपदमसुपास जिनराय ।

---

१. जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ ३६-३८ ।

२. ज्ञान पीठ पूजांजलि, अयोध्या प्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ दुर्गाकुण्ड, रोड, बनारस, प्रथम संस्करण १९५७ ई०, पृष्ठ ६९ ।

३. वही, पृष्ठ ७५ ।

चंद पुहुप शीतल श्रेयांस नमि,
वासूपूज्य पूजित सुरराय ॥
विमल अनंत धर्म जस उज्ज्वल,
शांति कुंथु अर मल्लि मनाय।
मुनि सुव्रत नमि नेमि पार्श्व प्रभु,
वर्द्धमान पद पुष्प चढ़ाय ॥[1]

जल-फल आठों शुचि-सार, ताको अर्घ करों।
तुमको अरपों भवतार, भवतरि मोक्ष वरों ॥
चौवीसों श्री जिनचंद, आनंद-कन्द सही।
पद जजत हरत भवफंद, पावत मोक्ष-मही ॥[2]

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तेभ्यो महाअर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।
(चौथे क्रमांक पर बने चन्द्राकार पर अर्घ्य चढ़ाना है।)

नेमिनाथ जिनपूजा

बाइसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ जिनपूजा करने का विधान है।[3]

यदि विराजमान प्रभु-वेदिका पर तीर्थंकर आदिनाथ की प्रतिमा विराजमान है तो पुजारी प्रत्येक तीर्थंकर की पूजा करने का अधिकारी है। यदि वहाँ पर महावीर स्वामी की स्थापना है तो फिर पूर्व तीर्थंकरों की पूजा बाद में नहीं करनी चाहिए। इन तीर्थंकरों की स्थापना स्थापना-पात्र (ठोणा) में ही की जाती है किन्तु विराजमान तीर्थंकर की स्थापना ठोणा में नहीं की जाती। उनकी स्थापना चन्द्राकार क्रमांक ५ पर ही सम्पादित की जाती है।

श्री पार्श्वनाथ पूजा—इसके उपरान्त श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा करनी चाहिए।[4]

---

१. जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ ८०।
२. जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ ८१।
३. मनरंगलाल, श्री नेमिनाथ पूजा, संगृहीतग्रंथ-सत्यार्थयज्ञ, प्रकाशक व सम्पादक-पं० शिखरचन्द्र जैन, जवाहरगंज, जबलपुर, म० प्र०, अगस्त १९५० ई०, पृष्ठ १५३-१५९।
४. मनरंगलाल, श्री पार्श्वनाथ जिन पूजा, वही, पृष्ठ १६०-१६५

श्री महावीरस्वामी पूजा—अन्त में तीर्थंकर श्री महावीरस्वामी की पूजा की जानी चाहिए।[1]

शांतिपाठ—

मैं देव श्री अर्हन्त पूजूं सिद्ध पूजूं चाव सों,
आचार्य श्री उवझाय पूजूं साधु पूजूं भाव सों।
अर्हन्त-भाषित बैन पूजूं द्वादशांग रचे गनी,
पूजूं दिगम्बर गुरुचरन शिव हेत सब आशाहनी ॥[2]

के पश्चात महार्घ मोक्ष स्थली स्थान से आरम्भ कर पूरी परिक्रमा तक समाप्त कर देना चाहिए। अर्घ बार-बार नहीं लेना चाहिए।

शांतिनाथ मुख शशि उनहारी। शील-गुणव्रत-संयमधारी।
लखन एक सौ आठ विराजें। निरखत नयन कमल दल लाजें ॥
पंचमचक्रवर्तिपद धारी। सोलम तीर्थंकर सुखकारी।
इन्द्र नरेन्द्र पूज्य जिन नायक। नमो शांतिहित शांति विधायक ॥
दिव्य विटप पहुपन की बरषा। दुंदुभि आसनवाणी सरसा।
छत्र चमर भामंडल भारी। ये तुव प्रातिहार्य मनहारी ॥
शांति जिनेश शांति सुखदाई। जगत्पूज्यपूजों शिर नाई।
परम शांति दीजै हम सबको पढ़ें तिन्हें पुनि चार संघ को ॥
पूजें जिन्हें मुकुट हार किरीट लाके।
इंद्रादि देव अरु पूज्य पदाब्ज जाके ॥
सो शांतिनाथ वरवंश जगत्प्रदीप।
मेरे लिए करहिं शांति सदा अनूप ॥
संपूजकों को प्रतिपालकों को यतीन को और यतिनायकों को।
राजा प्रजा राष्ट्र सुदेश को ले कीजै सुखी है जिन शांति को दे ॥
होवै सारी प्रजा को सुख बलयुत हो धर्मधारी नरेशा।
होवै वर्षा समै पै तिलभर न रहे व्याधियों का अंदेशा ॥
होवै चोरी न जारी सुसमय बरते हो न दुष्काल भारी।

---

१. मनरंगलाल, श्री महावीरस्वामीपूजा, संगृहीतग्रंथ-सत्यार्थयज्ञ, प्रकाशक व सम्पादक—पं० शिखर चन्द्र जैन, जवाहरगंज, जबलपुर, म० प्र० अगस्त १९५० ई०, पृष्ठ १६६-१७४।

२. ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्या प्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७ ई० पृष्ठ १२६।

सारे ही देश धारें जिनवर-वृषको जो सदा सौख्यकारी ॥[1]

यहां तक पाठ करने पर पुष्पों को समाप्त कर लेना चाहिए—यथा

घातिकर्म जिन नाश करि पायो केवलराज ।
शांति करो सब जगत में वृषभादिक जिनराज ॥[2]

तब जल और चन्दन को उठाकर पात्र में दोनों की धार मिलाकर तीन बार में समाप्त कर देना चाहिए और अन्त में—

शास्त्रों का हो पठन सुखदा लाभ सत्संगतीका ।
सद्वृतों का सुजस कहके दोष ढाकूं सभी का ॥
बोलूं प्यारे वचन हित के आपका रूप ध्याऊं ।
तो लों सेऊं चरण जिनके मोक्ष जो लों न पाऊं ॥
तव पद मेरे हिय में ममहिय तेरे पुनीत चरणों में ।
तब लों लीन रहो प्रभु जब लों पाया न मुक्तिपद मैने ॥
अक्षर पद मात्रा से दूषित जो कुछ कहा गया मुझसे ।
क्षमा करो प्रभु सो सब करुणा करि पुनि छुड़ाहु भव दुखसे ॥
हे जगबन्धु जिनेश्वर । पाऊं तव चरण शरण बलिहारी ।
मरण समाधि सुदुर्लभ कर्मो का क्षय सुबोध सुखकारी ॥[3]

पढ़कर पुष्प चढ़ाना चाहिए, तत्पश्चात नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ना चाहिए ।

विसर्जन पाठ—

बिन जाने वा जानके, रही टूट जो कोय ।
तुव प्रसाद तें परमगुरु, सो सब पूरण होय ॥
पूजनविधि जानों नहीं, नहिं जानों आह्वान ।
और विसर्जन हू नहीं, क्षमा करहु भगवान ॥

---

१. ज्ञानपीठ पूजांजलि, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, प्रथम संस्करण १९५७ ई०, पृष्ठ १२७-१२८ ।

२. वही, पृष्ठ १२८ ।

३. वही, पृष्ठ १२८ ।

मंत्रहीन धनहीन हूँ, क्रियाहीन जिनदेव।
क्षमा करहु राखहु मुझे, देहु चरण की सेव ॥
आये जो-जो देवगण, पूजे भक्ति प्रमाण।
ते सब जावहु कृपा कर, अपने-अपने थान ॥[1]

तीन-तीन साबित पुष्पों को तीन बार में कुल नौ पुष्प स्थापना पात्र में चढ़ाना चाहिए।

श्री जिनवर की आशिका, लीजै शीश चढ़ाय।
भव-भव के पातक कटे, दुःख दूर हो जाय ॥[2]

तीन बार आशिका लेनी चाहिए और उन सभी पुष्पों को धूप दान में भस्म कर देना चाहिए तथा स्थापनापात्र में बने स्वास्तिक चिह्न को जल से छन्ने द्वारा साफ कर देना चाहिए।

परिक्रमा—वेदी की परिक्रमा कम से कम तीन बार अवश्य देना चाहिए—

प्रभु पतितपावन मैं अपावन, चरन आयो सरन जी।
यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन मरन जी ॥
तुम ना पिछान्या आन मान्या, देव विविध प्रकार जी।
या बुद्धि सेती निज न जाण्यो, भ्रम गिण्यो हितकार जी ॥[3]

परिक्रमा समाप्त होने के साथ ही तीर्थंकर को एक बार नमस्कार करके मंदिर से बाहर होना चाहिए।

---

१. जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता ७, पृष्ठ ६१।

२. जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ ६१।

३. बृहज्जिनवाणी संग्रह, पं० पन्नालाल बाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़, १९५६ ई०, पृष्ठ ४१-४२।

पूजा-विधि-विधान विषयक चर्चा करने के उपरान्त यहाँ अष्टद्रव्य और उनके स्वरूप तथा अभिप्राय सम्वन्धी सक्षेप में विवेचन करना यहाँ असंगत न होगा।

पूजनं इति पूजा। पूजा शब्द 'पूज्' धातु से बना है जिसका अर्थ है अर्चन करना।[1] जैन शास्त्रों में सेवा-सत्कार को वैयावृत्य कहा है तथा पूजा को वैयावृत्य माना है। देवाधिदेव चरणों की वन्दना ही पूजा है।[2]

जैनधर्मानुसार पूजा-विधान दो रूपों में विभाजित किया जा सकता है[3], यथा—

१. भावपूजा
२. द्रव्यपूजा

मूल में भावपूजा का ही प्रचलन रहा है। कालान्तर में द्रव्यरूपा का प्रचलन हुआ है। द्रव्यरूपा में आराध्य के स्थापन की परिकल्पना की जाती है और उसकी उपासना भी द्रव्यरूप में हुआ करती है। जैनदर्शन कर्मप्रधान है। समग्र कर्म-कुल को यहाँ आठ भागों में विभाजित किया गया है। इन्हीं के आधार पर अष्टद्रव्यों की कल्पना स्थिर हुई है।

जैनधर्म में पूजा की सामग्री को अर्घ्य कहा गया है। वस्तुतः पूजा-द्रव्य के सम्मिश्रण को अर्घ्य कहते हैं। जैनेतर लोक में इसे प्रभु के लिए भोग लगाना कहते हैं। भोग्य सामग्री का प्रसाद रूप में सेवन किया जाता है पर जिनवाणी में इसका भिन्न अभिप्राय है। जैनपूजा में अर्घ्य निर्माल्य होता है। वह तो जन्म जरादि कर्मों का क्षय करके मोक्ष प्राप्ति के लिए शुभ संकल्प

---

१. राजेन्द्र अभिधान कोश, भाग ४, पृष्ठ १०७३।

२. देवाधिदेव चरणे परिचरणं सर्व दुःख निर्हरणम्।
कामदुहि कामदहिनि परिचिनुयादाहृतो नित्यम्॥
—समीचीन धर्मशास्त्र, सम्पा० आचार्य समन्तभद्र, वीरसेवा मंदिर, दिल्ली, संवत् २०१२, श्लोक संख्या ५/२९, पृष्ठ १५५।

३ हिन्दी का जैनपूजा काव्य, डा० महेन्द्रसागर प्रचंडिया, संगृहीत ग्रंथ-भारतवाणी, तृतीय जिल्द, प्रकाशक-एशिया पब्लिशिंग हाउस-७, न्यूयार्क, सन् १९७५, पृष्ठ ५९८।

का प्रतीक होता है।[1] अतएव अर्घ्य सर्वथा अखाद्य होता है। जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में इस कल्पना का मौलिक रूप सुरक्षित है।

जैनभक्ति में पूजा का विधान अष्ट-द्रव्यों से किया गया है। पूजा-काव्य में प्रयुक्त अष्ट-द्रव्य अग्रांकित हैं, यथा—

१. जल
२. चन्दन
३. अक्षत
४. पुष्प
५. नैवेद्य
६. दीप
७. धूप
८. फल

इन द्रव्यों का क्षेपण अलग-अलग अष्ट फलों की प्राप्ति के लिए शुभ संकल्प रूप है। यहाँ पर इन्हीं अष्ट द्रव्यों का विवेचन करना हमारा मूलाभिप्रेत है।

जल—'जायते' इति 'ज', जीयते' इति 'ज' तथा 'लीयते' इति 'ल'। ज का अर्थ 'जन्म', ल का अर्थ 'लीन'। इस प्रकार 'ज' तथा 'ल' के योग से जल शब्द निष्पन्न हुआ जिसका अर्थ है—जन्ममरण।

लौकिक जगत में 'जल' का अर्थ पानी है तथा ऐहिक तृषा की तृप्ति हेतु व्यवहृत है। जैन दर्शन में 'जल' का अर्थ महत्वपूर्ण है तथा उसका प्रयोग

---

१. वार्धारा रजसः शमाय पदयोः सम्यक्प्रयुक्ताऽर्हतः
सद्गंधस्तनुसोरभाय विभवाच्छेदाय संत्यक्षताः।
यष्टुः स्रग्दिविजस्रजेचरु रुमास्वाम्यायदीप स्त्विपे
धूपो विश्वदृगत्सवायफलमिष्टार्थाय चार्घाय सः॥

अर्थात अरहंत भगवान के चरणकमलों में विधिपूर्वक चढ़ाई गई जल की धारा पूजक के पापों के नाश करने के लिए उत्तम चन्दन शरीर में सुगंधित के लिए अक्षत, विभूति की स्थिरता के लिए पुष्पमाला, नैवेद्य लक्ष्मी पतित्व के लिए, दीपकान्ति के लिए तथा अर्घ्य अनर्घ्य पद की प्राप्ति के लिए होता है।

—सागारधर्मामृत, आशाधर, प्रकाशक-मूलचंद किसनदास कापड़िया, सूरत, प्रथम संस्करण वीर सं० २४८१, श्लोक संख्या ३०, पृष्ठ १०१।

एक विशेष अभिप्राय के लिए किया जाता है। पूजा प्रसंग में जन्म, जरा, मृत्यु के विनाशार्थ प्रासुक जल का अर्घ्य आवश्यक है। जैन-हिन्दी-पूजा में अनंत ज्ञानी तथा अनंत शक्तिशाली, जन्म जरा मृत्यु से परे, स्वयं मुक्त तथा मुक्तिमार्ग के निर्देशक महान परमात्मा की अपने आत्मा पर लगे कर्ममल को साफ करने के लिए पूजा में जल का उपयोग किया जाता है।[1]

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ व्यंजना में हुआ है। अठारहवीं शती के पूजा कवि द्यानतराय ने 'श्री देवशास्त्रगुरु पूजा' नामक रचना में 'जल' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में सफलतापूर्वक किया है।[2]

उन्नीसवीं शती के कविवर वृन्दावन द्वारा रचित 'श्री वासुपूज्य जिन-पूजा' नामक कृति में जल शब्द का प्रयोग द्रष्टव्य है।[3]

बीसवीं शती के पूजाकार राजमल पवैया विरचित 'श्री पंचपरमेष्ठी

---

१. ॐ ह्रीं परम परमात्मने अनन्तानन्त ज्ञान शक्तये जन्म जरा मृत्यु निवारणाय श्री मज्जिनेन्द्राय जल यजामहे स्वाहा।

—जिनपूजा का महत्व, श्री मोहनलाल पारसान, सार्द्ध शताब्दि स्मृति ग्रंथ, सार्द्ध शताब्दी महोत्सव समिति, १३९, काटन स्ट्रीट, कलकत्ता-७, सन् १९६५, पृष्ठ ५४।

२. मलिन वस्तु हर लेत सब, जल स्वभावमल छीन।
जासों पूजों परमपद, देवशास्त्रगुरु तीन॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्म जरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

—श्री देवशास्त्रगुरु पूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ-राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, सन् १९७६, पृष्ठ ४०।

३. गंगाजल भरि कनक कुम्भ में प्रासुक गंध मिलाई।
करम कलंक विनाशन कारन, धार देत हरषाई॥

ॐ ह्रीं श्री वासु पूज्य जिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

—श्री वासुपूज्य जिनपूजा, वृंदावन, संगृहीतग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि अयोध्या प्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुंडरोड, वाराणसी, प्रथम संस्करण १९५७ ई०, पृष्ठ ३४६।

पूजन' नामक काव्य कृति में 'जल' शब्द इसी अर्थ की स्थापना करता है।[1]

चन्दन—'चदि आल्हादने' धातु से चन्दयति अह्लादयति इति चन्दनम। लौकिक जगत में चन्दन एक वृक्ष है जिसकी लकड़ी के लेपन का प्रयोग ऐहिक शीतलता के लिए किया जाता है। जैनदर्शन में 'चन्दन' शब्द प्रतीकार्थ है। वह सांसारिक ताप को शीतल करने के अर्थ में प्रयुक्त है।[2] जैन-हिन्दी-पूजा में सम्पूर्ण मोह रूपी अंधकार को दूर करने के लिए परम शान्त बीतराग स्वभावयुक्त जिनेन्द्र भगवान की केशर-चन्दनं से पूजा की जाती है। परिणामस्वरूप हार्दिक कठोरता, कोमलता और विनय प्रियता में परिवर्तित होकर प्रकट हो। ऐसी अवस्था प्राप्त होने पर भक्त के लिए सम्यग्दर्शन का सन्मार्ग प्रशस्त हो सकेगा।[3]

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में चन्दन शब्द का प्रयोग उक्त अर्थ में हुआ है।

---

१. मैं तो अनादि से रोगी हूं, उपचार कराने आया हूँ।
तुम सम उज्ज्वलता पाने को उज्ज्वल जल भर लाया हूं॥

—श्री पंचपरमेष्ठी पूजन, राजमल पवैया, संगृहीतग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, प्रथम संस्करण १९६९, पृष्ठ १२७।

२. सागार धर्मामृत, आशाधर, प्रकाशक—मूलचन्द किशनदास कापड़िया, सूरत, प्रथम संस्करण, वीर सं० २४४१, श्लोक सं० ३०-३१, पृष्ठ १०१-१०५।

३. सकल मोह तमिश्र विनाशनं,
परम शीतल भावयुतं जिनं
विनय कुम्कुम चन्दन दर्शनैः
सहज तत्त्व विकाश कृतेऽर्चये।

—जिनपूजा का महत्त्व, श्री मोहनलाल पारसान, सार्द्ध शताब्दी स्मृति ग्रंथ, सार्द्ध शताब्दी महोत्सव समिति, १३९, काटन स्ट्रीट, कलकत्ता-७ सन् १९६५, पृष्ठ ५४।

१८वीं शती के कवि द्यानतराय रचित 'श्री नन्दीश्वरद्वीप पूजा' नामक रचना में चन्दन शब्द का व्यवहार परिलक्षित है ।[1]

उन्नीसवीं शती के पूजा कवि रामचन्द्र प्रणीत 'श्री अनन्तनाथ जिन पूजा' नामक पूजा कृति में 'चन्दन' शब्द उल्लिखित है ।[2] बीसवीं शती के पूजा काव्य के रचयिता सेवक ने 'चन्दन' शब्द का प्रयोग 'श्री आदिनाथजिन पूजा' नामक पूजा रचना में इसी अभिप्राय से सफलतापूर्वक किया है ।[3]

अक्षत—न क्षतं अक्षतं । अक्षत् शब्द अक्षय पद अर्थात् मोक्ष पद का प्रतीक है । अक्षत् का शाब्दिक अर्थ है वह तत्व जिसकी क्षति न हो । अक्षत् का क्षेपण कर भक्त अक्षय पद की प्राप्ति कर सकता है ।

जिस प्रकार अक्षत या चावल में उत्पाद-व्यय रूप समाप्त हो जाता

---

१. भव तप हर शीतलवास, सो चंदन नाही ।
प्रभु यह गुन कीजै सांच आयो तुम ठाहीं ॥
नंदीश्वर श्रीजिनधाम, बावन पुंज करो ।
वसु दिन प्रतिमा अभिराम, आनंद भाव धरो ॥

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण दिशासम्बधि एक अंजन गिरिचारदधि मुख आठ रतिकरेभ्यो चंदन निर्वपामीतिस्वाहा ।

—श्री नंदीश्वरद्वीपपूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ-राजेश नित्यपूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृ० १७१ ।

२. कुंकुमादि चन्दनादिगंधशीत कारया ।
संभवेन अन्तकेन भूरिताप हारया ॥

ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथ जिनेन्द्राय मोहताप विनाशनाय चंदन निर्वपामीति स्वाहा ।

—श्री अनंतनाथ जिनपूजा, रामचन्द्र, संगृहीत ग्रंथ-राजेश नित्यपूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १०४ ।

३, मलयागिरि चंदनदाह निकन्दन, कंचन झारी में भर ल्याय ।
श्री जी के चरण चढ़ावो भविजन भवआताप तुरत मिटिजाय ॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

—श्री आदिनाथ जिनपूजा, सेवक, संगृहीत ग्रंथ, जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता ७, पृ० ९५ ।

हैं उसी प्रकार जीवात्मा भी रत्नत्रय[1] का पालन करता हुआ अक्षत द्रव्य का क्षेपण कर आवागमन से मुक्ति या अक्षय पद की प्राप्ति का शुभ संकल्प करता है।

प्राकृत ग्रन्थ 'तिलोयपण्णति' में अक्षत शब्द का प्रयोग नहीं करके तंदुल रूप का प्रयोग किया है[2] तथा उसी भाषा का अन्य ग्रंथ 'वसुनंदि-श्रावकाचार' में अक्षत शब्द का व्यवहार इसी अर्थ व्यंजना में व्यंजित है।[3] जैन हिन्दी पूजा में आत्मा को पूर्ण आनन्द का विहार केन्द्र बनाने के लिए परम मंगल भावयुक्त जिनेन्द्र के सामने अक्षत से स्वस्तिक बनाकर भव्यजन चार गतियों (मनुष्य, देव, तिर्यंच, नरकगति) का बोध कराते हैं। स्वस्तिक के ऊपर तीन बिन्दुओं से सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्र का, ऊपर चन्द्र से सिद्ध शिला का तथा बिन्दु से सिद्धों का बोध कराते हैं। इस प्रकार सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्र ही भव्य जीव को मोक्ष प्राप्त कराते हैं।[4] जैन वाङ्मय में अक्षत से पूजा करने वाले भक्त का मोक्ष प्राप्त हो जाने का कथन प्राप्त होता है।[5]

---

१. रत्नत्रय-सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः।
तत्वार्थ सूत्र, प्रथम अध्याय, प्रथम श्लोक, उमास्वामि।

2. तिलोयपण्णति २२४, जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग ३, जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, २०२९, पृ० ७८।

३. वसुनंदि श्रावकाचार ३२१, जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग ३, जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, २०२९, पृष्ठ ७८।

卐

४. सकल मंगल केलि निकेतनं,
परम मंगल भाव मयं जिनं।
श्रयति भव्यजनाइति दर्शयन्
दधतुनाथ पुरोऽक्षत स्वस्तिकं॥

—जिनपूजा का महत्व, श्री मोहनलाल पारसान, सार्द्ध शताब्दी स्मृतिग्रंथ प्रकाशक-सार्द्ध शताब्दी महोत्सव समिति, १३९, काटन स्ट्रीट, कलकत्ता-७ सन् १९६५, पृष्ठ ५५।

५. वसुनंदि श्रावकाचार, ३२१, जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग ३, जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, २०२९, पृष्ठ ७८।

अपभ्रंश से होता हुआ 'अक्षत' शब्द अपना यही अर्थ समेटे हुए हिन्दी में भी गृहीत है। जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में १८वीं शती के कवि द्यानतराय प्रणीत 'श्री अयपंचमेरु पूजा' नामक कृति में अक्षत शब्द उल्लेखनीय है।[1] उन्नीसवीं शती के पूजाकार मनरंगलाल विरचित 'श्री नेमिनाथ जिनपूजा' नामक रचना में अक्षत शब्द का प्रयोग दृष्टव्य है।[2] बीसवीं शती के पूजा-काव्य के प्रणेता कुंजीलाल विरचित 'श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा' नामक कृति में अक्षत शब्द का व्यवहार इसी अभिप्राय से हुआ है।[1]

पुष्प—पुष्यति विकसित इह पुष्पः। पुष्प कामदेव का प्रतीक है। लोक में इसका प्रचुर प्रयोग देखा जाता है। जैन काव्य में पुष्प का प्रतीकार्थ है। पुष्प समग्र ऐहिक वासनाओं के विसर्जन का प्रतीक है। पुष्प

---

१. अमल अखंड सुगन्ध समुदाय, अच्छत सों पूजों जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥

ॐ ह्रीं आदि सुदर्शन मेरु, विजयमेरु, अचलमेरु, मंदिरमेरु विद्युत्माली मेरुभ्यो अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री अय पंचमेरु पूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रन्थ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १६८।

२. नहिं खंड एको सव अखंडित ल्याय अक्षत पावने।
दिशि विदिशि जिनकी महक करि महके लगे मन भावने।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय अक्षय पद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री नेमिनाथ जिन पूजा, मनरंगलाल, संगृहीत ग्रन्थ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, सन् १९५७, पृष्ठ ३९९।

३. अक्षत अखंडित सुगंधित बनायके, पुंज लायके।
अक्षत पद पूजत हूँ मन में हुलसायके-हुलसायके॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अक्षय पद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा, कुंजिलाल, संगृहीत ग्रन्थ—नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, प्रकाशिका व सम्पादिका ब्र० पतासीबाई, गया (बिहार), भाद्रपद वीर, सं० २४८७, पृष्ठ ३६।

से पूजा करने वाला कामदेव सदृश देहवाला होता है तथा इसके क्षेपण में सुन्दर देह तथा पुष्पमाला की प्राप्ति का उल्लेख मिलता है।[1]

संस्कृत, प्राकृत वाङ्मय में पुष्प शब्द के प्रतीकार्थ की परम्परा हिन्दी जैन काव्य में भी सुरक्षित है। यहाँ पुष्प कामनाओं के विसर्जन के लिए पूजाकाव्य में गृहीत है।

जैन-हिन्दी-पूजा में निरुपित है कि खिले हुए सुन्दर सुगन्ध युक्त पुष्पों से केवल ज्ञानी जिनेन्द्र भगवान की पूजा कर मन मन्दिर को प्रसन्नता से खिला दो। मन पवित्र-निर्मल बन जाने से ज्ञान चक्षु खुल जायेंगे व विशुद्ध चेतन स्वभाव प्रकट होगा जिससे अनुभव रूपी पुष्पों से आत्मा सुवासित हो जायेगा।[2]

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में १८वीं शती के पूजाकवि द्यानतराय प्रणीत 'श्री चारित्रपूजा' नामक रचना में पुष्प शब्द इसी अर्थव्यंजना में व्यवहृत है।[1] उन्नीसवी शती के पूजा-कवि बख्तावररत्न प्रणीत 'श्री पार्श्वनाथ

---

१. वसुनंदि श्रावकाचार, ४८५, जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग ३, जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, २०२९, पृष्ठ ७८।

२. विकच विर्मल शुद्ध मनोरमैः
विशद चेतन भाव समुद्भवैः।
सुपरिणाम प्रसून धनेनवः
परम तत्वमयं हियजाम्यहं॥

—जिनपूजा का महत्व, श्री मोहनलाल पारसान, सार्द्धशताब्दी स्मृति ग्रंथ, प्रकाशक— सार्द्धशताब्दी महोत्सव समिति, १३९, काटन स्ट्रीट, कलकत्ता-७, सन् १९६५, पृष्ठ ५५।

३. पुहुप सुवास उदार, खेद हरै मन सुचि करै।
सम्यक चारितसार, तेरहविध पूजों सदा।

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यकचारित्राय काम बाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

—श्री रत्नत्रयपूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रंथ—जैनपूजापाठ संग्रह, भाग चन्द पाटनी, ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७ पृष्ठ ७४।

जिनपूजा' नामक पूजा कृति में पुष्प शब्द उक्त अर्थ में प्रयुक्त है।[1] बीसवीं शती के पूजा रचयिता हीराचन्द रचित 'श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर समुच्चय पूजा' में पुष्प शब्द का प्रयोग द्रष्टव्य है।[2]

नैवेद्य—निश्चयेन वेद्यं गृहीयम क्षुधा निवारणाय। नैवेद्य वह खाद्य पदार्थ है जो देवता पर चढ़ाया जाता है।[3] किन्तु जैन वाङ्‌मय में यह विशेष रूप से प्रतीकार्थ रूप में प्रचलित है। यहाँ आर्ष ग्रन्थों में कान्ति, तेज, सम्पन्नता के लिए यह शब्द व्यवहृत है। जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में क्षुधारोग को शान्त करने के लिए चढ़ाया गया मिष्ठान्न वस्तुतः नैवेद्य कहलाता है।[4]

जैन-हिन्दी-पूजा में उल्लिखित है कि समस्त पुद्गल भोग एवं संयोग से मुक्त होने के लिए अपने सहज आमत्स्वभाव का स्वाद लेते रहने के लिए है

---

१. केवड़ा गुलाव और केतकी चुनायकें।
घारचर्न के समीप काम को नसाइकें॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय गर्भजन्मतपोज्ञाननिर्वाणपंचकल्याणक प्राप्ताय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

—श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा, वख्तावररत्न, संगृहीत ग्रंथ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७ ई०, पृ० ३७२।

२. चंप चमेली है जूही ताजा, लायो प्रभु तुम पूजन काजा।
भेंट धरूं मैं तुम जिनराई। कामवाण विध्वंस कराई॥

ॐ ह्रीं ऋषभादि महावीर पर्यन्त चतुर्विंशति तीर्थंकरेभ्यो पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर समुच्चयपूजा, हीराचन्द, संगृहीतग्रंथ-नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, प्रकाशक-ब्र० पतासीबाई जैन, गया (बिहार), पृष्ठ ७२।

३. सागार धर्मामृत, आशाधर, प्रकाशक-मूलचंद किशनदास कापड़िया, सूरत, प्रथम संस्करण, वीर सं० २४४१, श्लोकांक ३०-३१, पृ० १०१-१०५।

४. वसुनंदि श्रावकाचार, ४८६, जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग ३, जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, २०२९, पृष्ठ ७९।

भगवान ! हम सरस भोजन आपके सामने चढ़ाते हैं फलस्वरूप हमें समस्त विषय वासनाओं भोग की इच्छा से निवृति प्राप्त हो ।[1]

नैवेद्य शब्द अपने इसी अभिप्राय को लेकर जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में अठारहवीं शती के पूजाकवि द्यानतराय प्रणीत 'श्री बीसतीर्थंकर पूजा' नामक रचना में व्यवहृत है।[2] उन्नीसवीं शती के पूजाकवि बख्तावररत्न विरचित 'श्री कुंथुनाथ जिनपूजा' नामक कृति में नैवेद्य शब्द परिलक्षित है।[3] बीसवींशती के पूजाकवि दौलतराम विरचित 'श्री पावापुर सिद्धक्षेत्रपूजा' नामक रचना में नैवेद्य शब्द इसी अभिप्राय से व्यवहृत है।[4]

दीप—दीप्यते प्रकाश्यते मोहान्धकारं विनश्यति इति दीपः। दीप का अर्थ लोक में 'दिया' प्रकाश का उपकरण विशेष के लिए व्यवहृत है।

---

१. सकल पुद्गल संग विवर्जनं, सहज चेतनभाव विलासकं।
सरस-भोजन नव्य निवेदनात्, परम निवृत्ति भाव महं स्पृहे ॥

—जिन पूजा का महत्व, मोहनलाल पारसान, सार्द्ध शताब्दी स्मृति ग्रंथ प्रकाशक-सार्द्ध शताब्दी महोत्सव समिति, १३९, काटन स्ट्रीट, कलकत्ता-७ सन् १९६५, पृष्ठ ५५।

२. काम नाग विषधाम नाश को गरुड कहे हो।
छुधा महादव ज्वाल तासु को मेघ लहे हो ॥
ॐ ह्रीं विद्यमान विंशतितीर्थंकरेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

—श्री बीसतीर्थंकरपूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७ ई०, पृष्ठ ११३।

३. पकवान सुकीने तुरत नवीने सितरस भीने मिष्ट महा।
तुम पद तल धारे नेवज सारे क्षुधा निवारे शर्म लहा ॥
श्री कुंथुनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न, संगृहीतग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, प्रकाशक, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७ ई०, पृष्ठ ५४३।

४. नैवेद्य पावन छुधा मिटावन, सेव्य भावन युत किया।
रस मिष्ट पूरित इष्ट सूरित लेयकर प्रभु हित हिया ॥
ॐ ह्रीं श्री पावापुर सिद्धक्षेत्रेभ्यो वीरनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

—श्री पावापुर सिद्धक्षेत्र पूजा, दौलतराम, संगृहीत ग्रंथ-जैन पूजापाठ संग्रह, प्रकाशक-भागचन्दपाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता ७, पृष्ठ १४७।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में इस शब्द का प्रयोग प्रतीकार्थ में हुआ है। मोहान्धकार को शान्त करने लिए दीप रूपी ज्ञान का अर्घ आवश्यक है। भवि जीव निर्मल आत्मबोध के विकास के लिए जिनमन्दिर में घृत दीपक जलावे, फलस्वरूप उनके मन मन्दिर में सद्गुण (अहिंसा, संयम, इच्छारोध, तप), रूपी दीप का प्रकाश फैल जाय।[1] पूजा में आवश्यक सामग्री में गोले (नारियल) के श्वेत-शकल 'दीप' का प्रतीकार्थ लेकर दीप शब्द प्रयोग में आता है।[2]

अठारहवीं शती के पूजाकार द्यानतराय ने 'श्री निर्वाणक्षेत्रपूजा' नामक पूजाकृति में 'दीप' शब्द का उक्त अर्थ के लिए व्यवहार किया है।[3] उन्नीसवीं शती के पूजा रचयिता मल्लजी रचित 'श्री क्षमावाणी पूजा' नामक रचना में 'दीप' शब्द इसी अभिप्राय से गृहीत है।[4] बीसवीं शती

---

१. भविक निर्मल बोध विकाशकं, जिनगृहे शुभ दीपक दीपनं।
सुगुण राग विशुद्ध समन्वितं, दधतुभाव विकाशकृते जन्यः॥

—जिनपूजा का महत्व, श्री मोहनलाल पारसान, सार्द्ध शताब्दी स्मृति ग्रंथ, प्रकाशक-श्री जैन श्वेताम्बर पंचायती मंदिर, १३९, काटन स्ट्रीट, कलकत्ता-७, संस्करण १९६५, पृष्ठ ५५।

२. सागार धर्मामृत, ३०-३१, आशाधर, प्रकाशक-मूलचन्द किशनदास कापडिया, सूरत, प्रथम संस्करण, वीर सं० २४४१, श्लोकांक ३०-३१, पृष्ठ १०१-१०५।

३. दीपक प्रकाश उजास उज्ज्वल, तिमिर सेती नहिं डरों।
संशय विमोह विभरम तमहर, जोरकर विनती करों॥
ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर निर्वाण क्षेत्रेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

—श्री निर्वाणक्षेत्र पूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७ ई०, पृष्ठ ३९९।

४. हाटकमय दीपक रचौ, वाति कपूर सुधार।
शोधित घृत कर पूजिये मोह-तिमिर निरवार॥

ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय अष्टविधसम्यग्ज्ञानायत्रयोदश विध सम्यक् चारित्राय रत्नत्रयाय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।
—श्री क्षमावाणी पूजा, मल्लजी, संगृहीत ग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७ ई०, पृष्ठ ४०४।

के पूजाकार भविलालजू कृत 'श्री सिद्धपूजा भाषा' नामक रचना में 'दीप' शब्द व्यंजित है।[1]

धूप — धूप्यते अष्ट कर्माणां विनाशोभवति अनेन अतोधूपः। धूप गन्ध द्रव्यों से मिश्रित एक द्रव्य विशेष है जो मात्र सुगंधि के लिए अथवा देवपूजन के लिए जलाया जाता है। जैनदर्शन में यह सुगन्धित द्रव्य 'धूप' शब्द प्रतीकार्थ है तथा पूजा-प्रसंग में अष्ट कर्मों का विनाशक माना गया है।

जैन-हिन्दी-पूजा में अशुभ पाप के संग से बचने के लिए समस्त कर्मरूपी (ईंधन) को जलाने के लिए, प्रफुल्लित हृदय से जिनेन्द्र भगवान की सुगन्धित धूप-पूजा की जाती है ताकि शुद्ध संवर रूप आत्मिक शक्ति का विकास हो जिससे कर्मबन्ध रुक जायें।[2]

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में अठारहवीं शती के पूजाकार द्यानतराय प्रणीत श्री रत्नत्रयपूजा नामक रचना में 'धूप' शब्द का उल्लेख मिलता है।[3]

---

१. दीपक की जोति जगाय, सिद्धन कों पूजों।
कर आरति सन्मुख जाय निर्भय पद पूजों॥
ॐ ह्रीं णमोसिद्धाणं सिद्ध परमेष्ठिन मोहान्धकार विनाशाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।
—श्री सिद्धपूजाभाषा, भविलालजू, संगृहीतग्रन्थ-राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, सन् १९७६ पृष्ठ ७३।

२. सकल कर्म्म महेंधन दाहनं, विमल संवर भाव सुधूपनं।
अशुभ पुद्गल संग विवर्जितं, जिनपतेः पुरतोऽस्तु सुहर्षितः॥
—जिनपूजा का महत्व, श्री मोहनलाल पारसान, सार्द्ध शताब्दी स्मृति ग्रंथ, प्रकाशक-श्री जैन श्वेताम्बर पंचायती मंदिर, १३९, काटन स्ट्रीट, कलकत्ता-७, सन् १९६५, पृष्ठ ५५।

३. धूप सुवास विधार, चंदन अगर कपूर की।
जनम रोग निखार, सम्यक रत्नत्रय पूजं॥
ॐ ह्रीं अहिंसा व्रताय, सत्यव्रताय, ब्रह्मचर्यव्रताय, अपरिग्रह महाव्रताय मनोगुप्तये, वचन गुप्तये, कायगुप्तये, ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान निक्षेपण समिति, प्रतिष्ठापन समिति, त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय नमः धूपं निर्वपामीति स्वाहा।
—श्री रत्नत्रयपूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रंथ-राजेश नित्यपूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १९२।

उन्नीसवीं शती के पूजाकवि कमलनयन प्रणीत 'श्रीपंचकल्याणक पूजापाठ' नामक कृति में 'धूप' शब्द का व्यवहार दृष्टिगोचर होता है।[1] बीसवीं शती के पूजा रचयिता जिनेश्वरदास विरचित 'श्री चन्द्रप्रभुपूजा' नामक रचना में धूप शब्द इसी आशय से गृहीत है।[2]

फल—फलं मोक्षं प्रापयति इति फलम्। फल का लौकिक अर्थ परिणाम है। जैन धर्म में फल शब्द का प्रयोग विशेष अर्थ में हुआ है। पूजा प्रसंग में मोक्ष पद को प्राप्त करने के लिए क्षेपण किया गया द्रव्य वस्तुतः फल कहलाता है।[3]

जैन-हिन्दी-पूजा में दुःखदाई कर्म के फल को नाश करने के लिए मोक्ष का बोध देने वाले वीतराग प्रभो के आगे सरस, पके फल चढ़ाते हैं फलस्वरूप भक्त को आत्मसिद्धि रूप मोक्ष फल प्राप्त हो।[4]

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में अठारहवीं शती के पूजा कवि द्यानतराय ने

---

१. एजी कृष्णागरु कर्पूरले, अरू दश विधिधूप सम्हारि हो।
जिनजी के आगे खेवतें वसु कर्म होय जरि छारि हो॥

—श्री पंचकल्याणक पूजापाठ, कमलनयन, हस्तलिखित।

२. दशविधि धूप हुताशन माहीं खेय सुगंध बढ़ावो।
अष्टकरम के नाश करन को श्री जिनचरण चढ़ावो॥
ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय, अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

—श्री चन्द्रप्रभुपूजा, जिनेश्वरदास, संगृहीत ग्रंथ-जैन पूजापाठ संग्रह, प्रकाशक-भागचन्द पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १०१।

३. वसुनंदि श्रावकाचार, ४८८, जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग ३, जिनेन्द्रवर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, २०२९, पृष्ठ ७६।

४. कटुक कर्म विपाक विनाशनं सरस पक्वफल व्रज ढौकनं।
वहति मोक्षफलस्य प्रभोः पुर, कुरुत सिद्धि फलाय महाजना॥

—जिनपूजा का महत्व, श्री मोहनलाल पारसान, सार्द्ध शताब्दी स्मृति ग्रंथ, प्रकाशक-श्री जैन श्वेताम्बर पंचायती मंदिर, १३९, काटन स्ट्रीट, कलकत्ता-७, संस्करण १९६५ ई०, पृष्ठ ५५।

फल शब्द का व्यवहार 'श्री सोलहकारण पूजा' नामक रचना में किया है।[1] उन्नीसवीं शती के पूजाकार मल्ल रचित 'श्री क्षमावाणी पूजा' नामक रचना में फल शब्द उक्त अभिप्राय से अभिव्यक्त है।[2]

बीसवीं शती के पूजा प्रणेता युगल किशोर 'युगल' द्वारा विरचित 'श्री देवशास्त्र गुरुपूजा' नामक रचना में फल शब्द का प्रयोग इसी अर्थ-व्यंजना में हुआ है।[3]

उपर्यंकित विवेचन से स्पष्ट है कि जैन भक्त्यात्मक प्रसंग में पूजा का महत्वपूर्ण स्थान है। द्रव्यपूजा में अष्टद्रव्यों का उपयोग असंदिग्ध है। यहाँ इन सभी द्रव्यों में जिस अर्थ अभिप्राय को व्यक्त किया गया है। हिन्दी-जैन-पूजा-काव्य में वह विभिन्न शताब्दियों के रचयिताओं द्वारा सफलतापूर्वक व्यवहृत है। जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य मूल रूप में प्रवृत्ति से निवृत्ति का संदेश देता है साथ ही भक्त में सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरणा का भाव भरता है।

---

१. श्री फल आदि बहुत फल सारपूजों जिनवांछित दातार।
परम गुरु हो जय जय नाथ परमगुरु हो॥
ॐ ह्रीं दर्शन विशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यो मोक्षफल प्राप्ताय: फलं निर्वपामीति स्वाहा।
—श्री सोलहकारण पूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ-राजेश नित्यपूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १७९।

२. केला अंब अनार ही, नारिकेल ले दाख।
अग्रधरो जिन पदतने, मोक्ष होय जिन भाख॥
ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय रत्नत्रयाय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।
श्री क्षमावाणी पूजा, मल्लजी, संगृहीतग्रन्थ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, प्रकाशक—अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७, पृष्ठ ४०४।

३. जग में जिसको निज कहता मैं, वह छोड़ मुझे चल देता है।
मैं आकुल-व्याकुल हो लेता, व्याकुल का फल व्याकुलता है॥
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्याय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा
श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, युगलकिशोर जैन 'युगल', संगृहीत ग्रन्थ—राजेश नित्यपूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, सन् १९७६, पृष्ठ ४९।

पूजाकाव्य में उपास्य-शक्तियाँ

जैन धर्म में गुणों की पूजा की गई है। गुणों के व्याज से ही व्यक्ति को भी स्मरण किया गया है क्योंकि किसी कार्य का कर्त्ता यहाँ परकीय शक्ति को नहीं माना गया है। अपने अपने कर्मानुसार प्रत्येक प्राणी स्वयं कर्त्ता और भोक्ता होता है। गुणों की दृष्टि से जो गुणधारी शक्तियाँ विवेच्य काव्य में प्रयुक्त हैं यहाँ उनके रूप-स्वरूप पर संक्षेप में चर्चा करेंगे।

देव (श्री देवपूजा भाषा)[1]

दिव्यति द्योततिः इति देवः। 'दिव' धातु द्युति धातु से 'अच' प्रत्यय लगाकर देव शब्द निष्पन्न हुआ जिसका अर्थ क्रीड़ा करना है अथवा जय की इच्छा करना अथवा स्वर्गीय है।[2] इस प्रकार देव शब्द का अर्थ दिव्य-दृष्टि को प्राप्त करना है। जो दिव्य भाव से युक्त आठ सिद्धियों सहित क्रीडा करते हैं, जिनका शरीर दिव्यमान है, जो लोकालोक को प्रत्यक्ष जानते हैं वह सर्वज्ञ देव कहलाते हैं।[3]

सच्चादेव वही है जो वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी हो। जो किसी से न तो राग ही करता है और न द्वेष वही वीतरागी कहलाता है। वीतरागी के जन्म-मरण आदि १८ दोष नहीं होते, उसे भूख-प्यास भी नहीं लगती, समझ लो उसने समस्त इच्छाओं पर ही विजय प्राप्त करली है।

---

१. श्री देवपूजाभाषा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रन्थ—बृहज्जिनवाणी संग्रह, प्रकाशक व सम्पादक—पं० पन्नालाल वाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़, सितम्बर १६५६, पृष्ठ ३०० ।

२. क्रीडंति जदो णिच्चं गुणेहिं अहठहिं दिव्वभावेहिं ।
भासंत दिव्यकाया तम्हाते वण्णियां देवा ॥

पंच संग्रह प्राकृत ।१।६३, जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग २, जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, २०२८, पृष्ठांक ४४० ।

३. जो जाणदि पच्चवखं तियालगुणपच्चएहिं सुंजुत्रं ।
लोयालोयं सयलं सो सव्वण्हूवे देवो ॥

—कार्तिकेयानुप्रेक्षा, स्वामिकुमाराचार्य, राजचन्द्र जैन शास्त्र माला, आगास, २०१६, गाथा संख्या ३०२, पृष्ठ २१२ ।

वस्तुतः राग-द्वेष (पक्षपात) रहित हो और पूर्ण ज्ञानी हो, वही सच्चा देव है।[1]

शास्त्र (श्री देवशास्त्र गुरुपूजा)[2]

'शास्' धातु से 'ष्ट्रन' प्रत्यय करने पर 'शास्त्र' शब्द बनता है जिसका अर्थ पूज्य ग्रन्थ है। जिनवाणी जिसमें समाहित हो उसे शास्त्र की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। 'शास्त्र' जिनवाणी का शाब्दिक रूप है, जो प्रत्यक्ष-परोक्ष प्रमाण से बाधा रहित वस्तु स्वभाव का यथार्थ बोध कराने वाला, कुमार्ग से हटाकर सर्वप्राणी मात्र का हितकारी होता है। अपनी इसी गुण-गरिमा के कारण पूज्य हैं। जैन धर्म में 'देवशास्त्र-गुरु' को रत्न रूप स्वीकार किया गया है। शास्त्र श्रद्धान ही सम्यक् दर्शन माना गया है।[3] शास्त्र में कथंचित देवत्व विद्यमान है फलस्वरूप रत्नत्रय की पूर्णता प्राप्त होती है।[4]

---

१. आप्तेनोच्छिन्न दोषण, सर्वज्ञेनागमेशिना।
भवितव्यं नियोगेन, नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ॥
क्षुत्पिपासा जरातंक जन्मान्तक भय स्मयाः।
न राग द्वेष मोहाश्च यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते ॥

—रत्नकरण्ड श्रावकाचार, आचार्य समन्तभद्र, प्रकाशक-माणिक चन्द्र दिगम्बर जैन ग्रंथमाला, हीराबाग, बम्बई, वि० सं० १९८२, छंदांक ५-६, पृष्ठ ४।

२. श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, कुंजिलाल, संगृहीतग्रंथ-नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, सम्पादिका-ब्र० पतासीबाई, गया (बिहार), भाद्रपदवीर सं० २४८७, पृ० ११३।

३. श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपो भृताम।
त्रिमूढ़ापोढ़यष्टांग सम्यक् दर्शनं समयम् ॥

—रत्नकरण्ड श्रावकाचार ४, जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग ४, जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, २०३०, पृष्ठांक ३५७।

४. अरहंत सिद्धसाहू तिदयं जिणधम्मवयण पडिमाहू जिण णिलया इदिराएऽणवदेवता दितु में बोहि।

—रत्नकरण्ड श्रावकाचार, ११९, १६८, जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग-२ जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, २०३०, पृष्ठ ४३३।

जैन वाङ्मय में शास्त्र के कई भेद-प्रभेद किये गये हैं[1]—

१.	कल्पशास्त्र	— जिसमें अपराध के अनुरूप दण्ड विधान कहा गया हो।
२.	निमित्त शास्त्र	— इसमें स्त्री-पुरुष के लक्षणों का वर्णन किया गया हो।
३.	बाध्य शास्त्र	— ज्योतिर्ज्ञान, छन्दः शास्त्र, अर्थशास्त्र वाध्य शास्त्र है।
४.	लौकिक शास्त्र	— व्याकरण गणितादि।
५.	वैदिक शास्त्र	— सिद्धान्त शास्त्र।
६.	सामयिक शास्त्र	— स्याद्वाद, न्याय शास्त्र।

वस्तुतः देव की वाणी को शास्त्र कहते हैं। वह वीतराग है अतः उनकी वाणी भी वीतरागता की पोषक होती है। राग को धर्म बताये वह वीतराग वाणी नहीं है। वीतराग वाणी का आधार है तत्त्व-चिंतन। उल्लेखनीय बात यह है कि इसमें कहीं भी तत्त्व का विरोध परिलक्षित नहीं होता।[2]

गुरु (श्री गुरु पूजा)[3]

गृहणाति उपदिशति सम्यक्दर्शन, सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र सः गुरु। 'गृह' धातु से गुरु शब्द बना है। लोक में गुरु का अर्थ 'बड़ा' है। जैनदर्शन में पंच परमेष्ठियों यथा अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय

---

१. (अ) स्त्रीपुरुष लक्षणं निमितं, ज्योतिर्ज्ञानं, छन्दः अर्थशास्त्रं वैद्यं, लौकिक वैदिक समयाश्च वाध्य शास्त्राण।
—भगवती आराधना, ६१२।८१२।७, जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग ४, जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, २०३०, पृष्ठांक २८।

(ब) व्याकरण गणित लौकिक शास्त्र है सिद्धान्त शास्त्र वैदिक शास्त्र है, स्याद्वादन्यायशास्त्र व अध्यात्मक सामाजिक शास्त्र है।
—मूलाचार भाषा, १४४, जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग ४, जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, २०३०, पृष्ठांक २८।

२. आप्तोपज्ञमनुल्लङ्घ्य, महष्टेष्ट विरोधकम्।
तत्वोपदेशकृत-सार्वं, शास्त्रं कापथ-घट्टनम्॥
—रत्नकरण्डश्रावकाचार, आचार्य समन्तभद्र, प्रकाशक- माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रंथमाला, हीराबाग, बंबई, वि० सं० १९८२, छंदाक ९, पृष्ठ ८।

३. श्री गुरुपूजा, हेमराज, संगृहीत ग्रंथ-बृहजिनवाणी संग्रह, सम्पा० व प्रकाशक-पं० पन्नालाल बाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़, सितम्बर १९५६, पृष्ठ ३०६।

तथा साधु में से एक परमेष्ठी विशेष होता है।[1] ये गुरु रत्नत्रय के धारक जीवन-कल्याणक तथा प्रदर्शक होते हैं।[2] अपने इन्हीं गुणों के कारण भक्त्यात्मक प्रसंगों में गुरु की वंदना की गई है।

वस्तुतः नग्न दिगम्बर साधु को गुरु कहते हैं। गुरु सदा आत्मध्यान, स्वाध्याय में लीन रहते हैं। सर्वप्रकार के आरम्भ-परिग्रह से सर्वथा रहित होते हैं। विषय-भोगों की लालसा उनमें लेशमात्र भी नहीं होती। ऐसे तपस्वी साधुओं को गुरु कहते हैं।[3]

पंचपरमेष्ठी (श्री पंच परमेष्ठी पूजन)[4]

परमश्चासोइष्टी परमेष्ठी। परमेष्ठिन शब्द सेङीष् प्रत्यय लगाकर परमेष्ठी शब्द बना। परमेव्योम्नि चिदाकोशे ब्रह्मपदेव तिष्ठतीति अर्थात् आकाश में स्थिति ब्रह्मपद पदाधिष्ठित ब्रह्म विशेष। पैंतीस अक्षरों से युक्त परमइष्ट समाहार समुदाय ही परमेष्ठी है।[5] परमेष्ठियों को नमस्कार करने की प्रथा है। इसे जैन साहित्य में नवकार मन्त्र

---

१. 'सुस्सूसया गुरुणं सम्यक्-दर्शनज्ञान चारित्र गुरुतया मुख इत्युचयन्ते आचार्योपाध्याय साधवः।
—भगवती आराधना। ३००। ५११। १३, जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग २, जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, २०२८, पृष्ठांक २५१।

२. पंचमहाव्रतकलिका मद मथनः क्रोधः लोभ भय व्यक्त।
एय गुरुरिति भव्यते तस्माज्जानीहि उपदेशं॥
ज्ञानसागर। ५। जैनेन्द्रसिद्धान्त कोश, भाग २, जिनेन्द्रवर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, २०२८, पृष्ठांक २५१।

३. विषयाशावशातीतो, निरारंभो उपरिग्रह.।
ज्ञानध्यानतपो रक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते॥
—रत्नकरण्ड श्रावकाचार, आचार्य समन्तभद्र, प्रकाशक-माणिक चन्द्र दिगम्बर जैन ग्रंथमाला, हीराबाग, वंबई, वि० सं० १९८२, छंदांक १०, पृष्ठ ८।

४. श्री पंचपरमेष्ठीपूजन, राजमल पवैया, संगृहीत ग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस-१, संस्करण १९६९ पृष्ठ १२७।

५. पणतीस सोल छप्पण चउदुगमेगं च जवहज्झाएह।
परमेठिटवाचयाणं अण्णं च गुरुवएसेण॥
—वृहद्द्रव्य संग्रह, नेमिचन्द्राचार्य, श्री मदराचन्द्र जैन शास्त्र माला, आगास, २०२२, श्लोक संख्या ४९, पृष्ठांक १८७।

की संज्ञा प्रदान की गई है। परमेष्ठी के उपदेश उनका चिन्तवन मोक्ष-मार्ग का प्रदायक है।[1] जैनदर्शन में परमेष्ठी पाँच प्रकार के कहे गए है[2] यथा—

१. अर्हन्त
२. सिद्ध
३. आचार्य
४. उपाध्याय
५. साधु

अरहंत—'अर्ह पूजयामि' धातु में अर्हन्त शब्द बनता है। अर्ह से 'अच' प्रत्यय करने पर अर्हंत शब्द निष्पन्न हुआ। अर्हन्त पूज्य अर्थ में व्यवहृत है।[3] जो गृह स्थापना त्यागकर मुनिधर्म अंगीकार कर, निज स्वभाव साधन द्वारा चार घाति कर्मों—ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय तथा अन्तराय-का क्षय करके अनंत चतुष्टय-अनंत दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य—रूप विराजमान हुये वे वस्तुतः अरहंत हैं।[4]

---

१. तिहि खणि चवई जीवघो सेठिहुउआराहुउ निरू परमेठि।
—जिनदत्त चरित्र, कविराजसिंह, माताप्रसाद गुप्त, एम. ए., डी. लिट्. गेंदीलाल एडवोकेट, मंत्री, प्रबंधकारिणी कमेटी, महावीर जी, वी० स० २४७५, छंदांक ५२, पृष्ठांक २३।

२. णमो अरिहंताणं, णमोसिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोय सव्व साहूणं॥
—षट् खण्डागम।१। १, १। १। ८, जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग ३, जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, २०२९, पृष्ठांक २५८।

३. अरहंति णमोकारं अरिहा पूजा सुरुत्मा लोय।
अरिहंति वंदण णमंसणाणि अरिहृति पूय सवकारं।
अरिहन्त सिध्द गमण अरहंता तेण उच्येति॥
—मूलाचार। ५०५-५६२। जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग १, जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, संवत् २०२७, पृष्ठांक १४०।

४. जरवाहि जम्म मरणं चउगएगमणं च पुण्ण पावंच।
हतूण दो सकम्मे हूउ णाणमयं च अरहंतों॥
—वोधपाहुड, अष्टपाहुड, कुन्दकुन्दाचार्य, श्री पाटनी दिगम्बर जैन ग्रन्थ माला, स० २४७६, पृष्ठांक १२८. श्लोक संख्या ३०।

जैन दर्शन के अनुसार व्यक्ति अपने कर्मों का विनाश करके स्वयं परमात्मा बन जाता है। उस परमात्मा की दो कोटियाँ होती हैं। यथा—

(१) शरीर सहित जीवोन्मुक्त अवस्था—यह अवस्था अर्हंत की कहलाती है।

(२) शरीर रहित देह मुक्त अवस्था —यह अवस्था सिद्ध की कहलाती है।

अर्हंत भी दो प्रकार के होते हैं—

(१) तीर्थंकर—विशेष पुण्य सहित अर्हंत जिनके पाँच कल्याणक—गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, मोक्ष-महोत्सव मनाए जाते हैं, तीर्थंकर कहलाते हैं।

(२) सामान्य—इनके कल्याणक नहीं मनाए जाते हैं।

ये सभी सर्वज्ञत्व युक्त होते हैं अतएव उन्हें केवली भी कहते हैं।[1] जैन धर्म में अर्हन्त शब्द का बड़ा महत्त्व है। सिद्धावस्था की यह प्रथम श्रेणी है। अर्हन्त सशरीर होते हैं इसलिए आर्य खण्ड में विहार करते हुए धर्मोपदेश करते हैं। तीर्थंकर अरहन्त के समवशरण होता है शेष अरहंत के गंधकुटी होती है।

सिद्ध—'सिध' धातु से 'क्त' प्रत्यय करने पर सिद्ध शब्द निष्पन्न होता है जिसका अर्थ मुक्तात्मा है। जैन वाङ्मय में सिद्ध अष्टकर्मों से मुक्त आत्मा विशेष है। शुक्ल ध्यान में कर्मों का क्षय करके जो मुक्त होता है उसे सिद्ध कहा गया है।[2] यह आत्मालोक के ऊर्ध्व भाग में विराजमान रहती है।[3] पर द्रव्यों से सम्बन्ध टूटने पर मुक्तावस्था की सिद्धि होने से

---

१. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग १, जिनेन्द्रवर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, स० २०२७, पृष्ठांक १४०।

२. झाणे कम्मकखउ करिवि मुक्कउ होइ अणंतु।
जिणवर देव हूं सो जिविय पामणिउ सिद्ध महेतु॥
—परमात्मप्रकाश, योगीन्द्रदेव, राजचन्द्र जैनशास्त्रमाला, आगास, २०२९, दोहा २०१, पृष्ठांक ३०४।

३. णट्ठट्ठकम्म देहो लोया लोयस्स जाणओदट्ठा।
पुरिसायारो अप्पासिद्धो झाएह लोयसिहरत्थो॥
—बृहद्द्रव्य संग्रह, नेमिचन्द्राचार्य, राजचन्द्र जैन शास्त्रमाला, आगास, स० २०२६, श्लोक संख्या ५१, पृष्ठांक १९५।

सिद्ध कहलाता है। सिद्ध तीनों लोक के प्राणियों का हित करने वाले कहे गए हैं।[1]

वस्तुतः जो गृहस्थ अवस्था का त्यागकर मुनि धर्म साधन द्वारा चार घाति कर्मों का नाश होने पर अनन्त चतुष्टय प्रकट करके कुछ समय बाद अघाति कर्मों के नाश होने पर समस्त अन्य द्रव्यों का सम्बन्ध छूट जाने पर पूर्ण मुक्त हो गये हैं, लोक के अग्रभाग में किंचित न्यून पुरुषाकार विराजमान होगये हैं, जिनके द्रव्य कर्म, भावकर्म और नोकर्म का अभाव होने से समस्त आत्मिक गुण प्रकट हो गये हैं वे वस्तुतः सिद्ध कहलाते हैं।

आचार्य—'अङ्' उपसर्ग 'चार' धातु 'णयत' प्रत्यय् होने पर आचार्य शब्द की निष्पत्ति हुई है। इसका प्रयोग अधिकतर रहस्य के साथ ज्ञानोपदेश देने वाले विद्वानों के लिए किया जाता है। आचार्य में छत्तीस गुण विद्यमान होते हैं। वह बारह प्रकार का अन्तरंग तथा बहिरंग तप, दशधर्म, पंचाचार, षट्कर्म तथा तीन गुप्तियों का आचरण करने वाले होते हैं।[2] आचार्य पर मुनि संघ की व्यवस्था तथा नए मुनियों को दीक्षा दिलाने का दायित्व भी विद्यमान रहता है।[3]

वस्तुतः जो सम्यग्दर्शन, सम्यक् चारित्र की अधिकता से प्रधान पद प्राप्त करके मुनि संघ के नायक हुए हैं तथा जो मुख्यतः निर्विकल्प स्वरूपाचरण में ही मग्न रहते हैं, पर कभी-कभी रागांश के उदय से करुणा बुद्धि हो तो धर्म के लोभी अन्य जीवों को धर्मोपदेश देते हैं, दीक्षा लेने वाले को योग्य जानकर

---

१. अण्णुविवधुवि तिहुयणहं सासय सुक्खसहाउ।
तित्थु जिसयलु विकाल जिय विवसई लब्ध सहाउ।
—परमात्म प्रकाश, योगीदुदेव, राजचन्द्र जैन शास्त्र माला, अगास स० २०२९, दोहा छंदांक २०२, पृष्ठांक ३०५।

२. 'ज्ञान दर्शन चारित्र तपो वीर्याचार युक्तत्वात्संभावित परम शुद्धोपयोग-भूमिकाना चार्योपाध्यायसाधुत्व विशिष्टान श्रमणांश्च प्रणमामि।'
—प्रवचनसार, तात्पर्य वृत्ति। २, जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग ४, जिनेन्द्रवर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, सं० २०३०, पृष्ठांक ४११।

३. सदाचार विहण्हू सदा आयरियं चरं।
आयार मायारवतो आयरियोतेज उच्चदे॥
—मूलाचार, गाथा संख्या ५०९, जैनेन्द्रसिद्धान्त कोश, भाग १, जिनेन्द्र-वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, स० २०२७, पृष्ठांक २५२।

दीक्षा देते हैं, अपने दोष प्रकट करने वाले को प्रायश्चित विधि से शुद्ध करते हैं—ऐसे पवित्र आचरण करने और कराने वाले पूज्य आत्मन वस्तुतः आचार्य कहलाते हैं।

उपाध्याय—'उप' उपसर्ग तथा 'अधि' उपसर्ग में 'ई' धातु 'घङ्' प्रत्यय के योग से उपाध्याय शब्द निष्पन्न है जिसका अर्थ रत्नत्रय तथा धर्मोपदेश को योग्यता रखने वाला है। लोक में प्रचलित 'उपाध्याय' शब्द जाति विशेष का बोध करता है किन्तु जैनधर्म में इसका भिन्न अर्थ है। रत्नत्रय तथा धर्मोपदेश की योग्यता रखने वाले मुनि को आचार्य द्वारा पद प्रदान किया जाता है। उपाध्याय मुनि संघ में कर्मोपदेश देते हुए भी निर्विकार रहकर आत्मध्यानादि कार्य करते रहते हैं।[1]

जैनशास्त्रों के ज्ञाता होकर संघ में पठन-पाठन के अधिकारी हुए हैं तथा जो समस्त शास्त्रों का सार आत्मस्वरूप में एकाग्रता है अधिकतर तो उसमें लीन रहते हैं, कभी-कभी कषायांश के उदय से यदि उपयोग वहाँ स्थिर न रहे तो उन शास्त्रों को स्वयं पढ़ते हैं और दूसरों को पढ़ाते हैं—वे उपाध्याय कहलाते हैं। ये मुख्यतः द्वादशांग अर्थात् जिनवाणी के पाठी होते हैं।

साधु—साध्नोति परकार्यम् इति साधु अर्थात् साधना करने वाला साधु कहा जाता है। जैन वाङ्मय में जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान से परिपूर्ण शुद्ध चारित्र्य को साधते हैं, सर्वजीवों में 'समभाव को प्राप्त हों' वे साधु कहलाते हैं।[2]

---

१. जो रयणत्तयजुत्तोणिच्चं धम्मोवदेसणेणिरदो।
सोउवज्झाओ अप्पा जदिवरवसहो णमो तस्स ॥
बृहद्द्रव्यसंग्रह, नेमिचन्द्राचार्य, श्रीमद्राजचन्द्र जैन शास्त्रमाला, अगास, सं० २०२२, गाथा ५३, पृष्ठांक १९९।

२. णिव्वाण साधए जोगे सदा जुंजंति साधवो।
समा सव्वेसु भूदेसु तम्हा ते सव्व साधवो ॥
मूलाचार, ५१२। जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग ४, जिनेन्द्रवर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, सं० २०३०, पृष्ठांक ४०४।

ऐसा साधु चिरकाल से प्रव्रजित होता है।[1] साधु में अट्ठाइस गुण होना आवश्यक है।[2]

वस्तुतः आचार्य, उपाध्याय को छोड़कर अन्य समस्त जो मुनि धर्म के धारक हैं और आत्म स्वभाव को चाहते हैं वाह्य २८ मूल गुणों को अखंडित पालते हैं, समस्त आरम्भ और अन्तरंग वहिरंग परिग्रह से रहित होते हैं, सदा ज्ञानध्यान में लवलीन रहते हैं, सांसारिक प्रपंचों से सदा दूर रहते हैं, उन्हें साधु परमेष्ठी कहते हैं।

चैत्यालय (श्री अकृत्रिमचैत्यालयपूजा)[3]

'चित' धातु में 'त्य' प्रत्यय होने पर 'चैत्य' शब्द निष्पन्न हुआ, 'चैत्य' शब्द में 'आलय' शब्द सन्धि करने पर 'चैत्यालय' शब्द वना। चैत्य का अर्थ प्रतिमा है—आलय स्थान को कहते हैं। इस प्रकार जहाँ प्रतिमा विराजमान हों वह चैत्यालय कहलाता है।[4] चैत्यालय दो प्रकार से कहे गये हैं[5], यथा—

---

१. चिर प्रव्रजितः साधुः।
—सर्वार्थसिद्धि. ।६।२४।४४२।१०, जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग ४, जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, स० २०३०, पृष्ठांक ४०४।

२. पांच महाव्रत, पांच समिति, पांच इन्द्रियों का रोध, केशलोंच, षट् आवश्यक, अचेलकत्व, अस्नान, भूमिशयन, अदंतधावन, खड़े-खड़े भोजन, एक वार आहार ये वास्तव में श्रमणों के अट्ठाईस मूल गुण जिनवर ने करे हैं।
—प्रवचनचार, कुंदकुंदाचार्य, प्रकाशक—मंत्री श्री सहजानंद शास्त्र-माला, १८५-ए. रणजीतपुरी, सदर, मेरठ, सन् १९७९, श्लोकांक २०८-२०९, पृष्ठ ३९४।

३. श्री अकृत्रिम चैत्यालयपूजा, नेम, संगृहीत ग्रंथ—जैन पूजापाठ संग्रह, प्रकाशक-भागचन्द पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ २५१।

४. श्रीमद्भगवत् सर्ववीतराग प्रतिमाधिष्ठित चैत्यगृहं।
—वोधपाहुड टीका। ८।७६।१३, जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग २ जिनेन्द्रवर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, वि० स० २०२८, पृष्ठ ३०२।

५. कृत्याकृत्रिम-चारु चैत्यनिलयान् नित्यं त्रिलोकीगतान्।
वंदे भावन—व्यन्तरद्युतिवरान् वग्रीमरावास गान॥
कृत्रिमाकृत्रिमजिनचैत्य पूजार्घ्यं।
ज्ञानपीठ पूजांजलि, भारतीय ज्ञानपीठ, सन् १९६९, छंदांक १, पृष्ठांक ५।

(१) अकृत्रिम चैत्यालय—ये चैत्यालय चारों प्रकार के देवों के भवन, प्रासादों व विमानों तथा स्थल-स्थल पर मध्यलोक में विराजमान है।

(२) कृत्रिम चैत्यालय—ये मनुष्यकृत हैं तथा मनुष्य लोक में निर्मित किए गए हैं।

अकृत्रिम चैत्यालय—चैत्यालय पवित्र स्थान हैं। यहाँ मध्यलोक के जीव नहीं पहुँच सकते। किन्तु इन्द्रादि देव यहाँ आकर इन चैत्यालयों में विराजमान जिन प्रतिमा का स्तवन करते हैं। ये चैत्यालय नंदीश्वरद्वीप में हैं। ये सभी स्थान तीर्थ हैं अतएव इनकी वंदना की गई है। श्रीनंदीश्वरद्वीप की पूजा[1] तथा श्री अकृत्रिम चैत्यालयों की पूजा नामक रचनायें इसी तीर्थ भाव का परिणाम है।

आचार्य कुन्दकुन्द ने लिखा है कि—कैलासपर्वत से ऋषभनाथ, चम्पापुर से वासुपूज्य, गिरनार से नेमिनाथ, पावापुर से महावीर तथा शेष बीस तीर्थंकर सम्मेदशिखर से मोक्ष गए हैं उन सभी को नमस्कार किया है।[2] पूजाकार ने सिद्धक्षेत्र की पूजा नामक काव्य रचकर तीर्थ क्षेत्रों की वंदना की है। श्री निर्वाणपूंजा इसी से सम्बन्धित है।[3]

चौबीस तीर्थंकर (श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर समुच्चय पूजा)[4]

तरति पापादिक यस्मात तत् तीर्थ। 'तृ' धातु से उणादि प्रत्यय

---

१. श्री नंदीश्वरद्वीपपूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्यपूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, सन् १९७६, पृष्ठ १७१।

२. कैलासे वृषभस्य, निर्वृति महावीरस्य पावापुरं—
चम्पायां वसुपूज्य तुग जिनपतेः सम्मेद शैले र्हताम।
शेषाणामपि चोर्जयन्त शिखरे नेमीश्वर स्यार्हतेयं
निर्वाणावनयः प्रसिद्ध विभवाः कुर्वन्तु ते मंगलम्॥

—मंगलाष्टक, ज्ञानपीठ पूजांजलि, भारतीय ज्ञानपीठ, १९६९ ई०, छंदांक ६, पृष्ठांक ५।

३. श्री निर्वाणक्षेत्र पूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ—राजेशनित्यपूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६ ई०, पृष्ठ ३७३।

४. हीराचंद, श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर समुच्चयपूजा, संगृहीत ग्रंथ—नित्य नियम विशेषपूजन संग्रह, सम्पा० व प्रकाशिका—ब्र० पतासीबाई जैन, गया (बिहार), पृष्ठ ७१।

करने पर तीर्थ बनता है जिसका अर्थ है पापों से तरना तथा 'क्रि' धातु से 'कर' शब्द बना अर्थात करोतीति करः। इस प्रकार तीर्थस्य करः तीर्थंकर। इस प्रकार तीर्थंकर का अर्थ स्वयं अर्थात् दूसरों को पार करने वाला है। जैनदर्शन में संसार-सागर को स्वयं पार करने तथा कराने वाले महापुरुष को तीर्थंकर कहा गया है।[1] ऐसी आत्मा तीर्थंकर नाम कर्म के उदय से तीर्थंकर होती है। तीर्थंकर बनने के संस्कार षोड्स कारक रूप अत्यन्त विशुद्ध भावनाओं द्वारा उत्पन्न होते हैं। उनके पांच कल्याणक सम्पन्न होते हैं।[2]

जैनधर्म में चौबीस तीर्थंकरों का उल्लेख है।[3] अग्रलिखित लेखनी में प्रत्येक का परिचय प्रस्तुत करना हमें अभीप्सित है।

(१) ऋषभनाथ (श्री ऋषभदेवपूजा)[4]

भगवान ऋषभनाथ प्रथम तीर्थंकर हैं अस्तु इन्हें आदिनाथ भी कहते हैं। इनके पिता का नाम नाभिराय और माता का नाम मरुदेवी था। आपका

---

१. 'तीर्थकृतः संसारोत्तरणहेत भूत्वात्तीर्थमिवतीर्थमागमः।
तत्कृतवतः।'
समाधिशतक।२।२२।२४, जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग २, जिनेन्द्रवर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, स० २०२८, पृष्ठांक ३७२।

२. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग २, जिनेन्द्रवर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, स० २०२८, पृष्ठांक ३७१।

३ ऋषभ अजित संभव अभिनंदन,
सुमति पदम सुपार्श्व जिनराय।
चन्द पुहुप शीतल श्रेयांस जिन,
वासुपूज्य पूजित सुरराय॥
विमल अनन्त धर्म जस उज्ज्वल,
शांति कुंथु अर मल्लि मनाय।
मुनि सुव्रत नमि नेमि पार्श्व प्रभु,
वर्द्धमान पद पुष्प चढ़ाय॥
—बालबोध पाठमाला, भाग १, पं० रतनचन्द भारिल्ल, प्रकाशक—पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-४, बापू नगर, जयपुर, श्रुतपंचमी २६ मई, १९७४, पृष्ठ १०।

४. श्री ऋषभदेवपूजा, मनरंगलाल, संगृहीत ग्रंथ—सत्यार्थयज्ञ, प्रकाशक—पं० शिखरचन्द्र जैन शास्त्री, जवाहरगंज, जबलपुर, म० प्र०, चतुर्थ संस्करण, अगस्त १९५० ई०, पृष्ठ ५।

जन्म अयोध्या नगरी में हुआ था। तीर्थंकर परम्परा में प्रभु आदिनाथ के अंगूठे में प्रतिबिम्बित होने वाला चिन्ह 'वृषभ' था। आपके शरीर का रंग हेम वर्ण था।

(२) अजितनाथ (श्री अजितनाथजिनपूजा)[१]

तीर्थंकर क्रम में अजित नाथ जी दूसरे तीर्थंकर हैं। पिता का नाम जितशत्रु और माता का नाम विजयादेवी। आपका चिन्ह 'गज' तथा वर्ण पीत। जन्मस्थान साकेत।

(३) सम्भवनाथ (श्री सम्भव नाथजिनपूजा)[२]

भ० सम्भवनाथ जी तीसरे क्रम के तीर्थंकर हैं। आपके माता-पिता का नाम क्रमशः सुसेना और जितारि है। चिन्ह हैं अश्व। वर्ण है पीत और जन्मस्थान है श्रावस्ती।

(४) अभिनंदननाथ (श्री अभिनन्दननाथ पूजा)[३]

चौथे क्रम में अभिनंदन नाथ का नाम आता है। आपके पिता श्री संवर और मातुश्री का नाम सिद्धार्था। जन्मस्थली है साकेतपुरी। सुवर्ण के समान वर्ण वाले विभु अभिनंदन का चिन्ह बन्दर है।

(५) सुमतिनाथ (श्री सुमतिनाथ जिनपूजा)[४]

पाँचवें तीर्थंकर सुमतिनाथ जी हैं। पिता का नाम है मेघप्रभ और मातुश्री हैं—मंगला। जन्मस्थल है साकेत। चिन्ह है चकवा।

---

१. श्री अजितनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न, संगृहीत ग्रंथ— चतुर्विशति जिन-पूजा संग्रह, प्रकाशक—वीर पुस्तक भंडार, मनिहारों का रास्ता, जयपुर, पौष सं० २०१८, पृष्ठ १५।

२. श्री संभवनाथ जिनपूजा, रामचन्द्र, संगृहीत ग्रंथ— चतुर्विशति जिनपूजा, संग्रह प्रकाशक— नेमीचन्द बाकलीवाल, जैनग्रंथ कार्यालय, मदनगंज (किशनगढ़) राजस्थान, अगस्त १९५१, पृष्ठ ३०।

३. श्री अभिनंदननाथपूजा, मनरंगलाल, संगृहीत ग्रंथ—सत्यार्थयज्ञ, प्रकाशक— पं० शिखरचन्द्र जैन शास्त्री, जवाहरगंज, जबलपुर, म० प्र०, चतुर्थ संस्करण, अगस्त १९५० ई०, पृष्ठ ३२।

४. श्री सुमतिनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न संगृहीत ग्रंथ—चतुर्विशति जिनपूजा संग्रह, वीर पुस्तक भंडार, मनिहारों का रास्ता, जयपुर, पौष सं० २०१८ पृष्ठ ३९।

(६) पद्मप्रभ (श्री पद्मप्रभजिनपूजा)[1]

कौशाम्बी में जन्मे प्रभु पद्मप्रभ के माता-पिता का नाम क्रमशः सुसीमा तथा धरण है। मूंग के समान रक्त वर्णीय पद्मप्रभ का चिन्ह 'कमल' है।

(७) सुपार्श्वनाथ (श्री सुपार्श्वनाथ जिनपूजा)[2]

हरितवर्णीय सुपार्श्वनाथ का जन्म वाराणसी में हुआ है। माता का नाम पृथिवी और पिता सुप्रतिष्ठ। आपका चिन्ह 'नंद्यावर्त' (सांथिया) है।

(८) चन्द्रप्रभ (श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजा)[3]

आठवें क्रम में चन्द्रप्रभ तीर्थंकर का नाम आता है। चन्द्रपुरी नगरी में माता लक्ष्मणा और पिता महासेन के घर आपने जन्म लिया। कुन्द पुष्प के समान रंग वाले चन्द्रप्रभ का चिन्ह 'अर्द्धचन्द्र' है।

(९) पुष्पदंत (श्री पुष्पदंतपूजा)[4]

काकन्दी नगरी में जन्मे प्रभु पुष्पदंत के माता-पिता का नाम है क्रमशः रामा और सुग्रीव। कुन्दपुष्प सदृश रंगवाले विभु का चिन्ह 'मगर' है। सुविधिनाथ आपका दूसरा नाम है।

(१०) शीतलनाथ (श्री शीतलनाथ जिनपूजा)[5]

विभु शीतलनाथ जी के पिता का नाम दृढ़रथ और माता का नाम

---

१. श्री पद्मप्रभ जिनपूजा, वृन्दावन संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, सन् १९७६, पृष्ठ ८२।
२. श्री सुपार्श्वनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न, सगृहीत ग्रंथ—चतुर्विंशति जिन-पूजा, संग्रह, वीर पुस्तक भण्डार, मनिहारों का रास्ता, जयपुर, पौष सं० २०१८, पृष्ठ ५१।
३. श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजा, वृन्दावन, संगृहीत ग्रंथ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, प्रथम संस्करण १९५७ ई०, पृष्ठ ३३३।
४. श्री पुष्पदंत पूजा, मनरंगलाल, संगृहीत ग्रंथ—सत्यार्थयज्ञ, पं० शिखरचन्द्र जैन शास्त्री, जवाहरगंज, जबलपुर, म० प्र०, चतुर्थ संस्करण, अगस्त १९५०, पृ० ६८।
५. श्री शीतलनाथ जिनपूजा रामचन्द्र, संगृहीत ग्रंथ—चतुर्विंशति जिनपूजा संग्रह नेमीचन्द बाकलीवाल,, जैन ग्रंथ कार्यालय, मदनगंज (किशनगंज) राजस्थान, अगस्त १९५१, पृष्ठ ८५।

नन्दा है। आपने भद्दलपुर में जन्म लिया। सुवर्णरंगीय शीतलनाथ का चिन्ह 'कल्पवृक्ष' है।

(११) श्रेयांसनाथ (श्री श्रेयांसनाथ जिनपूजा)[१]

ग्यारहवें क्रम के तीर्थंकर श्रेयांसनाथ ने सिंहपुरी में माता विष्णुदेवी के उदर से जन्म लिया। पीतवर्णीय श्रेयांसनाथ के पिता का नाम विष्णु है। आपका चिन्ह गेंडा' है।

(१२) वासुपूज्य (श्री वासुपूज्य जिनपूजा)[२]

तीर्थंकर परम्परा में बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्य। आपके पिता वसुपूज्य तथा मातुश्री विजया हैं। जन्मस्थल है चम्पानगरी। मूंग के समान रक्त वर्णीय वासुपूज्य का चिन्ह 'भैंसा' है।

(१३) विमलनाथ (श्री विमलनाथ पूजा)[३]

तेरहवें तीर्थंकर विमलनाथ के पिता कृतवर्मा हैं और मातुश्री जयश्यामा। जन्मस्थान है—कम्पिलनगरी। स्वर्ण सदृश पीतरंगीय शरीर वाले विमलनाथ का चिन्ह 'शूकर' है।

(१४) अनंतनाथ (श्री अनंतनाथ पूजा)[४]

पीतरंगीय अनंतनाथ का जन्म स्थान अयोध्यापुरी है। आपके पिताश्री सिंहसेन और माता का नाम है सर्वयशा। आपका चिन्ह 'सेही' है।

---

१. श्री श्रेयांसनाथ जिनपूजा, रामचन्द्र, संगृहीत ग्रंथ--चतुर्विंशति जिनपूजा संग्रह नेमीचन्द वाकलीवाल, जैन ग्रंथ कार्यालय, मदनगंज (किशनगढ़), राजस्थान, अगस्त १९५१, पृष्ठ ९५।

२. श्री वासुपूज्य जिनपूजा, वृन्दावन, संगृहीत ग्रंथ - ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, प्रथम संस्करण १९५७ ई०, पृष्ठ ३४५।

३. श्री विमलनाथ पूजा, मनरंगलाल, संगृहीत ग्रंथ—सत्यार्थयज्ञ, पं० शिखरचन्द्र जैन, शास्त्री, जवाहरगंज, जबलपुर, म० प्र०, चतुर्थ संस्करण, अगस्त १९५० ई०, पृष्ठ ९१।

४. श्री अनंतनाथपूजा, मनरंगलाल, संगृहीत ग्रंथ—सत्यार्थयज्ञ, पं० शिखरचन्द्र जैन, शास्त्री, जवाहरगंज, जबलपुर, म० प्र०, चतुर्थ संस्करण, अगस्त १९५० ई०, पृष्ठ ९९।

(१५) धर्मनाथ (श्री धर्मनाथ जिनपूजा)[1]

रत्नपुर में जन्मे धर्मनाथ के माता-पिता का नाम क्रमशः सुव्रता और भानु नरेन्द्र है। आपके तन का रंग सोने के समान था। वज्र आपका चिन्ह है।

(१६) शांतिनाथ (श्री शांतिनाथजिनपूजा)[2]

शान्तिनाथ का जन्मस्थान है हस्तिनापुर। ऐरा आपकी मातुश्री और पिताश्री हैं विश्वसेन। पीतवर्ण के शांतिनाथ का चिन्ह 'हरिण' है।

(१७) कुंथुनाथ (श्री कुंथुनाथ जिनपूजा)[3]

कुंथुनाथ तीर्थंकर परम्परा में सत्रहवें क्रम पर हैं। आपके पिता का नाम सूर्यसेन और माता का नाम है श्रीमती देवी। जन्मस्थान है हस्तिनापुर। वर्ण है स्वर्ण। आपका चिन्ह 'बकरा' है।

(१८) अरनाथ (श्री अरनाथ जिनपूजा)[4]

अठारहवें क्रम के तीर्थंकर अरनाथ है। आपके पिता हैं सुदर्शन और मातुश्री हैं मित्रा। जन्मस्थान है हस्तिनापुर। वर्ण है पीत और चिन्ह है 'मत्स्य'।

(१९) मल्लिनाथ (श्री मल्लिनाथपूजा)[5]

मल्लिनाथ का जन्मस्थान है मिथलापुरी। आपके पिता हैं कुम्भ और मातुश्री प्रभावती। वर्ण है पीत। 'कलश' आपका चिन्ह है।

---

१. श्री धर्मनाथ जिनपूजा, रामचन्द्र, संगृहीतग्रंथ—चतुर्विशति जिनपूजा संग्रह, नेमीचन्द बाकलीवाल, जैन ग्रंथ कार्यालय, मदनगंज (किशनगढ़) राजस्थान, अगस्त १९५१, पृष्ठ १३०।

२. श्री शांतिनाथ जिनपूजा, वृन्दावन, संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्यपूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, सन् १९७६, पृष्ठ ११०।

३. श्री कुंथुनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न, संगृहीत ग्रंथ—चतुर्विशति जिनपूजा संग्रह, वीर पुस्तक भंडार, मनिहारों का रास्ता, जयपुर, पौप सं०२०१८, पृष्ठ १११।

४. श्री अरनाथजिनपूजा, रामचन्द्र, संगृहीतग्रन्थ—चतुर्विंशति जिनपूजा संग्रह नेमीचन्द वाकलीवाल, जैन ग्रन्थ कार्यालय, मदनगंज (किशनगढ़) राजस्थान, अगस्त १९५१, पृष्ठ १५४।

५. श्री मल्लिनाथ जिनपूजा, रामचन्द्र, संगृहीत ग्रंथ—चतुर्विशति जिनपूजा, संग्रह नेमीचन्द्र वाकलीवाल, जैन ग्रन्थ कार्यालय, मदनगंज (किशनगढ़) राजस्थान, अगस्त १९५१, पृष्ठ १५७।

(२०) मुनिसुव्रत (श्री मुनिसुव्रतनाथपूजा)[1]

सुमित्र के सुपुत्र मुनिसुव्रत का जन्म माता पद्मा के उदर से राजगृह नगरी में हुआ। आपका वर्ण है नील और चिन्ह है—'कछवा'।

(२१) नमिनाथ (श्री नमिनाथजिनपूजा)[2]

इक्कीसवें तीर्थंकर नमिनाथ के पिता श्रीविजयनरेन्द्र तथा मातुश्री है वप्रिला। जन्मस्थान है मिथलापुरी। वर्ण है सुवर्ण। 'नीलकमल' आपका चिन्ह है।

(२२) नेमिनाथ (श्री नेमिनाथ जिनपूजा)[3]

तीर्थंकर परम्परा में बाइसवें तीर्थंकर नेमिनाथ हैं। आपके चचेरे भाई हैं भगवान कृष्ण। आपके पिताश्री का नाम है समुद्रविजय तथा मातुश्री हैं शिवदेवी। जन्मस्थान है शौरीपुर। वर्ण है नील। 'शंख' आपका चिन्ह है।

(२३) पार्श्वनाथ (श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा)[4]

तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ हैं। इनके पिता का नाम है अश्वसेन और मातुश्री हैं वामादेवी। जन्मस्थान है—वाराणसी। वर्ण है हरित। चिन्ह है 'सर्प'।

(२४) महावीर (श्री महावीर जिनपूजा)[5]

तीर्थंकर परम्परा में चौबीसवें और अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर हैं। आपके पिता हैं श्री सिद्धार्थ और मातुश्री का नाम है त्रिशला। जन्मस्थान

---

१. श्री मुनिसुव्रतनाथपूजा, मनरंगलाल संगृहीतग्रन्थ—सत्यार्थयज्ञ, पं० शिखर चन्द्र जैन, शास्त्री, जवाहरगंज, जबलपुर, म०प्र०, चतुर्थ संस्करण, अगस्त १९५० ई०, पृष्ठ १४०।

२. श्री नमिनाथजिनपूजा, रामचन्द्र, संगृहीतग्रन्थ—चतुर्विंशतिजिनपूजा, नेमीचन्द बाकलीवाल, जैनग्रन्थ कार्यालय, मदनगंज (किशनगढ़), राजस्थान, अगस्त १९४१. पृ० १७९।

३. श्री नेमिनाथजिनपूजा, जिनेश्वरदास, संगृहीत ग्रन्थ—जैनपूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, ९२ नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १११।

४. श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा, कुंजिलाल, संगृहीत ग्रन्थ—नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, ब्र० पतासीबाई जैन, गया (बिहार), पृष्ठ ३५।

५ श्री महावीर स्वामी पूजा, संगृहीत ग्रन्थ—नेमीचन्द बाकलीवाल, जैन ग्रन्थ कार्यालय, मदनगंज (किशनगढ़) राजस्थान, अगस्त १९५१, पृष्ठ २०४।

है कुण्डलपुर। वर्ण है पीत और आपका चिन्ह है 'सिंह'। महावीर के दूसरे नाम वर्द्धमान, सन्मति, वीर, अतिवीर हैं।

वीसतीर्थंकर (श्री वीस तीर्थंकर पूजा भाषा)[1]—विदेह देश में वीस-तीर्थंकर हुये हैं।[2] अग्रांकित उनका संक्षिप्त परिचय द्रष्टव्य है—

(१) सीमन्धर— विदेह क्षेत्र के पुण्डरीकणी नगरी के सीमन्धर स्वामी के पिताश्री का नाम है श्रीहंस।

(२) युगमन्धर— आपके पिता का नाम श्रीरुह है।

(३) वाहु— सुसीमा नगरी के वाहु माता विजया की कुक्षि से जन्मे। आपके पिता का नाम सुग्रीव है। हरिण आपका चिन्ह है।

---

१. सीमन्धर सीमन्धर स्वामी, जुगमन्धर जुगमन्धर नामी।
वाहु वाहु जिन जग जनतारे, करम सुवाहु वाहुवल दारे॥
जात सुजात सु केवल ज्ञानं, स्वयं प्रभ प्रभु स्वयं प्रधानं।
ऋपभानन ऋपिभानन दोपं, अनन्तवीरज वीरज कोपं॥
सौरीप्रभ सौरीगुणमालं, सुगुण विशाल विशाल दयालं।
वज्रधार भवगिरि वज्जर हैं, चन्द्रानन चन्द्रानन वर हैं॥
भद्रवाहु भद्रनि के करता, श्री भुजंग भुजंगम हरता।
ईश्वर सवके ईश्वर छाजें, नेमिप्रभुजस नेमि विराजें॥
वीरसेन वीरं जग जानें, महाभद्र महाभद्र वखाने।
नमो जसोधर जसधरकारी, नमों अजित वीरत वलकारी॥

—श्री वीसतीर्थंकर पूजाभापा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, सन् १९७६, पृष्ठ ५९।

२. सित्यद्धसयल चक्की सट्ठिसयं पुहवरेण अवरेण।
वीसवी सयले खेते सत्तरिसयं वर दो॥

तीर्थंकर पृथक्-पृथक् एक-एक विदेह देश विषे एक-एक होई तव उत्कृष्ट पने करि एक सौ साठि होंइ। वहुरि जघन्य पने करि सीता सीतोदाका दक्षिण उत्तर तट विषै एक-एक होई ऐसे एक मेरु अपेक्षा च्यारि होंहि। सव मिलि करि पंचमेरु के विदेह अपेक्षा करि वीस होहै।

—त्रिलोकसार, गाथासंख्या ६८१, प्रकाशक—जैन साहित्य, वम्वई, प्रथम संस्करण ई० १९१८, संगृहीत ग्रंथ - जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग २, क्षु० जिनेन्द्रवर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५, प्रथम संस्करण, सन् १९७१, पृष्ठ ३९१।

(४) सुबाहु— अवध्यदेश अवस्थित सुबाहु की माता का नाम सुनंदा है।

(५) संजात— अलकापुरी के स्वामी संजात के पिताश्री का का नाम देवसेन है। आपका चिन्ह सूर्य है।

(६) स्वयंप्रभ— मंगला नगरी के स्वयंप्रभ का चिन्ह चन्द्रमा है।

(७) ऋषभानन— सुसीमानगरी में स्थित ऋषभानन की मातुश्री वीरसेना हैं।

(८) अनन्तवीर्य— ये विदेह क्षेत्र के आठवें त.र्थंकर हैं।

(९) सूरिप्रभ— सूरिप्रभ का चिन्ह बैल है।

(१०) विशालप्रभ— पुण्डरीकणी नगरी के विशालप्रभ के माता-पिता का नाम क्रमशः विजया और वीर्य है।

(११) वज्रधर— आपका चिन्ह शंख है। आपके पिताश्री पद्मरथ और माता सरस्वती हैं।

(१२) चन्द्रानन— पुण्डरीकणी के चन्द्रानन की माता का नाम दयावती और चिन्ह है—गो।

(१३) चन्द्रबाहु— माता रेणुका के उदर से जन्मे चन्द्रबाहु का चिन्ह कमल है।

(१४) भुजंगम— आपके पिता का नाम महाबल और चिन्ह चन्द्रमा है।

(१५) ईश्वर— सुसीमानगरी में अवस्थित ईश्वर के पिता का नाम गलसेन और माता का नाम ज्वाला है।

(१६) नेमिप्रभ— आपका चिन्ह सूर्य है।

(१७) वीरसेन— आपकी नगरी पुण्डरीकणी है। भूमिपाल आपके पिता जी तथा वीरसेना आपकी माता जी का नाम है।

(१८) महाभद्र— विजया नगरी के महाभद्र पिता देवराज और माता उमा के पुत्र हैं।

(१९) देवयश— स्तवभूति के सुपुत्र देवयश की माता का नाम गंगा है। आपकी नगरी सुसीमा है।

(२०) अजितवीर्य— कनक आपके पिताश्री का नाम है और आपका कमल चिन्ह है।

बाहुबली (श्री बाहुबलीपूजा)[1]—आदितीर्थंकर ऋषभदेव के द्वितीय पुत्र का नाम बाहुबली है। बाहुबली की माता का नाम सुनंदा है। तपश्चरण करते हुये आपने कर्म-कुल क्षय कर केवल ज्ञान को प्राप्त किया। इस प्रकार आप मुक्त हुए।

इस प्रकार जैन-हिन्दी-पूजाकाव्य में उपर्यंकित पूज्य शक्तियों का संक्षिप्त परिचय अभिव्यक्त है।

---

१. श्री बाहुबलीपूजा, दीपचंद, संगृहीत ग्रंथ—नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, ब्र० पतासीबाई जैन, गया (बिहार), भाद्रपद वीर सं० २४८७ पृष्ठ ६२।

साहित्यिक

रस-योजना

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में रस की स्थिति पर विचार करने से पूर्व यहाँ जैन काव्य को ध्यान में रखकर रस-विषयक सैद्धान्तिक चर्चा करना आवश्यक है। हिन्दी-साहित्य में रस-विषयक दो मान्यतायें प्रचलित रही हैं, यथा—

१. लौकिक आचार्यों की दृष्टि से

२. जैन आचार्यों की दृष्टि से

जैन आचार्यों की रस-विषयक मान्यता रही है—अनुभव। अनुभव ही रस का आधार है। यह अन्तर्मुखी प्रवृत्तियों पर निर्भर करता है। आत्मानुभूति होने पर ही रसमयता की स्थिति उत्पन्न हुआ करती है। विभाव, अनुभाव और संचारी भाव जीव के मानसिक, कायिक तथा वाचिक विकार हैं, वे वस्तुतः स्वभाव नहीं हैं। इन विकारों से पृथक् होने पर ही रसों की वास्तविक स्थिति उत्पन्न हुआ करती है। आत्मानुभूति में कषाय-क्रोध, मान, माया और लोभ—बाधक है। क्रोध, मान, माया और लोभ नामक कषायों से उत्पन्न विकारी मनोभाव रागद्वेष के जनक हैं जिनके कारण चित्त की शुभ-अशुभ विषयक परिस्थितियाँ उत्पन्न हुआ करती हैं। आत्मा इन कषायों से कसी रहती है और ऐसी स्थिति में व्यक्ति को आत्मानुभूति प्रायः नहीं हो पाती। आत्मा जब यह अनुभव करता है कि परपदार्थ सुख प्रदान करते हैं और अवस्था विशेष में इन्हीं से दुःख भी होता है तब उनके प्रति इष्ट-अनिष्ट विषयक भावना राग-द्वेष की मुख्य रूप से उत्पादक है।[1] इन शुभ-अशुभ परिणतियों के विनाश होने पर शुद्ध आत्मानुभूति से रसोद्रेक होने लगता है।

'वत्थु सहावो धम्मो' अर्थात् वस्तु का स्वभाव ही धर्म है। वस्तु का प्रभाव उसका व्यक्तित्व है जो अस्तित्व पर निर्भर करता है। वस्तु के प्रभावा-

---

१. मोक्षमार्ग प्रकाशक, पं० टोडरमल, सन्तीग्रन्थमाला, वीरसेवा मंदिर, दरियागंज, दिल्ली, वी० स० २४७६, पृष्ठ ३३६।

वासक्ति होने पर व्यक्ति को सुख-दुःख की अनुभूति हुआ करती है। वास्तविकता यह है कि जब हृदय में विवेक-यथार्थज्ञान का उदय होता है तब प्रभाव जन्य विरसता और विषमता का पूर्णतः विसर्जन हो जाता है और इस प्रकार निरन्तर आत्मानुभूति होने लगती है।[1]

जैन आचार्यों को रसों की परिसंख्या में किसी प्रकार का विवाद नहीं रहा। उन्होंने परम्परागत नवरसों को ही स्वीकृति दी है।[2] भक्त कवियों की भाँति जैन आचार्यों ने शान्तरस को रसराज कहा है। इन कवियों को रस और उनके स्थायी भावों में परम्परानुमोदित व्यवस्था में यत्किंचित परिवर्तन भी करना पड़ा है जिसका मूलाधार आध्यात्मिक विचारधारा ही रही है।[1]

---

१. हिन्दी-जैन-साहित्य-परिशीलन, (भाग १), श्री नेमिचन्द्र जैन ज्योतिपाचार्य, प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, प्रथम संस्करण १९५६ ई०, पृष्ठ २२५।

२. प्रथम सिंगार वीर दूजो रस,
तीजो रस करुणा सुखदायक।
हास्य चतुर्थ रुद्र रस पंचम,
छट्ठम रस बीभच्छ विभायक॥
सप्तमभय अट्ठमरस अद्भुत,
नवमो शांत रसनि को नायक।
ए नव रस एई नव नाटक,
जो जहँ मगन सोइ तिहि लायक॥

—सर्वविशुद्धि द्वार, नाटकसमयसार, रचयिता-कविवर बनारसी दास, प्रकाशक- श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र), प्रथम संस्करण वीर संवत् २४९७, पृष्ठ ३०७।

३. सोभा में सिंगार बसे वीर पुरुषारथ में,
कोमल हिए में करुना रस बखानिये।
आनंद में हास्य रुंडमुंड में विराजै रुद्र,
वीभत्स तहाँ जहाँ गिलानि मन आनिये॥
चिंता में भयानक अथाहता में अद्भुत,
माया की अरुचि तामैं सांत रस मानिये।
एई नवरस भवरूप एई भावरूप,
इनिको विलेछिन सुद्रिष्टि जागे जानिये॥

—सर्वविशुद्धिद्वार, नाटक समयसार, रचयिता-बनारसीदास, प्रकाशक-श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र), प्रथम संस्करण वीर संवत् २४९७, पृष्ठ ३०७-३०८।

इनकी दृष्टि में रस और उनके स्थायी भावों को निम्न फलक में उपन्यस्त किया जा सकता है, यथा—

रस	स्थायीभाव
१. श्रृंगार	१. शोभा
२. वीर	२. पुरुषार्थ
३. करुण	३. कोमलता
४. हास्य	४. आनंद
५. भयानक	५. चिन्ता
६. रौद्र	६. रुंडमुंडता
७. वीभत्स	७. ग्लानि
८. अद्भुत	८. अथाहता
९. शान्त	९. माया की अरुचिता

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से इन रसों को दो भागों में विभाजित किया गया है,[1] यथा—

१. राग

२. द्वेष

रागकोटि में रति, हास, उत्साह और विस्मय नामक स्थायी भावों को सम्मिलित किया गया है जिनके द्वारा क्रमशः श्रृंगार, हास्य, वीर और अद्भुत रसों का जन्म होता है। इसी प्रकार द्वेष कोटि में शोक, क्रोध, भय और जुगुप्सा जिनके द्वारा क्रमशः, करुण रौद्र, भयानक और वीभत्स रसों का निरूपण हुआ करता है।

रागद्वेष दोनों का परिमार्जन होने पर वैराग्य-निर्वेद भाव का जन्म होता है। यह अहंभाव की समरसता की अवस्था है। इस अवस्था में स्वोन्मुख रूप से प्रतिभासित होने लगती है।

शान्तरस को द्वेषमूलक मानने पर आपत्ति हो सकती है क्योंकि रसानुभूति के समय व्यक्ति राग-द्वेष विहीन माना जाता है। इस रस में अभिसिक्त प्राणी सुख-दुःख चिन्तादि से विमुक्त हो जाता है अतः शान्त को द्वेषमूलक भाव

१. जैन कवियों के हिन्दी काव्य का काव्यशास्त्रीय मूल्यांकन, पंचम अध्याय, डॉ० महेन्द्र सागर प्रचंडिया, आगरा विश्वविद्यालय द्वारा डी० लिट्० उपाधि हेतु स्वीकृत शोध प्रबन्ध, सन १९७४, पृष्ठ ३३४।

कहना संगत नहीं लगता है। शान्त रस के आश्रय से मन का निर्वेद, जगत के सुख और वैभव के प्रति उसे उदासीन बना देता है। व्यक्ति परलोक के सुख की आकांक्षा से इस लोक के सुखों से मुँह मोड़ लेता है। जगत के प्रति यह तटस्थता, उदासीनता और विषय-वैभव की उपेक्षा यदि द्वेष नहीं तो राग भी नहीं, इसे तो वस्तुतः इन दोनों के बीच की अवस्था ही मानना होगा। ये द्वेषमूलक प्रवृत्तियाँ रागमूलक प्रवृत्तियों से सर्वथा भिन्न हैं। किसी भी कृति में इन दोनों का संकर अथवा मिला-जुला वर्णन दोष ही कहलाता है न कि गुण।[1] इस प्रकार जैन आचार्यों ने इन रसों के अन्तरंग में जिन भावनाओं की व्यापकता पर बल दिया है। वह स्व-पर-कल्याण में सर्वथा सहायक प्रमाणित होती है। आत्मा को ज्ञान गुण से विभूषित करने का विचार शृंगार, कर्म निर्जरा का उद्यम वीर, सभी प्राणियों को अपने समान समझने के लिए करुण, हृदय में उत्साह एवं सुख की अनुभूति के लिए हास्य, अष्टकर्मों को नष्ट करना रौद्र, शरीर की अशुचिता का चिन्तवन वीभत्स, जन्ममरण के दुःख का चिन्तवन भयानक, आत्मा की अनन्त शक्ति को प्राप्त कर विस्मय करना अद्‌भुत तथा दृढ़ वैराग्य धारण कर आत्मानुभव में लीन होना शान्तरस कहलाता है।

उपर्यंकित विवेचन के आधार पर यह सहज में कहा जा सकता है कि शान्तरस में सभी रसों का समाहार हो जाता है तथा व्यक्तिशः प्रत्येक रस का क्षेत्र और इसकी विराटता असंदिग्ध प्रमाणित हो जाती है। उल्लिखित स्थायी भावों में रौद्र, अद्‌भुत, वीभत्स और शान्तरस के स्थायीभाव तो परम्परानुमोदित स्थायी भावों में पर्याप्त साम्य रखते हैं, किन्तु शेष रसों के स्थायी भावों की उद्‌भावना सर्वथा नवीन और मौलिक है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार अविरुद्ध अथवा विरुद्धभाव जिसे प्रच्छन्न नहीं किया जा सके, वह वस्तुतः आस्वाद का मूलभूत भाव ही स्थायीभाव है।[2]

---

१. हिन्दी काव्यशास्त्र में शृंगार रस विवेचन, डा० रामलाल वर्मा, पृष्ठ ४१-४२।

२. अविरुद्धा विरुद्धा वा यं तिरोधातुमक्षमाः।
आस्वादाङ्कुरकन्दोऽसौ भावः स्थायीति संमतः॥ ४॥

—साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद, आचार्य विश्वनाथ, प्रकाशक- चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१, तृतीय संस्करण, वि० सं० २०२३, श्लोक संख्या १७४, पृष्ठ १८१।

जैन आचार्यों की स्थायी भावों से सम्बन्धित नवीन उद्भावना के विषय में संक्षेप में चर्चा करना यहाँ असंगत नहीं होगा।

शृंगार रस का स्थायी भाव जैन आचार्यों ने परम्परागत स्थायीभाव 'रति' के स्थान पर शोभा माना है। शृंगार का मूलतः अर्थ शोभा ही है। उसमें अर्थगतगूढ़ता और व्यापकता दोनों ही है। कोई अविरुद्ध या विरुद्ध भाव उसे छिपा नहीं सकता। रति को शृंगार का स्थायी भाव मान लेने में सबसे बड़ी आपत्ति तो यह है कि एक ही विषय-भोग सम्बन्धी चित्र विभिन्न व्यक्तियों—साधु, कामुक एवं चित्रकार या कवि के मन में एक ही भाव की उद्भावना नहीं करता।

इसी प्रकार हास्यरस का स्थायी भाव परम्परानुमोदित 'हास' के स्थान पर आनंद माना गया है। किसी वृत्ति को पढ़ने या सुनने या किसी दृश्य को देखने पर आनन्द की उत्पत्ति में ही हास्य रस की निष्पत्ति समीचीन लगती है। हँसी कभी-कभी तो दुःख या खीज की अवस्था में भी आ जाती है। परम्परानुमोदित करुन रस का स्थायी भाव 'शोक' के स्थान पर कोमलता माना है। मनोवैज्ञानिक तथ्यों के अनुसार भी शोक में अन्तर्द्वन्द्व जन्य चिन्ता का मिश्रण है, शोक का जन्म किसी प्रकार की हानि पर निर्भर करता है फिर उसमें कोमलता कहाँ स्थान पाती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि करुनरस का स्थायी आधार कोमलता, सहानुभूति और सरलता है न कि शोक।

वीर रस का स्थायीभाव उत्साह के स्थान पर पुरुषार्थ माना है। उत्साह तो कभी विपरीत कारण मिलने पर ठंडा भी पड़ सकता है, जबकि पुरुषार्थ में तो आगे बढ़ने की प्रवृत्ति ही अन्तर्निहित है। पुरुषार्थ का क्षेत्र भी 'उत्साह' की अपेक्षा अधिक व्यापक है, उसमें उत्साह के साथ-साथ लगन और क्रियाशीलता भी है। उत्साह में जहाँ आवेश है वहाँ वीरता में गाम्भीर्य, उत्साह तो रणवाद्य बजाकर भी उत्पन्न किया जा सकता है, जबकि वीरता आत्मगत होती है।

इसी प्रकार भयानक रस का स्थायीभाव भी कवि ने 'भय' के बजाय 'चिन्ता' माना है। चिन्ता में भय से अधिक व्यापकता है। चिन्ता उत्पन्न होने पर ही भय उत्पन्न होगा। भय के मूल में चिन्ता होगी ही। प्रत्येक भयानक दृश्य सभी को भयभीत करते हैं, यह सर्वथा सम्भव नहीं। हम भयभीत

तभी होते हैं, जब हमें यह आशंका हो कि उसका कारण हमसे सम्बद्ध है। जब हम अपने प्रिय पात्र को विपत्ति में फँसा देखते हैं तो हमें चिन्ता होने लगती है कि अब क्या होगा ? परिस्थितियाँ ज्यों ज्यों भयानक होती जाती हैं त्यों त्यों हम चिन्ता में डूबते जाते हैं और धीरे-धीरे स्थिति यहाँ तक आ जाती है कि हम भय से सिहर उठते हैं। चिन्ता का कारण स्पष्ट ही प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हम से सम्बद्ध होने के कारण हम भयभीत होते हैं। कहने का मंतव्य यह है कि चिन्ता उत्पन्न होने पर ही भय की उद्‌भावना सम्भव है।

यह सहज में कहा जा सकता है कि रस विषयक प्राचीन आचार्य परम्परा के अनुसार ही पूजा कवयिताओं ने पूजा प्रणयन में किया है। पूजा-काव्य में प्रधान रस शान्त और अन्य रस अंगीय हैं। अठारहवीं शती से लेकर बीसवीं शती तक रचे गए पूजा रचनाओं में रसोद्रेक की क्या स्थिति रही है ? अब यहाँ उसी तथ्य और सत्य का संक्षेप में उद्‌घाटन करेंगे।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य परम्परा में 'देवशास्त्र गुरु नामक पूजा' का स्थान महत्वपूर्ण है। इन सभी उपास्य शक्तियों की गुण-गरिमा विषयक अभिव्यंजना में निर्वेद तज्जन्य शान्तरस का उद्रेक हुआ है। जैन पूजा काव्य में रस-निष्पत्ति विषयक यह उल्लेखनीय बात रही है कि इसमें रस की सीधी स्थिति परिलक्षित नहीं होती। आरम्भ में सांसारिकभक्त अपनी दीन-दुःखी अवस्था से मुक्त होने के लिए प्रभु की वन्दना करता है और उसकी भक्ति भावना में उत्तरोत्तर प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर विकास-विकर्ष परिलक्षित होने लगता है और अन्ततोगत्वा पूजा काव्य के उत्तर पक्ष में वह पूर्णतः निवृत्तिमुखी हो जाता है। दरअसल विवेच्य काव्य में यहीं पर रस की स्थिति अपना पूर्णरूप ग्रहण कर पाती है। रस की यह पूर्णावस्था वस्तुतः शान्त रसमय होती है।

पूजा के जयमाल अंश में उपास्य के दिव्यगुणों का उत्साहपूर्वक जयगान किया जाता है। आरम्भ में इस संगायन में रस की स्थिति उत्साहमयी अनुभूत हो उठती है। किन्तु कालान्तर में यही उत्साहजन्य मनोभावना निर्वेद तज्जन्य शान्तरस में परिवर्तित हो जाती है।

अठारहवीं शती में देव-शास्त्र-गुरु पूजा में आराध्य-देव की प्रतिमा-बिम्ब में सुखद शृंगार का सुन्दर चित्रण परिलक्षित है यह संयोग शृंगार

उत्तरोत्तर शान्तरस में परिणत हो जाता है।[1] इसी पूजा के जयमाला अंश में उपास्य का गुण-गान करने में भक्त अथवा पूजक का मन उत्साह तज्जन्यपुरुषार्थ और वीरोचित उदात्त भावना से आप्लावित हो उठता है। अन्त में यह उत्साह परम पुरुषार्थ अर्थात् मोक्ष सुख की स्थिति की अनुमोदना में शान्तरस रूप में परिणत हो जाता है।[2]

उपास्य देव के जन्म कल्याणक पर भक्त का हृदय उल्लास तथा

---

१. सुरपति उरग नरनाथ तिनकरि वन्दनीक सुपदप्रभा।
अतिशोभनीक सुवरण उज्जल देख छवि मोहित सभा॥
वर नीर क्षीर समुद्र घट भरि अग्र तसु बहुविधि नचूं।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निरग्रंथ नित पूजा रचूं॥

—श्री देवशास्त्र गुरुपूजा,द्यानतराय, संगृहीत ग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, प्रकाशक—अयोध्या प्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, सन् १९५७, पृष्ठ १०७।

२. चउ कर्म कि त्रेसठ प्रकृति नाशि, जीते अष्टादश दोषराशि।
जे परम सुगुण हैं अनंत धीर, कहवत के छयालीस गुण गंभीर॥
शुभ समवशरण शोभा अपार, शत इन्द्र नमनकर सीस धार।
देवाधिदेव अरहंत देव, वंदो मन वच तन करि सुसेव॥
जिनकी धुनि ह्वे ओंकार रूप, निर अक्षरमय महिमा अनूप।
दश-अष्ट महाभाषा समेत, लघुभाषा सात शतक सुचेत॥
सो स्याद्वादमय सप्तभंग, गणधर गूंथे बारह सु अंग।
रवि शशि न हरे सो तम हराय, सो शास्त्र नमों बहु प्रीतिल्याय॥
गुरु आचारज उवझाय साध, तन नगन रतनत्रय निधि अगाध।
संसार-देह वैराग धार, निरवांछि तपें शिवपद निहार॥
गुण छत्तिस पच्चिस आठ वीस भवतारनतरन जिहाजईस।
गुरु की महिमा बरनी न जाय, गुरु नाम जपों मन वचन काय॥

कीजे शक्ति प्रमान शक्ति बिना सरधा धरे।
'द्यानत' सरधावान अजर अमर पद भोगवे॥

—श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रंथ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, प्रकाशक —अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, सन् १९५७, पृष्ठ ११०-१११।

विस्मयकारी भावनाओं से ओतप्रोत हो जाता है। प्रभु-प्रभुता का चिन्तवन करता हुआ उसका यह मनोभाव शान्तरस में मग्न हो जाता है।[1]

उन्नीसवीं शती में तीर्थंकर महावीर स्वामी पूजा के 'जयमाला' अंश में उत्साह से युक्त पुरुषार्थ भाव तज्जन्य वीर रस का उद्रेक हुआ है। अन्ततोगत्वा पूजक के हृदय में यह वीर रसात्मक अनुभूति शान्तरस में परिणत हो जाती है।[2]

'श्री ऋषभनाथ जिनपूजा' में पूजक भगवान के गर्भ कल्याणक के अवसर पर छप्पन कुमारियों और इन्द्राणी के द्वारा हर्षोल्लास अनुष्ठान पर आनंद

---

१. सोलह कारण भाय तीर्थंकर जे भये।
हरपे इन्द्र अपार मेरु पे ले गये॥
पूजा करि निज धन्य लख्यो बहु चाव सों।
हमहू षोड़श कारण भावें भावसों॥

—श्री सोलहकारण पूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रंथ—जैन पूजा पाठ संग्रह, प्रकाशक—भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ ५६।

२. पुनि नाचत रंग उमंग भरी, तुम भक्ति विषे पगएम धरी।
झननं झननं झननं झननं, सुरलेत तहाँ तननं तननं॥
घननं घननं घन घंट बजें, द्रमदं द्रमदं मिरदंग सजे।
गगनांगन गर्भगता सुगता, ततता ततता अतता वितता॥
धृगतां धृगतां गति वाजत हैं, सुरताल रसाल जु छाजत है।
सननं सननं सननं नभ में, इक रूप अनेक जुधार भ्रमे॥
कई नारि सुवीन बजावति है, तुमरो जसि उज्वल गावति हैं।
करताल विषे कर ताल धरें, सुरताल विशाल जु नाद करे॥
इन आदि अनेक उछाह भरी, सुर भक्ति करें प्रभुजी तुमरी।
तुम ही जग जीवन के पितु हो, तुम ही बिन कारन तें हित हो॥

—श्री महावीर स्वामी पूजा, वृन्दावन, संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, प्रकाशक—राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १३७-१३८।

तज्जन्य हास्य रस की निष्पत्ति हुई है ।[१] इसी प्रकार 'श्री सुमति नाथ जिनपूजा' में कवि हृदय हर्षानुभूति कर उठता है ।[२]

अठारहवीं-उन्नीसवीं शती की भाँति बीसवीं शती में प्रणीत पूजा-काव्य में रसोद्रेक की स्थिति में कोई अन्तर परिलक्षित नहीं होता । पूजा की सम्पूर्ण भावना निर्वेदजन्य शान्तरस में निष्पन्न होती है । इस शती में 'श्री महावीर स्वामी जिनपूजा' के 'अष्ट द्रव्य अर्घ्य' प्रसंग में संयोग शृंगार का उद्रेक निवृत्ति मूलक हुआ है ।[३]

---

१. तज के सर्वारथ सिद्ध थान,
मरु देव्या माता कूख आन ।
तब देवी छप्पन जे कुमारि,
ते आई अति आनंद धारि ।।
ते बहु विध ऊंचा सेवठान,
इन्द्राणी ध्यावत हर्षमान ।।

—श्री ऋषभनाथ जिन पूजा, वखतावररत्न, संगृहीतग्रंथ—चतुर्विंशति जिनपूजा, प्रकाशक—वीर पुस्तक भंडार, मनिहारों का रास्ता, जयपुर पौष० सं० २०१८, पृष्ठ १२ ।

२. जाय के शची जिनंद गोद में लिये तबै ।
आन के सुरेन्द्र देख मोद में भये जबै ।।
नाग पै सवार कीन्ह स्वर्णशैल पै गये ।
न्हौन को उछाह ठान हर्ष चित में भये ।।
देख रूप आपको अनंग बीनती लही ।
इन्द्र चंद्र वृन्द आन शरण चर्ण की गही ।।

—श्री सुमतिनाथ जिनपूजा, संगृहीत ग्रंथ—चतुर्विंशति जिनपूजा, प्रकाशक-वीर पुस्तक भंडार, मनिहारों का रास्ता, जयपुर, पौष सं० २०१८, पृष्ठ ४१-४२ ।

३. क्षीरोदधि से भरि नीर कंचन के कलशा ।
तुम चरणनि देत चढ़ाय आवागमन नशा ।।
चांदनपुर के महावीर तोरी छवि प्यारी ।
प्रभु भव आताप निवार तुम पद बलिहारी ।।

—श्री चांदनगांव महावीरस्वामी पूजा, पूरणमल, संगृहीत ग्रंथ जैन पूजापाठ संग्रह, प्रकाशक—भागचन्द पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोडकलकत्ता-७, पृष्ठ १५६ ।

'श्री देवशास्त्र गुरुपूजा' के 'जयमाला' अंश में जीवन की अस्थिरता को व्यक्त करते हुए उपासना के अतिरिक्त जीवन-श्रम की निस्सारता व्यक्त की है। इस अभिव्यक्ति में करुणरस का उद्रेक हुआ है जो कालांतर में निर्वेदरूप में परिणत हो जाता है।[1]

इस प्रकार पूजाकाव्य में पूर्णतः शान्तरस का परिपाक हुआ है। रस की इस पाकविकता में शोभा-शृंगार, उत्साह-वीर, तथा करुण आदि रसों के अभिदर्शन होते हैं।

---

१. भववन में जीभर घूम चुका, कण-कण को जी भर देखा।
मृग-सम मृग-तृष्णा के पीछे, मुझको न मिली सुख की रेखा॥
झूठे जग के सपने सारे, झूठी मन की सब आशायें।
तन-जीवन-यौवन अस्थिर है, क्षण भंगुरपल में मुरझाएँ॥

—श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, युगल किशोर जैन 'युगल', संगृहीतग्रंथ-जैन पूजा पाठ संग्रह, प्रकाशक-भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ ३०।

प्रकृति-चित्रण

मानव जगत का प्रकृति से निकट का सम्बन्ध रहा है। वह अपनी रागात्मिक वृत्ति के माध्यम से प्रकृति से संबंधित है। प्रकृति का जो भी प्रभाव कवि के मन पर पड़ता है उसी प्रभाव का अंकन कवि अपने काव्य में करता आया है। काव्य में प्रकृति का मूलतः प्रयोग निम्न तीन रूपों में हुआ है, यथा—

१. आलम्बनरूप में
२. उद्दीपन रूप में
३. आलंकारिक रूप में

जैन हिन्दी-पूजा-काव्य में प्रकृति का उपर्यंकित तीनों ही प्रकार का रूप परिलक्षित है। विवेच्य काव्य में प्रकृति-प्रयोग की स्थिति का संक्षेप में अध्ययन करना हमारा मूलाभिप्रेत रहा है।

हिन्दी के जैन कवियों को काव्य-प्रणयन की प्रेरणा सांसारिकजीवन की नश्वरता और अपूर्णता के अनुभव से प्राप्त हुई है। सौन्दर्य-भावना के लिए उसे प्रकृति-प्रांगण में जाना पड़ा है और आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख होने के लिए भी उसे प्रकृति के उपकरणों ने ही प्रेरित किया है।

अठारहवीं शती के पूजाकाव्य के प्रणेता ने प्रकृति के आलंबन और आलंकारिक भेदों का सफलता पूर्वक उपयोग किया है। कविवर द्यानतराय ने पंचमेरुपूजा में पर्वत, शाल-वन, पांडुकवन, वन-सुमन तथा गिरि-शिखरों का उल्लेख करते हुए प्रकृति का आलम्बनकारी चित्रण किया है।[1]

---

१. प्रथम सुदर्शन मेरु विराजै, भद्रशालवन भूपर छाजै।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वन्दना हमारी॥
ऊपर पांच शतक पर सोहे, नंदन वन देखत मन मोहे।
साढ़े बासठ सहस ऊंचाई, वन सुमनस शोभे अधिकाई॥
ऊँचा जोजन सहस छतीसं, पांडुकवन सोहे गिरिसीसं।
—श्री पंचमेरुपूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रंथ-जैनपूजा पाठ संग्रह, प्रकाशक—भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ ५४।

दशलक्षणधर्मपूजा में प्रकृति का आलंबन रूप हेमाचल, शीतल समीर, चन्दन, केशर तथा फूलों की नाना प्रकार की गन्ध-सुगन्ध का विकीर्ण होना उल्लिखित है।[1] इसी प्रकार प्रकृति का आलंबनकारी वर्णन रत्नत्रय पूजा काव्य में क्षीरोदधि, चंदन केशर परिमल, तंदुल, फूलों की महक और अलियों के प्रगुंजन में द्रष्टव्य है।[2]

'श्री देवशास्त्र गुरुपूजा' में प्रकृति का आलंकारिक वर्णन उल्लेखनीय है। यहाँ उरग क्षुधा के समान है और उसे नष्ट करने के लिए गरुड़ है।[1] रत्नत्रय पूजा में विषधर की विषाक्त मणि. दुःखरूपी पावक तथा सुख-

---

१. हेमाचल की धार, मुनि-चित सम शीतल सुरभि।
भव आताप निवार, दश लक्षण पूजौ सदा ॥
चंदन केशर गार, होय सुवास दशों दिशा।
अमल अखंडित सार, तन्दुल चन्द्र समान शुभ ॥
फूल अनेक प्रकार, महकें ऊरध लोकलों।
भवआताप निवार, दश लक्षण पूजों सदा ॥

—श्री दशलक्षण धर्मपूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रंथ-जैनपूजा पाठ संग्रह, प्रकाशक-भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७ पृष्ठ ६२।

२. क्षीरोदधि उनहार, उज्ज्वल जल अति सोहना।
जनम-रोग निरवार, सम्यक-रत्न-त्रय भजूं ॥
चंदन-केशर गारि, परिमल-महा-सुगन्धमय।
तंदुल अमल चितार, वासमती-सुखदास के ॥
महकें फूल अपार, अलि गुंजें ज्यों थुति करे।
जनम-रोग निरवार, सम्यक-रत्न-त्रय भजूं ॥

—श्री रत्नत्रय पूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रंथ-जैन पूजा पाठ संग्रह, प्रकाशक-भागचन्द्र पाटनी, न० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ ६९।

३. अति सबल मद कंदर्प जाको क्षुधा-उरग अमान है।
दुस्सह भयानक तासु नाशन को सुगरूड समान है ॥
उत्तम छहों रसयुक्त नित, नैवेद्य करि घृत मैं पचूं।
अरहन्त श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निरग्रन्थ नितपूजा रचूं ॥

—श्रीदेवशास्त्र गुरुपूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रन्थ— जैन पूजा पाठ संग्रह, प्रकाशक—भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७ पृष्ठ १८।

सरोवरी आदि प्रकृति तत्वों का आलंकारिक प्रयोग हुआ है।[1] श्री बीस तीर्थंकर पूजा में सुधाकर, मेघ, भानु का आलंकारिक वर्णन परिलक्षित है।[2]

उन्नीसवीं शती में रचित पूजा काव्य में प्रकृति का आलम्बनकारी वर्णन प्रचुर परिमाण में हुआ है। कविवर वृंदावन विरचित श्री वर्द्धमान जिनपूजा काव्य में मलयागिरि चंदन-सार तथा केशर का स्पष्ट प्रकृति वर्णन है।[3] कविवर मनरंगलाल विरचित 'श्री सप्तर्षि पूजा' में श्रीखण्ड, कदली नंद तथा केशर नामक प्राकृतिक तत्वों का आलम्बनकारी चित्रण द्रष्टव्य है।[4]

कवि बख्तावररत्न विरचित 'श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा' में प्रकृति का उद्दीपनकारी वर्णन भी हुआ है। प्रभु पार्श्वनाथ की तपसाधना को खण्डित

---

१. चहुंगति-फनि-विष-हरन-मणि,
दुख-पावक-जल-धार।
शिव-सुख-सुधा-सरोवरी,
सम्यक-त्रयी निहार॥

—श्री रत्नत्रय पूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७ ई०, पृष्ठ ३१३।

२. ज्ञान-सुधाकर चंद, भविक-खेतहित मेघ हो।
भ्रम तम भान अमंद, तीर्थंकर बीसों नमों॥

—श्री बीस तीर्थंकर पूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रंथ-जैन पूजा पाठ संग्रह, प्रकाशक-भागचन्द पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७ पृष्ठ ३५।

३. मलयागिरिचंदनसार,
केशर-संगघसों।
प्रभु भव-आताप निवार,
पूजत हिय हुलसों॥

—श्री वर्द्धमान जिनपूजा, वृन्दावनदास, संगृहीत ग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७, पृष्ठ ३७८।

४. श्रीखंड कदलीनंद, केशर,
मंद मंद घिसायकें।
तसगंध प्रसरित दिग-दिगंतर,
भर कटोरी लायकें॥

—श्री सप्तर्षिपूजा, मनरंगलाल, संगृहीतग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७, पृष्ठ ३९३।

कराने के लिए पूर्वभव का शत्रु प्रकृति के नाना उपादानों-तीक्ष्ण पवन का झकोर, दश दिशायें तमावृत, अग्निदाह, मुण्डन बिन झुण्डन के रुण्ड, मूसलाधार जल-वर्षण आदि भयंकर रूपा प्रकृति का उद्दीपनकारी सफल चित्रण उल्लेखनीय है ।[1] श्री सप्तर्षिपूजा में मनरंगलाल ने प्रकृति के उद्दीपन रूप का वर्णन किया है । ऋषियों की तपस्या में प्रकृतिबाधक बनती है यद्यपि प्रकृति ऋषियों की तपस्या को भंग नहीं कर सकी है ।[2] प्रकृति के इस उद्दीपन रूप का चित्रण अन्यकृति 'श्रीपदमप्रभजिनपूजा' में उल्लिखित है ।[3]

---

१. तबै वह धूम सुकेत अयान, भयो कमठाचर कोसुरआन ।
करे नभ गौनलखे तुम धीर, जू पूरव वैर विचार गहीर ।।
करो उपसर्ग भयानक घोर, चली वहु तीक्षण पवन झकोर ।
रह्यो दशहूं दिश में तम छाय, लगी वहु अग्नि लखी नहीं जाय ।।
सुरुंडन के बिन मुण्ड दिखाय, पड़े जल मूसल धार अथाय ।
—श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा, वख्तावररत्न, संगृहीतग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, प्रकाशक-अयोध्या प्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७, पृष्ठ ३७६ ।

२. जय ग्रीपम ऋतु पर्वत मंझार, नित करत अतापन योग सार ।
जय तृषा-परीषह करत जेर, कहुं रंच चलत नहिं मन-सुमेर ।।
जय मूल अठाइस गुणनधार, तप उग्र तपत आनन्द कार ।
जय वर्षा ऋतु मे वृक्ष-तीर, तहं अति शीतल झेलत समीर ।।
जय शीत-काल चौपट मंझार, कै नदीं-सरोवर-तट विचार ।
जय निवसत ध्यानारूढ़ होय, रंचक नहिं मटकत रोंम कोय ।।
—श्री सप्तर्षिपूजा, मनरंगलाल, संगृहीत ग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७ ई० पृष्ठ ३९६ ।

३. षट वर्ष कियो तप घोर वीर ।
ऋतु ग्रीपम में गिरि सिखरधीर ।।
रवि किरन तपै मनु अग्नि ज्वाल ।
धरि ध्यान खड़े निरभै विशाल ।।
ऋतु पावस तरु तल चतुरमास ।
धरि जोग खड़े अहिलिप्त डांस ।।
ऋतु शीत तरंगनि ताल वास ।
वाजे समीर अनुभव विलास ।।
—श्रीपद्मप्रभ जिनपूजा, रामचन्द्र, संगृहीत ग्रंथ-वर्तमान चतुर्विंशिति जिनपूजा, प्रकाशक-नेमीचन्द वाकलीवाल, जैन ग्रन्थ कार्यालय, मदनगंज (किशनगढ़) राजस्थान, १९५१, पृष्ठ ५८ ।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में आलंकारिक रूप में प्रकृति का वर्णन सर्वाधिक हुआ है। कविवर बख्तावररत्न प्रणीत 'श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा' में क्षीरसोम, अम्बुसार हेमपात्र आदि रूप में प्रकृति का आलंकारिक रूप प्रयुक्त है।[1] मनरंगलाल द्वारा रचित 'श्री नेमिनाथ जिनपूजा' में अरविन्द चरण के लिए चातक-चित के लिए प्राकृतिक तत्वों का आलंकारिक वर्णन हुआ है।[2]

अठारहवीं और उन्नीसवीं शती में रचित हिन्दी-जैन-पूजा-काव्य-कृतियों की नाईं बीसवी शती में प्रणीत पूजा रचनाओं में भी प्रकृति वर्णन तद्नुसार हुआ है। श्री सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पूजा में बेला, गुलाब, मालती, कमल तथा पारिजात नामक पुष्पों का आलम्बन रूप में चित्रण हुआ है।[3] श्री देवशास्त्र गुरु नामक पूजा में शैल, नदी तट, तरुतल तथा वर्षा की झड़ी नामक प्रकृति तत्वों का आलम्बनकारी वर्णन द्रष्टव्य है।[4]

---

१. क्षीर सोम के समान अम्बुसार लाइये,
हेमपात्र धार के सु आपको चढ़ाइये।
पार्श्वनाथ देव सेव आपकी करूं सदा,
दीजिए निवास मोक्ष भूलिये नहीं कदा ॥
—श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न, संगृहीत ग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, प्रकाशक-अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७ ई० पृष्ठ ३७२।

२. श्री नेमिचन्द जिनेन्द्र के चरणारविन्द निहार के।
करि चित्त चातक चतुर चर्चित वजन हूँ तिन धारिके ॥
—श्री नेमिनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, संगृहीतग्रंथ-सत्यार्थयज्ञ, प्रकाशक-पं० शिखरचन्द्र जैन शास्त्री, जवाहरगंज, जबलपुर, म० प्र०, १९५० ई०, पृष्ठ १५४।

३. बेला और गुलाब मालती कमल मंगाये।
पारिजात के पुष्पल्याय जिन चरण चढ़ाये ॥
—श्री सोनागिरि सिद्ध क्षेत्र पूजा, आशाराम, संगृहीत ग्रन्थ-जैन पूजापाठ संग्रह, प्रकाशक-भागचन्द पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७ पृष्ठ १५१।

४. करते तप शैल नदी तट पर,
तरुतल वर्षा की झड़ियों में।
समता रसपान किया करते,
सुख-दुःख दोनों की घड़ियों में ॥
—श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, युगल किशोर 'युगल' संगृहीत ग्रंथ-जैन पूजापाठ संग्रह, प्रकाशक-भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७ पृष्ठ ३२।

कविवर कुंजीलाल विरचित श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा में प्रभु पार्श्वनाथ के तपश्चरणकाल में उनके पूर्वजन्म के विरोधी शत्रु कमठ द्वारा तपस्या-खंडित करने के प्रसंग में प्रकृति का भयंकर रूप चित्रित हुआ है। इस चित्रण में प्रकृति का उद्दीपन रूप मुखर हो उठा है।[1] इस शती की अन्यकृति श्रीदेवशास्त्र-गुरूपूजा' में प्रकृति का उद्दीपन रूप दृष्टिगत है।[2]

प्रकृति के आलंकारिक वर्णन की अतिरेकता उल्लेखनीय है। चकोर रूपी भविजन सरस चन्द्रमा तथा सुखसागर आदि प्रकृति के आलंकारिक प्रयोग हैं।[3] रूपक और उपमा अलंकार अर्थात् दशधर्मरूपी हंस और कल्पद्रुम की

---

१. कमठ कियो उपसर्ग वैर चित लायके, लायके
महाभयानक अग्नि लगाई आयके, आयके
बहु उत्पात मचायो स्वामी, कर्मादिक शत्रु विदारे
पद्मावति धरणेन्द्र तत्क्षण आयके आयके
शीशधारि प्रभु ऊपर फन फैलाइके फैलाइके
सब उपसर्ग निवारो स्वामी, कर्मादिक शत्रु विदारे ॥

—श्री पार्श्वनाथ पूजा, कुंजिलाल, संगृहीत ग्रन्थ-नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, प्रकाशक व सम्पादिका-ब्र० पतासीबाई, गया, भाद्रपद वीर सं० २४८७, पृष्ठ ३६।

२. हो अर्द्ध निशा का सन्नाटा, वन में वनचारी चरते हों।
तब शान्त निराकुल मानस तुम, तत्त्वों का चिंतन करते हो ॥
करते तप शैल नदी तट पर, तरुतल वर्षा की झड़ियों में।
समता रसपान किया करते, सुख दुःख दोनों की घड़ियों में ॥

—श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, युगल किशोर, 'युगल' संगृहीत ग्रंथ-जैनपूजा पाठ संग्रह, प्रकाशक-भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता—७, पृष्ठ ३२।

३. भविजन सरस चकोर चन्द्रमा, सुख सागर भरपूर।
स्वहित निशि दीश बढ़ावै जी, जिनके गुण गावै सुर नर शेष जी।

—श्री नेमिनाथ जिनपूजा, जिनेश्वरदास, संगृहीत ग्रंथ-जैन पूजा पाठ संग्रह, प्रकाशक-भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता—७, पृष्ठ ११३।

समता विषयक प्रकृतिचित्रण को भगवान दास ने सफलतापूर्वक चित्रण किया है।[1]

इस प्रकार जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में प्रकृति-चित्रण भावाभिव्यंजना में उत्कर्ष प्रदान करने के उद्देश्य से हुआ है। नदी, नद, नदीश, पर्वत, वन अटवी, उषा, सन्ध्या, रजनी, प्रभातसन्ध्या, प्रकाश अन्धकार हरीतिमा, पुष्प, पशु-पक्षी आदि प्रकृति उपकरणों का सजीव वर्णन आलंबन, उद्दीपन तथा आलंकारिक रूप में हुआ है।

पूजा-काव्य में प्रकृति वर्णन प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर प्रेरणा देने में आरम्भ से ही प्रेरक रहा है। कवि अथवा पूजक-भक्त इन सभी तत्त्वों के सहयोग से पुरुषार्थ की सार्थकता-मोक्ष को प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करने में सर्वथा सफल रहा है।

---

१. अतिनाम सरोवर शील भरा, कल्याणरस पूरित नीर भरा।
दल-छन्द कहे शुभ हंस तरा, प्रणमामि सूत्र जिनवाणिवरा॥
कल्पद्रुम के वन जानवरा, रत्नत्रय के शुभ पुष्प वरा।
शुभ तत्त्व पदार्थन पात्र करा, प्रणमामि सूत्र जिनवाणि वरा।
—श्री तत्त्वार्थ सूत्र पूजा, भगवानदास, संगृहीत ग्रंथ—जैन पूजा पाठ संग्रह, प्रकाशक—भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता ७, पृष्ठ ४१२।

अलंकार - योजना

काव्य मानव की अन्तरात्मा को तृप्ति प्रदान करता है। काव्यगत सौन्दर्य के प्रकर्षक साधनों में गुण, रीति तथा अलंकार प्रमुख हैं। एक बड़े विशद् विवेचन के पश्चात् साहित्य-शास्त्रियों ने अलंकार को ही काव्य का विशेष सौन्दर्यवर्द्धक तत्त्व स्वीकारा है। अलंकार वाणी के विभूषण हैं। अभिव्यक्ति में स्पष्टता, भावों में प्रभावोत्पादकता, भाषा में सौन्दर्य तथा श्रोताओं में मनोविनोद को उत्पन्न करना वस्तुतः अलंकार के कार्य हैं। काव्य में व्यवहार की दृष्टि से अलंकार प्रायः कला की कोटि में परिगणित हैं। आचार्य भामह, दण्डी, रुद्रट, आनन्दवर्द्धन, कुन्तक, मम्मट, रुय्यक, विश्वनाथ आदि ने अलंकार का कला-प्रधान लक्षण ही स्वीकार किया है।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य-कृतियों में अलंकारों का व्यवहार सहज रूप में हुआ है। कवि को जहाँ वस्तु का यथा-तथ्य वर्णन करना अभीष्ट रहा है, वहाँ अलंकारों का व्यवहार अत्यन्त अल्परूप में परिलक्षित होता है। कवि-ज्ञान प्रमाणित करने के उद्देश्य से केवल अलंकारों की भर्ती नहीं हुई है अपितु काव्यशास्त्रीय मर्यादानुमोदित अलंकारों को गृहीत किया गया है। कथयिता अपने कथन को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए यदि अमुक-अमुक अलंकारों के प्रयोग आवश्यक अनुभव करता है तो उसके द्वारा तत्कालीन व्यवहृत उपमानों को सफलतापूर्वक गृहीत किया गया है। जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य-कृतियों में जिन अलंकारों को व्यंजित किया है उन्हें निम्न कोटियों में विभाजित कर सकते हैं, यथा—

(१) शब्दालंकार
(२) अर्थालंकार

विवेच्य-पूजा-काव्य-कृतियों में व्यवहृत शब्दालंकारों की तालिका—

(१) अनुप्रास
(२) पुनरुक्तिप्रकाश
(३) यमक

विवेच्य पूजा-काव्य-कृतियों में व्यवहृत अर्थालंकारों की तालिका—

(१) अतिशयोक्ति
(२) उपमा
(३) उत्प्रेक्षा
(४) उदाहरण
(५) रूपक
(६) व्यतिरेक

अब यहाँ व्यवहृत अलंकारों की स्थिति का इस प्रकार अध्ययन करेंगे कि आलंकारिक प्रतिभा पूजा-काव्य के कवियों की सहज में प्रकट हो जावे।

शब्दालंकार—

शब्दालंकारों में सर्वप्रथम हम अनुप्रास पर विचार करेंगे यथा—

अनुप्रास—

काव्याभिव्यक्ति में शब्दालंकार का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है और शब्दालंकार में अनुप्रास अलंकार का उल्लेखनीय महत्त्व है। जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में विभिन्न भेदों के साथ अनुप्रास अलंकार अठारहवीं शती से व्यवहृत है। अठारहवीं शती के कवि द्यानतराय विरचित 'श्रीबृहत सिद्धचक्र पूजा-भाषा'[1], 'श्री रत्नत्रयपूजा'[2] और 'श्रीअयपंचमेरु पूजा'[3] नामक पूजा रचनाओं में छेकानुप्रास और 'श्री सरस्वती पूजा'[4] में वृत्यनुप्रास का

---

१. परमब्रह्म परमातमा परमजोति परमीश।
—श्री बृहत सिद्ध चक्र पूजा भाषा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ-जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७ पृष्ठ २३६।

२. शिव सुख सुधा सरोवरी सम्यक्त्रयी निहार।
—श्री रत्नत्रयपूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १९१।

३. सुरस सुवर्ण सुगंध सुहाय, फलसों पूजो श्री जिनराय।
श्री अयपंचमेरु पूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ-राजेश नित्यपूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १९६।

४. छीरोदधि गंगा, विमल तरंगा, सलिल अभंगा, सुख संगा।
—श्री सरस्वती पूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ-राजेश नित्यपूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ३७५।

तथा 'श्री अथदेवशास्त्रगुरु की भाषा पूजा'[1] में श्रुत्यानुप्रास का प्रयोग द्रष्टव्य है ।

उन्नीसवीं शती के पूजाकार वृन्दावन अनुप्रास विशेषज्ञ हैं उन्होंने एक ही छंद में अनुप्रास के विभिन्न भेदों— छेका, वृत्य, अन्त्य— को 'श्रीमहावीर स्वामी पूजा'[2] नामक कृति में व्यंजित किया है । इस शती की 'श्रीचन्द्रप्रभु-जिनपूजा'[3] 'श्रीपंचकल्याणक पूजा पाठ'[4], 'श्री नेमिनाथजिनपूजा'[5] नामक पूजाकृतियों में छेकानुप्रास का, 'श्रीकुंथुनाथ जिनपूजा'[6], 'श्री अनंतनाथ

---

१. प्रथम देव अरहृत सुश्रुत सिद्धान्त जू ।
गुरु निरग्रन्थ महंत मुकतिपुर पंथजू ॥
—श्री अथदेव शास्त्र गुरू की भाषा पूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ-जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, न० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १६ ।

२. झननं झननं झननं झनन । सुरलेत तहाँ तननं तननं ॥
—श्री महावीर स्वामीपूजा, वृन्दावन, संगृहीतग्रंथ-राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १३७ ।

३. चारु चरन आचरन, चरन चित-हरन चिहृन-चर ।
—श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजा, वृन्दावन, संगृहीतग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७, पृष्ठ ३३३ ।

४. कमल केवरो कुन्द केतकी चंपा मरूआ सार ।
—श्री पंचकल्याणक पूजापाठ, कमलनयन, हस्तलिखित, जैन शोध अकादमी, अलीगढ़ में सुरक्षित ।

५. करि चित-चातक चतुर चर्चित जगत हूँ हित धारिके ।
—श्री नेमिनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, संगृहीतग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७, पृष्ठ ३६६ ।

६. श्री फल सहकारं, लौंग अनारं, अमल अपारं, सब रितके ।
—श्री कुन्थुनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न, संगृहीत ग्रंथ, ज्ञानपीठ पूजांजलि अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस १९५७, पृष्ठ ५४४ ।

जिनपूजा'[1] नामक पूजाओं में वृत्यनुप्रास का व्यवहार उल्लेखनीय है। उत्कृष्ट पूजारचयिता वृन्दावन विरचित 'श्री शांतिनाथ जिनपूजा'[2] में अन्त्यानुप्रास और 'श्रीपद्मप्रभु जिनपूजा'[3] में श्रुत्यानुप्रास का प्रयोग परिलक्षित है।

बीसवीं शती के पूजाकवि जिनेश्वरदास कृत 'श्री चन्द्रप्रभु पूजा'[4] में, दौलतराम रचित 'श्री पावापुर सिद्ध क्षेत्र पूजा[5] और नेम प्रणीत 'श्री अकृत्रिम चैत्यालय पूजा[6]' में छेकानुप्रास के अभिदर्शन होते है। इस शती के अन्य पूजा प्रणेता हीराचंद ने वृत्यनुप्रास का प्रयोग सफलतापूर्वक किया है।[7]

---

१. दशांग धूप धूम्रग्रन्थ भगवृन्द धावही।
श्री अनन्तनाथ जिनपूजा, रामचन्द्र, संगृहीतग्रंथ-राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १०५।

२. यह विघ्न मूल-तरु खंड खंड, चित चिन्तित आनन्द मंड मंड।
—श्री शांतिनाथ जिनपूजा, वृन्दावन, संगृहीतग्रन्थ-राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ११६।

३. शतक दण्डअघ खण्ड, सकल सुर सेवत आई।
श्री पद्मप्रभु जिनपूजा, वृन्दावन संगृहीतग्रंथ-राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ८२।

४ चारू चरित चकोरन के चित चोरन चन्द्रकला बहुसूरे।
—श्री चन्द्रप्रभु जिन पूजा, जिनेश्वरदास, संगृहीतग्रंथ-जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७ पृष्ठ १००।

५. अजर अमर अविनाशी शिव थल वर्णी 'दौल' रहे सिर नाय।
—श्री पावापुर सिद्ध क्षेत्र पूजा, दौलतराम, संगृहीतग्रन्थ-जैन पूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७ पृष्ठ १४९।

६. जय अमल अनादि अनन्त जान, अनिमित जु अकीर्तम अचल थान।
—श्री अकृत्रिम चैत्यालय पूजा, नेम, संगृहीतग्रंथ-जैन पूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ २५३।

७ आनिय सुरसंगा, सलिल सुरंगा, करिमन चंगा, भरि भृंगा।
—श्री सिद्ध चक्र पूजा, हीराचन्द, संगृहीत ग्रंथ—बृहजिनवाणी संग्रह, सम्पादक व रचयिता—पं० पन्नालाल वाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़, सितम्बर १९५६, पृष्ठ ३२८।

इस प्रकार अठारहवीं शती से लेकर बीसवीं शती तक पूजाकृतियों में अनुप्रास अपने प्रभेदों-छेका, वृत्य, श्रुत्य और अन्त्य के साथ व्यवहृत हुआ है। विशेष रूप से पूजा काव्य में छेकानुप्रास की बहुलता दृष्टगोचर होती है। पूजाकाव्य के रचयिताओं के लिए काव्यसृजन का लक्ष्य स्वान्तः सुखाय नहीं अपितु सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र्य विषयक कल्याणकारी भावनाओं को जनसाधारण तक पहुँचाना अभीष्ट रहा है। यही कारण है कि पूजा काव्य के रचयिताओं ने तत्कालीन काव्याभिव्यक्ति के प्रमुख प्रसाधनों को गृहीत कर अभीष्ट उपलब्धि में यथेष्ट सफलता अर्जित की है। इस दृष्टि से उन्नीसवीं शती में विरचित पूजाकाव्य कृतियों में अनुप्रासिक अभिव्यक्ति उल्लेखनीय है।

पुनरुक्ति प्रकाश—

कथन में पुष्टता उत्पन्न करने के लिए कवियों द्वारा पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार का व्यवहार हुआ है। भक्त्यात्मक भावनाओं में पुनरुक्ति कथन से ही शोभा की प्राप्ति हुई है। जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार अठारहवीं शती के कवि द्यानतराय विरचित 'श्री बीस तीर्थंकर पूजा'[1], 'श्री सोलह कारण पूजा,'[2] 'श्री निर्वाण क्षेत्रपूजा'[3] और 'श्री बृहत सिद्ध चक्र पूजा भाषा'[4] नामक पूजाओं में पुनरुक्ति प्रकाश के प्रयोग से अद्भुत ध्वन्यात्मकता और लयप्रियता का संचार हुआ है।

---

१. सीमंधर सीमंधर स्वामी, जुगमन्धर जुगमन्धर नामी।
—श्री बीस तीर्थंकर पूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रन्थ-राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ५९।

२—परम गुरू हो जय जय नाथ परम गुरू हो।
श्री सोलहकारण पूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रन्थ—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ, १९७६, पृष्ठ १७५।

३—परमपूज्य चौबीस, जिहं जिहं थानक शिव गये।
श्री निर्वाण क्षेत्र पूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रन्थ, राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ३७३।

४—प्रचला प्रचला उदे कहावै, लार बहै मुख अंग चलावै।
—श्री बृहत सिद्ध चक्र पूजा भाषा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ—जैनपूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ २३८।

उन्नीसवीं शताब्दि में पूजा काव्य के कवियों ने पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार का व्यवहार काव्य में भावोत्कर्ष के अतिरिक्त उसमें ध्वन्यात्मकता का सफलतापूर्वक संचार किया है। कविवर वृंदावन कृत काव्य में पुनरुक्ति प्रकाश का प्रयोग अपेक्षा कृत अधिक हुआ है। लय और ध्वन्यात्मकता उत्पन्न करने के लिए कवि ने इस अलंकार को गृहीत किया है। भावोत्कर्ष में इस प्रकार के प्रयोग वस्तुतः उल्लेखनीय हैं। 'श्री महावीर स्वामी पूजा में' कवि ने 'झननं', 'सननं' इत्यादि शब्दों की आवृत्ति में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार के अभिनव प्रयोग में दर्शन होते हैं।[1] इसके अतिरिक्त वृंदावन की अन्य कृति 'श्री शांतिनाथ जिनपूजा'[2] में, कमलनयन की 'श्री पंचकल्याणक पूजापाठ'[3] में, मनरंगलाल की 'श्री शीतलनाथ जिनपूजा'[4] नामक पूजा रचनाओं में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार का व्यवहार द्रष्टव्य है।

बीसवीं शती के कवि सेवक की 'श्री आदिनाथ जिनपूजा,[5], दौलत

१—सननं सननं सननं नभ में, एक रूप अनेक जु धार भ्रमैं।
—श्री महावीर स्वामी पूजा, वृन्दावन, संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १३८।

२. सेवक अपनो निज आन जान, करूना करि भौ भय भान भान।
—श्री शांतिनाथ जिनपूजा, वृंदावन, संग्रहीत ग्रंथ—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ११६।

३. जुगपद नमि नमि जय जय उचारि।
—श्री पंचकल्याणक पूजा पाठ, कमलनयन, हस्तलिखित।

४. धन्य तू धन्य तू धन्य तू मैं नहा।
—श्री शीतलनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, संगृहीतग्रन्थ—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९०६, पृष्ठ १०२।

५. जगमग-जगमग होत दशों दिशि
ज्योति रही मंदिर में छाय।
श्री आदिनाथ जिनपूजा, सेवक, संगृहीत ग्रंथ-जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७ पृष्ठ १४०।

राम की 'श्री चम्पापुर सिद्ध क्षेत्रपूजा'[1], कुंजिलाल की 'श्री देवशास्त्र गुरुपूजा'[2] और युगल किशोर 'युगल' की 'श्री देवशास्त्र गुरुपूजा'[3] नामक पूजा काव्य कृतियों में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार के अभिदर्शन होते हैं।

इस प्रकार यह सहज में कहा जा सकता है कि इन जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य के रचयिताओं को पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार को गृहीत करने में वस्तुतः दो तथ्यों की अपेक्षा रहा, यथा—

(१) काव्याभिव्यक्ति में अधिक प्रभावना उत्पन्न करने की दृष्टि से।

(२) काव्य में संगीत और लयप्रियता के सफल संचरण के उद्देश्य से इस अलंकार का पूजा काव्यों में व्यवहार हुआ है।

इस दृष्टि से कविवर द्यानतराय और कविवर वृंदावन द्वारा रचित पूजा काव्य कृतियों में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार का व्यवहार वस्तुतः उल्लेखनीय रहा है।

यमक—

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में यमक अलंकार का व्यवहार उन्नीसवीं शती

---

१. सोलह वसु इक इक पट इकेय,
इक इक इक इम इन क्रम सहेय।
—श्री चम्पापुर सिद्ध क्षेत्र पूजा, दौलतराम, संगृहीतग्रंथ-जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १४०।

२. भर भर के थाल चढ़ाऊँ चरणन में, मेरा क्षुधा रोग मिटाले।
श्रीदेवशास्त्र गुरु पूजा, कुंजिलाल, संगृहीतग्रंथ-नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, सम्पादक व प्रकाशक—ब्र० पतासी बाई जैन, ईसरी बाजार, (हजारी बाग), पृष्ठ ११४।

३. युग-युग से इच्छा सागर में,
प्रभु गोते खाता आया हूँ।
—श्री देवशास्त्र गुरु पूजा, युगल किशोर 'युगल' संगृहीत ग्रंथ-राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, प्रकाशक-राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरि नगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ४८।

से हुआ है। उन्नीसवीं शती के कवि वृंदावन विरचित 'श्रीचन्द्रप्रभु जिनपूजा'[1] और मनरंगलाल कृत 'श्री नेमिनाथ जिनपूजा'[2] तथा 'श्री शीतल नाथ जिनपूजा'[3] नामक पूजा काव्य-रचनाओं में सभंग यमक अलंकार के सफल प्रयोग से काव्याभिव्यंजना में सरसता का संचार हुआ है। इस शती की अन्य पूजा कृति 'श्री शांतिनाथ जिनपूजा' में वृन्दावन द्वारा अभंग यमक का व्यवहार कुशलता के साथ हुआ है।[4]

बीसवीं शती के पूजाकार जिनेश्वरदास कृत 'श्रीचन्द्रप्रभु पूजा'[5] और श्री नेमिनाथ जिनपूजा[6] में, कुंजिलाल रचित 'श्रीभगवान महावीर स्वामी

---

१. चारु चरन आचरन, चरन चित-हरन चिह्न चर।
—श्री चन्द्र प्रभु जिनपूजा, वृन्दावन, संगृहीतग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७ ई०, पृष्ठ ३३३।

२. घनश्याम जिसा तन श्यामलहो। घन-नाद वरोवरि नाद लहो॥
—श्री नेमिनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, संगृहीतग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७ ई०, पृष्ठ ३६९।

३. जयसुनंदा के नंदा तिहारी कथा। भापिको पार पावे कहावे यथा॥
—श्री शीतलनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्यपूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, पृष्ठ १०१।

४. तामद मानन आपहि हो यह। छानन आनन आनन टेरी॥
—श्री शांतिनाथ जिनपूजा, वृन्दावन, संगृहीतग्रंथ-राजेश नित्यपूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़ १९७६, पृष्ठ ११०।

५. चारु चरण आचरण चतुर नर चन्द्र प्रभु चित धारो।
—श्री चन्द्र प्रभु जिन पूजा, जिनेश्वरदास, संगृहीत ग्रंथ, जैनपूजापाठ संग्रह भागचन्द पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १००।

६. वृक्ष अशोक शोक सब नाशे वाणी दिव्य प्रकाश।
—श्री नेमिनाथ जिन पूजा, जिनेश्वरदास, संगृहीतग्रंथ, जैनपूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७ पृष्ठ ११४।

पूजा'[1] में, हीराचंद प्रणीत 'श्री सिद्धचक्र पूजा'[2] में और नेम लिखित 'श्री अकृत्रिम चेत्यालय पूजा'[3] में सभंग यमक अलंकार प्रयुक्त है। इस शती के अन्य पूजा रचयिता हीराचंद[4] और दीपचन्द[5] ने अभंग यमकालंकार का वखूवी प्रयोग अपनी पूजा-काव्य-कृतियों में किया है।

इस प्रकार जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में यमकालंकार का सर्वाधिक सभेद प्रयोग उन्नीसवीं शती के वृंदावन और वीसवीं शती के हीराचंद प्रणीत पूजा रचनाओं में दृष्टव्य होता है।

अर्थालंकार—

शब्दालंकारों की भांति जैन-हिन्दी-पूजा-कवियों की कृतियों में अनेक अर्थालंकारों के सफल प्रयोग परिलक्षित है। हिन्दी के रीतिकालीन आचार्यों की भांति इन कवियों को काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से काव्य में अलंकारों के

---

१. आलोक लोक की कथा विशेप रूप जानते।
—श्रीभगवान महावीर स्वामीपूजा, कुंजिलाल, संगृहीतग्रंथ-नित्य नियम विशेप पूजन संग्रह, सम्पादक व प्रकाशक- ब्र० पतासीवाई जैन, ईसरी वाजार (हजारी वाग), पृष्ठ ४६।

२. जय लक्ष: अलक्ष सुलक्ष्यक हो।
—श्री सिद्धचक्र पूजा, हीराचंद, संगृहीतग्रंथ—वृहजिनवाणी संग्रह सम्पा० व रचयिता—पं० पन्नालाल वाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़ सितम्वर १९६९, पृष्ठ ३३२।

३ जय अजय अखण्ड अरुपधार, पट द्रव्य नही दीसे लगार।
—श्री अकृत्रिम चैत्यालय पूजा, नेम, संगृहीत ग्रंथ—जैन पूजापाठ संग्रह भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता—७, पृष्ठ २५३।

४. सीतल जग को शीतल कीना। चारो गति आताप हरीना।
श्री चतुर्विशति तीर्थंकर समुच्चय पूजा, हीराचंद, संगृहीत ग्रन्थ—नित्य नियम विशेप पूजन संग्रह, सम्पा० व प्रकाशिका—ब्र०पतासी वाई जैन ईसरी वाजार, (हजारी वाग), पृष्ठ ४६।

५. नहीं धरा पर कुछ धरा, धरे अशेप कलेश।
—श्री वाहुवली पूजा, दीपचंद, संगृहीतग्रन्थ—नित्य नियम विशेप पूजा पाठ संग्रह, सम्पा० व प्रकाशिका—ब्र० पंतासी वाई जैन, ईसरी वाजार (हजारी वाग), पृष्ठ ६६।

व्यवहार का कोई विशेष उद्देश्य नहीं रहा है। अभिव्यक्ति में इन अलंकारों के सहज प्रयोग से अर्थ में जो उत्कर्ष उत्पन्न हुआ है, इन कवियों को यही इष्ट रहा है।

वास्तविकता यह है कि पूजा काव्य में अलंकारों के अतिशय उपयोग से काव्याभिव्यक्ति को बोझिल नहीं होने दिया है। यहाँ हम कथित पूजा-काव्य-कृतियों में अर्थालंकारों का अकारादि क्रम से इस प्रकार अध्ययन करेंगे कि प्रत्येक अलंकार के रूप-स्वरूप का सम्यक् उद्घाटन हो सकें। इस क्रम में अतिशयोक्ति अलंकार का सर्वप्रथम अध्ययन करेंगे।

अतिशयोक्ति—

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती के पूजाकाव्य के रचयिता वृंदावन ने 'श्रीचन्द्रप्रभु जिनपूजा' नामक पूजाकाव्य कृति में अतिशयोक्ति अलंकार का सफल प्रयोग किया है।[1] इस शती के अन्य कवि मनरंगलाल रचित 'श्री अनंतनाथ जिनपूजा'[2] और 'श्रीनेमिनाथ जिनपूजा'[3] नामक पूजा काव्य कृतियों में अतिशयोक्ति अलंकार प्रयुक्त है।

---

१. ताको वरणत नहिं लहत पार।
तो अंतरंग को कहे सार।

—श्री चन्द्रप्रभु जिनपूजा, वृन्दावन, संगृहीत ग्रन्थ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्या प्रसाद गोयलीय, मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस १९५७, पृष्ठ ३३८।

२. जय जय अपार पारा न बार।
गुण कथिहारे जिह्वा हजार।

—श्री अनन्तनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, संगृहीतग्रन्थ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७ ई०, पृष्ठ ३५६।

३. तुम देखत पाप-पहार विले।
तुम देखत सज्जन कंज खिले।।

—श्री नेमिनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, संगृहीतग्रन्थ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७ पृष्ठ ३७०।

बीसवीं शती में जिनेश्वरदास कृत 'श्री बाहुबली स्वामी पूजा' नामक 'पूजाकाव्य कृति में अतिशयोक्ति अलंकार व्यवहृत है।[१]

इस प्रकार जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य कृतियों में उन्नीसवीं शती के कवियों द्वारा अतिशयोक्ति अलंकार का व्यवहार सर्वाधिक हुआ है।

उपमा—

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उपमालंकार का व्यवहार अठारहवीं शती से हुआ है। इस शती के पूजा प्रणेता द्यानतराय द्वारा प्रणीत 'श्री देवशास्त्र गुरुपूजा भाषा'[२] और 'श्री निर्वाण क्षेत्रपूजा'[३] नामक पूजाओं में लुप्तोपमालंकार के अभिदर्शन होते हैं। इस शती की अन्य कृतियां 'श्री बृहत सिद्ध चक्र पूजा भाषा'[४] 'श्रीदेवपूजा भाषा'[५] में पूर्णोपमालंकार के सफल प्रयोग द्रष्टव्य हैं।

---

१. बाल समं जिन बाल चन्द्रमा।
शशि से अधिक धरे दुतिसार।
—श्री बाहुबली स्वामीपूजा, जिनेश्वरदास, संगृहीत ग्रन्थ—जैन पूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड कलकत्ता—७, पृष्ठ १७१।

२. दुस्सह भयानक तासु नाशन कोसु गरुड समान है।
—श्री देवशास्त्र गुरुपूजा भाषा, द्यानतराय, संगृहीतग्रन्थ—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरि नगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ४२।

३. मोती समान अखंड तंदुल,
अमल आनंद धरि तरों।
—श्री निर्वाणक्षेत्र पूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रन्थ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ३७३।

४. सुस्वर उदय कोकिला वानी, दुस्वर गर्दभ-ध्वनि सम जानी।
—श्री बृहत सिद्धचक्र पूजा भाषा, द्यानतराय, संगृहीतग्रन्थ—जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ २४२।

५. मिथ्यातपन निवारन चन्द समान हो।
—श्री देवपजा भाषा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ—बृहज्जिनवाणी संग्रह, सम्पा० व रचयिता—पं० पन्नालाल बाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़, १९५६, पृष्ठ ३०४।

उन्नीसवीं शती के पूजाकार वृंदावन[1] और मल्लजी[2] ने लुप्तोपमालंकार तथा रामचन्द्र[3] और मनरंगलाल[4] ने पूर्णोपमालंकार का व्यवहार परम्परानुमोदित उपमानों के साथ सफलतापूर्वक किया है।

बीसवीं शती में श्री आदिनाथ जिनपूजा[5] और 'श्री देवशास्त्रगुरुपूजा[6] नामक पूजा कृतियों में लुप्तोपमालंकार तथा श्रीनेमिनाथ जिन-

---

१. शांतिनाथ जिनके पद पंकज, ।
जो भवि पूजे मन वच काय।
—श्री शांतिनाथ जिन पूजा, वृन्दावन, संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ११७।

२. श्री जिन-चरण-सरोजकूं ।
पूज हर्ष चित—चाव ।
—श्री क्षमावाणी पूजा, मल्लजी, संगृहीतग्रंथ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्या प्रसाद गोयलीय, मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्डरोड, बनारस १९५७, पृष्ठ ४०३ ।

३. अक्षत अखडित अतिहि सुन्दर जोति शशि सम लीजिए।
—श्री सम्मेद शिखर पूजा, रामचन्द, संगृहीतग्रंथ—जैन पूजापाठ संग्रह भागचन्द पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता—७, पृष्ठ १२७।

४. पय समान अति निर्मल, दीसत सोहनो।
—श्री अनन्तनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, संगृहीतग्रंथ—ज्ञानपीठ, पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७, पृष्ठ ३५१ ।

५. तृणवत ऋद्धि सब छोड़िके, तप धारयो वन जाय।
—श्री आदिनाथ जिनपूजा, सेवक, संगृहीत ग्रंथ—जैन पूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता—७, पृष्ठ ९७ ।

६. मृग सम मृग तृष्णा के पीछे,
मुझको न मिली सुख की रेखा।
—श्री देवशास्त्रगुरु पूजा, युगल किशोर 'युगल', संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़ १९७६, पृष्ठ ५०

पूजा[1] और श्री चम्पापुर क्षेत्र पूजा[2] नामक पूजा रचनाओं में पूर्णोपमालंकार उल्लिखित है ।

इस प्रकार जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में व्यवहृत उपमाओं के आधार पर यह निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अपनी भावाभिव्यक्ति में उत्कर्ष उत्पन्न करने के लिए पूजा कवियों ने उपमा अलंकार का सफलतापूर्वक व्यवहार किया है । उपमालंकार के विविध प्रयोगों—पूर्णोपमा, लुप्तोपमा—में इन पूजाकवियों द्वारा परम्परानुमोदित एवं नवीन उपमानों के सफल प्रयोग द्रष्टव्य हैं । उपमालंकार का सर्वाधिक प्रयोग अठारहवीं शती के पूजाकाव्य रचयिता द्यानतराय की पूजा कृतियों में व्यवहृत है । भाव की उत्कृष्टता के अतिरिक्त भावाभिव्यंजना में कविवर द्यानतराय को यथेष्ट सफलता मिली है ।

उत्प्रेक्षा—

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उत्प्रेक्षा अलंकार का व्यवहार उन्नीसवीं शती से परिलक्षित है । इस शती के उत्कृष्ट पूजा काव्य के रचयिता वृंदावन ने 'श्रीचन्द्रप्रभ जिनपूजा' नामक पूजाकाव्य कृति में वस्तुत्प्रेक्षालंकार को व्यंजित किया है[1] इस शती के अन्य कविवर मनरंगलाल की पूजाकृति

---

१. चन्द्र किरण सम उज्ज्वल लीजे,
अक्षत स्वच्छ सरल गुण खान ।
—श्री नेमिनाथ जिनपूजा, जिनेश्वरदास, संगृहीत ग्रंथ—जैन पूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता—७, पृष्ठ १११ ।

२. गणिद्युति सम खण्ड विहीन तंदुल लै नीके ।
—श्री चम्पापुर सिद्ध क्षेत्र पूजा, दौलतराम, संगृहीतग्रंथ-जैनपूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता—७, पृष्ठ १३८ ।

३. सित कर में सो पय-धार देत,
मानो बांधत भव-सिंधु-सेत ।
—श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजा, वृंदावन, संगृहीतग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७ ई०, पृष्ठ ३३७ ।

श्री नेमिनाथ जिनपूजा में वस्तुत्प्रेक्षा अलंकार के अभिदर्शन होते हैं।[1]

बीसवीं शती के पूजाकाव्य के कवि जिनेश्वरदास प्रणीत 'श्री बाहुबली स्वामी पूजा' नामक पूजाकृति में वस्तुत्प्रेक्षालंकार व्यवहृत है।[2]

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य के कवियों की हिन्दी-काव्य-कृतियों में उत्कर्ष उत्पन्न करने के उद्देश्य से इसका प्रयोग हुआ है यहाँ उत्प्रेक्षागत वस्तु, हेतु फल नामक प्रभेदों का कोई पृथक रूप से विवेचन करना इन कवियों का अभिप्रेत नहीं रहा है।

उन्नीसवीं शती के पूजाकाव्य के कवि वृन्दावन उत्प्रेक्षाओं के धनी हैं। असंभव प्रसंगों की अभिव्यंजना में कवि वृन्दावन को उत्प्रेक्षा करने की अपेक्षा हुई है। इस प्रकार की अभिव्यंजना में कवि वृंदावन को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

उदाहरण—

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में अठारहवीं शती के कविवर द्यानतराय पूजा विरचित 'श्री दशलक्षणधर्म'[3] 'श्री वृहत् सिद्धचक्र पूजाभाषा'[4] नामक पूजा काव्य कृतियों में उदाहरणालंकार के अभिदर्शन होते हैं।

---

१. मातशिवाहरपी मन मे जनु आज प्रसूति जनी महतारी।
—श्री नेमिनाथ जिनपूजा, मनरगलाल, संगृहीत ग्रंथ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७, पृष्ठ ३६७।

२. वेडूर जमणि पर्वत मानो नील कुलाचल समथिर जान।
—श्री बाहुबली स्वामी पूजा, जिनेश्वरदास, संगृहीत ग्रंथ, जैनपूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १७१।

३. बहुमृतक सडहि मसान माहीं,
काग ज्यों चोंचे भरें।
—श्री दश लक्षण धर्मपूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ—राजेश नित्यपूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, ष्ठ १८४।

४. जा पद मांहि सर्व पद छाजे,
ज्यों दर्पण प्रतिबिंब विराजे।
—श्री वृहत् सिद्धचक्र पूजा भाषा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ, जैन पूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ २४४।

बीसवीं शती के कविवर सेवक प्रणीत 'श्री आदिनाथ जिनपूजा' नामक पूजाकाव्य कृति में उदाहरण अलंकार व्यवहृत है।[1]

इस प्रकार जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उदाहरण अलंकार का सर्वाधिक, प्रयोग अठारहवीं शती के कवि द्यानतराय की पूजाकाव्य कृतियों में दृष्टि-गोचर होता है।

रूपक—

जैन-हिन्दी-पूजा काव्य में रूपक अलंकार अपने निरंग रूप में प्रयुक्त है। रूपक में गृहीत उपमानों में इन कवियों द्वारा स्वतंत्रता रखी गई है। रूढ़िबद्ध, रूढ़िमुक्त उपमानों के साथ-साथ अनेक नवीन उपमान भी गृहीत हैं। यहाँ इस दृष्टि से निम्न रूप में अध्ययन किया जा सकता है।

अठारहवीं शती में विरचित जैन-हिन्दी-पूजाओं में मोह, भव तथा ज्ञान उपमेय के लिए क्रमश: तम,[2] सागर[3] और दीप[4] नामक रूढ़िबद्ध उपमान रूपक अलंकार में व्यवहृत हैं।

इसी शती में सम्यक्चारित्र, मुक्ति और शील उपमेय के लिए क्रमशः

---

१. कठिन कठिन कर नीसर्यों, जैसे निसरै जती में तार हो।
—श्री आदिनाथ जिनपूजा, सेवक, संगृहीतग्रंथ—जैनपूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ ९९।

२. ज्ञानाभ्यास करे मन माहीं, ताके मोह-महातम नाही ॥
—श्री सोलह कारण पूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ—राजेश नित्य, पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६ पृष्ठ १७६।

३. भवसागर सों ले तिरे, पूजें जिन-वच प्रीति।
—श्री सरस्वती पूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ३७५।

४. तिहि कर्मघाती ज्ञान दीप प्रकाश जोति प्रभावली।
—श्री अथ देवशास्त्र गुरु की भाषा पूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रंथ—जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १८।

रतन[1], फल[2] और लक्ष्मी[3] नामक रूढ़िमुक्त उपमान रूपक अलंकार में परिलक्षित हैं।

इसके अतिरिक्त इस शताब्दि में भव, धर्म तथा चेतन उपमेय के लिए क्रमशः पींजरा[4], नाव[5], और ज्योति[6] नामक नवीन उपमान रूपकालंकारान्तर्गत द्रष्टव्य हैं।

उन्नीसवीं शताब्दि के पूजा-काव्य कृतियों में अभिव्यक्ति के लिए रूढ़िवद्ध, रूढ़िमुक्त और नवीन उपमानों पर आधारित निरंग रूपकों का मूल्यवान स्थान है। इस शती के उत्कृष्ट पूजाकार वृन्दावन ने भव और

---

१. सम्यक्चारित्र रतन संभालो, पांच पाप तजि के व्रत पालो।
—श्री चारित्रपूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रंथ, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १९९।

२. निहचेमुकतिफल देहू मोकों, जोर कर विनती करों।
—श्री निर्वाण क्षेत्र पूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रंथ —राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृ० ३७४।

३. लहुं शील-लच्छमी एव, छूटों फूलन सो।
—श्री नन्दीश्वरद्वीप पूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १७२।

४. करै करम की निरजरा, भव पींजरा विनाशि।
—श्री दशलक्षण धर्मपूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६ पृष्ठ १८६।

५. द्यानत धरम की नाव बैठो, शिवपुरी किशलात है।
—श्री रत्नत्रय पूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १९९।

६. मोह तिमिर हम पास, तुम पै चेतन जोत है।
—श्री बृहत सिद्ध चक्र पूजा भाषा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रंथ—जैनपूजा पाठ संग्रह, प्रकाशक—भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ २३६।

मोह उपमेय के लिए क्रमशः सागर[1] और तिमिर[2] नामक उपमान का प्रयोग रूपक अलंकार में रूढ़िबद्ध रूप से किया है। कविवर मल्लजी कृत 'श्री क्षमावाणी पूजा' में मुक्ति उपमेय के लिए श्रीफल नामक रूढ़िमुक्त उपमान उल्लिखित है।[3] भव मुक्ति और मन उपमेय के लिए क्रमशः जाल[4], रमणी[5] और सुमेरपर्वत[6] नामक नवीन उपमान इस काल के पूजाकाव्य में दृष्टिगोचर होते हैं।

बीसवीं शती की पूजा-काव्य-कृतियों में परम्परागत उपमानों के अतिरिक्त कतिपय नवीन उपमानों के साथ निरंगरूपकालंकार का व्यवहार परिलक्षित है। इस काल के पूजाप्रणेताओं ने भव, मोह और ज्ञान उपमेय के

---

१. जय शान्तिनाथ चिद्रूपराज, भवसागर में अद्भुत जहाज।
—श्री शांतिनाथ जिनपूजा, वृंदावन, संगृहीतग्रंथ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ११४।

२. मम तिमिर मोह निरवार, यह गुन धारतु हो।
—श्री चन्द्रप्रभु जिनपूजा, वृन्दावन, संगृहीतग्रंथ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्या प्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७, पृष्ठ ३३४।

३. कहैं मल्ल सरधा करो, मुक्तिश्रीफल होय।
—श्री क्षमावाणी पूजा मल्लजी, संगृहीतग्रंथ—ज्ञानपीठ पूजांजलि अयोध्या प्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७, पृष्ठ ४०७।

४. श्री कुंथुदयालं जग-रिछपालं हन भव-जालं गुणमालं।
—श्री कुंथुनाथ जिनपूजा, बखतावररत्न, संगृहीतग्रंथ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७, पृष्ठ ५४२।

५. पाय जरा मरनादि नाशिकरि मुक्ति रमनि भरतार।
—श्री पंचकल्याणक पूजापाठ, कमलनयन, हस्तलिखित।

६. जय तृषा परोषह करत जेर।
कहुं रच चलत नहिं मन सुमेर॥
—श्रीअथ सप्तर्षिपूजा, मनरगलाल, संगृहीतग्रंथ-राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १४४।

लिए क्रमशः उदधि,[1] तम[2] और दीपक[3], नामक उपमान रूढ़िबद्ध रूप से एवं कर्म उपमेय के लिए सेना[4] नामक उपमान रूढ़िमुक्त रूप से तथा संसार, ज्ञान और मोक्ष उपमेय के लिए क्रमशः भ्रमजाल[5], लता[6], और नगर[7], नामक उपमान नवीन रूप से व्यंजित हैं।

---

१. लहि ज्ञान तत्व विचार भवि शिव जा भवोदधि पारके।
—श्री तत्वार्थसूत्र पूजा, भगवानदास, संगृहीतग्रंथ—जैनपूजापाठ संग्रह, भागचन्द पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता—७, पृष्ठ ४१० ।

२. मोह महातम नाश करन को जिनवर चरण चढ़ावो।
—श्री चन्द्रप्रभु जिनपूजा, जिनेश्वरदास, संगृहीतग्रंथ—जैनपूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता—७, पृष्ठ १०१ ।

३. हां मैं हूँ तेरे हवाले सुज्ञान दीपक मिले दिव्य ज्योति।
—श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, कुंजिलाल, संगृहीतग्रंथ—नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, सम्पा० व प्रकाशिका—ब्र० पतासी बाई जैन, ईसरी बाजार, (हजारीबाग). पृष्ठ ११४ ।

४. कर्म की सेन चतुरंगी, चरण तुम पूजते अंगी।
—श्रीतीसचौवीसीपूजा, रविमल, संगृहीतग्रंथ—जैनपूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता—७, पृष्ठ २४६ ।

५. संसार के भ्रमजाल में बहुताप सताया।
—श्री भगवान महावीर स्वामीपूजा, कुंजिलाल, संगृहीतग्रन्थ—नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, सम्पा० व प्रकाशिका—ब्र० पतासी बाई जैन, ईसरी बाजार, (हजारी बाग), पृष्ठ ४१ ।

६. मुर्झाई ज्ञान-लता मेरी, निज अन्तर्बल से खिल जावें।
—श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, युगल किशोर 'युगल', संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६ पृष्ठ ५३ ।

७. अविनाशी पद पाइयो, मोक्ष नगर का धाम।
—श्री बाहुबली पूजा, दीपचन्द, संगृहीतग्रन्थ—नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, सम्पा० व प्रकाशिका—ब्र० पतासी बाई जैन, ईसरी बाजार (हजारी बाग), पृष्ठ ६६ ।

उपर्यंकित विवेचन के आधार पर यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि अठारहवीं शती से बीसवीं शती तक के पूजा काव्य के कवियों ने प्रचलित उपमानों के साथ अनेक ऐसे नये उपमानों को गृहीत किया है जिनका लोक-जीवन में अवश्य प्रचलन रहा है। अभिव्यक्ति में स्पष्टता और सरसता उत्पन्न करने के उद्देश्य से ऐसे नये-नये उपमानों पर आधृत निरंग रूपक का सफलता पूर्वक प्रयोग हुआ है। काव्य कलेवर के अतिरिक्त काव्य-कौशल विषयक अनेक अंगों का सफलतापूर्वक प्रयोग पूजा-कवियों द्वारा हुआ है फल-स्वरूप हिन्दी वाङ्मय इस दृष्टि से अतिरिक्त अभिवृद्ध हुआ है।

व्यतिरेक—

अठारहवीं शती के जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य के रचयिता कविवर द्यानतराय ने नंदीश्वर में विराजमान प्रतिमाओं से उत्पन्न तेज के वर्णन में व्यतिरेक का व्यवहार किया है। प्रभु-प्रतिमा के तेज के सम्मुख करोड़ों चन्द और सूर्यो की द्युति भी फीकी है। उन्हें देखने मात्र से ही सम्यकत्व उत्पन्न हो जाता है।[1]

बीसवीं शती के कविवर हीराचन्द ने तंदुल की स्वच्छता को चन्द्रमा की द्युति से कहीं अधिक बताकर व्यतिरेक अलंकार का सफल प्रयोग किया है।[2]

---

१. कोटि शशि भान-दुति तेज छिप जात है।
महा-वैराग-परिणाम ठहरात है॥
वयन नहिं कहे लखि होत सम्यकधरं।
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं॥

—श्रीनन्दीश्वरद्वीपपूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रन्थ—राजेश नित्यपूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १६७६, पृष्ठ १७४।

२. तंदुल उजियारे शशिदुति हारे, कोमल प्यारे अनियारे।
तुष खंड निकारे जलसु पखारे, पुंज तुमारे ढिग धारे॥
त्रिभुवन के स्वामी त्रिभुवन नामी, अन्तरजामी अभिरामी।
शिवपुर विश्रामी निजनिधिपामी, सिद्धज जामी सिरनामी।

—श्री सिद्धचक्र, पूजा, हीराचन्द, संगृहीत ग्रन्थ—बृह जिनवाणी संग्रह, सम्पा० व रचयिता—पं० पन्नालाल बाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़, सितम्बर १६५६, पृष्ठ ३२६।

इस प्रकार व्यतिरेक अलंकार का व्यवहार उन्नीसवीं शती के पूजा-काव्यों में नहीं हुआ। व्यतिरेक अलंकार का व्यवहार कवि ने अव्यक्त सत्ता की गुण-गरिमा अथवा सौन्दर्याभिव्यक्ति के लिए प्रसिद्ध उपमानों को हीन ठहराकर ही सम्पन्न किया है। इस प्रकार की अभिव्यक्ति में इन कवियों को आशातीत सफलता प्राप्त हुई है।

उपर्युंकित विवेचन से यह स्पष्ट है कि जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में किन-किन अलंकारों का किस विधि प्रयोग हुआ है। इन अलंकारों के प्रयोग द्वारा इन कवियों को अपने आचार्यत्व प्रदर्शन करने का लक्ष्य नहीं रहा है। उन्हें मूलतः अभिप्रेत रहा है अपनी भक्त्यात्मक भावना को सरल-विधि से अभिव्यंजित करना। इस दृष्टि से इन कवियों के द्वारा अलंकारों का प्रयोग सर्वथा सफल ही माना जायेगा। विविध अलंकारों के व्यवहार से कवियों की भक्त्यात्मक-भावना को उत्कर्ष प्राप्त हुआ है।

छन्दोयोजना

छन्द काव्य की नैसर्गिक आवश्यकता है। छन्द और भाव का प्रगाढ़ सम्बन्ध है। भाव को अधिक संप्रेषणीय बनाने की शक्ति छन्द में निहित है। छन्द कथयिता और सामाजिक दोनों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। छन्द की अवतारणा रचयिता के भावावेग को सयम्ति और नियंत्रित करके उसका परिष्कार करती है तो सामाजिक के व्यक्तित्व को कोमल और सुसंस्कृत बनाकर मंगल का सूत्रपात करती है। लयात्मक अभिव्यक्ति से यदि एक को अभीप्सित आनंदोपलब्धि होती है, तो दूसरों को भी लयबद्ध अभिव्यक्ति के श्रवण, उच्चारण तथा अर्थ-ग्रहण से लोकोत्तर आनंद की प्राप्ति होती है।[1]

काव्याभिव्यक्ति में बहुमुखी उपयोगिताओं का सामंजस्य छन्द प्रयोग पर निर्भर करता है। हिन्दी-काव्य-धारा में रसानुसार विविध प्रसंगों में छन्दों के प्रयोग में वैविध्य के दर्शन होते हैं। जहाँ तक जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में प्रयुक्त छन्दों के अध्ययन का प्रश्न है यहाँ उस पर संक्षेप में विचार करना हमारा मूलाभिप्रेत रहा है।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में बत्तीस छन्दों का व्यवहार हुआ है। प्रयुक्त इन छन्दों को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं, यथा—

१. मात्रिक छन्द

२ वर्णिक छन्द

पूजाकाव्य में मात्रिक छन्दों की संख्या तेईस है जिसे लक्षण के आधार पर तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है यथा—

१. मात्रिक सम छन्द

२. मात्रिक अर्द्ध समछन्द

३. मात्रिक विषम छन्द

---

१. जैन-हिन्दी-काव्य में छन्दोयोजना, आदित्य प्रचण्डिया दीति, प्रकाशक-जैन शोध अकादमी, आगरा रोड, अलीगढ़, प्रथमसंस्करण सन् १९७६, पृष्ठ १०।

विवेच्य काव्य में मात्रिक समछन्दों की संख्या छत्तीस है, अर्द्धसम मात्रिक छन्दों की संख्या केवल दो है तथा मात्रिक विषम छन्दों की संख्या मात्र दो है। जहाँ तक वर्णिक वृत्तों का प्रश्न है समग्र पूजा-काव्य में उनके प्रयोग की संख्या मात्र नौ है। इस प्रकार पूजा-काव्य के प्रणेताओं को वर्णिक वृत्तों की अपेक्षा मात्रिक छन्दों का प्रयोग अधिक आनुकूल्य रहा है यहाँ हम इन छन्दों का अध्ययन मात्रा-विकास की दृष्टि से पहले मात्रिक छन्दों का करेंगे और उनके उपरान्त अकारादि क्रम से वर्णिक वृत्तों को अपने विवेचन का विषय बनायेंगे।

मात्रिक समछन्द

चौबोला—

चौबोला मात्रिक समछन्द का एक भेद है।[1] हिन्दी में यह छन्द वीर तथा शृंगार रसोद्रेक के लिए उल्लिखित है। जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती के पूजाकार वृन्दावन ने 'प्राकृत पैंगलम्' के लक्षणों के आधार पर चौबोला छन्द का प्रयोग 'श्रीचन्द्रप्रभु जिन पूजा' नामक कृति में शांत रस के परिपाक के लिए किया है।[2]

अडिल्ल—

मात्रिक समछन्द का एक भेद अडिल्ल छन्द है।[3] सामान्यतः हिन्दी में वीररसात्मक अभिव्यक्ति के लिए अडिल्ल छन्द का प्रयोग हुआ है।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य के रचयिताओं ने हिन्दी कवियों की नाईं अडिल्ल छन्द के नियमों में पर्याप्त परिवर्तन किया है। अठारहवीं शती के कविवर

---

१. जगन्नाथ प्रसाद 'भानु', छन्दः प्रभाकर, प्रकाशिका—पूर्णिमा देवी, धर्मपत्नि स्व० बाबू जुगल किशोर, जगन्नाथप्रिंटिंग प्रेस, बिलासपुर, संस्करण १९६० ई०, पृष्ठ ४६ ।

२. आठों दरब मिलाय गाय गुण,
जो भविजन जिन चंद जजै।
ताके भव-भव के अघ भाजैं,
मुक्तिसार सुख ताहि सजै॥
—श्रीचन्द्रप्रभु जिनपूजा, वृन्दावन, संगृहीत ग्रन्थ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, प्रकाशक,—अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, प्रथम संस्करण १९५७ ई०, पृष्ठ ३३८ ।

३. हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम भाग, सम्पा० धीरेन्द्र वर्मा आदि, प्रकाशक-ज्ञानमंडल लिमिटेड, बनारस, संस्करण संवत् २०१५, पृष्ठ ६० ।

द्यानतराय[1] ने उन्नीसवीं शती के कविवर रामचन्द्र[2] और बख्तावररत्न[3] ने तथा बीसवीं शती के कविवर जवाहरलाल[4], आशाराम[5] हीराचन्द[6] और

---

१. प्रथम देव अरहंत सुश्रुत सिद्धांत जू ।
गुरु निरग्रंथ महंत मुकतिपुर पंथ जू ॥
तीन रतन जग मांहि सो ये भवि ध्याइये ।
तिनकी भक्ति प्रसाद परमपद पाइये ॥

—श्री देवशास्त्रगुरुकीपूजाभाषा, द्यानतराय, संगृहीतग्रन्थ जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १६ ।

२. श्री सम्मेदशिखर पूजा, रामचन्द्र, संगृहीत ग्रंथ—जैन पूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १२५ ।

३. जो पूजे मनलाय भव्य पारस प्रभु नितही,
ताके दुःख सब जांय भीत व्यापै नहिं कितही ।
सुख सम्पति अधिकाय पुत्र मित्रादिक सारे,
अनुक्रमसों शिव लहे, 'रतन' इमि कहे पुकारे ॥

—श्री पार्श्वनाथ जिन पूजा, बख्तावररत्न, संगृहीतग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, प्रकाशक-अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, संस्क० १९५७ ई०, पृष्ठ ३७७ ।

४. है उज्ज्वल वह क्षेत्र सुअति निरमल सही ।
परम पुनीत सुठौर महागुण की मही ॥
सकल सिद्धि दातार महा रमणीक है ।
वंदो निज सुख हेत अचल पद देत हैं ॥

—श्री सम्मेद शिखर पूजा, जवाहरलाल, संगृहीतग्रंथ—बृहज्जिनवाणी संग्रह, सम्पा० व रचयिता—पन्नालाल बाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़, सितम्बर १९५६, पृष्ठ ४६८ ।

५. श्री सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पूजा, आशाराम, संगृहीतग्रंथ—जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, न० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १५० ।

६. श्री सिद्धचक्रपूजा, हीराचंद, संगृहीत ग्रंथ —बृहज्जिनवाणी संग्रह, सम्पा० व रचयिता -पन्नालाल बाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़, सितम्बर १९५६, पृष्ठ २२८ ।

दीपचन्द[1] ने भी इस छन्द को पर्याप्त परिवर्तन के साथ अपनी पूजा काव्य-कृतियों में व्यवहार किया है। इन सभी पूजारचयिताओं ने इस छंद को शांतरस के परिपाक में प्रयोग किया है।

चौपाई—

चौपाई मात्रिक समछन्द का एक भेद है।[2] अपभ्रंश में पद्धरिया छन्द में चौपाई का आदिम रूप विद्यमान है।[3] अपभ्रंश की कड़वक शैली जब हिन्दी में अवतरित हुई तो पद्धरिया छंद के स्थान पर चौपाई छंद गृहीत हुआ है।[4] चौपाई छंद सामान्यतः वर्णनात्मक है अतः इस छंद में सभी रसों का निर्वाह सहज रूप में हो जाता है। कथाकाव्यों में इस छंद की लोकप्रियता का मुख्य कारण यही है।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में इस छंद के दर्शन अठारहवीं शती से होते हैं। अठारहवीं शती के कविवर द्यानतराय ने 'श्री निर्वाणक्षेत्र पूजा' नामक कृति में इस छंद का व्यवहार सफलतापूर्वक किया है।[5]

---

१. श्री बाहुबलि पूजा, दीपचन्द, संगृहीतग्रंथ—नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, सम्पा० व प्रकाशिका—ब्र० पतासीबाई जैन, गया (बिहार), संवत् २४८७, पृष्ठ ६२।

२. हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम भाग, सम्पा० धीरेन्द्र वर्मा आदि, प्रकाशक-ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस, संस्क० संवत् २०१५, पृष्ठ २६०।

३. अपभ्रंश के महाकाव्य, अपभ्रंश भाषा और साहित्य डा० हीरालाल, लेख प्रकाशित-नागरी प्रचारिणी पत्रिका, हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि, डा० प्रेम सागर जी जैन, प्रकाशन-भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५, पृष्ठ ४३६।

४. जैन साहित्य की हिन्दी साहित्य को देन, डा० रामसिंह तोमर, प्रेमी अभिनंदन ग्रंथ, प्रकाशक-यशपाल जैन, मंत्री, प्रेमी अभिनंदन ग्रंथ समिति, टीकमगढ़ (सी० आई०), संस्क० अक्टूबर १९४६, पृष्ठ ४६८।

५. नमों ऋषभकैलास पहारं,
नेमिनाथ गिरनार निहारं।
वासुपूज्य चंपापुर वंदौं,
सन्मति पावापुर अभिनंदौ॥

—श्री निर्वाण क्षेत्र पूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ —राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, प्रकाशक —राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, संस्करण १९७६, पृष्ठ २७२।

उन्नीसवीं शती में रामचन्द्र[१], बख्तावररत्न[२], कमलनयन[३] और मल्लजी[४] विरचित पूजा कृतियों में भी यह छंद व्यवहृत है।

बीसवीं शती के रविमल[५], हीराचंद[६], नेम[७], रघुसुत[८],

---

१. श्री सम्मेदशिखर पूजा, रामचन्द्र, सगृहीतग्रंथ —जैन पूजापाठ संग्रह, प्रकाशक—भागचन्द्र पाटनी, न० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १२५।

२. श्रमर सावन दशमी गाइयो,
कृप मात श्रीकांता आइयो।
धनद देव आय वरपा करी,
हम जजें धन मान वही घरी॥

—श्री कुंथुनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न, संगृहीतग्रंथ —ज्ञानपीठ पूजांजलि, प्रकाशक —अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, संस्करण १९५७ ई०, पृष्ठ ५४४।

३. श्री पंचकल्याणक पूजापाठ, कमलनयन, हस्तलिखित।

४. श्री क्षमावाणी पूजा, मल्लजी, सगृहीतग्रंथ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, संस्करण १९५७ ई०, पृष्ठ ४०२।

५. खण्डधातु गिरि अचल जू मेरु,
दक्षिण तास भरत वहु घेरु।
तामें चौबीसी त्रय जान,
आगत नागत अरु वर्तमान॥

— श्री तीसचौबीसी पूजा, रविमल, संगृहीतग्रंथ-जैन पूजापाठ संग्रह, प्रकाशक-भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ २८७।

६. श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर समुच्चय पूजा, हीराचंद, संगृहीतग्रंथ-नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, सम्पा० व प्रकाशिका-ब्र० पतासीबाई जैन, गया (विहार), पृष्ठ ७१।

७. श्री अकृत्रिम चैत्यालय पूजा, नेम, संगृहीतग्रंथ-जैन पूजा पाठ संग्रह, प्रकाशक-भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ २५१।

८. श्री विष्णु कुमार महाराज पूजा, रघुसुत, संगृहीतग्रंथ-राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, संस्क० १९७६, पृष्ठ ३६७।

दीपचंद[1] और मुन्नालाल[2] ने अपनी पूजाकाव्य कृतियों में इस छन्द का प्रयोग किया है।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में चौपाई का सर्वाधिक प्रयोग अठारहवीं शती के कविवर द्यानतराय ने शांतरस के परिपाक के लिए किया है।

पद्धरि—

मात्रिक समछन्दों का एक विशेष भेद पद्धरि है।[3] अपभ्रंश के रससिद्ध कवि पुष्पदंत द्वारा रचित नख-शिख वर्णन में पद्धरि छंद का प्रयोग शृंगार रसानुभूति के लिए व्यवहृत है।[4]

हिन्दी के आरम्भ में पद्धरि छंद वीर रसात्मक अभिव्यक्ति के लिए व्यवहृत है। भक्तिकाल में यही छंद नख्यात्मक प्रसंग में शान्त तथा शृंगार रसानुभूति के लिए हिन्दी कवियों द्वारा प्रयुक्त हुआ है।

हिन्दी के जैन कवियों ने इस छंद का व्यवहार अधिकतर धार्मिक अभिव्यक्ति में किया है जहाँ नख्यात्मक और सिद्धांत विषयक बातों की चर्चा हुई है। अठारहवीं शती के कविवर द्यानतराय ने 'श्री अथ देवशास्त्र गुरु की भाषा पूजा' में इस छंद का सफलता पूर्वक व्यवहार किया है।[5]

---

१. श्री बाहुबलि पूजा, दीपचंद, संगृहीतग्रंथ-नित्य नियम विशेष पूजा संग्रह, सम्पा० ब्र० पाशिफा-प्र० पतासीबाई जैन, गया (बिहार) पृष्ठ ६७।

२. श्री खण्डगिरिक्षेत्र पूजा, मुन्नालाल, संगृहीतग्रंथ-जैन पूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६७, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १५५।

३. हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम भाग, सम्पा०-धीरेन्द्र वर्मा आदि, प्रकाशक-ज्ञानमंडल लिमिटेड बनारस, संस्क० सं० २०१५, पृष्ठ ४३३।

४. जैन-हिन्दी-काव्य में छन्दोयोजना, आदित्य प्रचण्डिया 'दीति', प्रकाशक-जैन शोध अकादमी, आगरा रोड, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १६।

५. जुन समवसरण शोभा अपार,
शत इन्द्र नमत कर सीस धार।
देवाधिदेव अरहंत देव,
वंदों मन वच तन करि सु सेव।।

—श्री अथदेवशास्त्र गुरु की भाषा पूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ-राजेन्द्र नित्य पूजापाठ संग्रह, प्रकाशक-राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, संस्क० १९७६, पृष्ठ ३९।

उन्नीसवीं शती के कविवर वृंदावन[१], मनरंगलाल[२], रामचन्द्र[३], बख्तावर-रत्न[४] और कमलनयन[५] द्वारा प्रणीत पूजा काव्य में इस छन्द का प्रयोग हुआ है।

बीसवीं शती के भक्तकवि दौलतराम[६], भविलालजू[७], जवाहरलाल[८], आशाराम[९], नेम[१०] और पूरणमल[११] की पूजा-रचनाओं में भी यह छंद प्रयुक्त है।

---

१. जय चन्द्र जिनेन्द्र दयानिधान,
भवकानन-हानन- दव -प्रमान।
जय गरभ-जनम-मंगल दिनंद,
भवि जीव विकाशन शर्म-कंद ॥

—श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजा, वृंदावन, संगृहीतग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि; प्रकाशक-अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, प्रथम संस्करण १९५७ ई०, पृष्ठ ३३६।

२. —श्री अथ सप्तर्षिपूजा, मनरंगलाल, संगृहीत ग्रंथ— राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, प्रकाशक— राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, संस्करण १९७६, पृष्ठ १४०।

३. —श्री गिरनार सिद्ध क्षेत्रपूजा, रामचन्द्र, संगृहीतग्रंथ-जैनपूजा पाठ संग्रह, प्रकाशक-भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७ पृष्ठ १४१।

४. श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न, संगृहीतग्रंथ-राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ११८।

५. श्री पंचकल्याणक पूजा पाठ, कमलनयन, हस्तलिखित।

६. —श्री पावापुर सिद्धक्षेत्र पूजा, दौलतराम संगृहीतग्रंथ-जैन पूजापाठ संग्रह, प्रकाशक-भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १४७।

७. —श्री सिद्ध पूजा भाषा, भविलालजू, संगृहीत-ग्रंथ-राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़ संस्करण १९७६, पृष्ठ ७१।

८. श्री सम्मेद शिखर पूजा, जवाहरलाल, संगृहीतग्रंथ-वृहज्जिनवाणी संग्रह, सम्पा० व रचयिता-स्व० पं० पन्नालाल बाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़, सितम्बर १९५६, पृष्ठ ४६८।

९. श्री सोनागिरि सिद्ध क्षेत्र पूजा, आशाराम संगृहीत ग्रंथ-जैन पूजापाठ संग्रह, प्रकाशक—भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १५३।

१०. श्री अकृत्रिम चैत्यालयपूजा, नेम, संगृहीतग्रंथ-जैन पूजापाठ संग्रह, प्रकाशक-भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ २५१।

११. श्री चांदनपुर महावीर स्वामी पूजा, पूरणमल, संगृहीत ग्रंथ-जैन पूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७ पृष्ठ १५९।

उल्लेखनीय बात यह है कि जैन कवियों की हिन्दी-पूजा-काव्य कृतियों में पद्धरि छंद शांतरस के निरूपण में ही व्यवहृत है। इस दृष्टि से इस छन्द का सर्वाधिक प्रयोग १९ वीं शती में परिलक्षित है।

पादाकुलक—

मात्रिक समछन्द का एक भेद पादाकुलक छन्द है।[1] पादाकुलक को एक छंद विशेष के रूप में अपभ्रंश के सशक्त महाकवि स्वयंभू और प्राकृत-पैंगलम्-कार के द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त हुई किन्तु चार चौकल वाले पादाकुलक के चरण की व्यवस्था संभवतः सर्वप्रथम भानु ने सम्पन्न की हैं।[2]

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में पादाकुलक छंद का व्यवहार बीसवीं शती के कवि भगवानदास रचित 'श्री तत्वार्थ सूत्रपूजा' नामक पूजाकाव्यकृति में शान्तरस के परिपाक के लिए परिलक्षित है।[3]

चान्द्रायण—

चान्द्रायण मात्रिक समछंद का एक भेद है।[4]

जैन हिन्दी-पूजा काव्य में अठारहवीं शती के कविवर द्यानतराय ने 'श्री सोलहकारण पूजा' नामक पूजा रचना में इस छंद का प्रयोग किया है।[5]

---

१. हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम भाग, सम्पा० धीरेन्द्र वर्मा आदि, प्रकाशक-ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस, संस्क० सवत् २०१५, पृष्ठ ४४८।

२. सूर साहित्य का छन्दः शास्त्रीय अध्ययन, डॉ० गौरीशंकर मिश्र 'द्विजेन्द्र', परिमल प्रकाशन, १९४, सोहबतिया बाग, इलाहाबाद-६, अगस्त १९६९ ई०, पृष्ठ९०-९१।

३. अति मान सरोवर झील खरा,
करुणा रस पूरित नीर भरा।
दशधर्म वहे शुभ हंस तरा,
प्रणनामि सूत्र जिनवाणि भरा॥
—श्रीतत्त्वार्थ सूत्रपूजा, भगवानदास, सगृहीतग्रंथ, जैन पूजापाठ संग्रह, प्रकाशक-भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ ४१०।

४. हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम भाग, सम्पा० धीरेन्द्र वर्मा आदि, ज्ञानमंडल लिमिटेड, बनारस, संस्करण सं० २०१५, पृष्ठ २८७।

५. सोलह कारण भाय, तीर्थंकर जे भये।
हरषे इन्द्र अपार, मेरु पे ले गये॥
पूजा करि निज धन्य, लख्यो बहु चावसों।
हमहू षोडश कारन, भावें भाव सों॥
—श्री सोलह कारण पूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ, राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १७४।

उन्नीसवीं शती के कविवर मनरंगलाल[1] और बख्तावररत्न[2] की पूजाओं में भी चान्द्रायण छंद के अभिदर्शन होते हैं।

बीसवीं शती के अन्य कविवर जिनेश्वर कृत 'श्री नेमिनाथ जिनपूजा' नामक पूजा में चान्द्रायण छन्द प्रयुक्त है।[3]

जैन-पूजा-काव्य में चान्द्रायण छंद भक्त्यात्मक अभिव्यक्ति के लिए व्यवहृत है।

अवतार—

अवतार छन्द मात्रिक समछन्द है[4]। जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में इस छंद के अभिदर्शन उन्नीसवीं शती से होते हैं। कविवर वृंदावन ने अपनी पूजा-

---

१ श्री अनंतनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, संगृहीतग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्या प्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७, पृष्ठ ३५१।

२ श्री कुंथुनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न, संगृहीतग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७, पृष्ठ ५४१।

३ वर्तमान जिनराय, भरत के जानिये।
पंचकल्याणक मानि गये शिव थानिये॥
जो नर मन वच काय प्रभु पूजे सही।
सो नर दिव सुख पाय लहैं अष्टम मही।

—श्री नेमिनाथ जिनपूजा, जिनेश्वरदास, संगृहीतग्रंथ-जैन पूजा पाठ संग्रह, प्रकाशक-भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ ११४।

४ छन्दः प्रभाकर, जगन्नाथ प्रसाद 'भानु', प्रकाशिका-पूर्णिमादेवी धर्म-पत्नि-स्व० बाबू जुगलकिशोर, जगन्नाथ प्रिंटिंग प्रेस, बिलासपुर, सं० १९९० ई०, पृष्ठ ६०।

काव्य कृतियों 'श्रीचन्द्रप्रभु जिनपूजा'[1] और 'श्री महावीर स्वामी पूजा'[2] में अवतार छन्द का सफलतापूर्वक व्यवहार किया है।

बीसवीं शती के भविलालजू रचित 'श्री सिद्ध पूजा भाषा' में भी यह छंद उल्लिखित है।[3]

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में अवतार छन्द शान्तरस की अभिव्यक्ति में व्यवहृत है।

उपमान—

मात्रिक सम छन्द का एक भेद उपमान छंद है।[4]

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में बीसवीं शती के कविवर पूरणमल द्वारा प्रणीत 'श्री चांदनपुर स्वामी पूजा' नामक कृति में उपमान छन्द व्यवहृत है।[5] इसके

---

१. गंगा ह्रद-निरमल नीर, हाटक भृंगभरा।
   तुम चरन जजों वरवीर, मेटो जनम जरा ॥
   श्री चंदनाथ दुतिचन्द, चरनन चंद लगे।
   मन वच तन जजत अमंद, आतम जोति जगे ॥

   —श्री चन्द्रप्रभु जिनपूजा, संगृहीतग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७ ई०, पृष्ठ ३३३।

२. श्री महावीर स्वामी पूजा, वृन्दावन, संगृहीतग्रंथ-राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १३२।

३. श्री सिद्ध पूजा भाषा, भविलालजू, संगृहीत ग्रंथ-राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, संस्करण १९७६, पृष्ठ ७१।

४. छन्दः प्रभाकर, जगन्नाथ प्रसाद 'भानु', प्रकाशिका-पूर्णिमादेवी धर्मपत्नि स्व० बाबू जुगलकिशोर, जगन्नाथ प्रिंटिंग प्रेस, बिलासपुर, संस्करण १९६० ई०, पृष्ठ ५९।

५. क्षीरोदधि से भरि नीर, कंचन के कलशा।
   तुम चरणनि देत चढ़ाय, आवागमन नशा ॥
   चांदनपुर के महावीर, तोरी छवि प्यारी।
   प्रभु भव आताप निवार, तुम पदबलिहारी ॥

   —श्री चांदनपुर स्वामी पूजा, पूरणमल, संगृहीतग्रन्थ-जैनपूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १५९।

अतिरिक्त कविवर मुन्नालाल विरचित 'श्रीखण्ड गिरि क्षेत्र पूजा' नामक काव्य में भी यह छन्द प्रयुक्त है।[1]

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उपमान छन्द का प्रयोग शांतरस के उद्रेक में हुआ है।

हीरक—

हीरक मात्रिक समछंद का एक भेद है।[2] जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती के कविवर बख्तावर रत्न ने 'श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा' नामक कृति में हीरक छंद का व्यवहार शांतरस के परिपाक में किया है।[3]

रोला—

रोला मात्रिक समछंद का एक भेद है।[4] जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती के कविवर वृन्दावन[5] और मनरंगलाल[6] तथा बीसवीं

---

१. श्री खण्ड गिरिक्षेत्र पूजा, मुन्नालाल, संगृहीतग्रंथ-जैन पूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, न ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १५५।

२. हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम भाग, सम्पा० धीरेन्द्र वर्मा आदि, प्रकाशक-ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस, संस्करण सं० २०१५, पृष्ठ ८६९।

३. क्षीर सोम के समान अम्बुसार लाइये।
हेमपात्र धारिके सु आपको चढाइये॥
पार्श्वनाथ देवसेव, आपकी करूं सदा।
दीजिए निवास मोक्ष, भूलिये नहीं कदा॥

—श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न, संगृहीतग्रंथ-राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, संस्क० १९७६, पृष्ठ ११८।

४. हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम भाग, सम्पा० धीरेन्द्र वर्मा आदि, प्रकाशक-ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस, संस्क० संवत् २०१५, पृष्ठ ६७६।

५. पदमराग मनिवरन धरन, तन तुंग अढ़ाई।
शतक दण्ड अघ खण्ड, सकल सुर सेवत छाई॥
धरनि तात विख्यात, सुसीमाजू के नंदन।
पदम चरन धरि राग, सुथापो इति करि वंदन॥

—श्री पदम प्रभु जिनपूजा, वृंदावन, संगृहीतग्रंथ-राजेश नित्यपूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ८२।

६. श्री अथ सप्तर्षि पूजा, मनरंगलाल, संगृहीतग्रंथ-राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १४०।

शती के कविवर आशाराम[1] की पूजाओं में इस छंद का व्यवहार हुआ है।

कामरूप—

कामरूप मात्रिक समछंद है।[2] जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती के कविवर मनरंगलाल कृत 'श्री अनंतनाथ जिनपूजा नामक पूजाकाव्य में कामरूप छंद के अभिदर्शन होते हैं।[3]

कविवर मनरंगलाल ने कामरूप छंद का व्यवहार भक्त्यात्मक अभिव्यक्ति में शान्तरसोद्रेक के लिए किया है।

गीतिका—

गीतिका मात्रिक समछंद का एक भेद है।[4] जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में बीसवीं शती के कविवर जवाहरलाल कृत 'श्री सम्मेदशिखर पूजा' नामक पूजा-काव्य में गीतिका छंद के अभिदर्शन होते हैं।[5]

---

१. श्री सोनागिर सिद्धि क्षेत्र पूजा, आशाराम, संगृहीतग्रंथ-जैनपूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता—७, पृष्ठ १५०।

२. छन्दः प्रभाकर, जगन्नाथ प्रसाद 'भानु', प्रकाशिका-पूर्णिमादेवी धर्मपत्नि स्व० बाबू जुगलकिशोर, जगन्नाथ प्रिंटिंग प्रेस, बिलासपुर, संस्क० १९६० ई०, पृष्ठ ९५।

३. शुभ जेठ महिना, वदी द्वादशि के दिना जिनराज।
जन्मत भयो सुख जगत के चहुँ, नाग सहित समाज।
रविनाथ लावहु भाव पूजा, जनम दिन को कौन।
मैं जजत शुभपद, अरघ सों प्रभु, करहु संकट छीन॥

—श्री अनंतनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, संगृहीतग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, संस्करण १९५७ ई०, पृष्ठ ३५४।

४. हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम भाग, सम्पा०—धीरेन्द्र वर्मा आदि, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, बनारस, संस्करण संवत् २०१५, पृष्ठ २९०।

५. श्री सम्मेदशिखर पूजा, जवाहरलाल, संगृहीतग्रंथ—बृहज्जिनवाणी संग्रह, सम्पादक-रचयिता-पन्नालाल बाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़, सितम्बर १९५६, पृष्ठ ४८१।

इस प्रकार जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में शांत रस की निष्पत्ति के लिए गीतिका छंद को अपनाया गया है।

गीता—

मात्रिक समछंद का एक भेद गीता छंद है।[1] जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में अठारहवीं शती के प्रसिद्ध कविवर द्यानतराय ने 'श्री देवशास्त्र गुरु की पूजाभाषा' में गीताछंद का प्रयोग किया है।[2]

उन्नीसवीं शती के पूजाकाव्य के रससिद्ध कविवर मनरंगलाल की 'श्री अनन्तनाथ जिनपूजा'[3] और 'श्री शीतलनाथ जिनपूजा'[4] में गीता छंद व्यवहृत है। इसके अतिरिक्त इसी शती के अन्य उत्कृष्ट कवि बख्तावररत्न की 'श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा'[5] में भी गीता छंद परिलक्षित है।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में भक्त्यात्मक प्रसंग में गीता छंद को गृहीत किया गया है जिसका परिष्कृत रूप हरिगीतिका जैसा है।

---

१. छन्दः प्रभाकर, जगन्नाथ प्रसाद 'भानु', प्रकाशिका-पूर्णिमादेवी, धर्मपत्नि स्व० बाबू जुगल किशोर, जगन्नाथ प्रिंटिंग प्रेस, बिलासपुर, संस्क० १९६० ई०, पृष्ठ ६५।

२. लोचन सु रसना घ्रान उर, उत्साह के करतार है।
मोपै न उपमा जाय वरणी सकल फल गुणसार हैं॥
सो फल चढावत अर्थ पूरन, परम अमृत रस सचूं।
अरहंत श्रुत सिद्धान्त गुरु-निरग्रंथ नित पूजा रचूं॥

—श्री देवशास्त्र गुरु की पूजाभाषा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ-जैन पूजा पाठ संग्रह, प्रकाशक-भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १९।

३. श्री अनंतनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, संगृहीतग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, प्रकाशक-अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, संस्क० १९५७ ई०, पृष्ठ ३५१।

४. श्री शीतलनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, संगृहीत ग्रंथ- राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ९७।

५. वर स्वर्ग प्राणत को विहाय, सुमात वामा सुत भये।
अश्वसेन के पारस जिनेश्वर, चरन जिनके सुर नये॥
नव हाथ उन्नत तन विराजे, उरग लच्छन पद लसें।
थापूं तुम्हें जिन आय तिष्ठों, करम मेरे सब नसें॥

—श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न, संगृहीतग्रंथ- राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ११८।

सरसी—

सरसी छंद मात्रिक समछंदों का एक भेद है।[1] जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में सरसी छंद का व्यवहार उन्नीसवीं शती के कविवर वृंदावन की 'श्री पद्मप्रभु जिनपूजा' नामक पूजाकाव्य कृति में हुआ है।[2]

बीसवीं शती के कविवर हीराचंद की 'श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर समुच्चय पूजा' नामक पूजा रचना में इस छन्द के अभिदर्शन होते हैं।[3]

सरसी छन्द का प्रयोग शान्तरस के परिपाक में जैन पूजाओं में उल्लिखित है।

सार—

सार मात्रिक सम छंद का एक भेद है।[4] जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती के कविवर वृंदावन की 'श्री महावीर स्वामी पूजा नामक' पूजा रचना में इस छंद का व्यवहार हुआ है।[5]

---

१. हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम भाग, सम्पा० धीरेन्द्र वर्मा आदि, प्रकाशक-ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस, संस्क० सं० २०१५, पृष्ठ ८१८।

२. गंगाजल अति प्रासुक लीनों सौरभ सकल मिलाय।
मन वच तन त्रय धार देत हो, जनम जरामृत जाय॥
—श्री पद्मप्रभु जिनपूजा, वृंदावन, संगृहीत ग्रंथ- राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, संस्क० १९७६ पृष्ठ ८२।

३. अष्ट द्रव्य भर थाल में जी, लीनों अर्घ बनाय।
पंचमगतिमोहि दीजै जी, पूजूं अंग नमाय॥
—श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर समुच्चयपूजा, हीराचन्द, संगृहीतग्रंथ-नित्य नियम विशेप पूजन संग्रह, सम्पा० व प्रकाशिका-ब्र० पतासीवाई जैन, (विहार), पृष्ठ ७३।

४. हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम भाग, सम्पा० धीरेन्द्र वर्मा आदि, प्रकाशक-ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस, संस्करण सं० २०१५, पृष्ठ ८४१।

५. जनम चैत सित तेरस के दिन, कुण्डलपुर कन-वरना।
सुरगिरि सुरगुरु पूज रचायो, मैं पूजों भव-हरना॥
—श्री महावीर स्वामी पूजा, वृन्दावन, संगृहीतग्रन्थ-राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, संस्करण १९७६, पृष्ठ १३५।

बीसवीं शती के हीराचंद ने 'श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर समुच्चय पूजा' में सार छंद का प्रयोग सफलतापूर्वक किया है ।[1] इसके अतिरिक्त इस शती के अन्य कविवर जिनेश्वरदास कृत 'श्री नेमिनाथ जिनपूजा[2] और 'श्री बाहुबलि स्वामी पूजा'[3] नामक पूजाओं में सार छंद का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार जैन-पूजाओं में यह छन्द शान्त रसोद्रेक के लिए प्रयुक्त हुआ है।

हरिगीतिका—

हरिगीतिका मात्रिक सम छन्द का एक भेद है ।[4]

जहाँ तक रस-परिपाक का प्रश्न है यह छन्द हिन्दी में सभी प्रकार की भावानुभूतियों की अभिव्यंजना के अनुकूल रहता है ।[5] अपनी मध्यविलंबित गति के कारण इसमें कथा का सुन्दर निर्वाह होता है ।[6]

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में अठारहवीं शती से इस छन्द का प्रयोग मिलता

---

१. पावन चन्दन कदली नन्दन, घसि प्यालो भर लायो ।
भव आताप निवारण कारण, तुम ढिग आन चढ़ायो ।
—श्रीचतुर्विंशति तीर्थंकर समुच्चय पूजा, हीराचन्द, संगृहीतग्रंथ-नित्य नियमविशेष पूजन संग्रह, सम्पा० व प्रकाशिका-ब्र० पतासीबाई जैन, गया (बिहार), पृष्ठ ७२ ।

२. श्री नेमिनाथ जिनपूजा, जिनेश्वरदास, संगृहीतग्रंथ-जैनपूजा पाठ संग्रह, प्रकाशक-भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२ नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १११ ।

३. श्री बाहुबलि स्वामीपूजा, जिनेश्वरदास, संगृहीतग्रंथ-जैनपूजा पाठ सग्रह, प्रकाशक-भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १६६ ।

४. हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम भाग, सम्पा० धीरेन्द्र वर्मा आदि, प्रकाशक-ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस, संस्क० संवत् २०१५, पृष्ठ ८८१ ।

५. हिन्दी कवियों का छंदशास्त्र को योगदान, स्व० डा० जानकी नाथ सिंह 'मनोज', विश्वविद्यालय हिन्दी प्रकाशन, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, सस्क० संवत् २०२४ वि०, पृष्ठ ७७ ।

६. जैन हिन्दी काव्य में छन्दोयोजना, आदित्य प्रचंडिया 'दीति', प्रकाशक-जैन शोध अकादमी, आगरा रोड, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ३२ ।

है। इस शती के उत्कृष्ट पूजाकवि द्यानतराय की पूजा-काव्य-कृतियों में हरिगीतिका छंद प्रयुक्त है।[1]

उन्नीसवीं शती के कविवर वृंदावन[2], मनरंगलाल[3], बख्तावररत्न[4] और कमलनयन[5] की पूजा रचनाओं में इस छंद का व्यवहार परिलक्षित है।

बीसवीं शती के कवि दौलतराम[6] और भगवानदास[7] की पूजाकृतियों में हरिगीतिका छंद का सफल प्रयोग हुआ है।

अठारहवीं शती में रचित पूजाकाव्य में शान्तरस निरूपण के लिए यह छंद सर्वाधिक व्यवहृत है।

---

१. शुचि क्षीर दधि समनीर निरमल, कनक झारी में भरों।
संसार पार उतार स्वामी, जोर कर विनती करों।
संमेदगढ़ गिरनार चम्पा, पावापुर कैलास को।
पूजो सदा चोवीस जिन निर्वाण भूमि निवास को॥
—श्री निर्वाण क्षेत्रपूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ-राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, प्रकाशक-राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, संस्करण १९७६, पृष्ठ ३७३।

२. श्री महावीर स्वामीपूजा, वृन्दावन, संगृहीतग्रंथ-ज्ञानपीठपूजांजलि, प्रकाशक-अयोध्या प्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, संस्करण १९५७ ई०, पृष्ठ ३३३।

३. है नगर भद्दिल भूप द्रढ़रथ, सुष्टु नंदा ता त्रिया।
तजि अचुत दिवि अभिराम शीतलनाथ सुत ताके प्रिया॥
इक्ष्वाकुवंशी अंक श्री तरु, हेम-वरण शरीर है।
धनु नवे उन्नत पूर्वलख इक, आय सुभग परी रहे॥
—श्री शीतलनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, संगृहीत ग्रंथ-राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, संस्करण १९७६ पृष्ठ ९७।

४. श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा, संगृहीतग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, प्रकाशक-अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, संस्करण १९५७ ई०, पृष्ठ ३७१।

५. श्री पंचकल्याणक पूजापाठ, कमलनयन, हस्तलिखित।

६. श्री पावापुर सिद्धक्षेत्र पूजा, दौलतराम, संगृहीतग्रंथ-जैन पूजा पाठ संग्रह, प्रकाशक-भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १४७।

७. श्री तत्वार्थ सूत्र पूजा, भगवानदास, संगृहीतग्रंथ-जैन पूजा पाठ संग्रह, प्रकाशक-भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ ४१०।

गाथा

गाथा छंद मात्रिक समछंद है।[1] गाथाछंद प्राकृत के प्रमुख छंद 'गाहा' का हिन्दी रुपान्तर है।[2] जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती के कविवर मनरंगलाल रचित 'श्री शीतलनाथ जिनपूजा' नामक पूजा रचना में गाथा छंद का प्रयोग भक्त्यात्मक प्रसंग में शांतरस के परिपाक के लिए परिलक्षित है।[3]

दुर्मिल

दुर्मिल मात्रिक समछंद है।[4] जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती के कविवर बख्तावररत्न ने 'श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा' नामक पूजा-काव्य कृति में भक्त्यात्मक प्रसंग में शांतरस के परिपाक के लिए दुर्मिल छंद का सफल व्यवहार किया है।[5]

त्रिभंगी

यह मात्रिक समछंद का एक भेद है।[6] हिन्दी में त्रिभंगी छंद शृंगार,

---

१. हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम भाग, सम्पा० धीरेन्द्र वर्मा आदि, प्रकाशक-ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस, संस्करण संवत् २०१५, पृष्ठ २५६।

२. जैन-हिन्दी-काव्य में छन्दोयोजना, आदित्य प्रचण्डिया 'दीति', प्रकाशक-जैन शोध अकादमी, आगरा रोड, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ३३।

३. चैत वदी दिन आठें, गर्भावतार लेत भये स्वामी।
सुर नर असुरन जानी, जजहुँ शीतल प्रभु नामी।।
—श्री शीतलनाथ जिनपूजा, मनरगलाल, संगृहीत ग्रंथ-राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १४०।

४. छन्दः प्रभाकर, जगन्नाथप्रसाद 'भानु', प्रकाशिका-पूर्णिमादेवी धर्म-पत्नि स्व० बाबू जुगल किशोर, जगन्नाथ प्रिंटिंग प्रेस, बिलासपुर, संस्करण १९६० ई०, पृष्ठ ७५।

५. जय पारस देवं सुरकृत सेवं, वंदत चर्न सुनागपती।
करुणा के धारी, पर उपगारी, शिव सुखकारी कर्महती।।
— श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न, संगृहीतग्रंथ-राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ११८।

६. छन्दः प्रभाकर, जगन्नाथ प्रसाद भानु, प्रकाशिका-पूर्णिमादेवी, धर्मपत्नी स्व० बाबू जुगलकिशोर, जगन्नाथ प्रिंटिंग प्रेस, बिलासपुर, १९६०, पृष्ठ ७२।

वीर, और शांत रसों के परिपाक के लिए व्यवहृत है। जैन हिन्दी-पूजाकाव्य में अठारहवीं शती से इस छंद का व्यवहार परिलक्षित है। इस शती के सशक्त पूजाकाव्य के रचयिता द्यानतराय द्वारा प्रणीत 'श्री सरस्वती पूजा' में त्रिभंगी छंद प्रयुक्त है।[1]

उन्नीसवीं शती के उत्कृष्ट पूजाकार वृंदावन[2], मनरंगलाल[3], रामचन्द्र[4], बख्तावररत्न[5] और कमलनयन[6] ने भी त्रिभंगी छन्द का प्रयोग अपनी पूजा-काव्य कृतियों में किया है।

बीसवीं शती के युगल किशोर 'युगल'[7], हीराचंद[8] और नेम[9] कवियों द्वारा भी पूजा काव्य में त्रिभंगी छंद व्यवहृत है।

---

१. श्री सरस्वती पूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रन्थ-राजेश नित्यपूजा पाठ संग्रह. राजेन्द्र मेटिल वर्क्स. हरिनगर, अलीगढ़, संस्करण सन् १९७६, पृष्ठ ३८५।

२. वर बावन चन्दन, कदलीनंदन, घन आनंदन, सहित घसों।
भवताप निकन्दन, ऐरा नंदन, वंदि अमंदन, चरन वसों॥
— श्री शांतिनाथ जिनपूजा, वृंदावन, संगृहीतग्रंथ-राजेश नित्यपूजा पाठ संग्रह, प्रकाशक-राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, संस्करण १९७६, पृष्ठ ११०।

३. श्री अनंतनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, संगृहीतग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, संस्करण १९५७ ई०, पृष्ठ ३५१।

४ श्री सम्मेदशिखर पूजा, रामचन्द्र, संगृहीतग्रंथ-जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १२५।

५. श्री कुंथुनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न संगृहीत ग्रंथ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीट, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, संस्करण १९५७, पृष्ठ ५४१।

६. श्री पंचकल्याणक पूजापाठ, कमलनयन, हस्तलिखित।

७. श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, युगलकिशोर 'युगल', संगृहीतग्रंथ-जैनपूजा पाठ संग्रह, भागचन्द पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ २७।

८. श्री सिद्धचक्र पूजा, हीराचन्द, संगृहीतग्रंथ-बृहजिनवाणी संग्रह, सम्पा० व रचयिता स्व० पंडित पन्नालाल बाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़, सितम्बर १९५६, पृष्ठ ३२८।

९. श्री अकृत्रिम चैत्यालय पूजा, नेम, संगृहीतग्रंथ-जैन पूजापाठ संग्रह, प्रकाशक-भागचन्द्र पाटनी, न० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ २ ५१।

उन्नीसवीं शती के कविवर वृंदावन द्वारा प्रणीत पूजाओं में त्रिभंगी छंद का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है जिसमें शान्तरस का उद्रेक उल्लेखनीय है।

मात्रिक अर्द्धसमछन्द—

दोहा—

मात्रिक अर्द्धसम छंदों में दोहा का बड़ा महत्व है।[1] अठारहवीं शती से जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य-कृतियों में इस छंद के व्यवहार का शुभारम्भ हुआ है। कविवर द्यानतराय ने अपनी पूजाकाव्य कृति में इसे भलीभांति अपनाया है।[2]

उन्नीसवीं शती में वृंदावन[3], मनरंग[4], रामचन्द्र[5], बख्तावररत्न[6],

---

१. हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम भाग, सम्पा० धीरेन्द्र वर्मा आदि, प्रकाशक-ज्ञान मण्डल लिमिटेड, बनारस, संस्करण संवत २०१५, पृष्ठ ३४२।

२. श्री नंदीश्वरद्वीप पूजा-अष्टान्हिका पूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ-राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, संस्करण १९७६, पृष्ठ १७१।

३. धनुष डेढ़ सौ तुंग तन, महासेन नृप नंद।
मातु लक्ष्मन-उर जये, थापों चंद-जिनंद॥

—श्री चन्द्रप्रभु जिनपूजा, वृंदावन, संगृहीतग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्या प्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, प्रथम संस्करण १९५७ ई०, पृष्ठ ३३३।

४. श्री नेमिनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, संगृहीतग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, प्रथम संस्करण १९५७ ई०, पृष्ठ ३६५।

५. श्री सम्मेद शिखर पूजा, रामचन्द्र, संगृहीतग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १२५।

६. केकी कंठ समान छवि, वपु उतंग नव हाथ।
लक्षण उरग निहारपग, वन्दों पारसनाथ॥

—श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न, संगृहीतग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, प्रथम संस्करण १९५७ ई०, पृष्ठ ५४१।

कमलनयन[1] और मल्ल जी[2] कवियों ने अपनी पूजा-काव्य-कृतियों में इस छंद का व्यवहार सफलता पूर्वक किया है।

बीसवीं शती के कविवर रविमल[3], सेवक[4], भविलालजू[5], जिनेश्वरदास[6], दौलतराम[7], कुंजिलाल[8], हेमराज[9], आशाराम[10],

---

१. गर्भ स्थिति जिनपूजि करि बहुरि सारदा माय।
ता पीछें मुनिराज के, चरनकमल चित लाय॥

—श्री पंचकल्याणक पूजा पाठ, कमलनयन, हस्तलिखित।

२. श्री क्षमावाणी पूजा, मल्लजी, संगृहीतग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्या प्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, प्रथम संस्करण १९५७-ई०, पृष्ठ ४०२।

३. श्री तीस चौवीसी पूजा, रविमल, संगृहीतग्रंथ-जैन-पूजा-पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ २४५।

४. श्री आदिनाथ जिनपूजा, सेवक, संगृहीतग्रंथ जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ ९५।

५. श्री सिद्धपूजा भाषा, भविलालजू, संगृहीतग्रंथ-राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, संस्करण १९७६, पृष्ठ ७१।

६. श्री नेमिनाथ जिनपूजा, जिनेश्वरदास, संगृहीत ग्रंथ-जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १११।

७. श्री चम्पापुर क्षेत्र पूजा, दौलतराम, संगृहीतग्रंथ-जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १३८।

८. श्री देवशास्त्र गुरु पूजा, कुंजिलाल, संगृहीतग्रंथ-नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, सम्पा० व प्रकाशिका ब्र० पतासीबाई जैन, गया (बिहार), पृष्ठ ११३।

९. चहुंगति दुःख सागर विषैं, तारन तरन जिहाज।
रतनत्रय निधि नगन तन, धन्य महा मुनिराज॥

—श्री गुरुपूजा, हेमराज, संगृहीतग्रंथ-वृहजिनवाणी संग्रह, सम्पा० व रचयिता स्व० पन्नालाल वाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़, सितम्बर १९५६, पृष्ठ ३०९।

१०. श्री सोनागिरि सिद्ध क्षेत्र पूजा, आशाराम, संगृहीतग्रंथ-जैनपूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १५०।

हीराचंद[1], नेम[2], रघुसुत[3], दीपचंद[4], पूरणमल[5], भगवानदास[6], और मुन्नालाल[7] कवियों की पूजा रचनाओं में इस छंद के अभिदर्शन होते हैं।

अठारहवीं शती के कवि द्यानतराय विरचित पूजाकाव्यों में दोहा छंद का सर्वाधिक प्रयोग परिलक्षित है जिसमें भक्त्यात्मक अभिव्यंजना में शांतरस का उद्रेक हुआ है।

सोरठा

मात्रिक अर्द्धसम छंदों का एक भेद सोरठा है।[8] अपभ्रंश के आचार्य-कवि स्वयंभू तथा पुष्पदन्त ने भी सोरठे छंद को अपनाया है।[9] हिन्दी

---

१. श्री चतुर्विशति तीर्थंकर समुच्चय पूजा, हीराचन्द, संगृहीतग्रंथ-नित्य नियम विशेप पूजन संग्रह, सम्पा० व प्रकाशिका-ब्र० पतासीवाई जैन, गया (विहार), पृष्ठ ७१।

२. श्री अकृत्रिम चैत्यालय, पूजा, नेम, संगृहीत ग्रंथ-जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, न० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ २५१।

३. श्री विष्णुकुमार महामुनि पूजा, रघुसुत, संगृहीतग्रन्थ-राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, संस्करण १९७६, पृष्ठ ३९७।

४. श्री वाहुवलि पूजा, दीपचन्द, संगृहीत ग्रंथ – नित्यनियम विशेप पूजन संग्रह सम्पा० व प्रकाशिका—ब्र० पतासीवाई जैन, गया (विहार), संस्करण २४८७, पृष्ठ ११३।

५. श्री चांदनपुर स्वामी पूजा, पूरणमल, संगृहीत ग्रंथ—जैन पूजापाठ संग्रह भागचन्द पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १५९।

६. श्री तत्वार्थसूत्र पूजा, भगवानदास, संगृहीतग्रंथ—जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता – ७, पृष्ठ ४१०।

७. श्री खण्डगिरि क्षेत्र पूजा, मुन्नालाल, संगृहीतग्रंथ—जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड कलकत्ता—७, पृष्ठ १५५।

८. हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम भाग, सम्पा० धीरेन्द्र वर्मा आदि, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वनारस, संस्करण संवत् २०१५, पृष्ठ ८६३।

९. सूर साहित्य का छंदशास्त्रीय अध्ययन, डा० श्री गौरीशंकर मिश्र 'द्विजेन्द्र', परिमल प्रकाशन, १९४, सोहवतिया वाग, इलाहावाद-६, संस्करण १९६९ ईसवी, पृष्ठ ३३५।

में यह छंद दोहे की भाँति अधिक लोकप्रिय रहा है। यह सामान्यतः दोहे के साथ ही व्यवहृत है। कथात्मक प्रसंगों में सोरठा के द्वारा कथा के नवीन सूत्रों का संकेत प्राप्त हुआ करता है।

जैन कवियों की पूजा काव्य-कृतियों में यह छंद अठारहवीं शती से परिलक्षित है। अठारहवीं शती के कविवर द्यानतराय की 'श्री रत्नत्रयपूजा' नामक काव्यकृति में यह छन्द व्यवहृत है।[1]

उन्नीसवीं शती के कविवर मनरंगलाल[2], रामचन्द्र[3], कमलनयन[4] और मल्लजी[5] ने अपनी पूजाओं में इस छंद का भलीभाँति प्रयोग किया है।

बीसवीं शती के भविलालजू[6] और हीराचंद[7] की पूजा रचनाओं में इस छंद का व्यवहार द्रष्टव्य है।

शान्तरस के प्रकरण में अठारहवीं शती के द्यानतराय ने सोरठा छंद को बहुलतापूर्वक प्रयोग किया है।

---

१. क्षीरोदधि उनहार, उज्ज्वल जल अति सोहना।
जनमरोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूं॥
—श्री रत्नत्रय पूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ—राजेश नित्यपूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, संस्करण १९६६, पृष्ठ १९१।

२. श्री नेमिनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, संगृहीत ग्रंथ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, प्रकाशक अयोध्या प्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, संस्करण १९५७ ई०, पृष्ठ ३२५।

३. श्री सम्मेदशिखर पूजा, रामचन्द्र, संगृहीत ग्रंथ—जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १२५।

४. श्री पंचकल्याणक पूजा पाठ, कमलनयन, हस्तलिखित।

५. श्री क्षमावाणी पूजा, मल्लजी, संगृहीत ग्रन्थ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्या प्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, संस्करण १९५७ ई०, पृष्ठ ४०२।

६. श्री सिद्धपूजा भाषा, भविलालजू, संग्रहीतग्रंथ-राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, अलीगढ़, संस्करण १९७६, पृष्ठ ७१।

७. श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर समुच्चय पूजा, हीराचन्द, संगृहीतग्रंथ-नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, सम्पा० व प्रकाशिका-ब्र० पतासी बाई जैन, गया (बिहार), संस्करण २४८७, पृष्ठ ७१।

मात्रिक विषम छंद :

कुण्डलिया

कुण्डलिया मात्रिक विषम छंद है।[1] इस छंद का मूल उद्गम अपभ्रंश में हुआ और हिन्दी में इसका प्रयोग भक्त्यात्मक तथा वीररसात्मक काव्याभिव्यक्ति में हुआ है। जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में यह छंद बीसवीं शती के कविवर रविमल की 'श्री तीस चौबीसी पूजा' नामक पूजा-रचना में व्यवहृत है।[2]

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में कुण्डलिया छंद शांतरस के परिपाक में प्रयुक्त है।

छप्पय

यह षट् चारणों वाला एक मात्रिक विषम छन्द है।[3] हिन्दी में वीर, शृंगार और शान्त आदि रसों में छप्पय छंद का व्यवहार हुआ है।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती के कविवर वृन्दावन ने इस छंद का प्रयोग अपनी पूजा काव्य कृति 'श्री चन्द्र प्रभु जिनपूजा में किया है।[4]

---

१. हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम भाग, सम्पा० धीरेन्द्र वर्मा आदि, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस, प्रथम संस्करण, संवत् २०१५, पृष्ठ २१९।

२. द्वीप अढ़ाई के विषै, पांच मेरु हितदाय।
दक्षिण उत्तरतासु के, भरत ऐरावत भाय॥
भरत ऐरावत भाय, एक क्षेत्र के मांही।
चौवीसी है तीन, तीन दशहीं के मांही॥
दशो क्षेत्र के तीस, सात सौ बीस जिनेश्वर।
अर्घ लेय कर जोर, जजो 'रविमल' मन शुद्ध कर॥

—श्री तीस चौबीसी पूजा- रविमल, संगृहीतग्रंथ-जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ २४८।

३. हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम भाग, सम्पा० धीरेन्द्र वर्मा आदि, ज्ञान-मण्डल लिमिटेड वनारस, प्रथम सस्करण स० २०१५, पृष्ठ २९२।

४. श्री चन्द्रप्रभु जिनपूजा, वृन्दावन, संगृहीतग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस संस्करण १९५७ ई०, पृष्ठ ३३३।

इस शती के अन्य कवि मनरंगलाल[1], रामचन्द्र[2] और मल्लजी[3] ने छप्पय छंद का व्यवहार अपनी पूजा काव्य-कृतियों में सफलतापूर्वक किया है।

बीसवीं शती के पूजाकार भविलालजू की 'श्री सिद्धपूजा भाषा' नामक पूजा रचना में इस छंद के अभिदर्शन होते हैं।[4]

उन्नीसवीं शती के जैन कवियों की हिन्दी-पूजाओं में छप्पय छंद का सर्वाधिक प्रयोग शांतरस के लिए हुआ है।

वर्णिक वृत्त :

अनंगशेखर

समान वर्ण वाले दण्डक छन्द का एक भेद अनंगशेखर वृत्त है।[5]

हिन्दी में उत्साह, वीरता और स्तुति आदि के लिए अनंगशेखर वृत्त का व्यवहार दृष्टिगोचर होता है।

---

१. श्री सप्त सप्तर्षि पूजा, मनरंगलाल, संगृहीतग्रंथ-राजेन्द्र नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, संस्करण १९७६, पृष्ठ १४० ।

२. श्री सम्मेद शिखर पूजा, रामचन्द्र, संगृहीतग्रंथ-जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७ पृष्ठ १२८ ।

३. अंगसहित जिनधर्म, तनो दृढ़-मूल बखानो।
सम्यक रतन संभाल, हृदय में निश्चय आनो॥
तज मिथ्या विष-मूल और चित निर्मल ठानो।
जिनधर्मी सों प्रीति करो, सब पातक भानो॥
रत्नत्रय गह भविक-जन, जिन आज्ञा सम चालिये।
निश्चयकर आराधना, करम-रास को जालिये॥

—श्री क्षमावाणी पूजा, मल्लजी, संगृहीत ग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्या प्रसाद गोयलीय, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, संस्करण १९५७ ई०, पृष्ठ ४०२ ।

४. श्री सिद्धपूजा भाषा, भविलालजू, संगृहीतग्रंथ-राजेन्द्र नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६ ई०, पृष्ठ ७१ ।

५. हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम भाग, सम्पा० धीरेन्द्र वर्मा आदि, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस, प्रथम संस्करण संवत् २०१५, पृष्ठ २८३ ।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में अनंगशेखर वृत्त का व्यवहार बीसवीं शती के कविवर कुंजिलाल द्वारा भक्त्यात्मक प्रसंग में शांतरस के परिपाक के लिए किया है।[१]

कवित्त

मुक्तक दण्डक का एक भेद कवित्त वृत्त होता है।[२] हिन्दी में विभिन्न रसों में सफलता पूर्वक प्रयुक्त होने परभी शृंगार और वीर रसात्मक काव्याभिव्यक्ति के लिए यह विशिष्ट वृत्त है।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती के कविवर रामचन्द्र ने कवित्त वृत्त का व्यवहार किया है।[३]

---

१. अलोक लोक की कथा विशेष रूप जानते।
तिनेहिं 'कुंजिलाल' ध्यावते सुबुद्धिवान हैं॥
अनंत ज्ञान भूप वे अखण्ड चण्ड रूप वे।
अनूप हैं अरूप सो जिनेन्द्र वर्धमान है॥

—श्री भगवान महावीर स्वामी पूजा, कुंजिलाल, संगृहीतग्रंथ—नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, सम्पा० व प्रकाशिका—ब्र० पतासीबाई जैन, गया (बिहार), संस्करण २४८७, पृष्ठ ४६।

२. हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम भाग, सम्पा० धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस, संस्करण सं० २०१५, पृष्ठ २८३।

३. शिखर सम्मेद जी के बीस टोंक सब जान,
तासौं मोक्ष गये ताकी संख्या सब जानिये।
चउदासै कोड़ा कोडि पैसठ ता ऊपर,
जोडि छियालीस अरब ताकी ध्यान हिये आनिये।
बारा सै तिहत्तर कोड़ि लाख ग्यारा सै बैंयालिस,
और सात सै चौतीस सहस बखानिए।
सैंकड़ा है सात सै सत्तर एते हुये सिद्ध,
तिनकूं सु नित्य पूज पाप कर्म हानिये॥

—श्री सम्मेद शिखर पूजा, रामचन्द्र, संगृहीत ग्रंथ—जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२. नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १३७।

बींसवीं शती के कविवर भगवानदास द्वारा रचित 'श्री तत्वार्थसूत्र पूजा' नामक पूजाकाव्य कृति में कवित्त वृत्त के अभिदर्शन होते हैं।[1]

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्यों में यह वृत्त शान्तरस के उद्रेक मे सफलता-पूर्वक हुआ है ।

चामर

चामर वर्णिक छन्दों में समवृत का एक भेद है।[2] हिन्दी में यह वृत्त अधिकांशत: युद्ध-वर्णनों में वीररसात्मक अभिव्यक्ति में व्यवहृत है । जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नींसवीं शती के कवि बख्तावररत्न ने चामर वृत्त को शान्तरस के प्रकरण में प्रयुक्त किया है।[3]

तोटक

वर्णिक छन्दों में समवृत्त का एक भेद तोटक वृत्त है ।[4] जैन-हिन्दी-पूजा-

---

१. विमल विमल वाणी श्री जिनवर वखानी,
सुन भये तत्व ज्ञानी ध्यान-आत्म पाया है ।
सुरपति मन मानी सुर गण सुख दानी,
सुभव्य उर आना, मिथ्यात्व हटाया है ।
समझहिं सब नीके, जीव समवशरण के,
निज निज भाषा माहिं अतिशय दिखानी है ।
निरअक्षर अक्षर के, अक्षरन सों शब्द के,
शब्द सों पद बने, जिन जु बखानी है ।

—श्री तत्त्वार्थ मूत्र पूजा, भगवानदास, संगृहीत ग्रंथ—जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ ४११ ।

२. हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम भाग, सम्पा० धीरेन्द्र वर्मा आदि, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, बनारस, प्रथम संस्करण, संवत् २०१५, पृष्ठ २८८ ।

३. केवड़ा गुलाब और केतकी चुनायकें ।
धार चर्न के समीप काम को नसाइकें ।।
पार्श्वनाथ देव सेव आपकी करूं सदा ।
दीजिए निवास मोक्ष भूलिये नहीं कदा ।।
—श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न, संगृहीतग्रंथ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ११८ ।

४. हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम भाग, सम्पा० धीरेन्द्र वर्मा आदि, प्रकाशक-ज्ञान मण्डल लिमिटेड, बनारस, संस्करण २०१५, पृष्ठ ३३० ।

काव्य में उन्नीसवीं शती के कवि वृंदावन ने 'श्री चन्द्रप्रभुजिनपूजा'[1] और 'श्री महावीर स्वामीपूजा'[2] नामक पूजा रचनाओं में तोटक वृत्त का व्यवहार किया है। इस शती के अन्य कवि मनरंगलाल की पूजा काव्यकृति 'श्री नेमिनाथ जिनपूजा' में यह वृत्त उल्लिखित है।[3]

बीसवीं शती के हीराचन्द की पूजा-काव्य-कृति श्री सिद्धचक्र पूजा' में यह वृत प्रयुक्त है।[4]

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य के कवियों ने भक्त्यात्मक प्रसंगों में शांतरस के लिए इस वृत्त का उपयोग किया है।

द्रुत विलम्ब्रत :

वर्णिक छन्दों में समवृत्त का एक भेद द्रुतविलम्बित वृत्त है।[5] जैन-हिन्दी-

---

१. कलि पंचम चैत सुहात अली,
गरभागम-मंगल मोदभली।
हरि हर्षित पूजत मातु पिता,
हम ध्यावत पावत शर्म सिना ॥

—श्री चन्द्रप्रभु जिनपूजा, वृंदावन, संगृहीत ग्रंथ—ज्ञानपीठ पूर्जाजलि, अयोध्या प्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, संस्करण १९५७ ई०, पृष्ठ ३३५।

२. श्री महावीर स्वामी पूजा, वृंदावन संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, संस्करण १९७६, पृष्ठ १३२।

३. जय नेमि सदा गुण-वास नमो,
जय पुरहू मो मन आण नमो।
जय दीन-हितो मम दीन पनो,
करि दूरि प्रभु पद दे अपनो ॥

—श्री नेमिनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, संगृहीतग्रंथ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्या प्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, संस्करण १९५७ ई०, पृष्ठ ३६९।

४. श्री सिद्ध चक्रपूजा, हीराचन्द, संगृहीत ग्रंथ—बृहज्जिनवाणी संग्रह, सम्पा० व रचयिता—स्व० पंडित पन्नालाल वाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़, सितम्बर १९५६, पृष्ठ ३२८।

५. हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम भाग, सम्पा० धीरेन्द्र वर्मा आदि, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, बनारस, संस्करण २०१५, पृष्ठ ३८३।

पूजा-काव्य में इस वृत्त का व्यवहार उन्नीसवीं शती के सशक्त पूजा कवि वृंदावन की पूजा काव्यकृति 'श्री शांतिनाथ जिनपूजा'[1] एवं श्री 'पद्मप्रभु जिनपूजा'[2] में परिलक्षित है।

बीसवीं शती के कवि भगवानदास विरचित पूजा 'श्री तत्त्वार्थ सूत्र पूजा' में इस वृत्त के अभिदर्शन होते हैं।[3]

जैन-हिन्दी पूजा-काव्य में द्रुतविलम्बित वृत्त का प्रयोग भक्त्यात्मक प्रसंग में हुआ है।

मत्तगयन्द

तेइस वर्णों के छन्द विशेष का नाम मत्तगयन्द वृत्त है।[4] हिन्दी में यह श्रृंगार, शान्त तथा करुणरसों की अभिव्यक्ति के लिए अधिक प्रचलित रहा है।

जैन-हिन्दी पूजा-काव्यों में इस वृत्त का व्यवहार उन्नीसवीं शती

---

१. असित सातय भादव जानिये,
गरभ-मंगल ता दिन मानिये।
सचि कियो जननी-पद चर्चनं,
हम करें इत यें पद अर्चनं।

—श्री शान्तिनाथ जिनपूजा, वृन्दावन, संगृहीत ग्रन्थ—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ११२।

२. श्री पद्मप्रभु जिनपूजा, वृन्दावन, संगृहीत ग्रन्थ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ८२।

३. सुरसरी कर नीर सु लायके,
करि सु प्रासुक कुम्भ भराय के।
जजन सूत्रहिं शास्त्रहिं को करो,
लहि सुतत्त्व ज्ञानहिं शिव वरो।

—श्री तत्त्वार्थ सूत्र पूजा, भगवानदास, संगृहीत ग्रंथ—जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ ४१०।

४. हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम भाग, सम्पा० धीरेन्द्र वर्मा आदि, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, बनारस, प्रथम संस्करण, संवत् २०१५, पृष्ठ ८२३।

के वृन्दावन को शांतिनाथ जिनपूजा[1] और श्री महावीर स्वामी पूजा[2] नामक पूजा काव्य कृतियों में परिलक्षित है। इस शती के अन्य कवि मनरंग लाल[3], रामचन्द्र[4] और कमलनयन[5] की पूजा रचनाओं में मतगयन्द वृत उल्लिखित है।

बीसवीं शती के कुंजिलाल ने 'श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा' नामक पूजा काव्य कृति में इस वृत को भलीभाँति अपनाया है।[6]

शांतरस की अभिव्यक्ति में १९ वीं शती के कवि वृंदावन की पूजा काव्यकृतियों में प्रचुरता के साथ यह वृत प्रयुक्त है।

मोतियदाम—

मोतियदाम वर्णिक छन्दों में समवृत का एक भेद है।[7] हिन्दी काव्य में

---

१. या भव कानन में चतुरानन, पाप पनानन घेरि हमेरी।
आतम जान न मान न ठानन, वानन हो न दई सठ मेरी॥
ता मद-भामन आपहि हो यह, छान न आनन आनन टेरी।
आन गही शरनागत को, अब श्रीपति जी पत राखहु मेरी॥
—श्री शांतिनाथ जिनपूजा, वृन्दावन, संगृहीत ग्रन्थ—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, संस्करण १९७६, पृष्ठ ११०।

२. श्री महावीर स्वामी पूजा, वृन्दावन, संगृहीतग्रन्थ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १३२।

३. श्री नेमिनाथ जिनपूजा, मनरगलाल, संगृहीतग्रंथ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस प्रथम संस्करण, १९५७ ई०, पृष्ठ ३६५।

४. श्री गिरिनार सिद्धक्षेत्र पूजा, रामचन्द्र, संगृहीतग्रंथ—जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १४१।

५. श्री पंचकल्याणक पूजापाठ, कमलनयन, हस्तलिखित।

६. श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा, कुंजिलाल संगृहीत ग्रंथ—नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, सम्पा० व प्रकाशिका—ब्र० पतासीबाई जैन, गया (बिहार), संस्करण २४८७, पृष्ठ ४०।

७. हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम भाग, सम्पा० धीरेन्द्र वर्मा आदि, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, बनारस, संस्करण संवत् २०१५, पृष्ठ २०६।

अपनी द्रुतगति के कारण और रसात्मक अभिव्यंजना के लिए यह प्रचुरता के साथ व्यवहृत है।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में बीसवीं शती के कवि जवाहरलाल की 'श्री सम्मेदशिखरपूजा' नामक पूजा रचना में मोतियदाम वृत का प्रयोग भक्त्यात्मक काव्याभिव्यंजना में शांतरसोद्रेक के लिए हुआ है।[1]

रथोद्धता—

वर्णिक छन्दों में समवृत का एक भेद रथोद्धता है।[2] जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती के कविवर वृन्दावन द्वारा रचित 'श्री शांतिनाथ जिनपूजा'- नामक पूजा रचना में इस वृत का शान्त रस के प्रकरण में प्रयोग हुआ है।[3]

स्रग्विणी—

स्रग्विणी वर्णिक छन्दों में समवृत का एक भेद है।[4] जैन-हिन्दी-पूजा-

---

१. टरें गति वंदत नर्क त्रियंच।
कवहुं दुखको नहि पावें रंच।
यही शिव की जग में है द्वार।
अरे नर वंदो कहत 'जवार'

—श्री सम्मेद शिखर पूजा, जवाहरलाल, संगृहीतग्रंथ—वृह जिनवाणी संग्रह, सम्पा० व रचयिता—पं० पन्नालाल वाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़, सितम्बर १९५६, पृष्ठ ४८५।

२. हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम भाग, सम्पा० धीरेन्द्र वर्मा आदि, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, बनारस, संस्करण सं० २०१५, पृष्ठ ६१४।

३. शान्ति शान्ति गुन मंडिते सदा, जाहि ध्यावत सुपंडिते सदा।
मैं तिन्हें भगत मंडिते सदा, पूजिहों कलुप-खंडितें सदा॥
मोक्ष हेत तुम ही दयाल हो, हे जिनेश गुन-रत्न-माल हो।
मैं अबै सुगुन दाम ही धरों, ध्यावते तुरित मुक्ति तीयवरों॥

—श्री शांतिनाथ जिनपूजा, वृन्दावन, संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, संस्करण १९७६, पृष्ठ ११४।

४. हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम भाग, सम्पा० धीरेन्द्र वर्मा आदि, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, बनारस, संस्करण सं० २०१५, पृष्ठ ८३२।

काव्य में उन्नीसवीं शती के रससिद्ध कवि मनरंगलाल ने अपनी पूजाकाव्य कृति 'श्री शीतलनाथ जिन पूजा' में स्त्रग्विणी वृत्त का प्रचुर प्रयोग किया है।[1] पूजा काव्य के जयमाल प्रसंग में इस वृत्त के सफल प्रयोग द्वारा शान्तरस की धारा प्रवाहित हो उठी है।

विवेच्य काव्य में इन विविध छंदों के सफल प्रयोग से अभिव्यंजना-सौन्दर्य लयात्मकता तथा ध्वन्यात्मकता का अपूर्व सामंजस्य परिलक्षित है। पूजाकाव्य में छन्दों के उपयोग वैविध्य के कारण आज भी भक्त-परम्परा द्वारा नित्य उपासनाकाल में विभोर तथा तन्मय होकर पूजाकाव्य को मौखिक गाया और दुहराया जाता है।

हिन्दी काव्याभिव्यक्ति में इन छंदों का प्रयोग विभिन्न संदर्भों और भाव व्यापार की अभिव्यंजना में विविध रसनिरूपण के लिए हुआ है किन्तु जैन-हिन्दी-पूजा-काव्यकारों ने इन सभी छंदों का प्रयोग भक्त्यात्मक प्रसंगों में शांतरस-निरूपण के लिए ही सफलतापूर्वक किया है।

---

१. द्रोपदी चीर वाढ़ो तिहारी सही,
देव जानीं सबों में सुलज्जा रही।
कुष्ठ राखो न श्री पाल को जो महा,
अब्धि से काढ़ लीनों सितावी तहाँ॥
—श्री शीतलनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, संगृहीतग्रंथ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ९७।

प्रतीक-योजना

भावाभिव्यक्ति में सरलता, सरसता तथा स्पष्टता उत्पन्न करने के लिए रस सिद्ध कवि प्रायः प्रतीक-योजना का प्रयोग करते हैं। अर्थ के विस्तार की व्यवस्था में प्रतीकों का सहयोग उल्लेखनीय है क्योंकि प्रतीक भाव की गूढ़ता में और संक्षिप्तता में सहायक हुआ करते हैं।

जैन-हिन्दी-पूजा कवियों के समक्ष काव्य-सृजन का लक्ष्य अपने भावों तथा दार्शनिक विचारों के प्रचार प्रसार का प्रवर्तन करना ही प्रधान रूप से रहा है। धार्मिक साहित्य की भांति जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में प्रयुक्त प्रतीकों को हम निम्न रूपों में विभाजित कर सकते हैं[1]—

(१) आत्मबोधक प्रतीक
(२) शरीरबोधक प्रतीक
(३) विकार और दुःख विवेचक प्रतीक
(४) गुण और सर्वसुख बोधक प्रतीक

आध्यात्मिक अनुचिन्तन तथा तत्त्व निरूपण करते समय इन कवियों द्वारा अनेक ऐसे प्रतीकों का भी प्रयोग हुआ है जिन्हें उक्त वर्गीकरण में प्रायः संख्यायित नहीं किया जा सकता। यहाँ हम जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य कृतियों में व्यवहृत प्रतीकों की स्थिति का अध्ययन शताब्दि क्रम से करेंगे ताकि उनके विकासात्मक रूप का सहज में उद्घाटन हो सके।

आद्यान्त जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में अग्रलिखित आठ प्रतीकों का सातत्य प्रयोग हुआ है :—

प्रतीक	प्रतीकार्थ
१. जल	जन्म-जरा-मृत्यु-विनाश के अर्थ में
२. चन्दन	संसारताप के विनाश के अर्थ में

१. हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन, भाग २, डा० नेमी चन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्रथम संस्करण, पृष्ठ १९३।

३. अक्षत	अक्षय पद की प्राप्ति के अर्थ में
४. पुष्प	कामवाण के विध्वंस के अर्थ में
५ नैवेद्य	क्षुधारोग के विनाश के अर्थ में
६ दीप	मोहान्धकार के विनाश के अर्थ में
७. धूप	अष्टकर्म के विध्वंस के अर्थ में
८. फल	मोक्ष की प्राप्ति के अर्थ में

इन प्रतीकों के अर्थ-विज्ञान का कारण रहा है—दार्शनिक अभिप्राय। जैनधर्म में आठ कर्मों का कौतुक चर्चित है।[1] इन्हीं अष्टकर्मों को प्रतीक रूप में पूजाकाव्य कृतियों में कवियों द्वारा गृहीत किया गया है।

अठारहवीं शती के जैन-हिन्दी-पूजा कवियों द्वारा भक्त्यात्मक अभिव्यक्ति को सरल तथा सरस बनाने के लिए लोक में प्रचलित प्रतीकों का सफलता पूर्वक प्रयोग हुआ है। अठारहवीं शती में प्रयुक्त प्रतीकात्मक शब्दावलि को निम्न फलक द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है, यथा—

प्रतीक शब्द	प्रतीकार्थ
कीच[2]	जग (संसार) के अर्थ में
तम[3]	मोह, संशय, विभ्रम के अर्थ में

---

१. अपभ्रंश वाङ्मय में व्यवहृत पारिभाषिक शब्दावलि, आदित्य प्रचण्डिया 'दीति', महावीर प्रकाशन, अलीगंज (एटा), प्रथम संस्करण १६७७, पृष्ठ ३।

२. जिस विना नहिं जिनराज सीझे,
तू रुल्यो जग कीच में।
—श्री दशलक्षण धर्मपूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्य पूजा संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १६७६, पृष्ठ १८२।

३. दीपक प्रकाश उजास उज्ज्वल, तिमिरसेती नहिं डरों।
संशय विमोह विभरम तम हर, जोर कर विनती करों॥
—श्री निर्वाण क्षेत्र पूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १६७६, पृष्ठ ३७४।

नाग[1]	काम के अर्थ में
पींजरा[2]	भव के अर्थ में
विषबेल[3]	विषयाभिलाषा के अर्थ में
शिवपुरी[4]	मुक्तिस्थल के अर्थ में

उन्नीसवीं शती में व्यवहृत प्रतीक शब्दावलि:

प्रतीक शब्द	प्रतीकार्थ
कूप[5]	सुख-गाम्भीर्य के अर्थ में
केहरि[6]	काल के अर्थ में

---

१. काम-नाग विषधाम नाश को गरुड कहे हो।
छुधा महाद्रव ज्वाल तासु को मेघ लहे हो॥
—श्री बीस तीर्थंकर पूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ५६।

२. करै करम की निर जरा,
भव पींजरा विनाश।
—श्री दशलक्षण धर्मपूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्य पूजा संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १८६।

३. संसार में विषबेल नारी,
तजि गये जोगीश्वरा।
—श्री दशलक्षण धर्मपूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्य पूजा संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १७८।

४. द्यानत धर्म की नाव बैठो,
शिवपुरी कुशलात है।
—श्री चारित्रपूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १९९।

५. पय चंदन नर तंदुल सुमना सूप ले।
दीप धूप फल अर्घ महासुख-कूप ले॥
—श्री अनंतनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, संगृहीत ग्रंथ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, प्रकाशक—अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ३५१।

६. श्री मतवीर हरै भवपीर, भरे सुखसीर अनाकुलताई।
केहरि अंक अरीकरदक, नये हरि-पंकति मौलि सुआई॥
—श्री महावीर स्वामी पूजा, वृन्दावन, संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १३२।

गज[1]	मोह के अर्थ में
चातक[2]	चित के अर्थ में
चकोर[3]	चित के अर्थ में
इन्द्रजाल[4]	मायाजाल के अर्थ में
तिमिर[5]	मोह के अर्थ में
नवनीत[6]	मुक्ति के अर्थ में
शिवपुर[7]	मोक्षस्थल के अर्थ में

---

१. जय भव्य हृदय आनंदकार।
जय मोह महागज दलनहार ॥
—श्री पंच कल्याणक पूजापाठ, कमलनयन, हस्तलिखित।

२. श्रीकरि चित-चातक चतुर चर्चित।
जजत हूं हित धारिके ॥
—श्री नेमिनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, संगृहीत ग्रंथ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, पृष्ठ ३६५।

३. जिन चंद चरन चरच्यो चहत।
चित चकोर नचि रच्चि रुचि ॥
—श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजा, वृन्दावन, संगृहीत ग्रंथ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, पृष्ठ ३३३।

४. जय जयहि सर्वसुन्दर दयाल।
लखि इन्द्र जालवन जगतजाल ॥
—श्री अथ सप्तर्षिपूजा, मनरंगलाल, संगृहीत ग्रंथ—वही, पृष्ठ ३९२।

५. तिमिर मोह नाशन के कारन।
जजों चरन गुन धाम ॥
—श्री पदम प्रभु जिनपूजा, वृन्दावन, संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ८२।

६. 'वृन्दावन' सो चतुर नर,
लहै मुक्ति नवनीत।
—श्री महावीर स्वामी पूजा, वृन्दावन, संगृहीत ग्रंथ—वही पृष्ठ १३२।

७. तुम चरण चढ़ाऊं दाह नसाऊं,
शिवपुर पाऊं हित धारी।
—श्री कुंथुनाथ जिन पूजा, बख्तावररत्न, संगृहीत ग्रंथ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, पृष्ठ ५४१।

समवशरण[1]	जिनेन्द्रदेव की आध्यात्मिक सभा के अर्थ में।

बीसवीं शती में प्रयुक्त प्रतीक शब्दावलि:

प्रतीक	प्रतीकेय
अर्जुनबान[2]	अचूक लक्ष्य का प्रतीक
कल्पतरु[3]	मनोवांछित फल प्राप्ति के अर्थ में
तम[4]	मोह के अर्थ में
शिवपुर[5]	मोक्ष स्थल का प्रतीक

---

१. जय जय समवशरन वनधारी।
जय जय वीतराग हितकारी॥
—श्री पद्म प्रभु जिनपूजा, वृन्दावन, संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्य पूजापाठ, संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ८६।

२. लै बाहिम अर्जुन बान,
कुमत बमन झुमके।
—श्री चम्पापुर सिद्ध क्षेत्र पूजा, दौलतराम, संगृहीत ग्रंथ—जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १३८।

३. कल्पद्रुम के सम जानतरा,
रत्नत्रय के शुभ पुष्पवरा।
—श्री तत्वार्थ सूत्र पूजा, भगवानदास, संगृहीत ग्रंथ—जैन पूजापाठ संग्रह, वही, पृष्ठ ४१२।

४. मोह महातम नाशक प्रभु के,
चरणाम्बुज में देत चढ़ाय।
—श्री नेमिनाथ जिनपूजा, जिनेश्वरदास, संगृहीत ग्रंथ, वही, पृष्ठ ११२।

५. विनती ऋषभ जिनेश की, जो पढ़सी मन लाय।
स्वर्गों में संशय नहीं, निश्चय शिवपुर जाय॥
—श्री आदिनाथ जिनपूजा, सेवक, संगृहीत ग्रंथ—जैनपूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ ९९।

समवशरण[1]	जिनेन्द्रदेव की आध्यात्मिक सभा का प्रतीक
हंस[2]	आत्मा का प्रतीक

उपर्यंकित विवेचन से जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में व्यवहृत प्रतीक योजना का शताब्दी क्रम से परिचय सहज में हो जाता है। अठारहवीं शती के पूजा-काव्य में प्रतीकात्मक शब्दावलि का यत्र तत्र व्यवहार हुआ है जिनके प्रयोग से काव्याभिव्यक्ति में उत्कर्ष के परिदर्शन होते हैं।

उन्नीसवीं शती में विरचित जैन हिन्दी-पूजा-काव्य में बहुप्रचलित प्रतीक प्रयोग उल्लेखनीय हैं जिससे पूजाकाव्य का यथेच्छ प्रवर्तन परिलक्षित होता है।

बीसवीं शती में पूजा कृतियों में परम्परानुमोदित प्रतीकों के व्यवहार के साथ अनेक नवीन प्रतीकात्मक शब्दावलि के दर्शन होते हैं। प्रतीकों का सफल प्रयोग इस काल के पूजा कवियों की काव्यकलात्मक क्षमता का परिचायक है।

---

१. तब ही हरि आज्ञा शिर चढ़ाय।
रचि समवशरण वर धनद राय॥
—श्री पावापुर सिद्ध क्षेत्र पूजा, दौलतराम, वही, पृष्ठ १६४।

२. दशधर्म बहे शुभ हंस तरा।
प्रणमामि सूत्र जिनवाणि वरा॥
—श्री तत्त्वार्थ सूत्रपूजा, भगवानदास, वही, पृष्ठ ४१२।

भाषा

काव्य का अस्तित्व भाव-भाषा तथा अभिव्यक्ति पर निर्भर करता है। उत्तम काव्य के लिए अभिव्यक्ति का प्रमुख उपकरण भाषा का सम्यक् ज्ञान होना आवश्यक है। शब्द और उससे उत्पन्न होने वाले ध्वनि-विज्ञान का बोध जितना भी अधिक होगा अभिव्यक्ति उतनी ही सशक्त और सप्राण होगी। सुन्दर शब्दयोजना सफल काव्याभिव्यक्ति के लिए आवश्यक उपकरण है। अनुपयुक्त शब्दावलि से काव्य की कमनीयता खंडित हो जाती है जबकि उपयुक्त शब्दों का प्रयोग उत्तम काव्य का सृजन करते हैं।

पूजा कवियों की भाषा अपने समय की समस्त भाषाओं, विभाषाओं और बोलियों के मधुर सम्मिश्रण से प्रभावित रही है। पूजा रचयिताओं ने अपनी अभिव्यक्ति में व्याकरणिक नियमों और साहित्य के शुद्ध रूप को ग्रहण करने की अपेक्षा उसकी प्रेषणीयता को अधिक अपनाया है।

पूजाकाव्य में अनेक हिन्दीतर शब्दों का प्रयोग हुआ है। तत्सम शब्दावलि की भांति पूजाकाव्य की भाषा में तद्भव शब्दों का प्रचुर प्रयोग परिलक्षित है। यहाँ हम इन कवियों की भाषा पर संक्षेप में अध्ययन करेंगे। यथा—

अठारहवीं शती

तद्भव शब्द (प्रयुक्त)	संस्कृत शब्द	पूजा पंक्ति
छय	क्षय	दीपक जोति तिमर छयकार[1]
छिन	क्षण	सब को छिन में जीत[2]
छीरोदधि	क्षीरोदधि	छीरोदधि गंगा विमल तरंगा[3]

१. श्री सोलहकारण पूजा, द्यानतराय. संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्य पूजा-संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १९५।

२. श्री बीस तीर्थंकर पूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रंथ, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ५६।

३. श्री सरस्वती पूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ— राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ३७५।

जोति	ज्योति	प्रकाश जोति प्रभावली[1]
तिसना	तृष्णा	तिसना भाव उछेद[2]
बिजुली	विद्युत	घन बिजुरी उनहार[3]
सरधा	श्रद्धा	द्यानत सरधामन धरे[4]

उन्नीसवीं शताब्दि—

तद्भव शब्द (प्रयुक्त)	संस्कृतशब्द	पूजापंक्ति
काज	कार्य	निज पर देखन काज[5]
छिन	क्षण	एकछिन न विसारहो[6]
नेवज	नैवेद्य	नेवेज नाना परकार[7]
पूस	पोष	चौदशि पूस वदी[8]
मानुष	मनुष्य	मानुष गति कुल नीच[9]

---

१. श्री देवशास्त्र गुरुपूजा भाषा द्यानतराय, संगृहीतग्रन्थ—जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १८।

२. श्री दशलक्षण धर्मपूजा, द्यानतराय. संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १८४।

३. श्री दशलक्षण धर्मपूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १८३।

४. श्री बीस तीर्थंकर पूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ६०।

५. श्री अनन्तनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, संगृहीत ग्रन्थ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्या प्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस १९५७ ई०, पृष्ठ ३५२।

६. श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजा, रामचन्द्र, संगृहीतग्रंथ - राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ९०।

७. श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजा, वृन्दावन, संगृहीतग्रन्थ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, १९५७, पृष्ठ ३३४।

८. श्री शीतलनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, संगृहीतग्रंथ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १००।

९. श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजा, रामचन्द्र, संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ९५।

सिगार	शृंगार	सब ही सिगार[1]
सोत	स्रोत	आनंद सोत[2]
हिरदे	हृदय	हिरदेधरि आल्हाद[3]

बीसवीं शती—

तद्भव शब्द (प्रयुक्त)	संस्कृत शब्द	पूजा पंक्ति
कारज	कार्य	मन वांछित कारज करो पूर[4]
नेवज	नैवद्य	कुसुमरु नेवज[5]
नेम	नियम	मेरो नेम निभाइयो[6]
मानुष	मनुष्य	मानुष गति के[7]
रिद्धि	ऋद्धि	जय ऋद्धि[8]
हिरदे	हृदय	हिरदे मेरे[9]

१. श्री कुन्थुनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न, संगृहीत ग्रंथ—ज्ञानपीठ, पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस पृष्ठ ५४६।

२. श्री अनंतनाथ जिनपूजा मनरंगलाल, संगृहीत ग्रंथ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७, पृष्ठ ३५४।

३. श्री क्षमावाणी पूजा, मल्लजी, संगृहीत ग्रंथ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्या प्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७, पृष्ठ ४०४।

४. श्री तीस चौबीसी पूजा, रविमल, संगृहीतग्रंथ—जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ २५०।

५. श्री अकृत्रिम चैत्यालय पूजा, नेम, संगृहीत ग्रंथ—जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ २५१।

६. श्री नेमिनाथ जिनपूजा, जिनेश्वरदास, संगृहीत ग्रंथ—जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ ११३।

७. श्री चन्द्र प्रभु पूजा, जिनेश्वरदास, संगृहीत ग्रंथ—जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १०४।

८. श्री सिद्धपूजा, हीराचन्द्र, संगृहीत ग्रन्थ- बृहज्जिनवाणी संग्रह, सम्पादक व रचयिता पं० पन्नालाल बाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़, १९५६, पृष्ठ ३३३।

९. श्री चन्द्रप्रभु पूजा, जिनेश्वरदास, संगृहीत ग्रंथ—जैनपूजापाठ सग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १०५।

प्रत्येक शती में इसी प्रकार के और भी अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है जिनका मूल उत्स संस्कृत में है किन्तु वे घिसघिस कर अपने प्रकृत स्वरूप से पर्याप्त भिन्न हो गए हैं।

पूजा-काव्य में शुद्ध संस्कृत के शब्दों का व्यवहार भी उल्लेखनीय है, यथा—

संस्कृत शब्द	पूजा पंक्ति
अक्षत	अक्षत अनूप निहार[1]
श्रुति	श्रुति धरई[2]
तंदुल	तंदुल धवल सुगंध[3]
वैयावृत्य	वैयावृत्यकरैया[4]
षट्	षट् आवश्यकाल जो साधै[5]
षोडश	हमूह षोडश कारन[6]

उन्नीसवीं शताब्दि

अद्य	पद जज्जत रज्ज अद्य[7]

---

१ श्री चारित्र पूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १९८।

२. श्री सोलह कारण पूजा, संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १७७।

३. श्री सोलह कारण पूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १७५।

४. श्री सोलहकारण पूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १७६।

५. श्री सोलहकारण पूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्य पूजा-पाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १७७।

६. श्री सोलहकारण पूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १७४।

७. श्री महावीर स्वामी पूजा, वृन्दावन, संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १३४।

अष्टम्	पूजों अष्टम जिन मीत[1]
किम	मैं किम कहूं[2]
घृत	गोघृत सार सों[3]
चक्षु	चक्षु प्रिय अति मिष्ट ही[4]
पंचम	कलि पंचम चेत[5]
हस्त	निल जोड़ हस्त[6]

बीसवीं शती

एकादश	एकादश कार्तिक बदी पूजा रची[7]
त्रय	वार त्रय गायके[8]

---

१. श्री चन्द्रप्रभु जिनपूजा, वृन्दावन, संगृहीत ग्रंथ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७, पृष्ठ ३३५ ।

२. श्री सम्मेदशिखर पूजा, रामचन्द्र, सगृहीत ग्रंथ—जैन पूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १२५ ।

३. श्री अथ सप्तर्षि पूजा, मनरंगलाल, संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्य पूजापाठ सग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १४१ ।

४. श्री सम्मेद शिखर पूजा, रामचन्द्र, संगृहीत ग्रंथ—जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १२७ ।

५. श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजा, वृन्दावन, संगृहीतग्रंथ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७, पृष्ठ ३३५ ।

६. श्री अथ सप्तर्षि पूजा, मनरंगलाल, संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १४३ ।

७. श्री चांदनपुर महावीर स्वामी पूजा, पूरणमल, संगृहीत ग्रंथ—जैन पूजा-पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १६४ ।

८. श्री तीस चौबीसी पूजा, रविमल, संगृहीतग्रंथ—जैन पूजापाठ संग्रह, भाग चन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ २४५ ।

संस्कृत शब्द	पूजा पंक्ति
षट्	षट् द्रव्य[1]
हुताशन	धरि हुताशन धूम[2]

पूजाकवियों द्वारा प्रयुक्त अरबी तथा फारसी शब्दों की तालिका शताब्दि-क्रम से द्रष्टव्य है, यथा—

अठारहवीं शती

प्रयुक्त शब्द	भाषा	पूजा पंक्ति
अरज	अरबी	यह अरज सुनीजे[3]
जहाज	अरबी	भवतारणतरण जहाज[4]
हुकुम	अरबी	पुन्नी हुकुम जगत पर होई[5]
हूजरा	अरबी	अशुभ उदे अभाग हूजरा[6]
रख	फारसी	रख त्रस करुना धरो[7]

---

१. श्री तत्वार्थ सूत्र पूजा, भगवानदास, संगृहीतग्रन्थ-जैन पूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता—७, पृष्ठ ४१० ।

२. श्री तत्वार्थ सूत्र पूजा, भगवानदास, संगृहीतग्रन्थ—जैन पूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२ नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता—७, पृष्ठ ४११ ।

३. श्री देवपूजा भाषा, द्यानतराय, संगृहीतग्रन्थ-वृहजिनवाणी संग्रह, सम्पा० व प्रकाशक—पं० पन्नालाल वाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़, १९५६, पृष्ठ ३०० ।

४. श्री बीस तीर्थंकर पूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रन्थ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ५६ ।

५. श्री वृहत् सिद्ध चक्र पूजा भाषा, द्यानतराय, सगृहीत ग्रन्थ—जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२ नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता—७, पृष्ठ २३९ ।

६. श्री वृहत् सिद्ध चक्र पूजा भाषा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रन्थ—जैन पूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता ७, पृष्ठ २४३ ।

७. श्री दशलक्षण धर्मपूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रन्थ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १८२ ।

उन्नीसवीं शती

अरज	अरबी	यह अरज हमारी[1]
रोज	अरबी	बलिहारी जैयत रोज रोज[2]
सिताबी	अरबी	सिताबी तहाँ[3]
खूबी	फारसी	इह खूबी का पर[4]
दरवाजे	फारसी	दरवाजे भूमि बनी सुरूप[5]

बीसवीं शती

अरज	अरबी	अरज मेरी[6]
गाफिल	अरबी	गाफिल निद्रा में[7]
सूरत	अरबी	सूरत देखी[8]

---

१. श्री पदमप्रभु जिनपूजा, वृन्दावन, संगृहीत ग्रन्थ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ८९।

२. श्री अनन्तनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, संगृहीत ग्रन्थ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्या प्रसाद गोयलीय, मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७, पृष्ठ ३५७।

३. श्री शीतलनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, संगृहीतग्रन्थ—राजेश नित्य पूजा-पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १०२।

४. श्री अनन्तनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, संगृहीत ग्रन्थ—ज्ञानपीठ पूजांजलि अयोध्या प्रसाद गोयलीय, मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७, पृष्ठ ३५६।

५. श्री गिरिनार सिद्धक्षेत्र पूजा, मनरंगलाल, संगृहीतग्रन्थ—जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता—७, पृष्ठ १४५।

६. श्री बाहुबलि पूजा, दीपचन्द, संगृहीतग्रन्थ—नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, सम्पा० ब्र० पतासी बाई, गया (बिहार), पृष्ठ ९३।

७. श्री देवशास्त्रगुरु पूजा, युगल किशोर 'युगल', संगृहीत ग्रन्थ—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ५४।

८. श्री चाँदनपुर महावीर स्वामी पूजा, पूरणमल, संगृहीत ग्रन्थ—जैन पूजा-पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता—७, पृष्ठ १९३।

प्रयुक्त शब्द	भाषा	पूजा पंक्ति
खुशाले	फारसी	होत खुशाले[1]
गुलजारी	फारसी	प्यारी गुलजारी[2]
हरदम	फारसी	ध्यान हरदम[3]
दरवाजों	फारसी	दरवाजों पर कलशा[4]

पूजा रचनाओं में 'ण' कार के स्थान पर 'न' कार का प्रयोग परिलक्षित होता है, यथा—

अठारहवीं शती

प्रयुक्त शब्द	मूल शब्द	पूजा पंक्ति
करुना	करुणा	हम पं करुना होहि[5]
दशलक्षन	दशलक्षण	दशलक्षन को साधं[6]
वान	वाण	सहे वान-वरण[7]

---

१. श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, कुंजीलाल, संगृहीत ग्रंथ—नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, ब्र० पतासीबाई, गया (बिहार), पृष्ठ ११५।

२. श्री सिद्धपूजा, हीराचंद, संगृहीत ग्रंथ—वृहद्‌जिनवाणी संग्रह, सम्पा० व प्रकाशक—पं० पन्नालाल वाकलीवाल, मदनगज, किशनगढ़, १९५६, पृष्ठ ३२९।

३. श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, कुंजिलाल, संगृहीत ग्रंथ- नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, ब्र० पतासीबाई, गया (बिहार), पृष्ठ ११६।

४. श्री सोनागिरि सिद्ध क्षेत्र पूजा आशाराम, संगृहीतग्रंथ-जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १५३।

५. श्री देवपूजा भाषा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ-वृहजिनवाणीसंग्रह, पं० पन्नालाल वाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़, १९५६, पृष्ठ ३००।

६. श्री चारित्रपूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ-राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ २००।

७. श्री दशलक्षण धर्मपूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ-राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर अलीगढ़, १९७७, पृष्ठ १८४।

प्रयुक्त शब्द	मूल शब्द	पूजा पंक्ति
वानी	वाणी	जिनवर वानी[1]
समवसरन	समवशरण	शुभ समवसरन शोभा[2]
उन्नीसवीं शती—		
इन्द्रानी	इन्द्राणी	इन्द्रानीजाय[3]
श्रावन	श्रावण	श्रावन सुदि[4]
कल्यान	कल्याण	मोक्ष कल्यान[5]
कामवान	कामवाण	कामवान निरवार[6]
गनधर	गणधर	गनधर असनिधर[7]
तोरन	तोरण	तोरन घने[8]
प्रान	प्राण	सबके प्रान हीं[9]
पानि	पाणि	जोरिजुग पानि[10]

---

१. श्री सरस्वती पूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रन्थ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ३७५।

२. श्री अथ देवशास्त्र गुरुपूजाभाषा, द्यानतराय, संगृहीतग्रन्थ—जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ २०।

३. शांतिनाथ जिनपूजा, वृन्दावन, संगृहीतग्रन्थ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ११५।

४. श्री पंचकल्याणक पूजापाठ, कमलनयन, हस्तलिखित।

५. श्री नेमिनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, संगृहीतग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७, पृष्ठ ३६८।

६. श्री पंचकल्याणक पूजापाठ, कमलनयन, हस्तलिखित।

७. श्री महावीर स्वामी पूजा, वृन्दावन, संगृहीतग्रंथ—राजेश नित्य पूजा-पाठ संग्रह; राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १३६।

८. श्री पंचकल्याण पूजापाठ, कमलनयन, हस्तलिखित।

९. श्री सम्मेद शिखर पूजा, रामचन्द्र, संगृहीतग्रंथ—जैनपूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १२७।

१०. श्री पंचकल्याणक पूजापाठ, कमलनयन, हस्तलिखित।

प्रयुक्त शब्द	मूल शब्द	पूजा पंक्ति
फनपति	फणपति	फनपति करत सेव[1]
रमनी	रमणी	पावें शिव रमनी[2]
वानी	वाणी	वानी जिनमुख सो[3].
सुलक्षना	सुलक्षणा	सुलक्षना अवतरे[4]

बीसवीं शती—

कल्यान	कल्याण	आतम कल्यान[5]
कारन	कारण	मेटन कारन[6]
दर्पन	दर्पण	दर्पन समान[7]
निवारन	निवारण	भव आताप निवारन[8]
प्रवीन	प्रवीण	पूजों प्रवीन[9]

---

१. श्री पंचकल्याणक पूजापाठ, कमल नयन, हस्तलिखित।

२. श्री सम्मेद शिखर पूजा, रामचन्द्र, संगृहीतग्रंथ-जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १३६।

३. श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजा, वृन्दावन, संगृहीतग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७, पृष्ठ ३३७।

४. श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजा, रामचन्द्र, संगृहीतग्रन्थ-राजेश नित्यपूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़ १९७६, पृष्ठ ६३।

५. श्री चन्द्रप्रभु पूजा, जिनेश्वरदास, संगृहीतग्रन्थ—जैनपूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता—७, पृष्ठ १०२।

६. श्री आदिनाथ जिनपूजा, सेवक, संगृहीतग्रन्थ—जैनपूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता—७, पृष्ठ ९५।

७. श्री भ० महावीर स्वामी पूजा, कुंजिलाल, संगृहीतग्रन्थ—नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, ब्र० पतासीबाई, गया (बिहार), पृष्ठ ४५।

८. श्री चन्द्रप्रभु पूजा, जिनेश्वरदास, संगृहीतग्रन्थ—जैन पूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड कलकत्ता—७, पृष्ठ १००।

९. श्री तीस चौवीसी पूजा, रविमल, संगृहीतग्रन्थ—जैन पूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता—७, पृष्ठ २४८,।

प्रयुक्त शब्द	मूल शब्द	पूजा पंक्ति
फाल्गुन	फाल्गुण	फाल्गुन बदी[1]
बान	बाण	मदनबान[2]

पूजाकाव्य में अर्द्ध वर्ण को पूर्ण करके रखा गया है, यथा—

अठारहवीं शती

प्रयुक्त शब्द	मूल शब्द	पूजा पंक्ति
अरथ	अर्थ	यह अरथ कियो निज हेत[3]
करम	कर्म	शुभ करम[4]
दरव	द्रव्य	लेयवसु दरव हैं[5]
दरशन	दर्शन	सम्यग् दरशन[6]
धरम	धर्म	ध्यान धरम की नाव[7]
निरमय	निर्मय	ध्यान करो निरमय[8]
परकार	प्रकार	दान चार परकार[9]

---

१. श्री चन्द्र प्रभु पूजा, जिनेश्वरदास, संगृहीतग्रन्थ—जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६७, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता—७, पृष्ठ १०७ ।

२. श्री बाहुबलि पूजा, दीपचन्द, संगृहीत ग्रन्थ—नित्य नियम विशेष पूजा संग्रह, ब्र० पतासीबाई, गया (बिहार), पृष्ठ ६३ ।

३. श्री नन्दीश्वर द्वीप पूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रन्थ—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १७२ ।

४. श्री चारित्र पूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रन्थ—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १९८ ।

५. श्री नन्दीश्वर द्वीप पूजा, द्यानतराय संगृहीतग्रन्थ—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १७१ ।

६. श्री चारित्र पूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रन्थ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १९९ ।

७. वही, पृष्ठ १९९ ।

८. श्री निर्वाण क्षेत्र पूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रन्थ—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ३७४ ।

९. श्री दशलक्षण धर्मपूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रन्थ—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १८३ ।

परमातम	परमात्म	सो परमातम पद उपजावें[1]
मुकति	मुक्ति	मुकति पद आप निहारें[2]
हरष	हर्ष	हरष विशेखे[3]

उन्नीसवीं शती—

अरघ	अर्घ	सुन्दर अरघ कीन्हों[4]
ग्रीषम	ग्रीष्म	जय ग्रीषम ऋतु[5]
धरम	धर्म	परम धरम धर[6]
निरमल	निर्मल	निरमल बढ़त[7]
परसूति	प्रसूति	परसूति गेह[8]
मारग	मार्ग	जोग मारग में[9]

---

१. श्री चारित्र पूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रन्थ—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ २०० ।

२. श्री सोलह कारण पूजा, द्यानतराय, राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १७६ ।

३. वही ।

४. श्री शीतलनाथजिनपूजा, मनरंगलाल, संगृहीत ग्रन्थ—ज्ञानपीठ पूजान्जलि, अयोध्या प्रसाद गोयलीय, मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७, पृष्ठ ३४१ ।

५. श्री अथसप्तर्षि पूजा, मनरंगलाल, संगृहीत ग्रन्थ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्या प्रसाद गोयलीय, मन्त्री, भारतीयज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७, पृष्ट ३९६ ।

६. श्री शीतलनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, संगृहीत ग्रंथ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७, पृ० ३४३ ।

७. श्री अनंतनाथ जिनपूजा, मनरगलाल, संगृहीत ग्रंथ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७, पृ० ३५४ ।

८. श्री पंचकल्याणक पूजापाठ, कमलनयन, हस्तलिखित ।

९. श्री अनंतनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, सगृहीत ग्रंथ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७, पृष्ठ ३५५ ।

प्रयुक्त शब्द	मूल शब्द	पूजा पंक्ति
मिरदङ्ग	मृदंग	मिरदंग सजें[1]
वरण	वर्ण	हेम वरण शरीर है[2]
विघन	विघ्न	विघन नशावतु हो[3]
सनमुख	सन्मुख	सनमुख आवत[4]
बीसवीं शती—		
अरघ	अर्घ	पूजों अरघ उतार[5]
ग्रीषम	ग्रीष्म	ग्रीषम गिरि शिर जोगधर[6]
ततकाल	तत्काल	करिकेश लोंच ततकाल[7]
तीक्षण	तीक्ष्ण	भ्रम भंजन तीक्षण सम्यक हो[8]
नगन	नग्न	नगन तन[9]

---

१. श्री महावीर स्वामी पूजा, वृन्दावन, संगृहीत ग्रंथ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १२७।

२. श्री शीतलनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, सगृहीत ग्रंथ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७, पृष्ठ ३३९।

३. श्री चन्द्रप्रभु जिनपूजा, वृंदावन, संगृहीतग्रंथ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७, पृष्ठ ३३५।

४. श्री अनंतनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, संगृहीत ग्रंथ—ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७, पृष्ठ ३५७।

५. श्री अकृत्रिम चैत्यालय पूजा, नेम, संगृहीतग्रन्थ—जैन पूजापाठ संग्रह, भाग चन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृ० २५५।

६. श्री गुरु पूजा, हेमराज, संगृहीत ग्रंथ—बृहजिनवाणी सग्रह, पं० पन्नालाल वाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़, १९५६, पृष्ठ ३१३।

७. श्री चांदनपुर महावीर स्वामीपूजा, पूरणमल, संगृहीतग्रंथ—जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १६२।

८. श्री सिद्धपूजा, हीराचन्द, संगृहीत ग्रंथ—बृहजिनवाणी संग्रह, पं० पन्नालाल वाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़, पृष्ठ ३३२।

९. श्री गुरु पूजा, हेमराज, संगृहीत ग्रंथ—बृहजिनवाणी संग्रह, पं० पन्नालाल वाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़, १९५६, पृष्ठ ३०९।

निरमल	निर्मल	शुचि निरमल नीर गंधं[1]
पदारथ	पदार्थ	धर्म पदारथ जग में सार[2]
परकाशक	प्रकाशक	ज्ञेय परकाशक सही[3]
मुकति	मुक्ति	मुकति मझार[4]
समरथ	समर्थ	समरथ धनी[5]
सूक्षम	सूक्ष्म	अगुरु लघु सूक्षम वीर्य महा[6]
हरष	हर्ष	जय पूजत तन मन हरष आन[7]

पूजा कृतियों में 'व' वर्ण का कार्य 'ओ' और 'उ' की मात्रा से निकाला गया, यथा—

अठारहवीं शती

औगुन	अवगुण	औगुन हरों[8]
धुनि	ध्वनि	तीर्थंकर की धुनि[9]

---

१. श्री आदिनाथ जिनपूजा, सेवक, संगृहीतग्रंथ—जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ ९६।

२. श्री विष्णुकुमार महामुनि पूजा, रघुसुत, संगृहीतग्रंथ—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मैटिल, वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ३७०।

३. श्री पावापुर सिद्ध क्षेत्र पूजा, दौलतराम, संगृहीत ग्रंथ—जैन पूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्रपाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १४८।

४. श्री सिद्धपूजा, हीराचन्द, संगृहीत ग्रंथ-वृहज्जिनवाणी संग्रह, पं० पन्नालाल वाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़, १९५६, पृष्ठ ३३३।

५. श्री आदिनाथ जिनपूजा, सेवक, संगृहीत ग्रंथ—जैन पूजापाठ संग्रह, भाग चन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ ९९।

६ श्री सिद्धपूजा, हीराचन्द, संगृहीतग्रंथ—वृहज्जिनवाणीसंग्रह, पं० पन्नालाल वाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़, १९५६, पृ० ३३१।

७. श्री सिद्ध पूजा भाषा, भविलालजू, संगृहीतग्रन्थ—राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ७४।

८. श्री निर्वाण क्षेत्र पूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रन्थ—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ३७३।

९. श्री सरस्वती पूजा द्यानतराय, संगृहीत ग्रन्थ—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ३७५।

ब्यौहार	व्यवहार	तप संजम ब्यौहार[1]
सुभावी	स्वभावी	सरल सुभावी होय[2]
सुरग	स्वर्ग	सुरग मुकति पर[3]

उन्नीसवीं सदी

औगुण	अवगुण	पर को औगुण देख[4]
धुनि	ध्वनि	धुनि होत घोर[5]
नौमी	नवमी	नौमी फाल्गुन मास[6]

वीसवीं सदी

औगुन	अवगुण	औगुनहार स्वामी[7]
धुनि	ध्वनि	दुन्दुभि की ध्वनि भारी[8]

---

१. श्री चारित्र पूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रन्थ—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १६८।

२. श्री दशलक्षण धर्म पूजा, द्यानतराय, संगृहीतग्रन्थ—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १८०।

३. श्री सोलहकारण पूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रन्थ—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १७६।

४. श्री क्षमावाणी पूजा, मल्ल जी, संगृहीत ग्रन्थ—ज्ञान पीठ पूजान्जलि, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस, १९५७, पृष्ठ ४०५।

५. श्री शान्तिनाथ जिनपूजा, वृन्दावन, संगृहीतग्रन्थ—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ११५।

६. श्री पंच कल्याणक पूजापाठ, कमलनयन, हस्तलिखित।

७. श्री गुरुपूजा, हेमराज, संगृहीतग्रन्थ—बृहज्जिनवाणी संग्रह, पं० पन्नालाल बाकलीवाल, मदनगंज, किशनगढ़, १९५६, पृष्ठ ३१०।

८. श्री नेमिनाथ जिनपूजा, जिनेश्वरदास, संगृहीतग्रन्थ—जैन पूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता—७, पृष्ठ ११४।

प्रयुक्त शब्द	मूल शब्द	पूजा पंक्ति
नौमी	नवमी	नौमी दिना[1]
समोशरन	समवशरन	महिमा समोशरन की[2]
सुरग	स्वर्ग	सुरग मुक्ति पद[3]

पूजाकाव्य में भाषाविज्ञान के मुख सुख के सिद्धान्तानुसार कतिपय शब्दों में वर्णो का लोप कर दिया गया है, यथा—

अठारहवीं शती—

प्रयुक्त शब्द	मूल शब्द	पूजापंक्ति
थान	स्थान	ठारे थान[4]
थिरता	स्थिरता	क्षुधाहरे थिरता करे[5]
श्रुति	स्तुति	श्रुति पूरी[6]

उन्नीसवीं शती

प्रयुक्त शब्द	मूल शब्द	पूजा पंक्ति
थान	स्थान	मुकति थान[7]
थावर	स्थावर	त्रसथावर की रक्षा[8]

---

१. श्री आदिनाथ जिनपूजा, सेवक, संगृहीतग्रंथ-जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ ६७।

२ श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, कुंजिलाल, संगृहीतग्रंथ- नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, ब्र० पतासीवाई जैन, गया (विहार), पृष्ठ ११५।

३. श्री तीस चौवीसी पूजा, रविमल, संगृहीत ग्रंथ- जैन पूजापाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ६२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ २५०।

४. श्री देव पूजाभाषा, द्यानतराय, संगृहीतग्रंथ-वृहज्जिनवाणी संग्रह, पं० पन्नालाल वाकलीवाल, मदनगञ्ज, किशनगढ़, १९५६, पृष्ठ ३०३।

५. श्री चारित्र पूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रंथ- राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १९८।

६ श्री बीस तीर्थंकर पूजा, द्यानतराय, संगृहीत ग्रंथ-राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ५९।

७. श्री चन्द्रप्रभु जिनपूजा, वृंदावन, संगृहीत ग्रंथ-ज्ञानपीठ पूजांजलि, अयोध्या प्रसाद गोयलीय, मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वनारस, १९५७, पृष्ठ ३३८।

८. श्री अथ सप्तर्षि पूजा, मनरंगलाल, संगृहीत ग्रंथ-राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ १४२।

वीसवीं शती

कालुष	कालुष्य	अन्तर का कालुष[1]
थान	स्थान	निज थान[2]
नाज	अनाज	नाज काज जियजान[3]

अव्यय—

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य की भाषा में निम्नलिखित अव्यय प्रयुक्त हैं जो वाक्य रचना में विभिन्न रूप से काम आते हैं। अव्ययों को विभिन्न वैयाकरणों ने विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत रखा है। विवेच्य काव्य में प्रयुक्त अव्ययों को निम्नलिखित शीर्षकों में रखा जा सकता है—

(१) समयवाचक अव्यय
(२) परिमाणवाचक अव्यय
(३) स्थानवाचक अव्यय
(४) गुणवाचक अव्यय
(५) प्रश्नवाचक अव्यय
(६) निषेधवाचक अव्यय
(७) विस्मयवाचक अव्यय
(८) सामान्य अव्यय

समयवाचक अव्यय—

अब—

शताब्दि क्रम

१८—राग न दोष मोहि नहिं भावै, अजर अमर अब अचल सुहावै।
(श्री बृहत्सिद्ध चक्र पूजा भाषा, द्यानतराय)

१९—आन गही शरनागत को, अब श्रीपति जी पत राखहु मेरी।
(श्री शान्तिनाथ जिन पूजा, वृंदावन)

---

१. श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, युगल किशोर' 'युगल', संगृहीत ग्रंथ-राजेश नित्य-पूजा पाठ संग्रह, राजेन्द्र मेटिल वर्क्स, हरिनगर, अलीगढ़, १९७६, पृष्ठ ४८।

२. श्री तीस चौबीसी पूजा, रविमल, संगृहीत ग्रंथ-जैन पूजा पाठ संग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ २४९।

३. श्री सोनागिरि सिद्ध क्षेत्रपूजा, आशाराम, संगृहीत ग्रंथ-जैनपूजापाठसंग्रह, भागचन्द्र पाटनी, नं० ९२, नलिनी सेठरोड, कलकत्ता-७, पृष्ठ १५२।

२०—मन वच तन सों शुद्ध कर, अव वरणों जयमाल।

(श्री तीस चौवीसी पूजा, रविमल)

जब—

१८—मिथ्या जुरी उदै जब आवै, धर्म मधुर रस मूल न आवै।

(श्री वृहत्सिद्ध चक्र पूजा भाषा, द्यानतराय)

१९—हाथ चार जब भूमि निहारैं।

(श्री क्षमा वाणी पूजा, मल्लजी)

२०—जब चौथी काल लगं जु आय।

(श्री तीस चौवीस पूजा, रविमल)

सदा—

१८—द्यानत सिद्ध नमों सदा, अमल अचल चिद्रूप।

(श्री वृहत् सिद्धचक्र पूजाभाषा, द्यानतराय)

१९—शान्ति शान्ति-गुन-मंडिते सदा, जाहि ध्यावते सुपंडिते सदा।

(श्री शान्तिनाथ जिनपूजा, वृंदावन)

२०—वाल ब्रह्मचारी जगतारी सदा विराग सरूप।

(श्री नेमिनाथ जिनपूजा, जिनेश्वरदास)

तब—

१९—पंचम अंग उपधान वतावै, पाठ सहित तब वहु फल पावै।

(श्री क्षमावाणी पूजा, मल्लजी)

२०—अतएव झुके तव चरणों में, जग के माणिक मोती सारे।

(श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, युगलकिशोर 'युगल')

कबहूँ—

१९—जय चन्द्र वदन राजीव नैन, कबहूँ विकथा बोलत न वैन।

(श्री सप्तर्षि पूजा, मनरंगलाल)

२०—कबहूँ इतर निगोद में मोकूं पटकत करत अचेत हों।

(श्री आदिनाथ जिनपूजा, सेवक)

परिणाम वाचक अव्यय—

बहुत—

१८—आदर तें वहु आदर पावै, उदय अनादर तें न सुहावै।

(श्री वृहत्सिद्धचक्र पूजाभाषा, द्यानतराय)

१९—बन्दन कर बहु आनन्द पाय।

(श्री गिरनार सिद्ध क्षेत्रपूजा, रामचन्द्र)

२०—सोनागिरि के शीश पर, बहुत जिनालय जान।

(श्री सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पूजा, आशाराम)

अति—

१८—पुन्नी षट् ऋतु के सुख भोगे, पापी महादुःखी अति रोवे।

(श्री बृहत् सिद्धचक्र पूजाभाषा, द्यानतराय)

१९—अति धवल अक्षत खंड-वर्जित, मिष्ठ राजन भोग के।

(श्री सप्तर्षि पूजा, मनरंगलाल)

२०—अति मधुर लखावन, परम सु पावन, तृषा बुझावन गुण भारी।

(श्री अकृत्रिम चैत्यालय पूजा, नेम)

अल्प—

१८—भिन्न भिन्न कहुं आरती, अल्प सुगुण विस्तार।

(श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, द्यानतराय)

१९—मैं अल्प बुद्धि जयमाल गाय, भवि जीव शुद्ध लीज्यो बनाय।

(श्री गिरनार सिद्धक्षेत्र पूजा, रामचन्द्र)

२०—मैं मति अल्प अज्ञान हो, कौन करे विस्तार।

(श्री आदिनाथ जिनपूजा, सेवक)

अधिक—

१८. आठों दरब संवार, द्यानत अधिक उछाहसों।

(श्री दशलक्षण धर्मपूजा, द्यानतराय)

२०. वर्णि 'दौल' सौ पाय हो, सुखसम्पति अधिकाय।

(श्री चम्पापुर सिद्धचक्र पूजा, दौलतराम)

स्थानवाचक अव्यय—

तहाँ—

१८. तेतिस सागर तहाँ रहे हैं।

(श्री बृहत् सिद्धचक्र पूजा भाषा, द्यानतराय)

१९. सुर लेत तहाँ आनन्द संग।

(श्री शांतिनाथ जिनपूजा, वृन्दावन)

२०. तहां चौवीसी तीन बिराजै आगत नागत अरु वर्तमान.।

(श्री तीस चौवीसी पूजा, रविमल)

जहां—

१८. पांचों भाव जहां नहि लहिये, निश्चै अन्तराय सो कहिये।

(श्री बृहत् सिद्ध चक्र पूजाभाषा, द्यानतराय)

१९. तित वन्यो जहां सुरगिरि विराट।

(श्री शांतिनाथ जिनपूजा, वृन्दावन)

२०. जहां धर्मनाम नहि सुने कोय।

(श्री तीस चौवीसी पूजा, रविमल)

ऊँचा—

१८. ऊँचा जोजन सहस, छतीसं पांडुकवन सोहैं गिरिसीसं।

(श्री पंचमेरु पूजा, द्यानतराय)

२०. श्याम शरीर धनुष दश ऊँचो शंख चिन्ह पगमांहि।

(श्री नेमिनाथ जिनपूजा, जिनेश्वरदास)

गुणवाचक अव्यय—

जैसा—

१८. मुख करै जैसा लखै तैसा, कपट-प्रीति अंगारसी।

(श्री दशलक्षणधर्मपूजा, द्यानतराय)

२०. जैसे निसरै जन्ती में तार हो।

(श्री आदिनाथ जिनपूजा, सेवक)

तैसा—

१८. तैसे दरशन आवरण, देख न देई सुजान—

(श्री बृहत् सिद्धचक्र पूजा भाषा, द्यानतराय)

२०. तैसो ही ऐरावत रसाल।

(श्री तीस चौवीसी पूजा, रविमल)

ऐसे—

१९. ऐसो क्षेत्र महान तिहि, पूजों मन वच काय।

(श्री गिरनार सिद्धक्षेत्र पूजा, रामचन्द्र)

२०. ऐसे अक्षत सौं प्रभु पूजों जगजीवन मन मोहै।

(श्री चन्द्रप्रभु पूजा, जिनेश्वर दास)

प्रश्नवाचक अव्यय—

कौन—

१८. जन्म वैर जिय तै दुःख पावै, वांध मारकी कौन चलावै।

(श्री वृहत् सिद्धचक्रपूजाभाषा, द्यानतराय)

१९. नर सुर पद की तो कौन वात, पूजे अनुक्रमतें मुक्ति जात।

(श्री सम्मेदशिखर पूजा, रामचन्द्र)

२०. भामंडल को छवि कौन गाय।

(श्री अकृत्रिम चैत्यालय पूजा, नेम)

क्या—

१९. अल्पमती में किम कहूँ।

(श्री सम्मेद शिखर पूजा, रामचन्द्र)

२०. सम्राट महावल सेनानी, उस क्षण को टाल सकेगा क्या ?

(श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, युगल किशोर जैन 'युगल')

क्यों—

१८. सहै क्यों नहि जीयरा।

(श्री दशलक्षण धर्मपूजा, द्यानतराय)

कैसा—

२०. अत्यन्त अशुचि जड़ काया से, इस चेतन का कैसा नाता।

(श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, युगलकिशोर जैन 'युगल')

निषेध वाचक अव्यय—

नाहीं—

१८. सुरग नरक पशुगति में नाहीं।

(श्री दशलक्षण धर्मपूजा, द्यानतराय)

१९. जप तप कर फल वांछे नाहीं।

(श्री क्षमावाणी पूजा, मल्लजी)

२०. कहन जरुरति नाहीं तुम स्वही लखि पायो।

(श्री चन्द्रप्रभु पूजा, जिनेश्वरदास)

नहि—

१८. वचन नहि कहें लखि होत सम्यक् धरं।

(श्री नन्दीश्वर द्वीप पूजा, द्यानतराय)

१९. रंचक नहिं मटकत रोम कोय ।

(श्री सप्तर्षिपूजा, मनरंगलाल)

२०. मुनिधर्म तनों नहिं रहे लेश ।

(श्री तीस चौबीसी पूजा, रविमल)

न—

१८. उद्यम हो न देत सर्व जगमांहि भरयो है ।

(श्री बीस तीर्थंकर पूजा, द्यानतराय)

१९. पर को देख गिलानि न आने ।

(श्री क्षमावाणी पूजा, मल्लजी)

२०. मुझको न मिला सुख क्षण भर भी, कंचन कामिनि-प्रसादों में ।

(श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, युगल किशोर जैन 'युगल')

विस्मय वाचक अव्यय—

अहो—

१९. नमन करत चरनन परत, अहो गरीब निवाज ।

(श्री सप्तर्षि पूजा, मनरंगलाल)

२०. उस संसार भ्रमणतें तारो अहो जिनेश्वर करुणावान ।

(श्री तीस चौबीसी पूजा, रविमल)

सामान्य अव्यय—

केवल—

१८. केवल दर्शनावरण निवारै ।

(श्री बृहत् सिद्ध चक्र पूजाभाषा, द्यानतराय)

१९. केवल लहि भविभ्रवसर तारे ।

(श्री महावीर स्वामी पूजा, द्यानतराय)

२०. केवल रवि-किरणों से जिसका सम्पूर्ण प्रकाशित है अन्तर ।

(श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, युगल किशोर जैन 'युगल')

और—

१८. इस ज्ञानहीं सों भरत सीझा, और सब पट पेखना ।

(श्री रत्नत्रय पूजा, द्यानतराय)

१९. केवड़ा गुलाब और केतकी चुनाइके ।

(श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न)

२०. और निश्चित तेरे सदृश प्रभु । अर्हन्त अवस्था पाऊँगा ।
(श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, युगल किशोर जैन 'युगल')

अथवा—

१९. कृष्णागर करपूर हो, अथवा दशविधि जान ।
(श्री क्षमावाणी पूजा, मल्ल जी)

२०. अथवा वह शिव के निष्कंटक, पथ में विष-कंटक बोता हो ।
(श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, युगलकिशोर जैन 'युगल')

नाना प्रकार—

१८. नेवज विविध प्रकार, क्षुधा हरे थिरता करे ।
(श्री रत्नत्रय पूजा, द्यानतराय)

२०. तहां मध्य सनामंडप निहार, तिसकी रचना नाना प्रकार ।
(श्री सोनागिरि सिद्ध क्षेत्र पूजा, आशाराम)

अतएव—

१८. लहि शील लक्ष्मी एव, छूटूँ सूलन सों ।
(श्री नन्दीश्वर द्वीप पूजा, द्यानतराय)

१९. पश्चिम दिस जानूँ टोंक एव ।
(श्री सम्मेद शिखर पूजा, रामचन्द्र)

२०. अतएव प्रभो यह नश्वर दीप, समर्पण करने आया हूँ ।
(श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, युगलकिशोर जैन 'युगल')

विना—

१८. पशु की आयु करे पशु काया, विना विवेक सदा विललाया ।
(श्री वृहत् सिद्धचक्र पूजाभाषा, द्यानतराय)

वचन—

पूजाकार द्वारा शब्दान्त में 'न' वर्ण जोड़कर बहुवचन वाची शब्दों का निर्माण हुआ है—

अठारहवीं शती

कर्मन ('कर्म' का बहुवचन). कर्मन की त्रेसठ प्रकृति,
(श्री अथदेवशास्त्र गुरुपूजा, द्यानतराय)

चोरन ('चोर' का बहुवचन), चोरन के पुर न बसे,
(श्री दशलक्षण धर्मपूजा, द्यानतराय)

दीनन ('दीन' का बहुवचन), दीनन निस्तारन,
(श्री देवपूजा भाषा, द्यानतराय)

दोषन (दोष' का बहुवचन), सब दोषन मांही,
(श्री देव पूजा भाषा, द्यानतराय)

नयनन ('नयन' का बहुवचन), नयनन सुखकारी,
(श्री वीस तीर्थंकर पूजा भाषा, द्यानतराय)

पंचमेरुन ('पंचमेरु' का बहुवचन), पंचमेरुन की सदा,
(श्री अथपंचमेरु पूजा, द्यानतराय)

फूलन ('फूल' का बहुवचन), फूलन सों पूजों जिनराय,
(श्री अथ पंचमेरुपूजा, द्यानतराय)

विषयनि ('विषय' का बहुवचन), कषाय विषयनि टालिये,
(श्री चारित्र पूजा, द्यानतराय)

सिद्धन ('सिद्ध' का बहुवचन), सिद्धन की स्तुति को कर जाने,
(श्री बृहत् सिद्धचक्र पूजाभाषा, द्यानतराय)

सूलन ('शूल' का बहुवचन), छूटों सूलन सों,
(श्री नंदीश्वर द्वीपपूजा, द्यानतराय)

उन्नीसवीं शती—

अक्षतान ('अक्षत' का बहुवचन), अक्षतान लाइकें
(श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा, बखतावररत्न)

कमलन ('कमल' का बहुवचन), कमलन के दल,
(श्री पंचकल्याणक पूजापाठ, कमलनयन)

गुणन ('गुण' का बहुवचन), तुम गुणन की
(श्री अनंतनाथ जिनपूजा, रामचन्द्र)

चरनन ('चरन' का बहुवचन), चरनन चंद लगे,
(श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजा, वृंदावन)

नयनन ('नयन' का बहुवचन), नयनन निहारि,
(श्री पंचकल्याणक पूजापाठ, कमलनयन)

भविजनन ('भविजन' का बहुवचन), भविजनन देत,
(श्री पंचकल्याणक पूजापाठ, कमलनयन)

भोगन ('भोग' का बहुवचन), जय भोगन वर्ष गये,
(श्री कुंथुनाथ जिनपूजा, बखतावररत्न)

मंदिरन ('मंदिर' का बहुवचन), पाँच मंदिरन बीच
(श्री पंचकल्याणक पूजापाठ, कमलनयन)

मुनिन ('मुनि' का बहुवचन), मुनिन की पूजा करूं,
(श्री अथसप्तर्षिपूजा, मनरंगलाल)

राजन ('राजा' का बहुवचन), मिष्ट राजन भोग,
(श्री अथ सप्तर्षिपूजा, मनरंगलाल)

सिद्धन ('सिद्ध' का बहुवचन), जयसिद्धन को,
(श्री कुंथुनाथ जिनपूजा बखतावररत्न)

ऋद्धिन ('ऋद्धि' का बहुवचन), अष्ट ऋद्धिन कों,
(श्री अथ सप्तर्षिपूजा, मनरंगलाल)

बीसवीं शती—

अरिन ('अरि' का बहुवचन), कर्म अरिन को जीत,
(श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर समुच्चयपूजा, हीराचंद)

क्षेत्रन ('क्षेत्र' का बहुवचन), दश क्षेत्रन में इकसार होय,
(श्री तीस चौबीसी पूजा, रविमल)

गुणन ('गुण' का बहुवचन), अनन्ते गुणन,
(श्री खण्डगिरि क्षेत्रपूजा, मुन्नालाल)

चकोरन ('चकोर' का बहुवचन), चारु चरित चकोरन के,
(श्री चन्द्रप्रभु जिनपूजा, जिनेश्वरदास)

चरणन ('चरण' का बहुवचन), धरूं चरणन,
(श्री खण्डगिरि क्षेत्रपूजा, मुन्नालाल)

द्रव्यन ('द्रव्य' का बहुवचन), मंगल द्रव्यन की सुखान,
(श्री सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पूजा, आशाराम)

देवन ('देव' का बहुवचन), देवनघर घंटा बाजे,
(श्री महावीर स्वामी पूजा, कुंजिलाल)

देशन ('देश' का बहुवचन), सब देशन के,
(श्री चांदनपुर महावीर स्वामी पूजा, पूरणमल)

नृपन ('नृप' का बहुवचन), यथाविधिनृपन दान
(श्री बाहुबली पूजा, दीपचंद)

मुनिन ('मुनि' का बहुवचन), जैन मुनिन की
(श्री विष्णुकुमार महामुनि पूजा, रघुसुत)

शूरन ('शूर' का बहुवचन), शूरन में सिरदार,
(श्री नेमिनाथ जिनपूजा, जिनेश्वरदास)

सिद्धन ('सिद्ध' का बहुवचन), तिन सिद्धन को,
(श्री खण्डगिरि क्षेत्रपूजा, मुन्नालाल)

सर्वनाम—

पूजा साहित्य में प्रयुक्त सर्वनामों का स्वरूप प्रायः व्रजभाषा का है किन्तु कतिपय सर्वनाम शब्दों का स्वरूप आधुनिक खड़ी बोली का भी व्यवहृत है, यथा—

अठारहवीं शती—

में-में (सरव पर्व में बड़ो) (श्री नंदीश्वरद्वीप पूजा, द्यानतराय)

हम—निज, (एक स्वरूप प्रकाश निज), (श्री सोलहकारण पूजा, द्यानतराय)

तू—ता, (ताकों चहुगति के दुख नाहीं), (श्री सोलहकारण पूजा, द्यानतराय)

तुम—आप, (आप तिरे ओरन तिरवावे), (श्री सोलहकारण पूजा, द्यानतराय)

वह—सब (तीन भेद व्योहार सब), (श्री चारित्र पूजा, द्यानतराय)

वे—बिन (इन बिन मुक्त न होय), (श्री चारित्र पूजा, द्यानतराय)

बे—इन (इन बिन मुक्त न होय), (श्री चारित्र पूजा, द्यानतराय)

उन्नीसवीं शती—

में—मो, मेरे (मो काज सरसी), (श्री शीतलनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल), (करम मेरे), (श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा, बख्तावररतन)

हम—निज (निज ध्यान विषे लवलीन भये), (श्री चन्द्रप्रभ जिन पूजा, वृंदावन)

तू—ता (ता नदी मध्य इक कुण्डजान), (श्री गिरिनार सिद्ध क्षेत्र पूजा, रामचन्द्र)

तुम—आप (सरसी आप सों), (श्री शीतलनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल)

वह—जे, सब (जे अष्ट कर्म महान), (श्री शीतलनाथ जिन पूजा, मनरंगलाल), (सब शोक तनो चूरे प्रसंग), (श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजा, वृंदावन)

वे—तंहा, तिन्हे (सुरलेत तहां तननं तननं), (श्री महावीरस्वामी पूजा, वृंदावन), (तिन्हें भगत मंडिते सदा), (श्री शांतिनाथ जिनपूजा, वृंदावन)

ये—इन, यह (इन आदि अनेक उछाह भरी), (श्री महावीर स्वामी पूजा, वृंदावन), (यह क्षमावाणी आरती पढ़े), (श्री क्षमावाणी पूजा, मल्लजी)

बीसवीं शती—

में—मो, मेरे, मेरी (अल्पबुद्धि मो जान के) (श्री तीस चोबीसीं पूजा, रविमल), (मेरे न हुये ये मैं इनसे) (श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, युगल किशोर जैन 'युगल'), (प्रभु भूख न मेरी शांत हुई), (श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, युगल किशोर जैन 'युगल')

हम—अपने, निज, हमारा (अपने अपने में होती है), (श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, युगल किशोर जैन 'युगल'), (निज अन्तर का प्रभु भेद कहूँ) (श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, युगल किशोर जैन 'युगल'), (निज लोक हमारा वासा हो) (श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, युगल किशोर जैन, 'युगल')

तू—तेरा, ता, तेरी (नित ध्यान धरूं प्रभु तेरा), (श्री नेमिनाथ जिनपूजा जिनेश्वरदास), (ता दरवाजे पर द्वारपाल), (श्री सोनागिरि सिद्धक्षेत्रपूजा, आशाराम), (तेरी अन्तर लो) (श्री देवशास्त्रगुरुपूजा, युगल किशोर जैन 'युगल')

तुम—आप (आप पधारो निकट), (श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, कुंजिलाल)

वह—सब, जे (सब कुछ जड़ की क्रीड़ा है), (श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, युगलकिशोर जैन, 'युगल'), (जे शुद्ध सुगुण अवगाह पाय), (श्री अकृत्रिम चैत्यालय पूजा, रविमल)

वे—तहां (तहां चौबीसी तीन विराजे), (श्री तीस चौबीसी पूजा, रविमल)

ये—इस, यह, या, इन (इस संसार भ्रमणते), (श्री तीस चौबीसी पूजा, रविमल), (यह बचन हिये मे), (श्री तीस चौबीसी पूजा, रविमल),

(या विधि पांचों कल्यान जोय) (श्री तीस चौबीसी पूजा, रविमल),
(मेरे न हुये ये में इनसे), (श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, युगल किशोर जैन 'युगल')।

कारक और विभक्तियां

विवेच्य काव्य में नीचे लिखे अनुसार कारक चिह्नों और विभक्तियों के प्रयोग मिलते हैं —

कर्ताकारक—(क्रिया का करने वाला) ने
शताब्दिक्रम

१८. तीर्थंकर की धुनि, गणधर ने सुनि।
(श्री सरस्वती पूजा, द्यानतराय)

१९. जन्माभिषेक कियो उनने।
(श्री नेमिनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल)

२०. समझा था मैंने उजियारा।
(श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, युगल किशोर जैन 'युगल')

कर्मकारक—(जिस पर क्रिया का प्रभाव पड़े) को

१८. ताको जस कहिये।
(श्री निर्वाणक्षेत्र पूजा, द्यानतराय)

१९. माघवदी द्वादशि को जन्मे।
(श्री शीतलनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल)

२०. क्षणभर निज रस को पी चेतन, मिथ्या मल को धो देता है।
(श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, युगलकिशोर जैन 'युगल')

करणकारक—(जिससे क्रिया की जाय) तें, सों, से, के द्वारा

१८. श्री जिनके परसाद तें, सुखी रहे सब जीव।
(श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, द्यानतराय)

१९. जो पढ़े पढ़ावे मन वच तन सों निजदर से दर हाल।
(श्री नेमिनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल)

२०. केवल रवि-किरणों से जिसका सम्पूर्ण प्रकाशित है अन्तर।
(श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, युगल किशोर जैन 'युगल,)

सम्प्रदानकारक—(जिसके लिए क्रिया की जाए) को, के लिए

१८. दुस्सह भयानक तासु नाशन को सुगुरुप समान है।

(श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, द्यानतराय)

१९. हरिवंश सरोजन को रवि हो, बलवन्त महन्त तुमी कवि हो।

(श्री महावीर स्वामीपूजा, वृंदावन)

२०. मैं भूल स्वयं के वैभव को, पर ममता में अटकाया हूँ।

(श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, युगलकिशोर जैन 'युगल')

अपादान कारक—(क्रिया जिसके कारण अलग होना प्रकट करें अथवा 'कारण से' अर्थ प्रस्तुत हो) से, तैं (कारण से अर्थ में)

१८. तातैं तारे बड़ी भक्ति-नौका-जग नामी।

(श्री बीस तीर्थंकर पूजा, द्यानतराय)

१९. भवसागर से तिरें नहि भव में परे।

(श्री सम्मेद शिखर पूजा, रामचन्द्र)

२०. तुम तो अविकारी हो प्रभुवर। जग में रहते जग से न्यारे।

(श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, युगल किशोर जैन 'युगल')

सम्बन्ध कारक (क्रिया के अन्य कारकों के साथ सम्बन्ध प्रकट करने वाला) का, की, के, रा, री, रे, ना, नी, ने

१८. गुरु की महिमा वरनी न जाय।

(श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, द्यानतराय)

१९. अश्वसेन के पारस जिनेश्वर, चरण तिनके सुर नये।

(श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न)

२०. यह सब कुछ जड़ की क्रीड़ा है, मैं अब तक जान नहीं पाया।

(श्री देवशास्त्र गुरुपूजा 'युगल')

अधिकरण कारक—(क्रिया होने का आधार स्थान व समय) में, पे, पर

१८. सबको छिन में जीत जैन के मेरु खड़े हैं।

(श्री बीस तीर्थंकर पूजा, द्यानतराय)

१९. जयशान्तिनाथ चिद्रूपराज, भवसागर में अद्भुत जहाज।

(श्री शान्तिनाथ जिनपूजा, वृंदावन)

२० सद्दर्शन-बोध-चरण-पथ पर, अविरल जो बढ़ते हैं मुनिगण।

(श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, युगल किशोर जैन 'युगल')

सम्बोधनकारक—(क्रिया के लिए जिसे सम्बोधित किया जाय) हे, हो, अरे

१८. उत्तम छिमा गहो रे भाई, इह भव जस पर भव सुखदाई।
(श्री दशलक्षणधर्म पूजा, द्यानतराय)

१९. तुम पदतर हे सुखगेह, भ्रमतम खोवत हों।
(श्री महावीर स्वामी पूजा, वृंदावन)

२०. हे निर्मल देव ! तुम्हें प्रणाम, हे ज्ञान दीप आगम ! प्रणाम।
(श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, 'युगल')

क्रियापद—

'धातु' मूल रूप है, जो किसी भाषा की क्रिया के विभिन्न रूपों में पाया जाता है। जा चुका है, जाता है, जायेगा इत्यादि उदाहरणों में 'जाना' समान तत्व है। धातु से काल, पुरुष और लकार से बनने वाले रूप क्रियापद हैं।

विवेच्य काव्य की भाषा में क्रियापदों की स्थिति स्पष्ट और सरल है। संस्कृत की साध्यमान (विकरण) क्रियाओ से बनने वाली कुछ क्रियाएँ शताब्दि क्रम से सोदाहरण नीचे दी जा रही हैं—

(१) ध्या (१८ वीं शती)—(१) ये भवि ध्याइये।
(द्यानतराय, श्री देवशास्त्र गुरूपूजा)

(२) वत्सलअंग सदा जो ध्यावे।
(द्यानतराय, श्री सोलहकारण पूजा)

(१९ वीं शती)—(१) भविजन नित ध्यावें।
(बख्तावररत्न, श्री अथ चतुर्विंशति समुच्चय पूजा)

(२) चरन संभव जिनके ध्याइये।
(बख्तावररत्न, श्री सम्भवनाथ जिनपूजा)

(२० वीं शती)—(१) सितध्यान ध्याय।
(दौलतराम, श्री चम्पापुर सिद्ध क्षेत्र पूजा)

(२) महाव्रत ध्यायके, ध्यायके।
(कुंजिलाल, श्री पार्श्वनाथ पूजा)

(३) शुद्धात्म परम पद ध्याया ।

(कुंजिलाल, श्री पार्श्वनाथ पूजा)

(४) जो पूजे ध्यावे कर्म ।

(मुन्नालाल, श्री खण्डगिरिक्षेत्र पूजा)

(२) पूज (१८ वीं शती) (१) पूजों तुम गुणसार ।

(द्यानतराय, श्री देवशास्त्र गुरुपूजा)

(१९ वीं शती) (१) सुमति जिनेश्वर पूजते ।

(बख्तावररत्न, श्री सुमतिनाथ जिनपूजा)

(२० वीं शती) (१) ते सुगन्धकर पूजिये ।

(आशाराम, श्री सोनागिरि सिद्ध क्षेत्र पूजा)

(३) कर (१८ वीं शती) (१) चंदन शीतलता करे ।

(द्यानतराय, श्री देवशास्त्र गुरुपूजा)

(२) उद्यम नाश कीने ।

(द्यानतराय, श्री देवशास्त्र गुरुपूजा)

(३) कीजें शक्ति प्रमान ।

(द्यानतराय, श्री देवशास्त्र गुरुपूजा)

(४) सबकी पूजा करूं ।

(द्यानतराय, श्री बीस तीर्थंकर पूजा)

(५) सब प्रतिमा को करों प्रणाम ।

(द्यानतराय, श्री पंचमेरु पूजा)

(६) परकाश करयो है ।

(द्यानतराय, श्री बीस तीर्थंकर पूजा)

(७) सरब कीनों निखारा ।

(द्यानतराय, श्री बीस तीर्थंकर पूजा)

(१९ वीं शती)—(१) जय अजितनाथ कीजे सनाथ ।

(बख्तावररत्न, श्री चतुर्विंशति जिनपूजा)

(२) धनपति ने कीनी ।

(बख्तावररत्न, श्री ऋषभनाथ जिनपूजा)

(३) कृपा ऐसी कीजिये ।

(बख्तावररत्न, श्री अभिनंदन नाथ जिनपूजा)

(४) शुभ विहार जिन कीजिहो।

(वख्तावररत्न, श्री वासुपूज्य जिनपूजा)

(५) करो तुम व्याह।

(वख्तावररत्न, श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा)

(६) में नमन करूँ।

(वख्तावररत्न, श्री ऋषभनाथ जिनपूजा)

(७) सु प्रकाश करे।

(वख्तावररत्न. श्री ऋषभनाथ जिनपूजा)

(२० वीं शती) (१) विनती तुमसों करूं।

(युगल किशोर 'युगल', श्री देवशास्त्र गुरुपूजा)

(२) तिन पद पूजा कीजिये।

(आशाराम, श्री सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पूजा)

(३) ज्ञान रूपी मान से कीना सुशोभित।

(पूरणमल, श्री चांदन गांव, महावीर स्वामी पूजा)

(४) काषायिक भाव विनष्ट किये।

(युगल, श्री देवशास्त्र गुरुपूजा)

(५) सोध पवित्र करी।

(दौलतराम, श्री चम्पापुर सिद्ध क्षेत्रपूजा)

(६) करता अभिमान निरंतर ही।

(युगल, श्री देवशास्त्र गुरुपूजा)

(७) ध्यान तुम्हारों कीनौ।

(जिनेश्वरदास, श्री चन्द्रप्रभु पूजा)

(४) रच (१८वीं शती)— (१) नित पूजा रचूँ।

(द्यानतराय, श्री देवशास्त्र गुरुपूजा)

(१९ वीं शती)—(१) अक्षत पुंज रचाइये।

(बख्तावररत्न, श्री सुमतिनाथ जिनपूजा)

(२) तहाँ पूज रची।

(बख्तावररत्न, श्री ऋषभनाथ जिनपूजा)

(२० वीं शती)—(१) जिनवर पूज रचाई।

(जिनेश्वरदास, श्री चन्द्रप्रभु पूजा)

(५) धर (१८ वीं शती)—(१) प्रीति धरी है।

(द्यानतराय, श्री बीस तीर्थंकर पूजा)

(२) पुष्प चरु दीपक धरूं।

(द्यानतराय, श्री देवशास्त्र गुरुपूजा)

(३) आनंद-भाव धरों।

(द्यानतराय, श्री नंदीश्वर द्वीप पूजा)

(१९ वीं शती)—(१) तुम भेंट धराऊं।

(बख्तावररत्न, श्री चन्द्र प्रभु जिनपूजा)

(२) धरी शिविका निजकंध मनोग

(बख्तावररत्न, श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा)

(३) धरो तुम जन्म बनारस आन।

(बख्तावररत्न, श्री सुपार्श्वनाथ जिनपूजा)

(२० वीं शती)—(१) श्री जिनवर आगे धरवाय।

(सेवक, श्री आदिनाथ जिनपूजा)

(२) कनक-रकाबी धरे।

(दौलतराम, श्री पावापुर सिद्धक्षेत्र पूजा)

(३) मणिमय दीप प्रजाल धरों।

(आशाराम, श्री सोनागिरि सिद्ध क्षेत्र पूजा)

(४) प्रेम उर धरत हैं।

(आशाराम, श्री सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पूजा)

(६) कह (१८ वीं शती) (१) गरुड़ कहे हो।

(द्यानतराय, श्री बीस तीर्थंकर पूजा)

(२) भिन्न-भिन्न कहुँ आरती।

(द्यानतराय, श्री बीस तीर्थंकर पूजा)

(३) विजय अचल मंदिर कहा।

(द्यानतराय, श्री पंचमेरु पूजा)

(१९ वीं शती) (१) भये पद्मावति शेष कहाये।

(बख्तावररत्न, श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा)

(२) धर्म सारा कहा।

(बख्तावररत्न, श्री चन्द्रप्रभु जिनपूजा)

(३) कहत बखता वर रतनदास।

(बख्तावररत्न, श्री अजितनाथ जिनपूजा)

(२० वीं शती)—(१) ज्ञायक देव कहावो।

(जिनेश्वरदास, श्री चन्द्रप्रभु पूजा)

(२) अनुकूल कहें प्रतिकूल कहै।

(युगल, श्री देवशास्त्र गुरुपूजा)

(३) जिसको निज कहता मैं।

(युगल, श्री देवशास्त्र गुरुपूजा)

(७) बखान (१८ वीं शती) (१) महाभद्र महाभद्र बखाने।

(द्यानतराय, श्री बीस तीर्थंकर पूजा)

(२) चारों मेरु समान बखानों।

(द्यानतराय, श्री पंचमेरु पूजा)

(१९ वीं शती) (१) तत्व संज्ञा बखानी।

(बख्तावररत्न, श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजा)

(२) कहाँ लों बखाने।

(बख्तावररत्न, श्री शांतिनाथ जिनपूजा)

(२० वीं शती) (१) तिन जयमाल बखान।

(रघुसुत, श्री विष्णुकुमार महामुनि पूजा)

(८) विराज (१८ वीं शती) (१) नेमि प्रभु जस नेमि विराजै।

(द्यानतराय, श्री बीस तीर्थंकर पूजा)

(२) सब गनत-मूल विराजहीं।

(द्यानतराय, श्री पंचमेरु पूजा)

(१९ वीं शती) (१) नौ हाथ उन्नत तन विराजै।

(बख्तावररत्न, श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा)

(२) तिनकी कूख विराजा है।

(बख्तावररत्न, श्री अरहनाथ जिनपूजा)

(२० वीं शती) (१) लोकान्त विराजै क्षण में जा।

(युगल, श्री देवशास्त्र गुरुपूजा)

(९) दा (१८ वीं शती) (१) तातें प्रदच्छन देत।

(द्यानतराय, श्री पंचमेरु पूजा)

(२) घर हुई निरवार।

(द्यानतराय, श्री नंदीश्वर द्वीपपूजा)

(१९ वीं शती) (१) मोक्ष श्रीफल दीजिये।

(बख्तावररत्न, श्री ऋषभनाथ जिनपूजा)

(२) राजा श्रियांस दीनो अहार।

(बख्तावररत्न, श्री ऋषभनाथ जिनपूजा)

(३) देत चव संघ को दान।

(बख्तावररत्न, श्री अजितनाथ जिनपूजा)

(२० वीं शती) (१) जय लक्ष्मी जिन दीजियें।

(जिनेश्वरदास, श्री चन्द्रप्रभु पूजा)

(२) ये दुष्ट महा दुःख देत हो।

(युगल, श्री देवशास्त्र गुरुपूजा)

(१०) शोभ (१८ वीं शती) (१) वन सुमनस शोभे अधिकाई।

(द्यानतराय, श्री पंचमेरु पूजा)

(१९ वीं शती) (१) वज्र चिन्हं शोभत।

(बख्तावररत्न, श्रीधर्मनाथ जिनपूजा)

(२० वीं शती (१) प्राचीन लेख शोभे महान।

(मुन्नालाल, श्री खण्डगिरि सिद्धक्षेत्र पूजा)

(११) पढ़ (१८ वीं शती) (१) पंचमेरु की आरती पढ़े!

(द्यानतराय, श्री पंचमेरु पूजा)

(१९ वीं शती) (१) पढ़े पाठ चित लाय।

(बख्तावररत्न, श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनपूजा)

(२० वीं शती) (१) जो गुरुदेव पढ़ाई विद्या।

(जिनेश्वरदास, श्री बाहुबली स्वामी पूजा)

(२) पढ़ते जिनमत मानत प्रधान।

(मुन्नालाल, श्रीखण्डगिरि सिद्धक्षेत्र पूजा)

(१२) सुन (१८ वीं शती) (१) सुने जो कोय।

(द्यानतराय, श्री पंचमेरु पूजा)

(२) गाली सुनि मनखेद न आनो।

(द्यानतराय, श्री दशलक्षण धर्मपूजा)

(१६ वीं शती) (१) विनती मेरी सुनिये।

(बख्तावररत्न, श्री पुष्पदन्त जिनपूजा)

(२) इन आदिक भेद सुनो।

(बख्तावररत्न, श्री अनन्तनाथ जिनपूजा)

(३) वचन यों सुनाये।

(बख्तावररत्न, श्री नेमिनाथ जिनपूजा)

(२० वीं शती) (१) जन की बाधा सुनो।

(रघुसुत, श्री विष्णुकुमार महामुनि पूजा)

(२) रविमल की विनती सुनो नाथ।

(रविमल, श्री तीस चौबीसी पूजा)

(१३) मिल (१८ वीं शती) (१) जल केशर करपूर मिलाय।

(द्यानतराय, श्री पंचमेरुपूजा)

(१६ वीं शती) (१) जल फल द्रव्य मिलाय।

(बख्तावररत्न, श्री सुमतिनाथ जिनपूजा)

(२) दशगंध मिलावे।

(बख्तावररत्न, श्री कुंथुनाथ जिनपूजा)

(२० वीं शती) (१) मुझको न मिली सुखकी रेखा।

(युगल, श्री देवशास्त्र गुरुपूजा)

(२) केसर आदि कपूर मिले मलयागिरि चन्दन।

(आशाराम, श्री सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पूजा)

(१४) सह (१८ वीं शती) (१) सहे क्यों नहिं जीयरा।

(द्यानतराय, श्री दशलक्षण धर्मपूजा)

(१६ वीं शती) (१) दुःख सहे।

(बख्तावररत्न, श्री अभिनंदननाथ जिन पूजा)

(२० वीं शती) (१) दुक्ख सहे अतिभारी।

(जिनेश्वरदास, श्रीचन्द्रप्रभुपूजा)

(२) बाइसं परीषह वह सहन्त।

(मुन्नालाल, श्री खण्डगिरि क्षेत्रपूजा)

विवेच्य पूजा काव्य में देशी क्रियाओं के कतिपय रूप निम्नलिखित पाये जाते हैं—

(१) जान (१८ वीं शती) (१) द्यानत फल जानें प्रभू ।

(द्यानतराय, श्री पंचमेरु पूजा)

(२) द्यानत सेवक जानके ।

(द्यानतराय, श्री वीस तीर्थंकर पूजा)

(३) भूपर भद्रसाल चहुँ जानो ।

(द्यानतराय, श्री पंचमेरु पूजा)

(१९ वीं शती) (१) मुझ दास अपनो जानिए ।

(बख्तावररत्न, श्री अजितनाथ जिनपूजा)

(२) चिन्ह मर्कट को उर जानके ।

(बख्तावररत्न, श्री अभिनंदननाथ जिनपूजा)

(३) सुवर्ण नाम जानियो ।

(बख्तावररत्न, श्री पुष्पदन्त जिनपूजा)

(४) मात सुसीमा जानो ।

(बख्तावररत्न, श्रीपद्मप्रभु जिनपूजा)

(२० वीं शती) (१) वर्तमान जिनराय भरत के जानियें ।

(जिनेश्वरदास, श्रीचन्द्र प्रभुपूजा)

(२) है चिन्ह शेर का ठीक जान ।

(पूरणमल, श्री चांदनगांव महावीर स्वामी पूजा)

(२) आना (१८ वीं शती) (१) गाली सुनि मन खेद न आनो ।

(द्यानतराय, श्री दशलक्षण धर्मपूजा)

(१९ वीं शती) (२) तासु गन्ध पे अलिगण आवें ।

(बख्तावररत्न, श्री शीतलनाथ जिनपूजा)

(२० वीं शती) (१) मिथ्या मल धोने आया हूँ ।

(युगल, श्री देवशास्त्र, गुरुपूजा)

(३) देख (१८ वीं शती) (१) देखे नाथ परम सुख होय ।

(द्यानतराय, श्री पंचमेरु पूजा)

(१९ वीं शती) (१) ऋधि देख पर की ।

(बख्तावररत्न, श्री अभिनंदननाथ जिनपूजा)

(२) कांति निशपति की देखत ।

(बख्तावररत्न, श्री धर्मनाथ जिनपूजा)

(३) रूप देखो शुनासीर ।

(बख्तावररत्न, श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजा)

(२० वीं शती) (१) दर्शन अनूप देखो जिनाय ।

(मुन्नालाल, श्री खण्डगिरि क्षेत्रपूजा)

(२) कण-कण को जी भर-भर देखा ।

(युगल, श्री देवशास्त्र गुरुपूजा)

(४) बनाना (१८ वीं शती) (१) मनवांछित बहु तुरत बनाय ।

(द्यानतराय, श्री पंचमेरु पूजा)

(१९ वीं शती) (१) समोसरन ठाठ सुन्दर बनायो ।

(बख्तावररत्न, श्री चन्द्रप्रभु जिनपूजा)

(२) तिनके शुभ पुंज बनाऊं ।

(बख्तावररत्न, श्री पुष्पदंत जिनपूजा)

(३) हे जी व्यंजन तुरंत बनायके ।

(बख्तावररत्न श्री श्रेयांसनाथ जिनपूजा)

(२० वीं शती) (१) निजगुन का अर्घ बनाऊंगा ।

(युगल, श्री देवशास्त्र गुरुपूजा)

(२) निजभवन अनुपम दियो बनाय ।

(पूरणमल, श्री चांदन गांव महावीर स्वामी पूजा)

(३) बनवाई गुफा उनने अनेक ।

(मुन्नालाल, श्री खंडगिरि सिद्धक्षेत्र पूजा)

———

मनोवैज्ञानिक

जैन धर्म में ही नहीं अपितु सभी भारतीय धर्मों में उपासना-विषयक स्वीकृति के परिदर्शन होते हैं। उपासना के विविध-रूपों में पूजा का महत्वपूर्ण स्थान है। पूजा के स्वरूप उसके विधि-विधान तथा उद्देश्य-विषयक विभिन्नताएँ होते हुए भी यह सर्वमान्य सत्य है कि संसार के दुःखी प्राणी अपने दुःख-संघात समाप्त करने के लिए पूजा को एक आवश्यक व्रत-अनुष्ठान स्वीकारते हैं।

संसार का प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है। अभय क्षुधा, औषधि तथा ज्ञान विषयक सुविधाओं का वह प्रारम्भ से ही आकांक्षी रहा है। आरम्भ में इन आवश्यक सुविधाओं के अभाव में उसे दुःखानुभूति हुआ करती है। दुःख का सीधा सम्बन्ध उसकी मानसिक स्थिति पर निर्भर करता है। मनोनुकूलता में उसे सुख और प्रतिकूलता में दुःखानुभूति हुआ करती है। आस्थावादी प्राणी अपनी इस दुःखद अवस्था से मुक्ति पाने के लिए सामान्यतः परोन्मुखी हो जाता है। ऐसी स्थिति में विवश होकर वह परकीय-सत्ता के सम्मुख अपने को समर्पित कर उसकी गुण-गरिमा गाने-दुहराने लगता है। यही वस्तुतः पूजा की प्रारम्भिक तथा आवश्यक भूमिका होती है। मन की विविध स्थितियों का विज्ञान वस्तुतः मनोविज्ञान कहलाता है। यहाँ हम हिन्दी जैन पूजा-काव्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करेंगे।

सुखाकांक्षी संसारी जीव ममता प्रिय होता है। पर-वस्तुओं के आश्रय मात्र बनाकर अपने ही गुणों के विकृत परिणमन में परिणत होने के कारण जगत के प्राणी सतत दुःखी हुआ करते हैं। दुःख का कारण अज्ञान है। प्राणी की अनादि कालीन भूलों को यहाँ संक्षेप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

शरीर है सो मैं हूँ इस प्रकार की मान्यता यह जीव अनादिकाल से मानता आया है शारीरिक सुख-सुविधाओं में आसक्ति रखकर वह निरन्तर भ्रमात्मक जीवन जी रहा है। शरीर की उत्पत्ति से वह जीव का जन्म और शरीर के

वियोग से जीव का मरण मानता है अर्थात् अजीव को जीव मानकर अज्ञान का पोषण करता है। मिथ्यात्व, रागादि प्रकट दुःख देने वाले हैं तथापि उनका सेवन करने में सुख मानता है। यह आस्रव तत्त्व की भूल है। वह शुभ को लाभदायी तथा अशुभ को अनिष्ट अर्थात् हानिकारक मानता है किन्तु तत्त्वदृष्टि से वे दोनों अनिष्ट हैं वह ऐसा नहीं मानता। सम्यग्ज्ञान सहित वैराग्य जीव का सुखरूप है तथापि उन्हें कष्टदायक और समझ में न आए ऐसा स्वीकारता है। शुभाशुभ इच्छाओं को न रोक कर इन्द्रिय विषयों की इच्छा करता रहता है। सम्यग्दर्शन पूर्वक ही पूर्ण निराकुलता प्रकट होती है और वही सच्चा सुख है, ऐसा न मानकर यह जीव बाह्य सुविधाओं में सुख मानता है।

यह जीव मिथ्यादर्शन[1], मिथ्याज्ञान[2] और मिथ्याचारित्र[3] के वशीभूत होकर चार गतियों में परिभ्रमण करके प्रतिसमय अनन्त दुःख भोग रहा है। जब तक देहादि से भिन्न अपने आत्मा की सच्ची प्रतीति तथा रागादि का अभाव न करे तब तक सुख-शान्ति और आत्मा का उद्धार नहीं हो सकता।

आत्महित अर्थात् सुखी होने के लिए सच्चे देव गुरु और शास्त्र की यथार्थ प्रतीति, जीवादि सात तत्त्वों की यथार्थ प्रतीति, स्व-पर के स्वरूप की श्रद्धा, निज शुद्धात्मा के प्रतिभास रूप आत्मा की श्रद्धा-इन चार लक्षणों के अविनाभाव सहित श्रद्धा जब तक जीव प्रकट न करे तब तक जीव का उद्धार नहीं हो सकता अर्थात् धर्म का प्रारम्भ भी नहीं हो सकता और तब तक आत्मा को अंशमात्र भी सुख प्रकट नहीं होता।

कुदेव-कुगुरू और कुशास्त्र और कुधर्म की श्रद्धा, पूजा सेवा तथा विनय करने की जो-जो प्रवृत्ति है वह अपने मिथ्यात्वादि महान दोषों को पोषण देने वाली होने से दुःखदायक है, अनन्त संसार-भ्रमण का कारण है। जो

---

१. मिथ्यादर्शन कर्मण उदयात्तत्त्वार्थाश्रद्धान परिणामो मिथ्यादर्शनम्।
—जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग ३, पृष्ठ ३११।

२. ण मुणइ वत्थुसहावं अहविवरीयं णिखेक्खदो मुणइ।
तं इह मिच्छणाणं विवरीयं सम्मरूवं खु॥
—जैनेन्द्र सिद्धांत कोश, भाग २, पृष्ठ २६३।

३. भगवदर्हत्परमेश्वरमार्ग प्रतिकूलमार्गाभास....तन्मार्गाचरण मिथ्याचारित्रं च।....अथवा स्वात्म.. अनुष्ठानरूपविमुखत्वमेवमिथ्या चारित्रं।
—जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग २, क्षु० जिनेन्द्र वर्णी, पृष्ठ २८३।

जीव उसका सेवन करता है, उसे कर्तव्य समझता है, वह दुर्लभ मनुष्यजीवन को नष्ट करता है।

अगृहीत मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र जीव को अनादि काल से होते हैं फिर वह मनुष्य होने के पश्चात् कुशास्त्र का अभ्यास करके अथवा कुगुरु का उपदेश स्वीकार करके गृहीत मिथ्या ज्ञान तथा मिथ्या श्रद्धा धारण करता है तथा कुमति का अनुसरण करके मिथ्या क्रिया करता है, वह गृहीत मिथ्या चारित्र है। इसलिए जीव को भली भांति सावधान होकर गृहीत तथा अगृहीत -दोनों प्रकार के मिथ्याभाव छोड़ने योग्य हैं और उनका यथार्थ निर्णय करके निश्चय सम्यग्दर्शन प्रकट करना चाहिए। मिथ्या भावों का सेवन करके, संसार में भटक करके, अनन्त जन्म धारण करके अनन्त काल गवां दिया अस्तु अब सावधान होकर आत्मोद्धार करना चाहिए।

जीव का लक्षण उपयोग है और ज्ञानदर्शन से व्यापार अर्थात् कार्य को ही उपयोग कहते हैं।[1] चैतन्य के साथ सम्बन्ध रखने वाले जीव के परिणाम को उपयोग कहते हैं और उपयोग को ही ज्ञान दर्शन भी कहते हैं। वह ज्ञान, दर्शन सब जीवों में होता है और जीव के अतिरिक्त अन्य किसी द्रव्य में नहीं होता, इसलिए यह जीव का लक्षण है। जीव उपयोग का स्वरूप है और जानने-देखने रूप को उपयोग कहा है। जीव का वह उपयोग शुभ और अशुभ दो रूपों का होता है।[2] यदि उपयोग शुभ होता है तो जीव के पुण्य कर्म का संचय होता है, और यदि उपयोग अशुभ होता है तो पाप कर्म का संचय होता है किन्तु शुभोपयोग और अशुभोपयोग का अभाव होने पर न पुण्य कर्म का संचय होता है और न पाप कर्म का संचय होता।[3] जो जिनेन्द्र देव

---

१. 'उपयोगो लक्षणं'
—मोक्षशास्त्र, द्वितीय अध्याय, श्लोक आठ, वृहज्जिनवाणी संग्रह, पृष्ठ २०६।

२. अप्पा उवओगप्पा उवओगो णाणदंसणं भणिदो।
सोवि सुहो असुहो वा उवओगो अप्पणो हवदि॥
—कुन्द-कुन्द प्राभृत संग्रह, सम्पा० पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, प्रथम संस्करण १९६०, पृष्ठ ३१।

३. उवओगो जदि हि सुहो पुण्णं जीवस्स संचयं जादि।
असुहो वा तध पावं तेसिमभावेण चयमत्थि॥
—कुन्द कुन्द प्राभृत संग्रह, वही, पृष्ठ ३२।

के स्वरूप को जानता है। वह सिद्ध परमेष्ठी का दर्शन करता है उसी प्रकार आचार्य, उपाध्याय और साधुओं के स्वरूप जानता, देखता है तथा समस्त प्राणियों में दयाभाव रखता है, उस जीव के शुभ उपयोग होता है।[1] जिसका उपयोग विषय और कषाय में अत्यधिक अनुरक्त है, मिथ्या-शास्त्रों को सुनने में, दुर्ध्यान में और कुसंगति में रमा हुआ है, उग्र है और कुमार्ग में तत्पर है, उसका उपयोग अशुभ है।[2]

अशुभ से शुभ की ओर प्रवृत्त होने का भाव प्राणी की पवित्र बुद्धि का द्योतक है। अब इस आत्मा में अपना स्वरूप और जागतिक बोध होता है तब पर- पदार्थ में जिनकी भावना छोड़कर विशुद्ध दर्शन-ज्ञान स्वभाव वाले निज शुद्ध आत्म तत्व में रुचि करने लगता है। अन्तरात्मा की शान्ति के लिए जो प्रयत्न होता है वह है निर्मल विशुद्ध दर्शनज्ञान स्वभाव में परिणत परम आत्मा की दृष्टि और निज की कल्पना से रहित निज सहज स्वभाव की दृष्टि। इसी प्रेरणा से प्रेरित होकर शुभरागवश उद्भूत भगवद्भक्ति में अन्तरात्मा का प्रवास होता है। इसके फलस्वरूप व्यवहार में उस सद्गृहस्थ की देव-पूजा में प्रवृत्ति होती है। देव की स्थिति पूजक का उपादेय लक्ष्य है। अतः व्यवहार से अथवा उपचार से तो पूज्य-परमेष्ठी भगवान का प्रश्रय लिया जाता है और निश्चय से निज सहज-सिद्ध-चैतन्य-प्रभु की दृष्टि रूप ही सहारा होता है। हमें सत्य-सहारा पर गम्भीरता पूर्वक विचार करना चाहिए जिसके लिए व्यवहार और प्रयोजन पहिचानते हुए देवपूजा पर गम्भीर दृष्टिपात करना उचित है।

पूजा में निश्चय रूप भाव अर्थात् आध्यात्मिकता का रूप किस प्रकार का होता है, यह जानना भी आवश्यक है। पूजन में ऐसे आचार-विचार का होना आवश्यक है जिससे पूज्य देव और उनकी स्थापित प्रतिमा को विवेक-पूर्वक ध्यान में लाया जा सके। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि विषय कषाय

---

१. जो जाणादि जिणिंदे पेच्छदि सिद्धे तहेव अणगारे।
जीवेसु साणुकंपो उवओगो सो सुहो तस्स॥
—कुन्द-कुन्द प्राभृत संग्रह, वही, पृष्ठ ३२।

२. विसय कसाओ गाढो दुस्सुदि दुच्चित्त दुट्ठगोट्ठिजुदो।
उग्गो उम्मग्गपरो उवओगो जस्स सो असुहो॥
—कुन्द-कुन्द प्राभृत संग्रह, वही, पृष्ठ ३२।

और देव पूजन दोनों का एक साथ चलना सम्भव नहीं हैं। आराध्य-पूजन के लिए अपने में पात्रता का उदय करना भी आवश्यक है। इसलिए पूजक के आचार में सबसे पहिले सप्तव्यसन[1] का त्याग अनिवार्य है क्योंकि इसके विना चित की चंचलता शान्त नहीं हो सकती। चंचल चित्त में वीतराग और वीतरागता के भावोदय होना सम्भव नहीं।

यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जो व्यक्ति पूजा करता है, अन्तरंग से पूजा का भाव जिसके होता है उसके शुभ-भाव मन्दिर में पहुंच कर ही उत्पन्न हों यह मात्र सत्य नहीं है। वास्तविकता यह है कि उसके अन्तर में पूजा सम्बन्धी संस्कार तो सातत्य विशुद्धि के कारण सर्वदा विद्यमान रहते हैं। पूजक जब शारीरिक क्रिया से निर्वृत्त होकर घर से मन्दिर जी को प्रस्थान करता है तब उसके परिणामों में और भी अधिक निर्मलता बढ़ती है। भाव-गाम्भीर्य, वचन में समिति, चलने में सावधानी और दया की दृष्टि हुआ करती है। मार्ग में चलते समय उसका मनोभाव चैतन्य की उत्सुकता से आप्लावित हो जाता है। मार्ग में विषय कषाय की बात न वह सुनता है और न करता ही है। यदि धर्म सम्बन्धी कोई बात करना आवश्यक होती तो भाषा समिति पूर्वक वह संक्षेप में उसे समाप्त कर स्वयं लक्ष्योन्मुख हो जाता है। जिनालय में प्रवेश करते ही उसे निःसहिः, निःसहिः, निःसहि, शब्द का उच्चारण करना चाहिए। इसका अभिप्राय यह है कि देव पूजन में राग द्वेषजन्य किसी प्रकार का व्यवधान अथवा संकट उत्पन्न न हो।

यदि पूजक का मन परकीय पदार्थों के प्रति आकृष्ट है तो उसका चित वीतरागमय नहीं हो सकता, अस्तु, पूज्य परमेष्ठियों के स्मरण और नमस्कार

---

१. अशुभ में हार शुभ में जीत यहै द्यूत कर्म,
देह की मगनताई, यहै मांस भखिवौ ॥
मोह की गहल सौं अजान यहै सुरापान,
कुमति की रीति गणिका कौ रस चखिवौ ॥
निर्दय ह्वै प्राण घात करवौ यहै शिकार,
पर-नारी संग पर-बुद्धि कौ परखिवौ ॥
प्यार सौं पराई सौंज गहिवे की चाह चोरी,
एई सातौं व्यसन विडारि ब्रह्म लखिवौ ॥

—समयसारनाटक, बनारसीदास, श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र), प्रथम संस्करण वि० सं० २०२७, पृष्ठ ३४७।

पूर्वक कायोत्सर्ग करने से आत्मा का आत्मीय सम्बन्ध चैतन्य भावों की सन्निकटता का सम्बन्ध प्रकरण रूप में हो जाता है और भगवान की पूजा की भूमिका तैयार हो जाती है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि पूजक के मन में वहिर्पदार्थों के व्यापार सम्बन्धी ममता का पूर्ण उत्सर्ग हुए बिना उसमें वास्तविक पूजा की क्षमता उत्पन्न नहीं हो सकती।

भक्त जब भगवान में पूर्णतः तन्मय हो जाता है उस समय वचन-प्रवृत्ति भी प्रायः रुद्ध हो जाती है। यद्यपि यह स्थिति सामान्य पूजक को क्षणिक ही हो पाती है तथापि उसका पुण्य-बन्ध हो जाता है और अपूर्व शान्ति की अनुभूति हुआ करती है। पूजा में अन्तर्भक्ति के साथ वाह्य मंत्रों, द्रव्य, वचन विषयक आलम्बन की भी सार्थकता है क्योंकि वचन के विना न्यास लोक-व्यवहार प्रवर्तन का कोई अन्य उपाय भी नहीं है।

द्रव्य और भाव भेद से नमस्कार भी दो प्रकार का होता है। हाथ-जोड़ शिरोनति करना वस्तुतः द्रव्य नमस्कार है और वाह्य किसी भी क्रिया किए बिना मात्र अपने अन्तर्भाव पूज्य में लगाना वस्तुत: भाव नमस्कार कहलाता है। भाव नमस्कार भी दो प्रकार का होता है, यथा—

१. द्वैत
२. अद्वैत

परमेष्ठी के गुण चिन्तवन पूर्वक सम्मान करना द्वैत नमस्कार है जब कि पूज्य और पूजक में चैतन्य स्वरूप की तद्रूपता अर्थात् पूज्य और पूजक में एकतानता प्रकट हो जाती है उसे वस्तुत: अद्वैत भाव नमस्कार कहते हैं।

देवशास्त्र गुरु की पूजा शुभ उपयोग के लिए प्रमुख साधन है। आवश्यकता यह है कि लक्ष्य में शुद्ध उपयोग हो तभी पूजा की सार्थकता है। पूजा में वाह्य-क्रिया पर उतना बल न देकर शुद्ध-भावों पर पहुँचने का लक्ष्य होना सर्वथा हितकारी होता है। इसके लिए आदर्शरूप परमेष्ठी का ध्यान जाना अत्यन्त स्वाभाविक है फलस्वरूप उनकी आराधना अनिवार्य है। जिस समय परमेष्ठी का चिन्तन-मनन-पूजन और अनुभव होता है उस समय तो अति शुभ परिणामों के होने से पाप होता ही नहीं, इसके अतिरिक्त पूर्व संचित पापों की स्थिति और अनुभाग भी क्षीण होकर अल्प रह जाती है। भविष्य के लिए भी पाप का प्रबल और लम्बी स्थिति पूर्ण उदय होने से रुक जाता है।

इस प्रकार पूजक अथवा भक्त पूज्य-पर-आत्माओं का आश्रय लेता हुआ भी स्वलक्ष्य में अति सावधान होता है। परमात्मा- आत्माओं की सम्मान वृति के साथ-साथ अपने स्वरूप को स्पष्ट करता रहता है। यदि पूजक को आत्म-स्वरूप का कदाचित भी भान नहीं होता तो उसे परमात्मा का भी प्रतिभास नहीं हो पाता क्यों कि परमात्मा का स्वरूप स्व आत्मा के ही अनुरूप है तब यदि आत्मा को न जाना गया तो परमात्मा को जानना किस प्रकार सम्भव हो सकता है। अस्तु वास्तविक पूजक आत्म-ज्ञानी और आत्मपूजक है। ऐसे ही पूजक की पूजा सार्थक है अर्थात् वह मोक्ष साधिका है अन्यथा सब क्रियाएं व्यवहार मात्र लोक-व्यवहार साधिका मात्र है।

लोक में पूज्य, पूजा और पूजन भाव में पराश्रित भावना स्पष्टतः मुखरित है। यहां किसी भी कार्य का कर्ता, दाता परकीय- शक्ति है और पूजक उसी का आश्रय लेकर अपने अभाव की पूर्ति के लिए पूजा-अर्चा करता है। वह स्वच्छ तथा हार्दिक भावना से परिपूर्ण खाद्य-सामग्री का अपने उपास्य के सम्मुख भोग लगाता है और अन्त में स्वयं उसका सेवन कर कल्याणकारी मानता है। जैन-पूजा में इस प्रकार का कोई विधान नहीं है। यहाँ पूजक सर्वसिद्ध भगवान जो स्वयं सिद्ध हो चुके हैं, जो ध्रुव-स्वभाव को प्राप्त परमात्मा हैं तथा अपने ही सर्व प्रदेशों में स्वभाव सिद्ध परमात्मा हैं उसे पूजता है। यहाँ पूजक अपने को ही अपने आप में जो अनादि अनन्त अहेतुक है, शुद्ध अशुद्ध पर्यायों से रहित हैं, चित्तस्वभावमय हैं ऐसे सिद्ध परमात्मा की पूजा करता है। तीर्थंकर की वाणी तथा जिनवाणी को निज चारित्र में आत्मसात् करने वाले साधु श्रेष्ठि की पूजा करना वस्तुतः देव-शास्त्र और गुरु की पूजा है।[1]

यहाँ आश्रय तो कर्म मुक्त भगवान को बनाते हैं किन्तु उनका जो विकल्प-बनाया, ज्ञान-भगवान को हृदय में प्रतिष्ठित किया वस्तुतः उसी की पूजा

---

१. प्रथम देव अरहन्त सुश्रुत सिद्धान्त जू,
गुरु निर्ग्रन्थ महन्त मुकति पुर-पंथ जू।
तीन रतन जग मांहि सो ये जग ध्याइये,
तिनकी भक्ति-प्रसाद परम-पद पाइये॥
पूजूं पद अरहन्त के पूजों गुरुपद सार।
पूजों देवी सरस्वती नित प्रति अष्ट प्रकार॥
—श्री देवशास्त्रगुरुपूजा, द्यानतराय, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ १०६।

होती है। शब्द अर्थ और ज्ञानपूर्वक भगवान में ज्ञान-भगवान की पूजा होने का भाव लेना और आश्रय तो कर्म-मुक्त सिद्ध अर्थ भगवान को बनाते हैं। वास्तव में अर्थ भगवान की कल्पना से भी आगे बढ़कर भक्त ज्ञान-भगवान की पूजा करता है।

पूजा का निश्चय नय की दृष्टि से यही अभीष्ट रूप है तथापि भक्त की मनःस्थिति के अनुसार वह कहाँ तक इसके अनुरूप अपने को प्रस्तुत कर पाता है उपास्य को पूर्ण परकीय-सत्ता स्वीकार कर उसके द्वारा जागतिक उपलब्धियों के लिए जो पूजक पूजा करता है उसका सारा उद्योग अशुभोपयोग को जन्म देता है।[1] ज्ञानपूर्वक जो उत्तरोत्तर स्वयं में जितना तद्रूप बनाने का उद्योग करता है उसका उतना ही अधिक शुभोपयोग होता है।[2] शुभोपयोग पुण्यवन्ध का कारण होता है। स्वय में तद्रूप गुणों की स्थापना कर स्वयं की उपासना करें, अपने ही समग्र कर्मकालुष्य को प्रक्षालन करने का उद्योग वस्तुतः शुद्धोपयोग कहलाता है।[3]

इस प्रकार पूजक पूजा-विधान में सबसे पहिले अपने आराध्य की स्थापना करता है। प्रत्येक पुजारी आराध्य के गुणों का स्तवन कर तीन बार

---

१. विसयक साओगाढो दुस्सुदि दुच्चितदुट्ठगोट्ठिजुदो।
उग्गो उम्मग्गपरो उवओगं जस्स सो असुहो॥
—कुन्द-कुन्द प्राभृतसंग्रह, आचार्य कुन्दकुन्दाचार्य, प्रथमसंस्करण १९६०, जैन संस्कृति सरक्षक संघ, सोलापुर, पृष्ठ ३२।

२ जो जाणादि जिणिदे पेच्छदि सिद्धे तहेव अणगारे।
जीवेसु साणुकंपो उवओगो सो सुहो तस्स॥
—कुन्द-कुन्द-प्राभृत संग्रह, पृष्ठ ३२।

३. (क) शुद्धातम अनुभव जहाँ, सुभाचार तहाँ नांहि।
करम-करम मारग विषैं, सिव मारग सिवमाहि॥
—मोक्षद्वार, समयसार नाटक, बनारसीदास, श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र), पृष्ठ २३३।

(ख) कम्मबन्धो हि णाम, सुहा सुह परिणामैं हितो जाय दे।
शुद्ध परिणामें हितो तेसिं दोण्णं पि णिम्मूलक्खओ॥
—जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग १, पृष्ठांक ४५९।

मंत्रोच्चार करता हुआ उसके स्थापित होने की मनोकामना करता है। एक-एक मंत्रोच्चार पर वह पूर्ण चावल का क्षेपण करता है।[1]

अपने में आराध्य-स्थापना के पश्चात् अपने अष्टकर्मों के क्षय करने का उपक्रम एक-एक अघ्र्य के साथ भक्त प्रभु के गुणों का चिन्तवन गान कर सम्पन्न करता है। जल का स्वभाव तो निर्मल-शान्त तथा शीतल है अस्तु पूजक अपने जन्म जरा तथा मृत्यु विनाश के लिए जल को चढ़ाकर शुभ-संकल्प करता है। पूजा में संकलिपत सामग्री जैनधर्मानुसार सर्वथा निर्माल्य रूप अर्थात् त्यागने योग्य होती है।[2]

संसार-ताप को शान्त करने के लिए पूजक शीतल स्वभावी चन्दन का क्षेपण करता है। सिद्ध-प्रभु के द्वारा अपने समग्र ताप शान्त करने के लिए चिन्तवन करता है।[3]

अक्षय पद प्राप्त करने के लिए पूजक पूर्ण अक्षत् का क्षेपण करता है। इस अक्षत् में तीन गुणों का चिन्तवन कर पूजक उसका संकल्प पूर्वक क्षेपण

---

१. (१) ओ३म् ह्रीं देव शास्त्र गुरु समूह ! अत्र अवतर अवतर संवोषट्।
(२) ओ३म् ह्रीं देव शास्त्र गुरु समूह ! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः।
(३) ओ३म् ह्रीं देव शास्त्र गुरु समूह ! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।

—श्री देव-शास्त्र-गुरुपूजा, द्यानतराय, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ १०६।

२. सुरपति उरग नरनाथ तिनकरि वन्दनीक सुपद प्रभा।
अति शोभनीक सुवरण उज्ज्वल देख छवि मोहित सभा॥
वह नीर क्षीर समुद्र घट भरि अग्र तसु बहु-विधि नचूं।
अरहन्त श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं॥
मलिन वस्तु हरलेत सब जल-स्वभाव मलछीन।
जासों पूजों परमपद देव शास्त्र गुरु तीन॥

—श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, द्यानतराय, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ १०७।

३. जे त्रिजग-उदर मझार प्रानी, तपत अति दुद्धर खरे।
तिन अहित हरन सुवचन जिनके परम शीतलता भरे॥
तसु भ्रमर लोभित घ्राण पावन सरस चन्दन घिसिसचूं।
अरहन्त श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं॥
चन्दन शीतलता करे, तपत वस्तु परवीन,
जासों पूजों परमपद, देव, शास्त्र, गुरु तीन॥

—श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, द्यानतराय, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ १०७।

करता है ।[1] विविध भांति परिमल सुमन में भ्रमर की कामवृत्ति को विध्वंस करने की शक्ति विद्यमान रहती है, उसी प्रकार देव-शास्त्र-गुरु में कामनाश की महिमा विद्यमान है, अस्तु पूजक उनके गुणों का संगान करता हुआ काम विध्वंस करने के लिए पुष्प का क्षेपण करता है ।[2] क्षुधा-रोग शान्त करने के लिए षट्-रस विनिर्मित नैवेद्य की अपेक्षा होती है, उसी प्रकार पूजा काव्य में क्षुधा रोग के शाश्वत-शमनार्थ देव-शास्त्र-गुरु के दिव्य गुणों का पूजक द्वारा चिन्तवन करने का विधान है । ऐसा करने से भक्त की धारणा है कि वह इस रोग से मुक्त हो सकता है ।[3]

अज्ञान-कर्म-बन्ध का प्रमुख आधार है । अज्ञान तिमिर समाप्त करने के लिए पूजक स्व-पर-प्रकाशक दीपक का क्षेपण करता है और साथ ही देव-शास्त्र

---

१. यह भव-समुद्र अपार तारण के निमित्त सुविधि ठई ।
अति दृढ़ परम पावन जथारथ भक्तिवर नौका सही ।।
उज्ज्वल अखण्डित सालि तन्दुल पुंज धरि त्रय गुणजचूं ।
अरहन्त श्रुत सिद्धान्त गुरु निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं ।।
तंदुल सालि सुगंधि अति परम अखडित बीन ।
जासों पूजों परम पद देव शास्त्र गुरु तीन ।।
—श्री देवशास्त्रगुरुपूजा, द्यानतराय, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ १०७ ।

२. जे विनयवंत सुभव्य उर-अम्बुज प्रकाशन भानु हैं ।
जे एक मुख चारित्र भापत त्रिजग माहि प्रधान हैं ।।
लहि कुन्द कमलादिक पहुप भव-भव कुवेदन सों वचूं ।
अरहन्त श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं ।।
विविध भांति परिमल सुमन भ्रमर जास आधीन ।
जासों पूजों परम पद देवशास्त्र गुरु तीन ।
—श्री देवशास्त्रगुरुपूजा, द्यानतराय, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ १०८ ।

३. अति सबल मद कंदर्प जाको क्षुधा-उरग अमान है ।
दुस्सह भयानक तासु नाशन को सुगरुड़ समान है ।।
उत्तम छहों रसयुक्त नित नैवेद्य करि घृत में पचूं ।
अरहन्त श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रंथ नित पूजा रचूं ।।
नाना विध संयुक्त रस, व्यंजन सरस नवीन ।
जासों पूजों परम पद, देवशास्त्र गुरु तीन ।।
—श्री देवशास्त्रगुरुपूजा, द्यानतराय, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ १०८ ।

गुरु के गुणों का गान किया जाता है।[1] कर्म-ईंधन के दलनार्थ चन्दनादि धूप पदार्थ को अग्नि में क्षेपण किया करते हैं यहां देव-शास्त्रगुरु के गुणों का चिन्तवन कर कर्मक्षय करने के शुभ संकल्प पूजा-कर्त्ता द्वारा किया जाता है।[2] कर्म क्षय हो जाने पर मोक्ष की प्राप्ति हुआ करती है। उपास्य के गुणों का गान कर पूजक फल को शुभसंकल्प के साथ क्षेपण करता है।[3]

इस प्रकार जल, चन्दन, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप तथा फल नामक आठ द्रव्यों को शुभसंकल्प के साथ क्षेपण कर पूजा- कर्त्ता अपने मन में यह भावना भाता है कि देवशास्त्र गुरु की पूजा करने से जन्मभर के पातकों

---

१. जे त्रिजग-उद्यम नाश कीने माह तिमिर महावली।
तिहि कर्मघाती ज्ञान दीप प्रकाश जोति प्रभावली।।
इह भाँति दीप प्रजाल कंचन के सुभाजन में खचूं।
अरहन्त श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं।।
स्व-पर-प्रकाशक जोति अति दीपक तमकरि हीन।
जासों पूजों परम पद देव-शास्त्र-गुरु तीन।।
—श्री देव शास्त्र गुरु पूजा, द्यानतराय, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ १०६।

२. जो कर्म-ईंधन दहन अग्नि समूह सम उद्धत लसें।
वर धूप तासु सुगंधिताकरि सकल परिमलता हसे।।
इह भाँति धूप चढाय नित भव-ज्वलन माँहि नहीं पचूं।
अरहन्त श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निरग्रन्थ नित पूजा रचूं।।
अग्नि माँहि परिमल दहन, चन्दनादि गुणलीन।
जासों पूजों परम पद देव-शास्त्र गुरु तीन।।
—श्री देवशास्त्र गुरु पूजा, द्यानतराय, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ १०६।

३. लोचन सुरसना घ्रान उर उत्साह के करतार हैं।
मोपे न उपमा जाय वरणी सकल फल गुणसार हैं।।
सोफल चढ़ावत अर्थपूरन परम अमृत रस सचूं।
अरहंत श्रुत-सिद्धांत गुरु-निरग्रन्थ नित पूजा रचूं।।
जे प्रधान फल फल विषैं पंचकरण-रस-लीन।
जासों पूजों परम पद देव शास्त्र गुरु तीन।।
—श्री देवशास्त्रगुरुपूजा, द्यानतराय, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ १०६।

को समाप्त किया जा सकता है। फलस्वरूप यह सोत्साह वसुविधि अघ्र्य का क्षेपण करता है।[1]

अष्ट कर्मों के संकल्प करने के पश्चात् आराध्य के पंचकल्याणकों का स्मरण कर तद्रूप बनने की शुभ कामना भक्त द्वारा की जाती है।[2] इसके उपरान्त प्रभु के व्यक्तित्व तथा कृतित्व विषयक समग्र गुणों की चर्चा, जयमाल नामक पूजांश में पूजक द्वारा सम्पन्न होती है।[3] अन्त में इत्याशीर्वाद परि-पुष्पांजलि क्षेपण करने के लिए पूजक समुत्सुक होता है।[4]

उपर्युक्त पूजाकाव्य के मनोवैज्ञानिक अध्ययन से स्पष्ट है कि लोक में प्रचलित जैनेतर पूजा और जैनपूजाके स्वरूप में पर्याप्त और स्पष्ट अन्तर है। लोकेषणा के वशीभूत होकर सामान्य पूजक जैनपूजा करने की पात्रता प्राप्त

---

१. जल परम उज्ज्वल गंध अक्षत् पुष्प चरु दीपक धरूं।
वर धूप निर्मल फल विविध बहु जनम के पातक हरूं॥
इह भांति अघ्र्य चढ़ाय नितभवि करत शिव-पंकति मचूं।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निग्रन्थ नित पूजा रचूं॥
वसु विधि अघ्र्य संजोय के अति उछाय मनकीन।
जासों पूजों परम पद देव शास्त्र गुरु तीन॥
— श्री देवशास्त्रगुरुपूजा, द्यानतराय, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ११०।

२. पंचकल्याणकों का स्वरूप और भगवान महावीर, श्री आदित्य प्रचंडिया 'दीति', महावीर स्मारिका, प्रथम खण्ड, सन् १९७७, राजस्थान जैन सभा, जयपुर, पृष्ठ १९।

३. गनधर असनिधर चक्रधर, हरधर गदाधर वरवदा।
अरु चाप धर विद्यासुधर, त्रिशूल धर सेवहिं सदा॥
दुःख हरन आनन्द भरन, तारन-तरन चरन रसाल है॥
सुकुमाल गुणमनि माल उन्नत, भाल की जयमाल है॥
-- जयमाल, श्री वर्द्धमान जिनपूजा, वृन्दावनदास, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ३८१।

४. श्री वीर-जिनेशा नमितसुरेशा, नाग- नरेशा भगति भरा।
वृन्दावन ध्यावें विघ्न नशावें, वांछित पावें शर्मवरा॥
ओ३म् श्री वर्द्धमान जिनेन्द्राय महार्घ निर्वपामीति स्वाहा।
श्री सन्मति के जुगल पद, जो पूजैं धरि प्रीति।
'वृन्दावन' सो चतुर नर, लहै मुक्ति-नवनीत॥
इत्याशीर्वाद, पुष्पांजलि क्षिपामि।
—श्री वर्द्धमान जिनपूजा, वृन्दावनदास, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ३८३।

नहीं कर पाता। एषणाजन्य उपासना जैन-धर्म में मिथ्यात्व की कोटि में परिगणित की गई है इस प्रकार जैन पूजाकाव्य का मनोविज्ञान इस बात पर निर्भर करता है कि यहां देव का स्वरूप क्या है। पूजक का लक्ष्य क्यों है, और पूजा का तंत्र कैसा है ? क्या, क्यों और कैसे सम्बन्धी सभी बातों के सम्यक् समाधान के लिए ज्ञान वस्तुतः एक महत्वपूर्ण तत्त्व है। ज्ञान के बिना विज्ञान की स्थिति सामान्यतः निरर्थक ही है। इस प्रकार जैन पूजा का मनोवैज्ञानिक अध्ययन इन सभी बातों की स्पष्ट स्थिति का पुष्ट प्रतिपादन करता है।

सांस्कृतिक

संस्कृति शब्द सम् उपसर्ग के साथ संस्कृत की (डु) कृ (ञ्) धातु से विनिर्मित है जिसका अर्थ है संस्करण परिमार्जन, शोधन, परिष्करण अर्थात् एक ऐसी क्रिया जो व्यक्ति में निर्मलता का संचार करे। संस्कृति समस्त सीखे हुए व्यवहार अथवा उस व्यवहार का नाम है जो सामाजिक परम्परा से प्राप्त होता है। संस्कृति प्राय: उन गुणों का समुदाय समझी जाती है जो व्यक्तित्व को परिष्कृत एवं समृद्ध बनाते है।[1] वस्तुतः धर्म शास्त्रानुमोदित आचार और लोकानुमोदित आचार, विश्वास तथा आस्थाएं आदि की समष्टि संस्कृति है। गणित की भाषा में संस्कृति को इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं— यथा—

आचार + विचार + तादात्म्य = संस्कृति

संस्कृति मानव व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया है। मनुष्य के सुन्दर सूक्ष्म चिन्तन की अभिव्यक्ति है। संस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है।[2] सृजनात्मक अनुचिन्तन का नाम संस्कृति है। वह मानव जीवन के सर्वग्राह्य आत्मिक जीवन रूपों की सृष्टि है और है उसका उपभोग।[3] संस्कृति जिंदगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं संस्कृति वह चीज मानी जाती है जो हमारे सारे जीवन को व्यापे हुए है तथा जिसकी रचना और विकास में अनेक सदियों के अनुभवों का हाथ है।[4] मनुष्य के पास इन्द्रियां मन, बुद्धि और आत्मा इतनी शक्तियाँ हैं। प्रत्येक मनुष्य के पास ये शक्तियाँ है। मानव की प्रत्येक शक्ति संवर्द्धित हो सकती है। इस शक्ति-संवर्धन से और संस्कार सम्पन्नता से मानव का अतिमानव बनना यह संस्कृति

---

१. हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम भाग, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा आदि, पृष्ठ ८०१।

२. अशोक के फूल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ ६३।

३. संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, डॉ० देवराज, पृष्ठ ३०।

४. संस्कृति के चार अध्याय, परिशिष्ट क, डॉ० रामधारी सिंह दिनकर, पृष्ठ ६५३।

का ध्येय है। इसी को जीव का शिव, नर का नारायण और बुद्ध का मुक्त होना कहते हैं।[1]

धर्म मानव मात्र के अभ्युदय और निःश्रेयस का साधन है। संस्कृति उस धर्म का क्रियात्मक रूप है। संस्कृति शरीर और मन की शुद्धि के द्वारा मनुष्य को आध्यात्म में प्रतिष्ठित करती है।[2] संस्कृति मानवता की प्रतिष्ठायिका है। यह असत्य से सत्य की ओर, अन्धकार से ज्योति की ओर, मृत्यु से अमरत्व की ओर और अनैतिकता से नैतिकता की ओर अग्रसर करती है। भोजन-पान, आहार-विहार, वस्त्राभूषण, क्रियाकलाप आदि को सुसंस्कृत कर जीवनयापन करना सांस्कृतिक प्रेरणा का प्रतिफल है। मानवता अपने आन्तरिक भाव तत्त्वों से ही निर्मित होती है और इन भाव तत्त्वों का विकास मनुष्य की मूलभूत चेष्टाओं द्वारा होता है।[3]

संस्कृति अन्तकरण है, सभ्यता शरीर है। संस्कृति अपने को सभ्यता द्वारा व्यक्त करती है। संस्कृति शब्द बौद्धिक उन्नति का पर्यायवाची है तो सभ्यता शब्द भौतिक विकास का समानार्थक है। संस्कृति का सम्बन्ध मूल्यों के क्षेत्र से है तो सभ्यता का सम्बन्ध उपयोगिता के क्षेत्र से। संस्कृति वह साँचा है जिसमें समाज के विचार ढलते हैं। वह विन्दु है जहाँ से जीवन की समस्याएँ देखी जाती हैं। वस्तुतः विचार, व्यवहार और आस्थाएँ संस्कृति के प्राण तत्त्व हैं।

वैदिक, बौद्ध और जैन संस्कृतियों का समवाय भारतीय संस्कृति है। भारतीय संस्कृति 'कदली दण्ड' (कदली काण्ड) के सदृश है। जिस प्रकार केले का तना एक नहीं होता उसका निर्माण अनेक पर्तों से होता है। पर्त पर पर्त चढ़े रहते हैं उसी प्रकार भारतीय संस्कृति भी कई संस्कृतियों के सम्मिलन से विनिर्मित्त है। जिस प्रकार समस्त नदी-नदों का जल समुद्र की ओर जाता है उसी प्रकार विभिन्न मार्गों से चलते हुए मनुष्य एक ही गन्तव्य

---

१. वैदिक संस्कृति के मूलमंत्र, पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति अंक, पृष्ठ ४१।

२. सर्वात्मदर्शन, डॉ० हरवंशलाल शर्मा शास्त्री, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् २०२६, पृष्ठ २२३।

३. आदिपुराण में भारत, डॉ० नेमिचन्द्र जैन, पृष्ठ १९२।

(मोक्ष, निर्वाण) की ओर अग्रसर होता है। यह सहिष्णुता एवं समन्वय भावना भारतीय संस्कृति की विशेषता है। वस्तुतः प्राणिमात्र में समभाव भारतीय संस्कृति का मूल है।

जैन संस्कृति बड़ी प्राचीन है। डॉ० सर राधाकृष्णन कहते हैं—'जैन परम्परा ऋषभदेव से अपने धर्म की उत्पत्ति होने का कथन करती है जो बहुत सी शताब्दियों पूर्व हुए हैं।'[1] डॉ० कामता प्रसाद जैन प्राङ्० ऐतिहासिक काल में भी जैन धर्म का प्रचार एवं प्रसार स्वीकारते हैं।[2] जैनधर्म का अर्थ है सिपाहियाना धर्म। आखिर मोह की फौज के सामने आ डटने के लिए सिपाही की जरूरत नहीं तो किसकी हो सकती है।[3]

जैन संस्कृति की मान्यता है कि आत्मा स्वयं कर्म करती है और स्वयं उसका फल भोगती है तथा स्वयं संसार में भ्रमण करती है और भवभ्रमण से भी मुक्ति प्राप्त करती है—

स्वयं कर्मकरोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते।
स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं तस्माद् विमुच्यते॥

चित्तवृत्तियों के परिष्कारार्थ जैन संस्कृति अधिक सजग है। जैन संस्कृति मानव के चरम उत्थान में विश्वास करती है और वह प्राणियों के माध्यम से प्रमाणित करती है कि आत्मा अपने प्रयासों एवं साधना से परमात्मा बन सकती है। ऐसी प्राचीनतम संस्कृति विश्वमैत्री की प्रचारिका है एव सम्पूर्ण जगत के कल्याण की पूर्ण भावना को लेकर ही यह आज भी जीवित है।

संस्कृति के प्रमुख दो रूप हैं—

१—लोक संस्कृति (ग्राम संस्कृति)
२—लोकेत्तर संस्कृति (नागरिक संस्कृति)

लोक संस्कृति लोकोत्तर संस्कृति की आधार शिला है। लोक संस्कृति प्रकृति की गोद में पली हुई वनस्थली है और लाकोत्तर संस्कृति नगर के मध्य अथवा पार्श्व में निर्मित्त उद्यान है। एक सहज है, नैसर्गिक है और अकृत्रिम है और

१. Indian Philosophy Vol. I. P. 287.
२. "जैन धर्म की प्राचीनता और उसका प्रभाव : नामक आलेख, श्रीमद् राजेन्द्र सूरि स्मारक ग्रंथ, पृष्ठ ५०५।.
३. धर्म और संस्कृति, श्री जमनालाल जैन, पृष्ठ ४०-४२।

दूसरी निसर्ग से दूर और कृत्रिमता के सहारे जीवित है।[1] जैन संस्कृति वस्तुतः विशुद्धरूप में लोक संस्कृति है जिसमें लोक जीवन सतत मुखरित है। जीवन की गतिविधि आचार-विचार विश्वास-भावनाएँ, लोकाचार, अनुष्ठान आदि इस संस्कृति में उसी प्रकार समाए हुए हैं जिस प्रकार घृत दूध की प्रत्येक बूंद में संचरित होता है।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य मूलतः आध्यात्मिक अभिव्यञ्जना प्रधान है तथापि इसके माध्यम से तत्कालीन लौकिक-तत्त्वों की भी अभिव्यञ्जना हुई है। विवेच्यकाव्य में प्रयुक्त नगर, वेशभूषा, सौन्दर्य प्रसाधन तथा वाद्ययंत्र के अतिरिक्त मानवेतर प्रकृतिपरक पुष्पवर्णन, फलवर्णन, पशुवर्णन तथा पक्षी वर्णन उल्लेखनीय हैं। यहाँ प्रयुक्त इन्हीं वर्णन वैविध्य का संक्षेप में अध्ययन करेंगे।

---

१. जैन कथाओं का सांस्कृतिक अध्ययन, श्रीचन्द्र जैन, रोशनलाल जैन एण्ड संस, चैनसुखदास मार्ग, जयपुर-३, प्रथम संस्करण सन् १९७१ ई०, पृष्ठ ५।

नगर-वर्णन

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में नगर तथा तीर्थ वर्णन भी उल्लेखनीय हैं। जिस क्षेत्र में तीर्थंकर के गर्भ, जन्म, तप तथा ज्ञान नामक कल्याणकों में से एक अथवा अनेक कल्याणक होते हैं उस क्षेत्र को अतिशय क्षेत्र कहा जाता है और जिस क्षेत्र से जीव मुक्ति अथवा मोक्ष प्राप्त करता है उसे सिद्धक्षेत्र की संज्ञा दी गई है। पूजाकाव्य में अतिशय और सिद्ध दोनों ही क्षेत्रों का वर्णन हुआ है। अब यहाँ नगर तथा तीर्थस्थलों की स्थिति और माहात्म्य विषयक विवेचन अकारादि क्रम से करेंगे।

अयोध्या (श्री ऋषभदेवपूजा)[1]—यह नगर उत्तरप्रदेश में २६.४८ उत्तरी अक्षांश और ८२.१४ पूर्वी देशान्तर पर बसा है। अयोध्या जैनियों का आदि नगर और आदि तीर्थ है।[2] यहीं पर आदि तीर्थंकर ऋषभदेव जी के गर्भ व जन्म कल्याणक हुए थे। इस प्रकार अयोध्या धर्म-कर्म का पुण्यमय अतिशय क्षेत्र है।

कम्पिला (श्री विमलनाथजिनपूजा)[3]—कम्पिला जी का प्राचीन नाम काम्पिल्य है। यह अतिशय क्षेत्र उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जिले में कायमगंज के निकट अवस्थित है। इस क्षेत्र में तेरहवें तीर्थंकर भगवान विमलनाथ जी के गर्भ, जन्म, तप और ज्ञान कल्याणक हुए थे। इस प्रकार यह चार कल्याणकों का अतिशय क्षेत्र है।

कुण्डलपुर (श्री वर्द्धमान जिनपूजा)[4]—यह बडगांवरोड, बडगांव, पटना में स्थित है। यहाँ चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर का जन्म हुआ था।

---

१. श्री ऋषभदेवपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थयज्ञ, पृष्ठ १०।

२. जैन तीर्थ और उनकी यात्रा, डा० कामताप्रसाद जैन, भारतीय दिगम्बर जैन परिषद्, पब्लिशिंग हाउस, देहली, तृतीय संस्करण फरवरी १९६२, पृष्ठ ३३।

३. श्री विमलनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थयज्ञ, पृष्ठ ९१।

४. श्री वर्द्धमान जिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थयज्ञ, पृष्ठ १६६।

कोशाम्बी (श्री पद्मप्रभु जिनपूजा)[1]—पकोसाजी से ४ मील दूर कोशाम्बी नगर स्थित है।[2] यहाँ पर पद्मप्रभु के गर्भ-जन्म-तप और ज्ञान नामक चार कल्याणक हुए थे।

खंडगिरि-उदयगिरि (श्री खण्डगिरिक्षेत्रपूजा)[3]—भुवनेश्वर से पांच मील पश्चिम की ओर उदयगिरि और खंडगिरि नामक दो पहाड़ियाँ हैं। उदयगिरि पहाड़ी का प्राचीन नाम 'कुमारी पर्वत' है।[4] यहाँ से अनेक मुनिजन मोक्ष को प्राप्त हुए हैं अस्तु यह सिद्ध क्षेत्र है। इन पहाड़ियों के मध्य एक तंग घाटी है यहाँ पत्थर काटकर बहुत सी गुफायें और मन्दिर बनायें गये हैं जहाँ चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ विरामान हैं—ऐसा उल्लेख पूजाकाव्य के जयमाला अंश में द्रष्टव्य है।[5]

गिरिनार (श्री गिरिनार सिद्धक्षेत्र पूजा)[6]—सौराष्ट्र प्रदेश में २१ अक्षांश और १०.४१ देशान्तर पर स्थित 'गिरिनार' महान सिद्धक्षेत्र है। यहाँ बाइसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ जी के तप, ज्ञान और मोक्ष कल्याणक हुये थे। गिरिनार पर्वतराज महापवित्र और परमपूज्य निर्वाणक्षेत्र है। गिरिनार के निकट ही गिरि नगर बसा है जो अधुनातन समय में जूनागढ़ के नाम से जाना जाता है, पूजाकाव्य में यह गढ़ उल्लिखित है।[7]

चंपापुर (श्री चम्पापुरसिद्धक्षेत्र पूजा)[8]—चम्पापुर का अर्वाचीन

---

१. श्री पद्मप्रभ जिनपूजा, रामचन्द्र, वर्तमानचतुर्विंशति जिनपूजा, नेमीचन्द वाकलीवाल, जैन ग्रन्थ कार्यालय, मदनगंज (किशनगढ़) राजस्थान, अगस्त १९५९, पृष्ठ ५७।

२. जैन तीर्थ और उनकी यात्रा, डा० कामताप्रसाद जैन, पृष्ठ ३२।

३. श्री खण्डगिरि क्षेत्रपूजा, मुन्नालाल, जैनपूजा पाठ संग्रह, पृष्ठ १५८।

४. जैनतीर्थ और उनकी यात्रा, डा० कामताप्रसाद जैन, पृष्ठ ४५-४६।

५. श्रीखण्डगिरिक्षेत्रपूजा, मुन्नालाल, जैनपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ १५६-१५८।

६. श्री गिरिनार सिद्धक्षेत्रपूजा, रामचन्द्र, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १४१।

७. जय सिद्धक्षेत्र तीरथ महान, गिरिनारि सुगिरि उन्नत बखान।
तहं जूनागढ़ है नगर सार, सौराष्ट्र देश के मधि विथार॥
—श्री गिरिनार सिद्धक्षेत्र पूजा, रामचन्द्र, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १४४।

८. श्री चम्पापुर सिद्धक्षेत्र पूजा, दौलतराम, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १३९।

नाम नाथनगर है यह बिहार प्रान्त के भागलपुर के समीपस्थ है। यहं सिद्धक्षेत्र है। बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्य के पांचों कल्याणक यहाँ हुये हैं।[1]

पावापुर (श्री पावापुर सिद्धक्षेत्र पूजा)[2]—बिहार प्रदेश के पटना महानगर के निकट सिद्धक्षेत्र पावापुर है। पावापुर अंतिम तीर्थंकर विभु-वर्द्धमान का निर्वाणधाम है अतः यह पवित्र, पूज्य, तीर्थस्थान है।

बनारस (श्रीपार्श्वनाथजिनपूजा)[3]—यह नगर उत्तरप्रदेश में २३.५३ उत्तरी अक्षांश और ८३.१२ पूर्वी देशान्तर पर गंगा नदी के तट पर स्थित है। बनारस का प्राचीन नाम वाराणसी है। सातवें तीर्थंकर श्री सुपार्श्वनाथ[4] और तेइसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ जी का लोकोपकारी जन्म कल्याणक, इसी स्थल पर हुये है फलस्वरूप यह अतिशय क्षेत्र है।

सम्मेदशिखर (श्री सम्मेदशिखरपूजा)[5]—यह पूर्वी भारत के हजारी बाग जिला पार्श्वनाथ हिल पर स्थित है। सम्मेद शिखर वह पावन भूमि है, जहाँ अजितनाथ आदि बीस तीर्थंकरों और अगणित ऋषि पुंगवों ने तप-साधना द्वारा निर्वाण पद प्राप्त किया है। फलस्वरूप यह सिद्धक्षेत्र है।

सोनागिरि (श्री सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पूजा)[6]—उत्तर प्रदेश में झांसी के निकट दतिया जिले में सोनागिरि क्षेत्र है। यह पर्वत छोटा-सा किन्तु अत्यन्त रमणीक है। यहाँ से नंग-अनंग कुमार आदि साढ़े पांच करोड़ मुनियों के साथ मुक्ति को प्राप्त हुए हैं।

श्रवणबेलगुल (श्री बाहुबली पूजा)[7]—श्रवणबेलगोल जैनियों का अति प्राचीन और मनोहर तीर्थ है इसे उत्तर भारतवासी 'जैनबद्री' कहते हैं। यह 'जैन काशी' और 'गोम्मट तीर्थ' नामों से भी प्रसिद्ध रहा है। यह

---

१. जैन तीर्थ और उनकी यात्रा, पृष्ठ ४०।
२. श्री पावापुरसिद्धक्षेत्र पूजा, दौलतराम, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १४७।
३. श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा, वख्तावररत्न, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ११८।
४. श्री सुपार्श्वनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थ यज्ञ, पृष्ठ ५४।
५. श्री सम्मेदशिखर पूजा, रामचन्द्र, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १२५।
६. श्री सोनागिरिसिद्धक्षेत्रपूजा, आशाराम, जैनपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ १५०।
७. श्री बाहुबलि पूजा, जिनेश्वरदास, जैनपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ १७२।

अतिशय क्षेत्र रियासत मैसूर के हासन जिले में चन्द्ररायपट्टन नगर से छह मील पर है। यहाँ पर श्री बाहुबली स्वामी की ५७ फीट ऊँची विश्व की अद्वितीय विशालकाय प्रतिमा है।[1]

हस्तिनापुर (श्रीविष्णुकुमारमहामुनिपूजा)[2]— उत्तर प्रदेश में मेरठ के मवाना से बाइस मील दूर हस्तिनापुर अतिशय क्षेत्र स्थित है। यह तीर्थ वह स्थान है जहाँ इस युग के आदि में दानतीर्थ का अवतरण हुआ था। आदि तीर्थंकर ऋषभ देव को इक्षुरस का आहार देकर राजा श्रेयांस ने दान की प्रथा चलाई थी। इसके उपरान्त यहाँ श्री शांतिनाथ, कुंथुनाथ और अरहनाथ नामक तीन तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म, तप, और ज्ञान कल्याणक हुए थे।[3] अकम्पनाचार्यादि सात सौ मुनियों ने इस स्थल पर उपसर्ग सहन किये थे।[4]

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उल्लिखित नगर तथा तीर्थों के प्रयोग का आधार अतिशय अथवा सिद्ध सम्पन्नता ही रही है। आज भी इन सभी क्षेत्रों में बने भव्य मंदिरों में चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ विराजमान हैं। जिनसे प्राचीन भारत का इतिहास, कला तथा संस्कृति समाविष्ट है।

———

१. जैन तीर्थ और उनकी यात्रा, पृष्ठ ४९।
२. श्री विष्णुकुमार महामुनिपूजा, रघुसुत, जैनपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ १७३।
३. जैन तीर्थ और उनकी यात्रा, पृष्ठ २७।
४. श्री रक्षाबन्धनपूजा, रघुसुत, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ३६२।

वेशभूषा, आभूषण और सौन्दर्य-प्रसाधन

पूजाकाव्य में अनेक आभूषणों एवं विविध वस्त्रों का प्रयोग हुआ है। इन आभूषणों में अधिकांश इस प्रकार के हैं जो धातु निर्मित हैं, कुछ पुष्पादि विनिर्मित हैं, यहाँ हम वस्त्र, आभूषण तथा सौन्दर्य प्रसाधनों की संक्षेप में चर्चा करेंगे।

ध्वजा—पताका या झंडा को ध्वजा कहते हैं। सेना, रथ, देवता आदि का चिन्हभूत स्वरूप ध्वजा है। जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में ध्वजा का प्रयोग चिन्ह के रूप में उन्नीसवीं शताब्दी के पूजा कवि कमलनयन द्वारा प्रणीत 'श्री पंचकल्याणक पूजा पाठ' नामक पूजा में हुआ है।[1]

लंगोटी—लंगोटी कमर पर बांधने का वस्त्र विशेष है जिससे उपस्थ और नितंब प्रदेश आवृत रहा करते हैं। जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में अठारहवीं शती के पूजाकार द्यानतराय ने आकिंचन्य धर्म की व्याख्या करते हुए कहा है कि जिस प्रकार शरीर में फांस सालती है उसी प्रकार दिगम्बर मुनि के लिए लंगोटी की चाह भी दुःख देती है।[2]

वस्त्रों की भाँति विवेच्य काव्य में आभूषणों का उल्लेख मिलता है। अब यहाँ प्रयुक्त आभूषणों का अकारादि क्रम से अध्ययन करेंगे।

आरसी—यह अंगूठे में पहनने का आभूषण है। इसमें शीशा लगा रहता है। यह नीचे से खुल भी जाती है। इसके अन्दर महिलायें इत्र का फाया और होठ रंगने आदि की सामग्री रखा करती हैं। शीशा में नायिका अपना

---

१. पुनि ध्वजा भूमि पांचई पेखि। बरनन ताकों कछु करों लेष ॥
लघु दीरघ ध्वजा अनेक भांति। दशचिन्ह सहित सोभै सुपांति ॥
—श्री पंचकल्याणक पूजापाठ, कमलनयन, हस्तलिखित।

२. उत्तम आकिंचन गुण जानो, परिग्रह-चिन्ता दुख ही मानो।
फांस तनकसी तन में साले, चाह लगोटी की दुख भाले ॥
—श्री दशलक्षण धर्मपूजा, द्यानतराय, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ६७।

श्रृंगार और सलज्ज वातावरण में अपने प्रियतम का मुखमंडल भी देख सकती हैं।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में अठारवीं शती के पूजाकवि द्यानतराय द्वारा प्रणीत 'श्री दशलक्षण धर्मपूजा' नामक पूजा में आरसी आभूषण निर्मल दर्शन के लिए प्रयुक्त है।[1]

नूपुर—पैर की अंगुलियों में स्त्रीपयोगी गहना नूपुर है। इसे घुंघरू भी कहते हैं। इस गहने को पहन कर नृत्य किया जाता है। 'कृष्ण-दिवाणी' मीरा का तो यह प्रिय आभूषण था।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती के कवि वृंदावन[2] और बीसवीं शती के कवि जवाहरदास[3] ने पूजा-रचनाओं में नूपुर का प्रयोग किया है।

मुकुट—एक प्रसिद्ध शिरोभूषण जो प्रायः राजा आदि धारण किया करते हैं। पूजा काव्य में बीसवीं शती के पूजाकवि आशाराम ने 'श्रीसोनागिरि सिद्धक्षेत्र पूजा' नामक कृति में द्वार पर द्वारपाल अभ्यर्थनार्थ मुकुट लिए खड़ा हुआ उल्लिखित है।[4]

हार—सोना-चांदी या मोतियों आदि की माला जिसे कंठ में पहना जाता है, हार कहलाता है।

---

१. करिये सरल तिहुं जोग अपने, देख निरमल आरसी।
मुख करे जैसा लखे तैसा, कपट-प्रीति अंगारसी॥
—श्री दशलक्षण धर्मपूजा, द्यानतराय, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ६४।

२. दृम दृम दृम दृम बाजत मृदंग।
झन नन नन नन नन नूपुरंग॥
—श्री शांतिनाथजिनपूजा, वृंदावन, राजेशनित्यपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ ११५।

३. श्री अथसमुच्चय लघुपूजा, जवाहरदास, वृहज्जिनवाणीसंग्रह, पृष्ठ ४९६।

४. जिन मंदिर की वेदी विशाल, दरवाजे तीनों बहु सुढाल।
ता दरवाजे पर द्वारपाल, ले मुकुट खड़े अरु हाथमाल॥
—श्री सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पूजा, आशाराम, जैनपूजा पाठसंग्रह, पृष्ठ १५३।

विवेच्य काव्य में विभिन्न शताब्दियों में भिन्न संज्ञाओं के साथ यह आभूषण प्रयुक्त है। उन्नीसवीं शती के पूजाकार वृंदावन प्रणीत 'श्रीचन्द्रप्रभु जिनपूजा'[1] नामक कृति में हार संज्ञा के साथ तथा 'श्री शांतिनाथ जिनपूजा'[2] रचना में गुणों की रत्नमाला के रूप में यह आभूषण प्रयुक्त है। इस शती के अन्य कवि रामचन्द्र ने 'श्री चन्द्रप्रभु जिनपूजा'[3] में माला तथा 'श्री अनंतनाथ जिनपूजा'[4] में कुंद हार का पूजा-प्रसंग मे प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त कमलनयन रचित 'श्री पंचकल्याणक पूजापाठ' में 'माल' संज्ञा में हार गहना व्यवहृत है।[5]

---

१. जिन अंग सेत सित चमर ढार।
सित छत्र शीश गल-गुलक हार॥
—श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजा, वृंदावन, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ३३७।

२. मोक्ष हेतु तुम ही दयाल हो।
हे जिनेश! गुन रत्नमाल हो॥
—श्री शांतिनाथजिनपूजा, वृंदावन, राजेशनित्यपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ ११४।

३. पूरन आयु जु धाय, तबैं माला मुरझानी।
आरति तें तजि प्राण, कुसुम भव पाय अज्ञानी॥
—श्री चन्द्रप्रभुजिनपूजा, रामचन्द्र, राजेशनित्यपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ ९५।

४. स्वेत इन्दु कुन्द हार खंड ना अखित्तही।
दुति खंडकार पुंज धारिये पवित्तही॥
—श्री अनंतनाथजिनपूजा, रामचन्द्र, राजेशनित्यपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ १०५।

५. गल किंकिन हो माल वधीं सुविशाल सरिस रवि को करें।
शिर सोहे हो चालि चलत गज चालि मंदगति को धरें॥
—श्री पंचकल्याणक पूजापाठ, कमलनयन, हस्तलिखित।

बीसवीं शती के पूजा-कवि सेवक,[1] आशाराम,[2] नेम[3] और रघुसुत[4] द्वारा मुरझाना, हयमाला, मणिमाला और आनंद-माला नामक अभिप्राय से आभूषण का व्यवहार हुआ है।

वस्त्र एवं आभूषण की नाईं पूजाकाव्य में सौन्दर्य प्रसाधन का उल्लेख मिलता है। अब यहाँ हमें प्रयुक्त सौन्दर्य प्रसाधनों का अकारादि क्रम से अध्ययन करना अभीप्सित है।

अगर—यह सुगंधित पदार्थ है जो धूप, दशांग इत्यादि में पड़ता है। इसी से अगरबत्ती बनती है।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में अठारहवीं शती के पूजाकार द्यानतराय विरचित 'श्री पंचमेरु पूजा'[5], श्री सोलहकारण पूजा[6], श्री दशलक्षणधर्म पूजा[7] और श्री रत्नत्रय पूजा[8] नामक पूजाओं में अगर का व्यवहार पूजोपकरण के अर्थ में सुगंधित वातावरण बनाने के लिए हुआ है।

---

१. प्रभु इह विधि काल गमायके,
फिर माला गई मुरझाय हो।
—श्री आदिनाथ जिनपूजा, सेवक, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ९८।

२. जिन मंदिर की वेदी विशाल, दरवाजे तीनों वहु सु ढाल।
ता दरवाजे पर द्वारपाल, ले मुकुट खड़े अरु हाथ माल॥
—श्री सोनागिरिसिद्धक्षेत्रपूजा, आशाराम, जैनपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ १५३।

३. घट तूप छजें मणिमाल पाय।
घट धूम्र धूम दिग सर्व छाय॥
—श्री अकृत्रिम चैत्यालयपूजा, नेम, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ २५५।

४. मुनि दीन दयाला सब दुख टाला।
आनंद माला सुखकारी॥
—श्री विष्णुकुमारमहामुनिपूजा, रघुसुत, राजेशनित्यपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ २७१।

५. खेऊं अगर अमल अधिकाय।
—श्री पंचमेरु पूजा, द्यानतराय, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ५३।

६. श्री सोलहकारण पूजा, द्यानतराय, जैनपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ ६०।

७. श्री दशलक्षण धर्मपूजा, द्यानतराय, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ६३।

८. श्री रत्नत्रयपूजा, द्यानतराय, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ७०।

उन्नीसवीं शती के पूजा कवि वृंदावन ने सुगंध हेतु इस पदार्थ का प्रयोग 'श्री महावीर स्वामी पूजा' में किया है।[1] इस शती के अन्य कवि रामचन्द्र प्रणीत 'श्रीचन्द्रप्रभुजिनपूजा' नामक पूजा में अगर सुगंधि के लिए प्रयुक्त है।[2]

बीसवीं शती के पूजा-कवयिता सेवक[3] एवं हेमराज[4] ने सुगंध के लिए अगर का प्रयोग किया है।

कुंकुम—यह पदार्थ शरीर पर लेप करने के लिए प्रयोग किया जाता है। इससे शरीर कांतिमान एवं सुवासित हो जाता है। पूजाकाव्य में उन्नीसवीं शती के पूजाकार रामचन्द्र ने 'श्री अनंतनाथ जिनपूजा' में सुगंध एवं आलेपन के लिए कुंकुम का प्रयोग किया है।[5] बीसवीं शती के पूजाकवि कुंजिलाल प्रणीत 'श्री देवशास्त्र गुरुपूजा' नामक रचना में आलेपन अर्थ में 'कुंकुम' व्यवहृत है।[6]

कपूर—स्फटिक के रंग-रूप का एक गंध द्रव्य जो खुला रहने पर प्रायः उड़ जाता है।

विवेच्य काव्य में अठारहवीं शती के कविवर द्यानतराय ने 'श्री पंचमेरु पूजा'[7], श्री सोलहकारण पूजा[8], श्री दशलक्षण धर्मपूजा[9], श्री रत्नत्रय पूजा[10]

---

१. हरि चंदन अगर कपूर, चूर सुगंध करा।
—श्री महावीरस्वामी पूजा, वृंदावन, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १३४।

२. श्री चन्द्रप्रभु जिनपूजा, रामचंद्र, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ९२।

३. श्री आदिनाथ जिनपूजा, सेवक, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ९६।

४. श्री गुरुपूजा, हेमराज, बृहजिनवाणी संग्रह, पृष्ठ ३११।

५. कुंकुमादि चन्दनादि गंध शीत कारया।
—श्री अनंतनाथजिनपूजा, रामचन्द्र, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १०४।

६. श्रीदेवशास्त्रगुरुपूजा, कुंजिलाल, नित्यनियमविशेषपूजनसंग्रह, पृष्ठ ११३।

७. जल केशर कपूर मिलाय।
—श्री पंचमेरुपूजा, द्यानतराय, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ५२।

८. श्री सोलह कारण पूजा, द्यानतराय, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ५९।

९. श्री दशलक्षणधर्मपूजा, द्यानतराय, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ६३।

१०. श्री रत्नत्रयपूजा, द्यानतराय, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ७०।

और 'श्री सरस्वती पूजा'[१] में सौरभ तथा अघ्र्य-सामग्री के रूप में कपूर पदार्थ व्यवहृत है।

उन्नीसवीं शती के पूजाकार वृंदावन विरचित 'श्री शांतिनाथ जिनपूजा'[२] में तथा कविवर बख्तावर की 'श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा'[३] में सुगंध अर्थ में कपूर पदार्थ प्रयुक्त है। बीसवीं शती के कवि रविमल की 'श्री तीस चौबीसी पूजा' नामक कृति में कपूर का प्रयोग परिलक्षित है।[४]

केवड़ा—यह सुगन्धित द्रव्य पदार्थ है। इसकी सुगन्ध विशेष प्रसिद्ध है। जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती के पूजा रचयिता बख्तावर ने 'श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा' नामक पूजा में केवड़ा पूजा-सामग्री के लिए प्रयोग किया है।[५] बीसवीं शती के कवि भगवानदास विरचित 'श्री तत्वार्थसूत्रपूजा' में सुगंध अर्थ में केवड़ा प्रयुक्त है।[६]

केशर—केशर एक विशेष फूल का सींका है जो पीलापन लिये लाल रंग का और सौरभयुक्त पदार्थ है।

पूजाकाव्य में अठारहवीं शती से केशर के अभिदर्शन होते हैं। इस शती के कविवर द्यानतराय प्रणीत 'श्री पंचमेरु पूजा[७], श्रीदशलक्षणधर्मपूजा[८],

---

१. श्री सरस्वती पूजा, द्यानतराय, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ३७५।

२. श्री शांतिनाथ जिनपूजा, वृंदावन, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ११२।

३. वातिका कपूर वार मोह-ध्वांत को हरूं।
—श्रीपार्श्वनाथजिनपूजा, बख्तावररत्न, ज्ञानपीठपूजांजलि, पृष्ठ ३७३।

४. सुरभि जुत चंदन लायो, संग कपूर घसवायो।
—श्री तीस चौबीसी पूजा, रविमल, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ २४५।

५. केवड़ा गुलाब और केतकी चुनाइये।
—श्री पार्श्वनाथजिनपूजा, बख्तावररत्न, ज्ञानपीठपूजांजलि, पृष्ठ ३७२।

६. श्री तत्वार्थ सूत्र पूजा, भगवानदास, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ४१०।

७. जल केशर करपूर मिलाय, गंध सों पूजों श्री जिनराय।
—श्री पंचमेरुपूजा, द्यानतराय, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ५२।

८. श्री दशलक्षण धर्मपूजा, द्यानतराय, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ६२।

श्री रत्नत्रयपूजा[1] और 'श्री सरस्वती पूजा'[2] नामक पूजा रचनाओं में केशर अर्घ्य-सामग्री के लिए प्रयुक्त है।

उन्नीसवीं शती के पूजा कवि वृंदावन ने 'श्री महावीरस्वामी पूजा' नामक पूजाकृति में केशर का व्यवहार शीतलता प्रदान करने के लिए किया है।[3] बीसवीं शती के पूजाप्रणेता आशाराम[4] और दौलतराम[5] द्वारा पूजाकृतियों में क्रमशः दाह निकन्दन के लिए एवं तपन के लिए केशर का प्रयोग द्रष्टव्य है।

घनसार—पूजाकाव्य में 'घनसार' का प्रयोग सामग्री सन्दर्भ में उन्नीसवीं शती के कवि कमलनयन प्रणीत 'श्री पंचकल्याणक पूजापाठ' नामक रचना में हुआ है।[6] बीसवीं शती के कविवर सेवक ने 'श्री अनंतव्रत पूजा' कृति में घनसार का प्रयोग सुगन्धित द्रव्य के लिए किया है।[7]

चंदन—चंदन एक प्रसिद्ध वृक्ष जिसकी लकड़ी प्रगाढ़ गन्धयुक्त होती है। साहित्य में चन्दन का प्रयोग अलंकार, सौन्दर्य प्रसाधन में आलेपन और सिंचन तथा नाम परिगणन के उद्देश्य से हुआ है। विवेच्य काव्य में अठारहवीं

---

१. श्री रत्नत्रयपूजा, द्यानतराय, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ७०।

२. श्री सरस्वती पूजा, द्यानतराय, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ३८५।

३. मलयागिरि चंदनसार, केसर संग घसा।
प्रभुभव आताप निवार पूजत हिय हुलसा॥
—श्री महावीर स्वामी पूजा, वृंदावन, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १३३।

४. केसर आदि कपूर मिले मलयागिरि चन्दन।
परिमल अधिकी तास और सब दाह निकंदन॥
—श्री सोनागिरिसिद्धक्षेत्रपूजा, आशाराम, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १५०।

५. श्री चम्पापुर सिद्धक्षेत्र पूजा, दौलतराम, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १३८।

६. मलयागिरि चंदन घन कुमकुम अरु घनसार मिलाय।
—श्री पंचकल्याणक पूजापाठ, कमलनयन, हस्तलिखित।

७. चन्दन अगर घनसार आदि, सुगन्ध द्रव्य घसायके।
—श्री अनतव्रत पूजा, सेवक, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १६६।

शती के कवि द्यानतराय ने 'श्री बीस तीर्थंकर पूजा'[1], श्री सोलहकारण पूजा[2], श्री बृहत्सिद्ध चक्रपूजा[3] और श्री सरस्वती पूजा[4] नामक पूजा रचनाओं में सुवासित करने और तपन मिटाने अथवा शीतलता प्रदान करने के लिए चंदन का प्रयोग उल्लेखनीय है।

उन्नीसवीं शताब्दी के कवि वृंदावन[5], मनरंगलाल[6], रामचन्द्र[7], बख्तावररत्न[8], कमलनयन[9] और कवि मल्लजी[10] ने उक्त आशय के साथ चन्दन का परम्परानुमोदित प्रयोग किया है। बीसवीं शती के पूजाकारों—रविमल[11], सेवक[12], भविलालजू[13], जिनेश्वरदास[14], दौलतराम[15], कुंजिलाल[16]

---

१. श्री बीस तीर्थंकर पूजा, द्यानतराय, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ३३।
२. श्री सोलहकारण पूजा, द्यानतराय, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ५६।
३. श्री बृहत्सिद्धचक्रपूजाभाषा, द्यानतराय, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ २३६।
४. कपूर मंगाया, चंदन आया, केशर लाया, रंगभरी।
—श्री सरस्वती पूजा, द्यानतराय, राजेशनित्यपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ ३७५।
५. मलयागिर कपूर चन्दन घसि, केसर रंग मिलाय।
—श्री पद्मप्रभुजिनपूजा, वृंदावन, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ८२।
६. श्री शीतलनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ९८।
७. श्री गिरनार सिद्धक्षेत्र पूजा, रामचन्द्र, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १४२।
८. श्री कुंथुनाथ जिनपूजा, बख्तावर रत्न, ज्ञानपीठपूजांजलि, पृष्ठ ५४२।
९. बावन चंदन दाह निकंदन अरु कपूर मिलावो।
—श्री पंचकल्याणक पूजापाठ, कमलनयन, हस्तलिखित।
१०. श्री क्षमावाणी पूजा, मल्लजी, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ४०३।
११. श्री तीस चौबीसी पूजा, रविमल, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ २४५।
१२. श्री अनंतव्रत पूजा, सेवक, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ २६६।
१३. श्री सिद्धपूजा भाषा, भविलालजू, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ७२।
१४. श्री बाहुबलिस्वामीपूजा, जिनेश्वरदास, जैनपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ १६९।
१५. श्री पावापुर सिद्ध क्षेत्रपूजा, दौलतराम, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १४७।
१६. श्री भगवान महावीर स्वामी पूजा, कुंजिलाल, नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, पृष्ठ ४१।

हेमराज[1], जवाहरलाल[2], आशाराम[3], हीराचंद[4], नेम[5], रघुसुत[6], दीपचंद[7], युगलकिशोर 'युगल'[8] ने चंदन का उल्लेख उक्त आशय के साथ किया है।

दर्पण दर्पण द्वारा स्व-पर बिम्ब प्रतिबिम्बित हुआ करता है। जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में अठारहवीं शती के कवि द्यानतराय विरचित 'श्री बृहत् सिद्धचक्र पूजा भाषा'[9] एवं 'श्री रत्नत्रयपूजा'[10] नामक कृतियों में इसी उद्देश्य से दर्पण का प्रयोग किया है।

उन्नीसवीं शती के पूजाकवि वृंदावन की पूजा रचना 'श्री चन्द्रप्रभु जिनपूजा' में दर्पण उल्लिखित है।[11] बीसवीं शती के कुंजीलाल ने 'श्री भगवान महावीर स्वामी पूजा नामक पूजा में दर्पण का व्यवहार सादृश्य मूलक अभिव्यंजना के लिए किया है।[12]

---

१. श्री गुरुपूजा, हेमराज, बृहज्जिनवाणी संग्रह, पृष्ठ ३१०।
२. पयसों घसि मलयागिरि चंदन लाइये।
—श्री सम्मेदाचल पूजा, जवाहरलाल, बृहज्जिनवाणी संग्रह, पृष्ठ ४७०।
३. श्री सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पूजा, आशाराम, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १५०।
४. श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर समुच्चयपूजा, हीराचंद, नित्यनियम विशेषपूजन संग्रह, पृष्ठ ७२।
५. श्री अकृत्रिम चैत्यालय पूजा, नेम, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ २५१।
६. श्री रक्षाबंधन पूजा, रघुसुत, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ३६३।
७. श्री बाहुबली पूजा, दीपचंद, नित्यनियमविशेषपूजनसंग्रह, पृष्ठ ६३।
८. श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, युगल किशोर 'युगल', जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ २७।
९. जा पद मांहि सर्वपद छाजे,
ज्यों दर्पण प्रतिबिंब विराजे॥
—श्री बृहत् सिद्धचक्र पूजा भाषा, द्यानतराय, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ २४४।
१०. ये आठ भेद करम उछेदक,
ज्ञान दर्पन देखना।
—श्री रत्नत्रयपूजा, द्यानतराय, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ७३।
११. श्री चन्द्रप्रभु जिनपूजा, वृंदावन, ज्ञानपीठ पूजांजलि पृष्ठ ३३८।
१२. श्री भगवान महावीर स्वामी पूजा, कुंजिलाल, नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, पृष्ठ ४५।

धूप—देवता के आघ्रापण के लिए या सुगंध के निमित्त जलाये गये गुग्गुल आदि का धुंआ ही धूप है। गुग्गुल आदि गंध द्रव्य के पांच भेद हैं—

१. निर्यास २, चूर्ण ३. गंध

४. काष्ठ ५. कृत्रिम

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में धूप सुगंध के अर्थ में व्यवहृत है। अठारहवीं शती के कविवर द्यानतराय ने 'श्री बीस तीर्थंकर पूजा' नामक पूजा में धूप का उल्लेख किया है।[2] उन्नीसवीं शती के कवि बख्तावर ने 'श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा' में धूप का व्यवहार किया है।[3] बीसवीं शती के पूजाकार कुंजिलाल विरचित 'श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा' में धूप व्यवहृत है।[4]

शृंगार-प्रसाधन के अतिरिक्त अब हम यहाँ मुनि, नृपादि द्वारा व्यवहृत आवश्यक उपकरणों पर चर्चा करेंगे।

कुंभ—माटी-विनिर्मित घड़ा कुंभ कहलाता है। इसका उपयोग जल भरने के लिए होता है। पूजा काव्य में अठारहवीं शती के कवि द्यानतराय विरचित 'श्री बृहत् सिद्धचक्र पूजा भाषा' नामक कृति में घड़ा संज्ञा के साथ

---

१. बृहत् हिन्दी शब्द कोश, सम्पा० कालिकाप्रसाद आदि, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, तृतीय संस्करण संवत् २०२०, पृष्ठ ६७३।

२. धूप अनुपम खेवतें दुःख जलें निरधार।
-श्री बीस तीर्थंकर पूजा, द्यानतराय, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ३४।

३. धूप गंध लेय के नु अग्नि संग जारिये।
श्री पार्श्वनाथजिनपूजा, बख्तावररत्न, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ११९।

४. धूप संग अग्नि मांहि जार करे क्षार है, क्षार क्षार है।
श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा. कुंजिलाल, नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, पृष्ठ ३७।

यह उपकरण प्रयुक्त है।[1] उन्नीसवीं शती के कवि मनरंगलाल ने 'श्री शीतलनाथ जिनपूजा'[2] में, वृंदावन ने 'श्री वासुपूज्य जिनपूजा'[3] में और कमलनयन ने 'श्री पंचकल्याणक पूजापाठ'[4] नामक रचनाओं में इस उपकरण का व्यवहार किया है।

बीसवीं शती के कवि आशाराम की 'श्री सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पूजा'[5] में, दौलतराम की 'श्री चम्पापुर सिद्धक्षेत्र पूजा[6] में, भगवानदास की 'श्री तत्वार्थ सूत्रपूजा'[7] में कुंभ का प्रयोग परम्परानुमोदित अर्थ में हुआ है।

कटोरा—कांसे आदि विनिर्मित्त प्याले का नाम ही कटोरा है। विवेच्य काव्य में अठारहवीं शती के कविवर द्यानतराय ने 'श्री बृहत् सिद्ध चक्रपूजा, में इस उपकरण का उल्लेख किया है।[8]

उन्नीसवी शती के कविवर मनरंगलाल 'श्री शीतलनाथ जिनपूजा[9] में

---

१ ज्यों कुम्हार छोटो बड़ो,
भांड़ों घड़ा जनेय।
श्री वृहत् सिद्धचक्र पूजाभाषा, द्यानतराय, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ २४२।

२. श्री शीतलनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, राजेश नित्यपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ९७।

३. श्री वासुपूज्य जिनपूजा, वृन्दावन, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ३४६।

४. कनक कुंभ भरि ल्याय कें।
श्री पंचकल्याणक पूजापाठ, कमलनयन, हस्तलिखित।

५. धूप कुम्भ आगें धरों।
श्री सोनागिर क्षेत्र पूजा, आशाराम, जैनपूजा पाठ संग्रह, पृष्ठ १५२ :

६. श्री चम्पापुर सिद्धक्षेत्र पूजा दौलतराम, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १३८।

७. श्री तत्वार्थसूत्र पूजा, भगवानदास, जैनपूजा पाठ संग्रह, पृष्ठ ४१०।

८. पुन्नी कंचन थार कटोरा
पार्यी के कर प्याला कोरा।
श्री वृहत्सिद्धचक्र पूजा भाषा, द्यानतराय, जैन पूजापाठ संग्रह, पृ० २३९।

९. श्री शीतलनाथजिनपूजा, मनरंगलाल, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ९८।

कटोरा संज्ञा के साथ तथा 'श्री सप्तर्षि पूजा'[1] में कटोरा संज्ञा के साथ इस उपकरण का प्रयोग किया है।

करपात्र—कर कहते हैं—हाथ और पात्र को बर्तन, इस प्रकार हाथ ही जिसके पात्र हैं, करपात्र है। 'पाणिपात्रो दिगम्बरः' के अनुसार दिगम्बर जैनमुनिजन कर-पात्र में ही आहार लिया करते हैं। पूजाकाव्य में उन्नीसवीं शती के कवि कमलनयन ने इस पात्र का उल्लेख 'श्री पंचकल्याणक पूजा पाठ' नामक रचना में किया है।[2]

चमर—इसे चंवर भी कहते हैं तथा किसी-किसी स्थान पर चामर संज्ञा से भी यह व्यवहृत है। यह जिस ओर से पकड़ा जाता है 'मूठ' लगी होती है तथा दूसरी ओर बाल लगे होते हैं। इसमें लगे बाल प्रायशः श्वेत रंग के ही होते हैं। यह राजा-महाराजा साधु संत या धर्मग्रन्थ के ऊपर ढुलाया जाता है।

पूजाकाव्य में चमर का प्रयोग उपकरण के रूप में हुआ है। उन्नीसवींशती के पूजा रचयिता वृंदावन ने 'श्री शांतिनाथ जिनपूजा'[3] एवं 'श्रीचन्द्रप्रभ जिन पूजा'[4] नामक रचनाओं में चमर का प्रयोग ढुलाने के अभिप्राय से किया है।

बीसवीं शती के कविवर नेम[5], दौलतराम[6], जिनेश्वरदास[7], पूरणमल[8] और मुन्नालाल[9] ने चंवर, चामर और चमर संज्ञाओं के साथ इस उपकरण का परम्परानुमोदित प्रयोग किया है।

---

१. श्री सप्तर्षिपूजा, मनरंगलाल, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ३६३।

२. नीरस भोजन लघु एक बार।
ठाड़े करपात्र करें आहार॥
श्री पंचकल्याणक पूजापाठ, कमलनयन, हस्तलिखित।

३. सिर चमर अमर ढारत अपार।
श्री शांतिनाथ जिनपूजा, वृन्दावन, राजेशनित्यपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ११५।

४. श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजा, वृन्दावन, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ३३७।

५. पुनि चंवर ढुरत चौसठि लखाय।
श्री अकृत्रिम चैत्यालय पूजा, नेम, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ २५५।

६. श्री पावापुर सिद्धक्षेत्र पूजा, दौलतराम, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १४६।

७. श्री नेमिनाथ जिनपूजा, जिनेश्वरदास, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ११४।

८. श्री चांदन गांव महावीर स्वामी पूजा, पूरणमल, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १६४।

९. श्री खण्डगिरि क्षेत्रपूजा, मुन्नालाल, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १५६।

छत्र—यह राजाओं या पुन्यतिथि मुनियों के ऊपर लगायी जाने वाली राज-चिन्ह रूप छतरी है। आजकल बारातों में दूल्हा के ऊपर लगते हुए देखने में आता है। पूजाकाव्य में प्रतिष्ठा एवं वैभव सामग्री की भांति छत्र उल्लिखित है। अठारहवीं शती के पूजाकवि द्यानतराय में 'श्री वृहत् सिद्धचक्र पूजा भाषा' में छत्र का प्रयोग इसी अर्थ में किया है।[1]

उन्नीसवीं शती के पूजाकार वृंदावन[2], रामचंद्र[3] और कमलनयन[4] की पूजा रचनाओं में छत्र उपकरण उल्लिखित है।

बीसवीं शती के पूजा प्रणेता नेम[5], जिनेश्वरदास[6] और पूरणमल[7] की पूजा रचनाओं में छत्र का व्यवहार परम्परा के अनुरूप ही हुआ है।

झारी—पानी परसने हाथ-मुंह धुलाने आदि के लिए काम में लाया जाने वाला टोटीदार बरतन वस्तुत: 'झारी' कहलाता है। पूजाकाव्य में उन्नीसवीं शती से झारी उपकरण का प्रयोग इसी अर्थ में मिलता है। इस शती के पूजाकवि रामचन्द्र और कमलनयन ने क्रमश: 'झारी रतन'[8] 'रतन जड़ित कंचन झारी'[9] का उपयोग काव्य कृतियों में बखूबी किया है।

---

१. पुन्नी के शिर छत्र फरावे,
पापी शीश बोझ ले धावै।
—श्री वृहत् सिद्धचक्र पूजाभाषा, द्यानतराय, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ २३६।

२. श्री चन्द्रप्रभु जिनपूजा, वृंदावन, ज्ञानपीठ पूजांजलि पृष्ठ ३३७।

३. श्री गिरनार सिद्धक्षेत्र पूजा, रामचन्द्र, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १४८।

४. छत्र तीन राजें जिन शीश।
—श्री पंचकल्याणक पूजापाठ, कमलनयन, हस्तलिखित।

५. श्री अकृत्रिम चैत्यालयपूजा, नेम, जैन पूजापाठ सग्रह, पृष्ठ २५५।

६. तीन छत्र सिर ऊपर राजे चौसठि चामर सार।
श्री नेमिनाथ जिनपूजा, जिनेश्वरदास, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ११४।

७. कोई छत्र चंवर के करत दान।
—श्री चांदनगांव महावीर स्वामीपूजा, पूरणमल, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १६४।

८. सोहन झारी रतन जड़िये मांहि गंगा जल भरो।
श्री सम्मेद शिखर पूजा, रामचन्द्र, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १२६।

९. रतन जड़ित कंचनमय झारी सुरसरि नीर भराय।
श्री पंचकल्याणक पूजापाठ, कमलनयन, हस्तलिखित।

बीसवीं शती के कवि सेवक[1], दौलतराम[2] और पूरणमल[3] ने झारी का प्रयोग इसी रूप में किया है।

थाल—कांसे या पीतल की थाली की शक्ल का बड़ा बरतन वस्तुतः थाल कहलाता है। पूजाकाव्य में थाली का भी प्रयोग हुआ है। पूजाकाव्य में अठारहवीं शती के पूजाकवि द्यानतराय ने 'श्री बृहत् सिद्धचक्र पूजाभाषा' में कंचन थार का प्रयोग किया है।[4]

उन्नीसवीं शती में वृंदावन द्वारा विरचित 'श्री शांतिनाथ जिनपूजा'[5] और श्री पदमप्रभजिन पूजा[6] नामक पूजाओं में क्रमशः कंचन-थारी, और कनक-थार संज्ञाओं के साथ यह उपकरण व्यवहृत है।

बीसवीं शती के पूजाकार नेम विरचित 'श्री अकृत्रिम चैत्यालय पूजा'[7] में कंचन थाली संज्ञा में, आशाराम प्रणीत' श्री सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पूजा[8] में हेमथारन संज्ञा में, सेवक रचित 'श्री आदिनाथ जिनपूजा[9]' में थार संज्ञा

---

१. श्री आदिनाथ जिनपूजा, सेवक, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ९५।

२. श्री पावापुर सिद्धक्षेत्र पूजा, दौलतराम, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १४७।

३. नित पूजन करत तुम्हार कर में ले झारी।
—श्री चांदनगांव महावीर स्वामी पूजा, पूरणमल, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १६१।

४. पुन्नी कंचन थार कटोरा,
पापी के कर प्याला कोरा।
—श्री बृहत्सिद्धचक्र पूजाभाषा, द्यानतराय, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ २३९।

५. श्री शांतिनाथ जिनपूजा, वृंदावन, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १११।

६. कनक थार भरि लाय।
—श्री पदमप्रभु जिनपूजा, वृंदावन, राजेशनित्यपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ ८३।

७. श्री अकृत्रिम चैत्यालय पूजा, नेम, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ २५१।

८. कनक कटोरी मांहि हेम थारन में धर के।
—श्री सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पूजा, आशाराम, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १५०।

९. थाल भराऊं क्षुधा नशाऊं।
—श्री आदिनाथ जिनपूजा, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ९६।

में तथा भगवानदास लिखित 'श्री तत्वार्थसूत्र पूजा'[1] में थाल संज्ञा में यह उपकरण उल्लिखित है।

धूपायन—धूपद्रव्य के खेने वाले पात्र को धूपायन कहते हैं। पूजाकाव्य में बीसवीं शती के पूजा प्रणेता रघुसुत ने 'श्री रक्षाबंधनपूजा' में इस पात्र का उल्लेख किया है।[2]

प्याला—पेय पदार्थ के लिए छोटा बर्तन विशेष। पूजा-काव्य में अठारहवीं शती के कवि द्यानतराय रचित 'श्री बृहत् सिद्धचक्र पूजाभाषा' में प्याला का प्रयोग इसी अर्थ में हुआ है।[3] बीसवीं शती के पूजा रचयिता हीराचन्द्र ने श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर समुच्चय पूजा' में प्याले का व्यवहार किया है।[4]

भामण्डल—भावानां मण्डलम भामण्डलम्। भामण्डल का अर्थ किरणों की मेखला है। जैनधर्म में भामण्डल अरहन्त के महिमामयी चिह्नों में से एक चिह्न है। ये महिमामयी चिह्न-अशोक वृक्ष, सिंहासन, छत्र, भामंडल, दिव्यध्वनि, पुष्पवृष्टि, चौसठ चमर ढरना तथा दुंदुभी बजाना-नामक प्रातहार्य कहलाते हैं।

बीसवीं शती में पूजाकवि नेम द्वारा प्रणीत 'श्री अकृत्रिम चैत्यालय पूजा' नामक रचना में भामंडल का प्रयोग इसी अर्थ में हुआ है।[5]

रकाबी—रकाबी को तश्तरी कहते हैं। चीनी मिट्टी अथवा धातु वनिर्मित पात्र रकाबी अथवा तस्तरी कहलाता है। जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में

---

१. श्री तत्वार्थ सूत्रपूजा, भगवानदास, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ३६४।

२. धूप सुगन्ध सुवासित लेकर धूपायन में खेऊं।
—श्री रक्षाबंधन पूजा, रघुसुत, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ३६४।

३. पापी के घर प्याला कोरा।
—श्री बृहत्सिद्धचक्र पूजाभाषा, द्यानतराय, जैन पूजा पाठ संग्रह, पृष्ठ २३६।

४. पावन चंदन कदली नंदन, घसि प्यालो भर लावो।
—श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर समुच्चय पूजा, हीराचन्द, नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, पृष्ठ ७२।

५. भामण्डल की छवि कौन गाय।
श्री अकृत्रिम चैत्यालय पूजा, नेम, जैन पूजापाठसंग्रह, पृष्ठ २५५।

बीसवीं शती के पूजाकार नेम विरचित 'श्री अकृत्रिमचैत्यालय पूजा'[१] में एवं जिनेश्वर प्रणीत 'श्री नेमिनाथ जिनपूजा'[२] में एवं दौलतराम लिखित 'श्री पावापुर सिद्धक्षेत्र पूजा'[३] में इस उपकरण के अभिदर्शन होते हैं।

शिविका—डोली एवं पालकी को शिविका कहते हैं। विवेच्य काव्य में उन्नीसवीं शती के पूजा कवयिता वृंदावन ने 'श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजा'[४] में, बख्तावररत्न ने 'श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा'[५] में शिविका का व्यवहार पालकी अर्थ में किया है बीसवीं शती के पूजा कवि दौलतराम ने 'श्री पावापुर सिद्ध-क्षेत्र पूजा'[६] नामक कृति में शिविका का प्रयोग परम्परा के अनुरूप किया है।

सिंहासन—सिंह मुखी आसन को सिंहासन कहते हैं। राजा, महाराजा, प्रतिष्ठित एवं पूज्यगण सिंहासन पर आसीन होते हैं। जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती के कवयिता कमलनयन विरचित 'श्री पंचकल्याणक पूजा-पाठ' में सिंहासन का प्रयोग इसी अर्थ में हुआ है।[७]

उपर्यङ्कित अध्ययन से स्पष्ट है कि विवेच्य काव्य में विविध-वस्त्रों, अनेक-आभूषणों, सौन्दर्य-प्रसाधनों तथा नाना उपकरणों का प्रयोग हुआ है।

जैन-पूजा-काव्य में उपास्य-देवता का स्वरूप वीतरागमय है अस्तु यहां वस्त्रों के धारण करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। वे तो दिगम्बर हुआ करते हैं। साधु के अन्तर्गत क्षुल्लक-ऐलक कोटि के साधुओं के लिए लंगोटी

---

१. धरि कनक रकेबी।
—श्री अकृत्रिम चैत्यालय पूजा, नेम, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ २५१।

२. श्री नेमिनाथ जिनपूजा, जिनेश्वरदास, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ११२।

३. श्री पावापुर सिद्ध क्षेत्रपूजा, दौलतराम, जैन पूजापाठसंग्रह, पृष्ठ १४७।

४. श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजा, वृंदावन, ज्ञानपीठपूजांजलि, पृष्ठ ३२७।

५. धरी शिविका निजकंध मनोग।
—श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ३७६।

६. श्री पावापुर सिद्धक्षेत्र पूजा, दौलतराम, जैनपूजापाठपूजांजलि पृष्ठ १४९।

७. हरि सिंहासन करि थिति प्रवीन।
तब माततात अभिषेक कीन॥
—श्री पंचकल्याणक पूजापाठ, कमलनयन, हस्तलिखित।

धारण करने का विधान है। इस प्रकार वस्त्र विवेचन में मात्र ध्वजा और लंगोटी का उल्लेख हुआ है।

भक्त्यात्मक-अभिव्यंजना के लिए आरसी, नूपुर, मुकुट तथा हार नामक आभूषणों का सफलतापूर्वक प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार सौन्दर्य प्रसाधनों में वातावरण को सुगंधित करने के लिए अगर, घनसार, कुमकुम आलेपन के लिए केवड़ा, केशव, चंदन अर्घ्य सामग्री और ताप-शांत करने के लिए, दर्पण प्रति-विम्ब दर्शन के लिए प्रस्तुत काव्य में व्यवहृत हैं।

कुम्भ, कटोरा, भारी, चमर, छत्र, थाल, धूपायन, प्याला, भामंडल, रकावी, शिविका, सिंहासन आदि उपकरणों का पूजा-विधान सन्दर्भ में आव-श्यक प्रयोग हुआ है। इस प्रकार विवेच्य काव्य में एक ओर जहां इन वस्तुओं का वर्णन हुआ है वहाँ दूसरी ओर पूजा-विधान में इन सभी वस्तुओं की उप-योगिता भी प्रमाणित हुई है।

वाद्‌य-यंत्र

जीवन में सुख दुःख की वृत्तियां अनादिकाल से चली आ रही हैं। इन वृत्तियों का विकास विभिन्न साधनों पर आधृत है। वाद्‌ययंत्र इन वृत्तियों को उद्दीप्त करने में सहायक हुए हैं। वस्तुतः अभिव्यक्ति के प्रस्तुतीकरण में वाद्‌ययंत्र महत्वपूर्ण बाह्‌य उपकरण हैं। काव्याभिव्यक्ति में हम आरम्भ से ही वाद्‌यों की महत्ता से परिचित होते आए हैं। वाद्‌य-यंत्रों ने हमारे जीवन के साधना और भक्तिपक्ष को सदैव बल प्रदान किया है।

स्थूल रूप से वाद्‌य-यंत्रों को हम चार भागों में विभक्त कर सकते हैं, यथा—

१. ताल वाद्‌य
२. तार वाद्‌य
३. खाल वाद्‌य
४. फूंक वाद्‌य

जैन-हिन्दी-पूजाकाव्य में उपर्यंकित चारों प्रकार के वाद्‌य यंत्रों का व्यवहार हुआ है। पूजा-काव्य में प्रयुक्त वाद्‌यों का अकारादि क्रम से वर्णन करना हमारा मूलाभिप्रेत है।

करताल

करताल एक ताल वाद्‌य है। ताल वाद्‌य उसे कहते हैं जिसमें ताल देने की क्षमता हो। इसे 'आधा साज' भी कहते हैं। करताल सामूहिक गान के अवसर पर प्रयोग में लाया जाता है। 'खड़ताल' इसी से बना है। यह निरन्तर एक ही लय की ताल देने वाला वाद्‌य है। इसका अधिकतर प्रयोग साधु-सन्त प्रायः अधिक करते हैं।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती के कविवर वृंदावन द्वारा 'श्री महावीर स्वामीपूजा' नामक पूजाकृति में यह वाद्‌य प्रयुक्त है।[1]

---

१. करताल विषै करताल धरे।
सुरताल विशाल जु नाद करें॥
—श्री महावीर स्वामीपूजा, वृंदावन, राजेशनित्य पूजापाठसंग्रह पृष्ठ १३८।

कलश—भक्ति में निमग्न भक्त कलश पर हाथ पीटने लगता है। कलश वस्तुतः ताल वाद्य है। यश अभिवर्द्धन के लिए कलश का प्रयोग जैन-पूजा-काव्य में हुआ है। उन्नीसवीं शती की 'श्री शांतिनाथ जिनपूजा' नामक पूजा-कृति में कलश का प्रयोग द्रष्टव्य है।[1]

कंसाल— कंसाल ताल वाद्य है। यह कांसा का बना हुआ होता है, इसे हाथों से बजाते हैं। जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती के कवि कमलनयन ने कंसाल वाद्य का व्यवहार किया है।[2]

खंजरी—खंजरी ताल वाद्य है। खंजरी या खंजड़ी डफली की भांति आकार में उससे छोटा एक वाद्य है। खंजरी एक ओर बकरी के चमड़े से मढ़ी होती है। भिक्षुक-जन इसका उपयोग अधिक करते हैं। चंग की भांति इसे बजाया जाता है।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती में खंजरी वाद्य 'श्री पंच-कल्याणक-पूजा-पाठ' नामक कृति में व्यंजित है।[3]

घंटा—घंटा ताल वाद्य है। घंटा कांसे का गोल पट्ट जिसे मुंगरी या हाथ से पीटकर पूजन में और समय सूचना के लिए बजाते हैं। कांसे का लंगरदार बाजा जो लंगर हिलाने से बजता है, घंटा कहलाता है। इस का प्रयोग प्रायः मंदिरों में होता है।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में घंटा का प्रचुर प्रयोग उन्नीसवीं शती में हुआ है। कविवर वृंदाबन द्वारा विरचित 'श्री शांतिनाथ जिनपूजा'[4] 'श्री महावीर

---

१. अथ घ घ घ घ घ घ धुनि होत घोर।
भ भ भ भ भ भ भ ध ध ध ध कलश शोर ॥
—श्रीशांतिनाथजिनपूजा, वृंदावन, राजेशनित्यपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ ११५।

२. चन्द्रोपक चामर घंटा तोरन घने।
झल्लरि ताल कंसाल करन उप सब बने ॥
—श्री पंचकल्याणक पूजापाठ- कमलनयन, हस्तलिखित।

३. सांगीत गीत गावें सुर गधर्व ताल देहिं भारी।
बीन मृदंग मुहचंग खंजरी बाजत है सुखकारी ॥
—श्री पंचकल्याणक पूजापाठ, कमलनयन, हस्तलिखित।

४. तन नन नन नन नन तनन तान।
घन घन नन घंटा करत ध्वान ॥
—श्री शांतिनाथ जिनपूजा, वृंदावन, राजेशनित्यपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ ११५।

स्वामी-पूजा'[1], कमलनयन प्रणीत 'श्री पंच-कल्याणक-पूजा-पाठ'[2] नामक पूजा रचनाओं में घंटा वाद्य व्यवहृत है।

बीसवीं शती के कवि कुंजिलाल[3] और जवाहरदास[4] द्वारा पूजाकाव्य में घंटा नामक वाद्ययंत्र का प्रयोग उल्लेखनीय है।

चंग—चंग एक खाल वाद्य है। यह एक गोलाकार तथा एक ओर से मढ़ा हुआ वाद्य है जो होली के अवसर पर बहुतशः बजाया जाता है। इसका एक ओर बकरे की खाल से मढ़ा होता है। यह रस्सी से मढ़ा जाता है। लेही से ऊपर खाल चिपका दी जाती है। इसे कंधे पर रखकर बजाया जाता है। इसे दाहिने हाथ से पकड़ कर उसी से चिमटी मारते है और बाएं हाथ से बजाते हैं। इस वाद्य पर धमाले गीत प्रायः चलते हैं। इस का प्रिय ताल 'कहरवा' है। चंगड़ी चंग से छोटी होती है।

चंग का प्रयोग भारतीय लोक-जीवन में प्रचुर प्रचलित है। बारहमासों में विशेष रूप से फाल्गुण और चैत्र मासों में इसका उल्लेख हुआ है।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में बीसवीं शती में यह वाद्य मुहचंग नाम से

---

१. घननं घननं घन घंट बजे।
दृमदं दृमदं मिरदंग सजे॥
—श्री महावीरस्वामीपूजा, वृंदावन, राजेशनित्य पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १३७।

२. चन्द्रोपक चामर घंटा तोरन घने।
झल्लरि ताल कंसाल करन उप सब बने॥
—श्री पंचकल्याणक पूजापाठ, कमलनयन, हस्तलिखित।

३. देवन घर घंटा बाजे, झाड़ शंखादिक गाजे।
इन्द्रासन हू कम्पाये, प्रगटे महरा— — — जा जी॥
सुखिया अतुल बलधारी, जनमे जिनरा — — — जा जी॥
—श्री भगवान महावीर स्वामी पूजा, कुंजिलाल, नित्यनियमविशेष पूजन संग्रह, पृष्ठ ४४।

४. दृम दृम दृमता बजे मृदंग।
घन घन घंट बजे मुहचंग॥
—श्रीअथसमुच्चयलघुपूजा, जवाहरदास, बृहज्जिनवाणीसंग्रह, पृष्ठ ४१६।

अभिहित है। इस शती के कवि आशाराम[1] और जवाहरदास[2] की पूजाकृतियों में चंगवाद्य के अभिदर्शन होते है।

झुनिया—झुनिया या झुनझुना काठ और टिन का बना हुआ तालवाद्य हैं जो हिलाने से 'झुनझुन' ध्वनि करता है, इसे 'इसे 'घुनघुना' भी कहते हैं।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में इस वाद्य का व्यवहार बीसवीं शती की 'श्री अथ समुच्चय-लघु-पूजा, रचना में हुआ है।[3]

ढोल—ढोल वाद्य है। यह एक लकड़ी का खोल होता है जिसके दोनों पार्श्वों में बकरी का चमड़ा मढ़ा होता है। इसे रस्सी से कसा भी जाता है जिससे इसकी आवाज में आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सके। इसकी ध्वनि बड़ी दूर तक जाती है।

लोकगीत गाते समय स्वतंत्र रूप से भी ढोल का प्रयोग किया जाता है। लोकनृत्य में इसका उपयोग उल्लिखित है। सामूहिक नृत्य एवं जन्मोत्सव, विवाह तथा अन्य मांगलिक अवसरों पर इसका प्रयोग प्रायः होता है। हिन्दी बारहमासा काव्य में भी होली प्रसंग पर ढोल वाद्य का वर्णन मिलता है।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में अठारहवीं शती के पूजाकवि द्यानतराय द्वारा

---

१. ता थेई थेई थेई बाजत सितार।
   मृदंग बीन मुहचंग सार॥
   तिनकी ध्वनि सुनि भवि होत प्रेम।
   जयकार करत नाचत सु एम॥
   —श्री सोनागिरिसिद्धक्षेत्रपूजा, आशाराम, जैनपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ १५४।

२. द्रम द्रम द्रमता बजे मृदंग।
   घन घन घंट बजे मुहचंग॥
   —श्रीअथसमुच्चयलघुपूजा, जवाहरदास, बृहजिनवाणी संग्रह, पृष्ठ ४९६।

३. झुन झुन झुन झुन झुनिया झुनै।
   सर सर सर सर सारंगी धुनै॥
   श्री अथ समुच्चय लघुपूजा, जवाहरदास, बृहजिनवाणीसंग्रह, पृष्ठ ४९६।

विरचित 'श्री नंदीश्वरद्वीप पूजा' नामक पूजाकृति में ढोल वाद्य उल्लिखित है।[1]

ताल—संगीत में नियम मात्राओं पर हाथों से ताली बजाना वस्तुतः ताल कहलाता है। इसका प्रयोग उत्सवों में स्त्री-पुरुष समवेतरूप से करते हैं। ताल वाद्य में इसे सम्मिलिति किया जा सकता है।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती के कवि कमलनयन प्रणीत 'श्री पंचकल्याणक पूजापाठ' नामक पूजाकाव्य कृति में ताल का शास्त्रीय रूप से प्रयोग हुआ है।[2]

तूर—तूर या तूरही फूंककर बजाने का एक पतले मुंह का बाजा होता है जो दूसरे सिरे की ओर क्रमशः चौड़ा होता जाता है।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती के कवि रामचन्द्र[3] और बीसवीं

---

१. चार दिशि चार अंजन गिरी राजहीं।
सहस चौरासिया एक दिश छाजहीं॥
ढोल सम गोल ऊपर तले सुंदरं।
भौन बावन्न प्रतिमा नमो सुखकरं॥
—श्री नंदीश्वरद्वीपपूजा, द्यानतराय, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १७३।

२. चन्द्रोपक चामर घंटा तोरन घने।
झल्लरि ताल कंसाल करन उप सब बने॥
जिन मंदिर में मंडप शोभा करि सही।
दीपक ज्योति प्रकाशक जग मग ह्वै रही॥
— श्री पंचकल्याणक पूजापाठ, कमलनयन, हस्तलिखित।

३. फिर पितु घर लाये जों नचि तूर वजाये जी।
लखि अंग नमायें मात पिता लये जी॥
तन हेम महा छवि जी, पंचास धनू रवि जी।
लाख तीस कहे कवि आयु भई सबै जी॥
—श्री अनंतनाथ जिनपूजा. रामचन्द्र, राजेशनित्यपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ १०८।

शती के कवि जवाहरदास[1] द्वारा पूजाकाव्य में इसका सफलता पूर्वक प्रयोग हुआ है।

दुंदुभि—दुंदुभि या नगाड़ा या डंका खाल वाद्य है। यह वाद्य एक ओर से मढ़ा होता है और लकड़ी की चोट से बजाया जाता है। दुंदुभि में लकड़ी द्वारा भयंकर चोटें पड़ा करती हैं। नौबत या नगाड़ा प्रायः एक से ही होते है। शादी-संस्कारों तथा नौटंकी-नाचों में यह अधिक बजाया जाता है। इसी की अपरात्री पर्याय 'नगाड़ी' कहलाती है।

दुंदुभि वाद्य का प्रयोग हिन्दी-साहित्य में बादलों की गर्जन के लिए सेनापति के अतिरिक्त अन्य अनेक कवियों ने किया है। दुंदुभि के प्रयोग की परम्परा बारहमासा काव्य रूप में भी परिलक्षित है।[2]

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती के कवि वृंदावन प्रणीत 'श्री चन्द्रप्रभ जिन पूजा' नामक पूजाकृति में दुंदुभि और नगाड़े शब्द उल्लिखित हैं।[3]

---

१. मुरली वीन वजे धुनि मिष्ट।
पटहा तूर सुरान्वित पुष्ट॥
सब सुरगण थुति गावत सार।
सुरगण नाचत बहुत पुकार॥
—श्री अथ समुच्चयलघुपूजा, जवाहरदास, बृहज्जिनवाणी संग्रह, पृष्ठ ४९६।

२. हिन्दी का बारहमासा साहित्य : उसका इतिहास तथा अध्ययन, चतुर्थ अध्याय, डॉ० महेन्द्रसागर प्रचंडिया, पृष्ठ ३३८, पैराग्राफ ४२७।

३. दुंदुभि नित बाजत मधुर सार।
मनु करत जीत को है नगार॥
शिर छत्र फिरैं त्रय श्वेत वर्ण।
मनु रतन तीन त्रय ताप हर्ण॥
—श्री चन्द्रप्रभु जिनपूजा, वृंदावन, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ३३८।

बीसवीं शती में जिनेश्वरदास[1] और नेम[2] ने अपनी पूजा काव्य कृतियों में दुंदुभि वाद्य का व्यवहार किया है।

निसाण—निसाण या निसान को तम्वूरा और चौतारा भी कहा जाता है। इसमें चार तार होते हैं। यह तानपूरा अथवा सितारा से मिलता-जुलता है। यह लकड़ी का बना होता है। बाएं हाथ से इसे पकड़ कर दाएं हाथ से बजाया जाता है। जोगीजन इस पर ही प्रायः भजन गाते हैं। यह तार वाद्य यंत्र है।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती के कवि कमलनयन रचित 'श्री पंचकल्याणक पूजापाठ' नामक पूजाकृति में निसाण वाद्ययंत्र का प्रयोग द्रष्टव्य है।[3]

नुपुर—घुंघरू का अपरनाम ही नूपुर है। इसे पैर में बांध कर नृत्य किया जाता है। इसकी ध्वनि मधुर होती है। यह तार वाद्य है। 'कृष्ण-दिवाणी' मीरा का तो यह प्रिय वाद्य है।

---

१. जिनके सन्मुख ठाढे इन्द्र नरेन्द्रजी।
 नभ में दुन्दुभि की धुनि भारी॥
 वर्षे फूल सुगन्ध अपारी।
 जिनके सम्मुख ठाढ़े इन्द्र नरेन्द्र जी॥
 —श्री नेमिनाथ जिनपूजा, जिनेश्वरदास, जैनपूजापाठ सग्रह, पृष्ठ ११४।

२. भामण्डल की छवि कौन गाय।
 फुनि चंवर ढुरत चौसठि लखाय॥
 जय दुन्दुभि रव अद्‌भुत सुनाय।
 जय पुष्प वृष्टि गन्धोदकाय॥
 —श्री अकृत्रिम चैत्यालयपूजा, नेम, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ २५५।

३. बाजन अधिक वजाय गाय गुण सार जू।
 भेरि निसान सु झांझ झना झनकार जू॥
 विधि संक्षेप कही पूजा की सार जू।
 इन्द्र ध्वज आदिक जे बहु विस्तार जू॥
 —श्री पंचकल्याणक पूजापाठ, कमलनयन, हस्तलिखित।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती के कवि वृंदावन[1] ने और बीसवीं शती के कवि जवाहरदास[2] ने पूजा-रचनाओं में नूपुर का प्रयोग किया है।

भेरि—भेरि खाल वाद्य है नगाड़ा या डंका को भेरि कहते हैं। इसका युद्ध में प्रायः व्यवहार किया जाता है। दुंदुभि की नाईं यह एक ओर से मढ़ा होता है और लकड़ी के प्रहार से इसे वजाया जाता है युद्ध के आरम्भ की सूचना इस वाद्य को वजाकर ही दी जाती है।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती के कवि कमलनयन विरचित 'श्री पंचकल्याणक-पूजा-पाठ' नामक काव्यकृति में भेरि वाद्य का प्रयोग द्रष्टव्य है।[3]

वीन—वीन तुम्वे या लोकी की वनी होती है। आगे अलग से एक तुम्बी होती है फिर उसका पतलाभाग करीव एक फुट लम्वा होता है। तुम्बी की ओर से यह वजाया जाता है। अधिकतर सपेरे इसे वजाकर सांप को मोहित करते हैं। इसमें सांप को आकर्षित करने की अद्‌भुत शक्ति होती है। यह फूंक वाद्य है।

---

१. अघ घ घ अघ घ घ धुनि होत घोर।
भभ भभ भभ घ घ घ घ कलश शोर॥
द्रम द्रम द्रम बाजत मृदंग।
झन झन नन नन नन नूपुरंग॥
—श्री शांतिनाथजिनपूजा, वृंदावन, राजेशनित्यपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ ११५।

२. झन नन नन ना नुपुर वान।
तन नन नन ना तोरत तान॥
ताथेई थेई थेई थेई कर चाल।
सुर नाचत नाचत निज भाल॥
—श्री अथसमुच्चय लघु पूजा, जवाहरदास, वृहजिनवाणी संग्रह, पृष्ठ ४९६।

३. वाजन अधिक वजाय गाय गुण सार जू।
भेरि निशान सु झांझ झना झनकार जू॥
विधि संक्षेप कही पूजा की सार जू।
इन्द्रध्वज आदिक जै वहु विस्तार जू॥
—श्री पंचकल्याणक पूजापाठ, कमलनयन, हस्तलिखित।

वीणा एक प्राचीन भारतीय वाद्य है जिससे उंगलियों के द्वारा स्वर संधान होता है। मां शारदा के स्तवन-प्रसंग में वीणा का प्रयोग प्रायः सर्वत्र हुआ है। हिन्दी बारहमासा काव्य में होली के अवसर पर भी यह वाद्य व्यवहृत है।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती के कवि वृंदावन[1] और कमलनयन[2] की पूजाकृतियों में यह वाद्य दृष्टिगोचर होता है।

बीसवीं शती के कवि आशाराम[3] और जवाहरदास[4] की पूजा रचनाओं में वीणा वाद्य का व्यवहार परिलक्षित है।

मृदंग—यह ढोलक की भांति हाथ से बजाने का वाद्य होता है। इसके बजाने से गम्भीर और मधुर ध्वनि उत्पन्न होती है।

---

१. कई नारि सुवीन बजावति हैं।
तुमरी जस उज्जल गावति हैं॥
करताल विषै करताल धरें।
सुरताल विशाल जु नाद करें॥
—श्री महावीरस्वामीपूजा, वृंदावन, राजेशनित्यपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ १३८।

२. सांगीत गीत गावें सुर गंधर्व ताल देहिं भारी।
वीन मृदंग मुहचंग खंजरी बाजत है सुखकारी॥
वरनो कहा अलप मति मेरी जो हरि करी है वधाई।
चौवीसों जिन चरण 'कमलद्रग' बार बार बलि जाई॥
—श्री पंचकल्याणक पूजापाठ, कमलनयन, हस्तलिखित।

३. ता थेई थेई थेई बाजत सितार।
मृदंग बीन मुहचंग सार॥
तिनकों ध्वनि सुनि भवि होत प्रेम।
जयकार करत नाचत सु एम॥
—श्री सोनागिरिसिद्धक्षेत्र पूजा, आशाराम, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १५४।

४. मुरली बीन बजै धुनि मिष्ट।
पटहा तूर सुरान्वित पुष्ट॥
तब सुरगण थुति गावत सार।
सुरगण नाचत बहुत प्रकार॥
—श्री अथ समुच्चय लघुपूजा, जवाहरदास, बृहजिनवाणीसंग्रह, पृष्ठ ४९६।

मृदंग वाद्य का प्रयोग बारहमासा काव्य में प्रचुर रूप से हुआ है। संयोग में आनन्दोद्रेक तथा नायक को बहिर्गमन से रोकने में योग देता है।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में मृदंग के अभिदर्शन उन्नीसवीं शती से होते हैं। इस शती के कविवर वृंदावन प्रणीत 'श्री महावीर स्वामीपूजा'[1] एवं 'श्री शान्तिनाथ जिन पूजा'[2] नामक पूजा रचनाओं में यह वाद्य यंत्र सफलतापूर्वक व्यवहृत है।

बीसवीं शती के कवि आशाराम[3] और जवाहरदास[4] की काव्यकृतियों में मृदंग का प्रयोग उल्लेखनीय है।

मुरली—भारतीय वाद्य यंत्रों में मुरली की प्राचीनता असंदिग्ध है। यह वेणु विनिर्मित वाद्ययंत्र है। अधुनातन काल में पीतल की भी बांसुरी बनने लगी है। वाद्य यंत्र का प्रयोग शास्त्रीय और लोकरंजन दोनों ही दृष्टियों से प्रचुर परिमाण में हुआ है। मुरली का सम्बन्ध भारतीय जीवन में भगवान श्रीकृष्ण के जीवन काल से चला आ रहा है। भारतीय ब्रज जन-जीवनान्तर्गत राधा-कृष्ण के प्रसंग में मुरली वाद्य का प्रयोग आनंद की वर्षा करता है।

---

१. घननं घननं घन घंट बजै। ड्मदं ड्मदं मिरदंग सजै।
गगनांगन गर्भगता सुगता। ततता ततता अतता वितता॥
—श्री महावीरस्वामीपूजा, वृंदावन, राजेश नित्यपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १३७।

२. दृम दृम दृम दृम बाजत मृदंग।
झन नन नन नन नन नुपुरंग॥
श्री शांतिनाथ जिनपूजा, वृंदावन, राजेशनित्यपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ ११५।

३. ता थेई थेई बाजत सितार।
मृदंग बीन मुहचंग सार॥
तिनकी ध्वनि सुनि भवि होत प्रेम।
जयकार करत नाचत सु ऐम॥
—श्री सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पूजा, आशाराम, जैनपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ १५४।

४. दृम दृम ड्मता बजे मृदंग।
घन घन घंट बजे मुहचंग॥
झुन झुन झुन झुन झुनिया झुने॥
सर सर सर सारंग धुने॥
—श्री अथ समुच्चय लघुपूजा, जवाहरदास, वृहजिनवाणीसंग्रह, पृष्ठ ४९६।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में इस वाद्य का व्यवहार बीसवीं शती के कवि जवाहरदास प्रणीत 'श्री अथ समुच्चयलघुपूजा' नामक काव्यकृति में द्रष्टव्य है।[1]

शंख—शंख एक फूंक वाद्य है। जलचर-शंख का मृतक शरीर खोल वस्तुतः शंख वाद्य बन जाता है। इसकी आकृति घुमावदार होती है। भक्ति के विविध प्रसंगों पूजा-पाठ, कथा-वार्ता, कीर्तन- आरती- अर्चन में शंख नाद किया जाता है। साधुओं तथा पुजारियों द्वारा ही इस वाद्य का प्रयोग हुआ करता है। हिन्दी बारहमासा काव्य में जागरण और हिंडोलना के अवसर पर शंख का प्रयोग क्रमशः फाल्गुण और क्वार मासों में उल्लिखित है।[2]

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में बीसवीं शती के पूजाकाव्य के रचयिता कुंजिलाल[3] और जिनेश्वर दास[4] द्वारा शंख वाद्य का सफलता पूर्वक प्रयोग हुआ है।

सारंगी—सारंगी तार वाद्य है। इसमें २७ तार होते हैं। यह 'सागबन' लकड़ी की बनती हैं। माथे में खूटियां होती है। ऊपर की तातों का निर्माण बकरी की आंतों से होता है। साथ ही इसकी तेरह तुरमें होती हैं। सब स्टील की होती हैं। इन्हें चार बड़े खूँटों से बांध दिया जाता है। इसे

---

१. मुरली बीन बजे धुनि मिष्ट। पटहा तूर सुरान्वित पुष्ट।
सब सुरगण थुति गावत हार। सुरगण नाचत वहुत प्रकार।।
—श्री अथ समुच्चय लघुपूजा, जवाहरदास, बृहजिनवाणीसंग्रह, पृष्ठ ४६६।

२. हिन्दी का बारहमासा साहित्य : उसका इतिहास तथा अध्ययन, चतुर्थ अध्याय डॉ० महेन्द्र सागर प्रचंडिया, पृष्ठ ३३४, पैराग्राफ ४१६।

३. देवन घर घंटा बाजे, झालड शंखादिक गाजे।
इन्द्रासन हू कम्पाये, प्रगटे महरा.......जाजी ।।
सुखिया अतुल बलधारी, जनमे जिनरा.......जाजी ।।
—श्री भगवान महावीर स्वामी पूजा, कुंजिलाल, नित्यनियमविशेष पूजन संग्रह, पृष्ठ ४४।

४. बल को पार न पायो सुर नर शेष जी।
हरि को सुर से शंख बजायो।
शय्या दलि मलि धनुष चढ़ायो।
बल को पार न पावै सुर नर शेष जी ।।
—श्री नेमिनाथ जिनपूजा, जिनेश्वरदास, जैनपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ ११३।

तांत से बनाया जाता है। गज में घोड़े के बाल बंधे रहते हैं। यह जोगियों का विशेष वादय यंत्र है।

सारंगी ढोलक की नाईं उत्सवों पर ही प्रयोग में आती है। यह रसोद्दीपन में सहायक होती है। सोरठ और मलार आदि रागों को सौभाग्यवती स्त्रियां इसी वाद्य के माध्यम से गाया करती हैं।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में इस वाद्य का प्रयोग बीसवीं शती के कवि जवाहरदास रचित 'श्री अथ समुच्चय लघु पूजा' नामक पूजाकृति में हुआ है।[1]

सितार—सितार तार वाद्य है। एक बांस में छोटे गोल तुम्बे को फंसा दिया जाता है। थोड़ा सा भाग काटकर बकरी के चमड़े से मढ़ दिया जाता है। बांस के नीचे दो या तीन तार बांध दिये जाते हैं। इन तारों को खूंटी से भी कस दिया जाता है। तार पर उंगली से ऊपर नीचे चोट करके इसे बजाया जाता है। इसे कन्धे पर रखकर एक हाथ से बजाया जाता है।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में बीसवीं शती के कविवर आशाराम प्रणीत 'श्री सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पूजा' नामक काव्य-कृति में सितार वाद्य का प्रयोग परिलक्षित है।[2]

इस प्रकार जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में बीस वाद्य-यंत्रों का व्यवहार हुआ है। हिन्दी साहित्य में इन वाद्यों का प्रयोग विविध रस-परिपाक के लिए विभिन्न प्रसंगों में हुआ है। यद्यपि जैन-हिन्दी पूजा-काव्य में शान्तरस के परिपाक में भक्त्यात्मक प्रसंग में ही उपर्यंकित वाद्यों का प्रयोग हुआ है तथापि अभिव्यंजना में उनकी उपयोगिता असंदिग्ध ही है।

---

१. दृम दृम दृमता बजे मृदंग।
घन घन घंट बजे मुहचंग।।
झुनझुन झुनझुन झुनिया झुने।
सर सर सर सारंगी धुने।।
—श्री अथ समुच्चय लघुपूजा, जवाहरदास, वृहज्जिनवाणी संग्रह, पृष्ठ ४९६।

२. ता थेई थेई थेई बाजत सितार।
मृदंग वीन मुहचंग सार।।
तिनकी ध्वनि सुनि भवि होत प्रेम।
जयकार करत नाचत सु ऐम।।
—श्री सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पूजा, आशाराम, जैनपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ १५४।

फल-वर्णन

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में पुष्प वर्णन के उपरान्त फलों का अध्ययन असंगत न होगा। विवेच्य काव्य में अघ्र्य-सामग्री के लिए फलों का वर्णन हुआ है। यहां काव्य में प्रयुक्त फलों का अकारादि क्रम से इस प्रकार अध्ययन करेंगे कि पूजा काव्याभिव्यक्ति में उनकी स्थिति का सम्यक् उदघाटन हो सके, यथा

अंगूर—यह रसीला मधुर फल होता है। एक ही गुच्छे में अनेक फल लगे रहते हैं। इन्हें सुगोस्तनी[1], द्राक्षा[2], दाख[3] भी कहते हैं।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती के उत्कृष्ट पूजा-कवयिता मनरंगलाल विरचित श्री सुमतिनाथ जिनपूजा'[4] 'श्रीमल्लिनाथ जिनपूजा'[5] नामक रचनाओं में सुगोस्तनी और द्राक्षा संज्ञाओं के साथ यह फल प्रयुक्त है। इस शती के अन्य कवि रामचंद्र[6] और मल्लजी[7] ने दाख संज्ञा के साथ इस फल का व्यवहार किया है। बीसवीं शती के पूजाकार भगवानदास रचित 'श्री तत्वार्थ सूत्र पूजा' कृति में दाख संज्ञा के साथ यह फल उल्लिखित है।[8]

---

१. पंडित शिखरचन्द्र जैन शास्त्री ने 'सत्यार्थ यज्ञ' के पृष्ठ पर 'श्री सुमति नाथ जिनपूजा' नामक कृति की टिप्पणी में सुगोस्तनी का अर्थ अंगूर बताया है।

२. बृहत् हिन्दी कोश, सम्पा० कालिका प्रसाद आदि, ज्ञान मंडल लिमिटेड, वाराणसी-१, तृतीय संस्करण ज्येष्ठ संवत् २०२०, पृष्ठ ६५४।

३. बृहत् हिन्दी कोश, वही, पृष्ठ ६१७।

४. निकोचक सुगोस्तनी भराय थालिका बड़ी।
श्री सुमतिनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थ यज्ञ, पृष्ठ ४०।

५. द्राक्षा बदाम शुभ आम्र कपित्थ लीये।
—श्री मल्लिनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थ यज्ञ, पृष्ठ १३६।

६. श्री सम्मेद शिखरपूजा, रामचन्द्र, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १२८।

७. केला अंब अनार ही, नारिकेल ले दाख।
—श्री क्षमावाणी पूजा, मल्लजी, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ २५७।

८. क्रमुक दाख बदाम अनारला,
नरंगनीबूहिं आमहिं श्रीफला।
—श्री तत्वार्थसूत्र पूजा, भगवानदास, जैनपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ ४११।

उन्नीसवीं शती में वृन्दावन द्वारा रचित 'श्री शांतिनाथ जिनपूजा', श्री महावीरस्वामी पूजा', 'श्री पद्मप्रभु जिनपूजा', 'श्री वासुपूज्य जिनपूजा' एवं 'श्री चन्द्रप्रभु जिनपूजा' नामक पूजाकृतियों में क्रमशः पंकज[1], सरोज[2], पद्म[3], पंकज[4] और पद्म[5] एवं कमल[6] नामक संज्ञाओं के साथ कंजपुष्प का आलंकारिक तथा अघ्र्य प्रयोग में परिलक्षित है। इस शती के अन्य कवि मनरंगलाल ने 'श्री अनंतनाथ जिनपूजा'[7], 'श्री अथ सप्तर्षिपूजा'[8] और 'श्री नेमिनाथ जिनपूजा'[9] नामक रचनाओं में क्रमशः सरोज, कमल संज्ञाओं के साथ, रामचन्द्र ने 'श्री चन्द्रप्रभु जिनपूजा'[10] नामक कृति में कमल संज्ञा के साथ, बख्तावररत्न ने 'श्री कुंथुनाथ जिनपूजा'[11] नामक पूजा के जयमाल अंश

---

१. शांतिनाथ जिन के पद पंकज,
   जो भवि पूजें मन वच काय।
   —श्री शांतिनाथ जिनपूजा, वृन्दावन, राजेश नित्यपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ११७।
२. श्री महावीर स्वामी पूजा, वृंदावन, राजेश नित्यपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १३७।
३. श्री पद्मप्रभु जिनपूजा, वृन्दावन, राजेशनित्यपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ ८३।
४. श्री वासुपूज्य जिनपूजा, वृन्दावन, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ३५०।
५. श्री वासुपूज्य जिनपूजा, वृन्दावन, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ३४६।
६. श्री चन्द्रप्रभु जिनपूजा, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ३३८।
७. श्री अनंतनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ३५२।
८. बहु वर्ण सुवर्ण सुमन आछे,
   अमल कमल गुलाब के।
   —श्री अथ सप्तर्षि पूजा, मनरंगलाल, राजेशनित्य पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १४१।
९. श्री नेमिनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ३६६।
१०. श्री चन्द्रप्रभु दुतिचन्द को पद कमल नखशशि लगि रह्यो।
   —श्री चन्द्रप्रभु जिनपूजा, रामचन्द्र, राजेश नित्य पूजापाठ पूजापाठसंग्रह, पृष्ठ ९०।
११. श्री कुंथुनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ५४५।

में और कविवर मल्लजी ने 'श्री क्षमावाणी पूजा'[1] नामक रचना में कमल और सरोज संज्ञाओं के साथ कंज पुष्प का व्यवहार आलंकारिक, रूप-सौन्दर्य के लिए बखूबी किया है।

बीसवीं शती में पूजाकवि रविमल[2], सेवक[3], जिनेश्वरदास[4], जवाहरलाल[5], आशाराम[6], दीपचन्द[7], और पूरणमल[8] द्वारा प्रणीत पूजाकृतियों में कमल और कंज नामक संज्ञाओं के साथ इस पुष्प का प्रयोग पूजा काव्य की परम्परानुसार हुआ है।

कुन्द—कुंद श्वेत वर्ण का रात्रि को खिलने वाला सुन्दर पुष्प है। जैन-हिन्दी-पूजाकाव्य में उन्नीसवीं शती के मनरंगलाल विरचित 'श्री नेमिनाथ जिनपूजा'[9] में कुंद पुष्प का व्यवहार प्रकृति वर्णन के लिए हुआ है। बीसवीं शती में कुंजिलाल विरचित 'श्री महावीर स्वामी पूजा'[10] नामक पूजा रचना

---

१. श्री जिन-चरण-सरोजकूं,
पूज हर्ष चित-चाव।
—श्री क्षमावाणी पूजा, मल्लजी, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ४०३।

२. तिनके चरण कमल को निशिदिन अर्घ चढ़ाय करूं उर ध्यान।
—श्री तीस चौबीसी पूजा, रविमल, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ २४७।

३. श्री अनंतव्रत पूजा, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ २६६।

४. चरण-कमल को पूजें आज।
—श्री नेमिनाथ जिनपूजा, जिनेश्वरदास, जैन पूजापाठ संग्रह, पृ० १११।

५. श्री अथ समुच्चयपूजा, जवाहरलाल, वृहद् जिनवाणी संग्रह, पृष्ठ ४८७।

६. वेला और गुलाब मालती कमल मंगाये।
—श्री सोनागिरि सिद्धक्षेत्रपूजा, आशाराम, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १५०।

७. श्री बाहुबली पूजा, दीपचन्द, नित्य नियम विशेष पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ६३।

८. श्री चांदन गांव महावीर स्वामी पूजा, पूरणमल, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १६०।

९. मन हरन वर्ण विशाल फूले कमल कुंद गुलाब के।
—श्री नेमिनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ३६६।

१०. श्री महावीर स्वामी पूजा, कुंजिलाल, नित्यनियमविशेषपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ४१।

में तथा जवाहरलाल प्रणीत 'श्री अथ समुच्चय पूजा'[1] नामक पूजाकृति में कुंद पुष्प धवलता गुण तथा प्रकृति वर्णन के लिए हुआ है।

कदंब—कदंब सुगन्धित पुष्प है। जैन-हिन्दी पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती के पूजाकार रामचन्द्र ने 'श्री गिरिनार सिद्धक्षेत्र पूजा' नामक पूजा में कदंब पुष्प का प्रयोग आलम्बन रूप में सामग्री के लिए किया है।[2] इसी प्रकार बीसवीं शती में भी कदंब का प्रयोग समुच्चय चौबीसी पूजा काव्य में सामग्री-द्रव्य के लिए हुआ है।[3]

कुरंड—बीसवीं शती के पूजाकाव्य में 'कुरंड' का प्रयोग पूजा-द्रव्य के लिए हुआ है।[4]

केतकी—एक पुष्प का नाम जिसका रसपान भ्रमर चाव से किया करते हैं। केतकी चम्पा की भांति खिला करती है किन्तु विरहिणी नायिका को यह अतीव दुःख देती है। जैन-जैनेतर-हिन्दी-साहित्य में केतकी का उल्लेख निम्न रूपों में हुआ है—

(१) प्रकृति वर्णन के लिए।
(२) नायिका द्वारा नायक को आकर्षित करने के लिए।
(३) आलंकारिक रूप में वर्णन करने के लिए।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नीसवी शती के पूजा प्रणेता मनरंगलाल विरचित 'श्री अथ सप्तर्षि पूजा'[5] एवं 'श्री नेमिनाथ जिनपूजा'[6] नामक पूजा कृतियों में इस पुष्प का उल्लेख मिलता है। इस शती के अन्य कवि बख्तावर-

---

१. कुंद कमलादिक चमेली गंधकर मधुकर फिरें।
—श्री अथ समुच्चयपूजा, जवाहरलाल, वृहद् जिनवाणी संग्रह, पृ० ४८७।
२. श्री गिरिनार सिद्धक्षेत्र पूजा, रामचन्द्र, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १४२।
३. वरकंज कदंब कुरंड, सुमन सुगन्ध भरे।
—श्री समुच्चय चौबीसी पूजा, सेवक, वृहद्जिनवाणीसंग्रह, पृष्ठ ३३५।
४. वही।
५. केतकी चम्पा चारु मरुवा,
चुने निजकर चाव के।
—श्री अथ सप्तर्षि पूजा, मनरंगलाल, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १४१।
६. केतकी चम्पा चारु मरुवा पुष्प आव सुताव के।
—श्री नेमिनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, ज्ञानपीठपूजांजलि, पृष्ठ ३६६।

रत्न द्वारा 'श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा'[१] नामक पूजा में तथा कवि मल्ल जी विरचित 'श्री क्षमावाणी पूजा'[२] नामक कृति में केतकी पुष्प का व्यवहार पूजा की सामग्री-द्रव्य के लिए हुआ है।

बीसवीं शती में कविवर सेवक[३], दीपचंद[४] और पूरणमल[५] ने केतकी पुष्प का प्रयोग सामग्री के संदर्भ में किया है।

केवड़ा—यह पुष्प 'बाल' रूप में होता है। इसकी सुगंध अत्यन्त मधुर और शीतल होती है। हिन्दी काव्य में प्रकृति वर्णन और शृंगार प्रसाधन रूप में इसका प्रयोग हुआ है। स्वकीया नायिका विविध पुष्पों के साथ केवड़ा पुष्प का हार बनाकर शृंगार करती है।[६]

जैन हिन्दी पूजा काव्य में उन्नीसवीं शती में बख्तावररत्न द्वारा केवड़ा पुष्प का प्रयोग सामग्री के अन्तर्गत हुआ है।[७] बीसवीं शती में कविवर सेवक, भगवानदास द्वारा प्रणीत क्रमशः अनन्त व्रत पूजा[८] तथा 'श्री तत्वार्थ सूत्र पूजा[९] नामक काव्य में केवड़ा का प्रयोग सामग्री संदर्भ में हुआ है।

गुलाब—श्वेत और अरुण वर्ण का पुष्प-विशेष गुलाब होता है। यह प्रायः चैत्रमास में मुकुलित होता है। अपने सौन्दर्य तथा शीतल गुण के लिए

---

१. केवड़ा गुलाब और केतकी चुनाइये।
श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ३७२।
२. श्री क्षमावाणी पूजा, मल्लजी, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ४०३।
३. श्री आदिनाथ जिनपूजा, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ९६।
४. श्री बाहुबली पूजा, नित्य नियम विशेष पूजा संग्रह, पृष्ठ ६३।
५. बेला केतकी गुलाब चम्पा कमललऊँ।
—श्री चांदन गांव महावीर स्वामी पूजा, जैनपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ १६०।
६. हिन्दी का बारहमासा साहित्य उसका इतिहास तथा अध्ययन, डॉ० महेन्द्रसागर प्रचण्डिया, चतुर्थ अध्याय, अनुच्छेद ३६०, पृष्ठ २८८।
७. श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न, ज्ञानपीठपूजांजलि, पृष्ठ ३७२।
८. श्री अनन्तव्रत पूजा, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ २९९।
९. सुमन बेल चमेलिहिं केवरा,
जिन सुगंध दशों दिश विस्तारा।
—श्री तत्वार्थसूत्रपूजा, भगवानदास, जैनपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ ४१०।

यह विख्यात है। जैन-जैनेतर हिन्दी काव्य में निम्न प्रकार से गुलाब का प्रयोग हुआ है—

(१) प्रकृति वर्णन के लिए।
(२) उपासना की सामग्री के लिए।
(३) आलंकारिक वर्णन के लिए।
(४) गुलाब जल के लिए।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में यह पुष्प उन्नीसवीं शती से गृहीत है। कवि मनरंगलाल रचित 'श्री अथ सप्तर्षि पूजा'[1], 'श्री अनंतनाथ जिनपूजा'[2] तथा 'श्री नेमिनाथ जिनपूजा'[3] नामक पूजाओं में गुलाब पुष्प आलम्बन रूप में प्रयुक्त है। इसी शती के रामचन्द्र प्रणीत 'श्री गिरिनार सिद्धक्षेत्र पूजा'[4] में, बख्तावररत्न द्वारा रचित 'श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा'[5] में तथा मल्लजी कृत 'श्री क्षमावाणी पूजा'[6] में इस पुष्प का प्रयोग पूजा काव्य की परम्परानुसार हुआ है।

बीसवीं शती में पूजा रचयिता सेवक[7], भविलालजू[8], आशाराम[9], रघुसुत[10] तथा पूरणमल[11] द्वारा यह पुष्प पूजा काव्य में प्रयुक्त हुआ है।

---

१. बहु वर्ण सुवर्ण सुमन आछे, अमल कमल गुलाब के।
—श्री अथ सप्तर्षिपूजा, मनरंगलाल, राजेशनित्यपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ १४१।

२. श्री अनंतनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, ज्ञानपीठपूजांजलि, पृष्ठ ३५२।

३. श्री नेमिनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ३६६।

४. फूल गुलाब चमेली बेल कदंब सु चम्पक बीन सु ल्याई।
—श्री गिरिनार सिद्धक्षेत्र पूजा, रामचन्द्र, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १४२।

५. केवड़ा गुलाब और केतकी चुनाइये।
—श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ३७२।

६, पारिजात अरु केतकी,
पहुप सुगंध गुलाब।
—श्री क्षमावाणी पूजा, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ४०३।

७. कमल केतकी वेल चमेली,
श्री गुलाब के पुष्प मंगाय।
—श्री आदिनाथ जिनपूजा, सेवक जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ६६।

८. श्री सिद्धपूजाभाषा, भविलालजू, राजेश नित्यपूजा पाठ संग्रह, पृष्ठ ७२।

९. श्री सोनागिरि क्षेत्र पूजा, आशाराम, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १५०।

१०. श्री रक्षाबन्धनपूजा, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ३६३।

११. बेला केतकी गुलाब चम्पा कमल लऊं।
श्री चाँदनगांव महावीर स्वामी पूजा, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १६०।

गेंदा—यह पीत वर्ण का पुष्प है। सूर्य के प्रकाश में प्रायः पुष्पित होता है। बीसवीं शती के कविवर सेवक द्वारा रचित 'श्री अनंतव्रत पूजा' काव्य में आलम्बन रूप में प्रयुक्त हुआ है।[1]

चम्पा (चम्पक)—यह पुष्प जिसमें केवल तीन या चार पंखुड़ियां होती हैं, यह तीव्र गन्धमय होता है। यह चैत्र वैशाख मास में मुकुलित हुआ करता है। अन्य अनेक पुष्पों की भांति इस पुष्प में मकरन्द नहीं होता है। फलस्वरूप इस पर भ्रमर आदि कीट की अपेक्षा सर्प प्रायः लिपटे रहते हैं। हिन्दी काव्य में इसका प्रयोग निम्न रूपों में प्रायः हुआ है, यथा—

१. प्रकृति वर्णन के लिए
२. आलंकारिक प्रयोग के लिए
३. शृंगार-प्रसाधन के लिए
४. वर्ण की समता के लिए

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती के पूजा कवि मनरंगलाल द्वारा प्रणीत 'श्री सप्तर्षिपूजा'[2] 'श्री अनंतनाथ जिन पूजा'[3] तथा 'श्री नेमिनाथ जिनपूजा'[4] नामक कृतियों में चम्पा पुष्प का व्यवहार प्रकृति वर्णन के लिए हुआ है। इस शती के अन्य कवि रामचन्द्र द्वारा रचित 'श्री गिरिनार सिद्ध-क्षेत्र पूजा' में चम्पक संज्ञा के साथ आलंबन रूप में इस पुष्प का प्रयोग हुआ है।[5]

बीसवीं शती में कविवर सेवक कृत 'श्री अनंतव्रत पूजा'[6] में, हीराचंद

---

१. केवड़ो कमल गुलाब गेंदा जूही माल बनायके।
श्री अनंतव्रत पूजा, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ २६६।

२. केतकी चम्पा चारु मरुआ, चुने निजकर चाव के।
—श्री अथ सप्तर्षि पूजा, मनरंगलाल, राजेश नित्यपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ १४१।

३. श्री अनन्तनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, ज्ञानपीठपूजांजलि, पृष्ठ ३५२।

४. श्री नेमिनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ३६६।

५. फूल गुलाब चमेली बेल कदंब सु चम्पक बीन सु ल्याई।
श्री गिरनार सिद्ध क्षेत्र पूजा, रामचन्द्र, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ११२।

६. चम्पा चमेली केतकी पुनि मोगरो शुभ लायके।
—श्री अनंतव्रत पूजा, सेवक, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ २६६।

रचित 'श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर समुच्चय पूजा'[1] में, दीपचंद प्रणीत श्री वाहुबली पूजा'[2] में तथा पूरणमल की 'श्री चांदन गांव महावीर स्वामी पूजा'[3], में चम्पा पुष्प का व्यवहार सामग्री संदर्भ में सफलता पूर्वक हुआ है।

चमेली—चमेली तीन चार पंखुड़ियों का सुगंधित पुष्प है। पूजन के अवसर पर चमेली हार बनाने के काम आती है। जैन-जैनेतर हिन्दी वाङ्मय में इस पुष्प का उल्लेख निम्न दृष्टि से हुआ है—

(१) प्रकृति वर्णन के लिए
(२) उपासना की सामग्री के लिए
(३) शृंगार प्रसाधन के लिए

उन्नीसवीं शती के पूजाकार मनरंगलाल द्वारा रचित 'श्री अनंतनाथ जिनपूजा' में चमेली का प्रयोग सामग्री संदर्भ में हुआ है।[4] इसी शती के कवि रामचन्द्र द्वारा प्रणीत 'श्री गिरिनारि सिद्धक्षेत्र पूजा' काव्य में चमेली का प्रयोग उल्लिखित है।[5]

बीसवीं शती के कविवर सेवक की 'श्री आदिनाथ जिनपूजा'[6], श्री अनंत-

---

१. चंप चमेली है जूही ताजा,
लायो प्रभु तुम पूजन काजा।
—श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर समुच्चय पूजा, हीराचन्द नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, पृष्ठ ७२।

२. कमल केतकी चम्प चमेली,
सुमन सुगन्धित लाय धरूं।
—श्री बाहुबलीपूजा, दीपचन्द, नित्यनियमविशेषपूजनसंग्रह, पृष्ठ ६३।

३. बेला केतकी गुलाब चम्पा कमल लऊँ।
—श्री चांदन गांव महावीर स्वामी पूजा, पूरणमल, जैनपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ १६०।

४. सुमन मनोहर चंप चमेली देखिये।
—श्री अनन्तनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ३५२।

५. श्री गिरनार सिद्धक्षेत्र पूजा, रामचन्द्र, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १४२।

६. श्री आदिनाथ जिनपूजा, सेवक, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ९६।

व्रत पूजा'[1] में, कुंजिलाल की 'श्री महावीर स्वामी पूजा'[2], श्री देवशास्त्र गुरुपूजा'[3] में, हीराचंद की श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर समुच्चय पूजा'[4] में, रघुसुत की 'श्री रक्षाबंधन पूजा'[5] में, दीपचंद की 'श्री बाहुबली पूजा[6] में, तथा भगवानदास की 'श्री तत्वार्थसूत्र पूजा'[7] में चमेली का प्रयोग आलम्बन रूप में प्राप्त है।

जूही—अश्विनमास में मुकुलित होने वाला पुष्प विशेष, जिसका बीसवीं शती के कवि सेवक कृत 'श्री अनंतव्रत पूजा'[8], कवि कुंजीलाल कृत 'श्री महावीर पूजा'[9], श्री देवशास्त्र गुरुपूजा'[10] तथा हीराचंद विरचित 'श्री चतुर्विं-

---

१. श्री अनंतव्रत पूजा, सेवक, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ २६६।

२. श्री महावीर स्वामी पूजा, कुंजिलाल, नित्यनियमविशेष पूजन संग्रह, पृष्ठ ४१।

३. श्री देवशास्त्रगुरुपूजा, कुंजिलाल, नित्यनियमविशेषपूजनसंग्रह, पृष्ठ ११४।

४. श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर समुच्चयपूजा, हीराचन्द, नित्यनियमविशेष पूजन संग्रह, पृष्ठ ७२।

५. वेल चमेली श्री गुलाव के ताजे ताजे पुष्प सु लाऊं।
—श्री रक्षावन्धनपूजा, रघुसुत, राजेशनित्यपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ ३६३।

६. कमल केतकी चम्प चमेली सुमन सुगंधित लाय धरूं।
—श्री बाहुबलीपूजा, दीपचन्द, नित्यनियमविशेषपूजनसंग्रह, पृष्ठ ६३।

७. सुमन वेल चमेलिहि केवरा,
जिन सुगंध दशों दिश विस्तरा।
—श्री तत्वार्थ सूत्र पूजा, भगवानदास, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ४१०।

८. श्री अनन्तव्रत पूजा, सेवक, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ २६६।

९. मंदार कुंद पुष्प चमेली जूही लाये।
—श्री महावीर स्वामीपूजा, कुंजिलाल, नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, पृष्ठ ४१।

१०. श्री देवशास्त्रगुरुपूजा, कुंजिलाल, नित्यनियमविशेषपूजन संग्रह, पृष्ठ ११४।

शति तीर्थंकर समुच्चय पूजा'[१] में जूही का प्रयोग माला बनाने के प्रयोजन से हुआ है।

पारिजात— एक कवि-कल्पित अलौकिक पुष्प विशेष, जिसका सामग्री संदर्भ में उन्नीसवीं शती के पूजाकार वृंदावन विरचित 'श्री पद्मप्रभु जिन-पूजा' में प्रयोग हुआ है।[२] इसी शती के अन्य कवि श्री मल्लजी रचित 'श्री क्षमावाणी पूजा' में भी इसका प्रयोग हुआ है।[३] बीसवीं शती के आशाराम द्वारा 'श्री सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पूजा' नामक रचना में पारिजात पुष्प का प्रयोग हुआ है।[४]

बेला—यह पुष्प चैत्रमास में सबसे अधिक मुकुलित होता है। हिन्दी बारह-मासा काव्य में सत्यवादी हरिश्चन्द्र के सत्यत्व की परीक्षा लेने के प्रसंग में मुनिराज बाराह का रूप धारण कर वाटिका में पुष्पित बेला को उच्छिन्न करते हैं।[५]

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती के कवि रामचन्द्र प्रणीत 'श्री गिरिनार सिद्धक्षेत्र पूजा' में यह पुष्प उल्लिखित है।[६] बीसवीं शती के सेवक द्वारा प्रणीत 'श्री आदिनाथ जिनपूजा'[७] में, कुंजिलाल कृत 'श्री देवशास्त्र

---

१. चंप चमेली है जूही ताजा।
लायो प्रभु तुम पूजन काजा।
—श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर समुच्चयपूजा, हीराचंद, नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, पृष्ठ ७२।

२. पारिजात मंदार कलपत सुजनित सुमन शुचि लाय।
—श्री पद्मप्रभु जिनपूजा, वृन्दावन, राजेशनित्यपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ ८३।

३. श्री क्षमावाणी पूजा, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ४०३।

४. पारिजात के पुष्प ल्याय जिन चरण चढ़ाये।
—श्री सोनागिरिसिद्धक्षेत्रपूजा, आशाराम, जैनपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ १५१।

५. हिन्दी का बारहमासा साहित्य उसका इतिहास तथा अध्ययन, डॉ० महेन्द्र सागर प्रचण्डिया, चतुर्थ अध्याय, अनुच्छेद ३५०, पृष्ठ २८०।

६. श्री गिरिनार सिद्धक्षेत्र पूजा, रामचन्द्र, जैन पूजा पाठ संग्रह, पृष्ठ १४२।

७. कमल केतकी वेल चमेली,
श्री गुलाब के पुष्प मंगाय,
—श्री आदिनाथ जिनपूजा, सेवक, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ६६।

गुरु पूजा'[1] में, आशाराम विरचित 'श्री सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पूजा'[2] में, रघुसुत प्रणीत 'श्री रक्षावंधन पूजा'[3] में, पूरणमल रचित 'श्री चांदनगांव महावीर स्वामी पूजा'[4] में तथा भगवानदास कृत 'श्री तत्वार्थ सूत्र पूजा'[5] में बेला पुष्प का प्रयोग सामग्री-संदर्भ में हुआ है ।

मंदार—पुष्प विशेष जिसका उन्नीसवीं शती के वृंदावन द्वारा रचित 'श्री पद्मप्रभुजिनपूजा' नामक रचना में व्यवहार हुआ है ।[6] बीसवीं शती में कुंजिलाल द्वारा 'श्री महावीर स्वामी पूजा' नामक कृति में मंदार पुष्प का प्रयोग उल्लिखित है ।[7]

मालती—यह सुगंधित मकरंद युक्त पुष्प है जिसे उन्नीसवीं शती के कविवर मनरंगलाल द्वारा रचित 'श्री अनंतनाथ जिनपूजा' नामक कृति में सामग्री संकलन हेतु प्रयुक्त किया गया है ।[8]

बीसवीं शती के कवि श्री आशाराम कृत 'श्री सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पूजा में मालती पुष्प का सामग्री-संकलन के लिए प्रयोग हुआ है ।[9]

---

१. श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, कुंजिलाल, नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, पृष्ठ ११४ ।
२. श्री सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पूजा, आशाराम, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १५० ।
३. श्री रक्षावंधन पूजा, रघुसुत, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ३६३ ।
४. श्री चांदनगांव महावीर स्वामी पूजा, जैन पूजा पाठ संग्रह, पृष्ठ १६० ।
५. सुमन वेल चमेलिहिं केवरा,
जिन सुगंध दशों दिश विस्तरा ।
—श्री तत्वार्थसूत्र पूजा, भगवानदास, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ४१० ।
६. पारिजात मंदार कलपत सुजनित सुमन शुचि लाय ।
--श्री पद्मप्रभु जिनपूजा, वृन्दावन, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ८३ ।
७. मंदार कुंद पुष्प चमेली जूही लायें ।
—श्री महावीर स्वामी पूजा, नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, पृष्ठ ४१ ।
८. प्रफुलित कमल गुलाव मालती के लिए ।
—श्री अनन्तनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ३५२ ।
९. वेला और गुलाव मालती कमल मंगाये ।
—श्री सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पूजा. आशाराम, जैनपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ १५० ।

उपर्यंकित पुष्प विषयक विवेचन द्वारा यह सहज में कहा जा सकता है कि जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में पुष्प वर्णन अठारहवीं शती से ही प्राप्त है। यहां केवल एक ही पुष्प उल्लिखित है। उन्नीसवीं शताब्दी में ग्यारह नये पुष्प गृहीत हुए हैं। बीसवीं शती में तीन और नवीन पुष्पों का समाहार हुआ है। इस प्रकार पूजा वाङ्मय में आकारादि क्रम से- कंज, कुंद, कदंब, कुरंड, केतकी, केवड़ा, गुलाब, गेंदा, चम्पा, चमेली, जूही, पारिजात, बेला, मंदार और मालती—कुल पन्द्रह पुष्पों का व्यवहार हुआ है। इन सभी पुष्पों के प्रयोग से पूजा काव्य में जहां एक ओर अर्थ व्यंजना में उत्कर्ष उत्पन्न हुआ है वहां दूसरी ओर कवियों के पुष्प विषयक ज्ञान-विज्ञान का सम्यक उद्‌घाटन भी द्रष्टव्य है।

———

अखरोट—यह एक प्रसिद्ध मेवा फल है। विवेच्य काव्य में उन्नीसवीं शताब्दी की 'श्री अरहनाथ जिनपूजा' नामक पूजाकृति में अखरोट फल के अभिदर्शन होते हैं।[1]

अनार—इस फल को दाड़िम[2] और दन्तबीज[3] भी कहते हैं। यह दो प्रकार-बेदाना, खंडारी-का होता है। इसमें अन्दर छोटे-छोटे दाने होते हैं। उन्नीसवीं शती के मनरंगलाल[4], रामचन्द्र[5], बख्तावररत्न[6] और मल्लजी[7] विरचित पूजाकाव्य में अनार फल का प्रयोग दाड़िम और दन्तबीज संज्ञाओं में हुआ है।

बीसवीं शती की 'श्री सोनागिरि सिद्ध क्षेत्र पूजा'[8] और 'श्री तत्वार्थसूत्र पूजा'[9] में अनार व्यवहृत है।

अमरूद—अमरूद एक प्रसिद्ध फल है। उन्नीसवीं शती के मनरंगलाल

---

१. पिसता बदाम अखरोट लिये घनेरा।
   —श्री अरहनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थ यज्ञ, पृष्ठ १२८।

२. बृहत् हिन्दी कोश, पृष्ठ ६१८।

३. पंडित शिखरचन्द्र जैन शास्त्री ने सत्यार्थयज्ञ ग्रंथ के पृष्ठ ४८ पर 'श्री पद्म-प्रभजिनपूजा' नामक पूजाकाव्य की टिप्पणी में दन्तबीज को अनार की संज्ञा दी है।

४. (क) पनस दाडिम आम्र पके भये।
   श्री वर्द्धमान जिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थ यज्ञ, पृष्ठ १६८।
   (ख) मोच दन्तबीज बातशत्रु ल्याय के घने।
   —श्री पद्मप्रभजिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थयज्ञ, पृष्ठ ४८।

५. श्री सम्मेदशिखरपूजा, रामचन्द्र, जैन पूजापाठसंग्रह, पृष्ठ १२८।

६. श्री ऋषभनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न, चतुर्विंशति जिनपूजा, पृष्ठ १०।

७. श्री क्षमावाणी पूजा, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ २५३।

८. श्री सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पूजा, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १५२।

९. क्रमुक दाख बदाम अनारला, नरंगनीबूहि आमहि श्रीफला।
   —श्री तत्वार्थसूत्र पूजा, भगवानदास, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ४११।

अखरोट—यह एक प्रसिद्ध मेवा फल है। विवेच्य काव्य में उन्नीसवीं शताब्दी की 'श्री अरहनाथ जिनपूजा' नामक पूजाकृति में अखरोट फल के अभिदर्शन होते हैं।[1]

अनार—इस फल को दाड़िम[2] और दन्तबीज[3] भी कहते हैं। यह दो प्रकार—बेदाना, कंधारी—का होता है। इसमें अन्दर छोटे-छोटे दाने होते हैं। उन्नीसवीं शती के मनरंगलाल[4], रामचन्द्र[5], बख्तावररत्न[6] और मल्लजी[7] विरचित पूजाकाव्य में अनार फल का प्रयोग दाड़िम और दन्तबीज संज्ञाओं में हुआ है।

बीसवीं शती की 'श्री सोनागिरि सिद्ध क्षेत्र पूजा'[8] और 'श्री तत्त्वार्थसूत्र पूजा'[9] में अनार व्यवहृत है।

अमरूद—अमरूद एक प्रसिद्ध फल है। उन्नीसवीं शती के मनरंगलाल

---

१. पिस्ता बदाम अखरोट लिये घनेरा।
—श्री अरहनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थ यज्ञ, पृष्ठ १२८।

२. बृहत् हिन्दी कोश, पृष्ठ ६१८।

३. पंडित शिखरचन्द्र जैन शास्त्री ने सत्यार्थयज्ञ ग्रंथ के पृष्ठ ४८ पर 'श्री पद्मप्रभजिनपूजा' नामक पूजाकाव्य की टिप्पणी में दन्तबीज को अनार की संज्ञा दी है।

४. (क) पनस दाड़िम आम्र पके मधे।
श्री वर्द्धमान जिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थ यज्ञ, पृष्ठ १६८।
(ख) मोच दन्तबीज बादाम् ल्याय के घने।
—श्री पद्मप्रभजिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थयज्ञ, पृष्ठ ४८।

५. श्री सम्मेदशिखरपूजा, रामचन्द्र, जैन पूजापाठसंग्रह, पृष्ठ १२८।

६. श्री ऋषभनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न, चतुर्विंशति जिनपूजा, पृष्ठ १०।

७. श्री क्षमावाणी पूजा, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ २५६।

८. श्री सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पूजा, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १५२।

९. श्रीफल दाख बदाम अनारला, नरंगीहुहि आमहि औखला।
—श्री तत्त्वार्थसूत्र पूजा, भगवानदास, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ४११।

कृत 'श्री सुमतिनाथ जिनपूजा'[1] और 'श्री नेमिनाथ जिनपूजा'[2] में अमरूद फल 'शुकप्रिया'[3] नामक संज्ञा में प्रयुक्त है।

आम—आम भारतीय फल है। यह मांगलिक अवसर पर प्रयुक्त होता है। यहां यह उन्नीसवीं शती के कवि मनरंगलाल विरचित 'श्री पद्मप्रभ जिनपूजा'[4] 'श्री चन्द्रप्रभजिनपूजा'[5], 'श्री वासुपूज्यजिनपूजा'[6] और 'श्री धर्मनाथजिनपूजा'[7] नामक रचनाओं में कामवल्लभादि,[8] रसाल, आम और आम्र संज्ञाओं के साथ व्यवहृत है। इस शती के अन्य कवि बख्तावररत्न प्रणीत 'श्री ऋषभनाथजिन पूजा[9] और मल्लजी लिखित 'श्री क्षमावाणी पूजा'[10] में आम और अंब संज्ञाओं के साथ यह उल्लिखित है।

बीसवीं शती के पूजा कवयिता मुन्नालाल[11], भगवानदास[12] और हीराचन्द[13] द्वारा आम फल का प्रयोग अर्घ्य सामग्री के लिए हुआ है।

---

१. श्री सुमतिनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थयज्ञ, पृष्ठ ४०।
२. फल शुकप्रिय नीके आम्र निंवू न फीके।
—श्री नेमिनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थयज्ञ, पृष्ठ १४९।
३. पंडित शिखरचन्द्र जैन शास्त्री ने सत्यार्थयज्ञ ग्रंथ के पृष्ठ ४० पर 'श्री 'सुमतिनाथजिनपूजा' कृति की टिप्पणी में शुकप्रिया को अमरूद कहा है यद्यपि वृहत् हिन्दी कोश के पृष्ठ १३६२-६३ पर शुकप्रिया का अर्थ जंबू, जामुन उल्लिखित है।
४. कामवल्लभादि जे फलोघ मिष्टता घने।
—श्री पद्मप्रभजिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थयज्ञ, पृष्ठ ४८।
५. श्री चन्द्रप्रभजिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थयज्ञ, पृष्ठ ६३।
६. फल आम नारंगी केरा, बादाम छुआर घनेरा।
—श्री वासुपूज्य जिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थ यज्ञ, पृष्ठ ८७।
७. श्री धर्मनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थयज्ञ, पृष्ठ १०९।
८. पं० शिखरचन्द्र जैन शात्री ने सत्यार्थयज्ञ ग्रंथ के पृष्ठ ४८ पर 'श्री पद्मप्रभजिनपूजा' कृति की टिप्पणी में कामवल्लभादि को आम कहा हैं।
९. एला सुकेला आम्र दाडिम कैंथ चिरभट लीजिये।
—श्री ऋषभनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न, चतुर्विंशतिजिनपूजा, पृष्ठ १०।
१०. केला अंब अनार ही, नारिकेल ले दाख।
—श्री क्षमावाणीपूजा, मल्लजी, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ २५७।
११. श्री फल पिस्ता सु बादाम, आम नारंगि धरूं।
—श्री खण्डगिरि क्षेत्रपूजा, मुन्नालाल, जैनपूजा संग्रह, पृष्ठ १५६।
१२. श्री तत्वार्थसूत्रपूजा, भगवानदास, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ४११।
१३. श्री फल केला आम नरंगी, पक्के फल सब ताजा।
—श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर समुच्चय पूजा, हीराचन्द, नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, पृष्ठ ७३।

इलायची—एक सुगंधित फल जिसके सूखे दाने या बीज मसाले, दवा आदि के काम आते हैं। इसे एला भी कहते हैं।[1] यहाँ उन्नीसवीं शती के पूजाकार मनरंगलाल,[2], बख्तावररत्न[3] और रामचन्द्र[4] ने ऐला, इलायची संज्ञाओं के साथ इस फल का व्यवहार किया है। बीसवीं शती में 'श्री विष्णु कुमार महामुनिपूजा' नामक पूजा रचना में लायची संज्ञा में यह फल प्रयुक्त है।[5]

केला—भारतीय संस्कृति में आम की भाँति यह फल भी मांगलिक माना जाता है। उन्नीसवीं शती के कविवर मनरंगलाल[6], बख्तावररत्न[7], रामचन्द्र[8] और मल्लजी[9] द्वारा रचित पूजाकाव्य में मोच[10], कदली, केला नामक संज्ञाओं

---

१. वृहत् हिन्दी कोश, पृष्ठ २२४।
२. जातिफल एला फल ले केला, नारिकेला आदि घने।
—श्रीसम्भवनाथजिन पूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थयज्ञ, पृष्ठ २६।
३. श्री ऋषभनाथजिनपूजा, बख्तावररत्न, चतुर्विंशति जिनपूजा, वीर पुस्तक भण्डार, मनिहारों कारास्ता, जयपुर, पौष सं० २०१८, पृष्ठ १०।
४. श्रीफल लौंग बदाम सुपारी, एला आदि मंगावे।
श्री पद्मप्रभुजिनपूजा, रामचन्द्र, चतुर्विंशति जिनपूजा, नेमीचन्द वाकलीवाल जैन, ग्रंथ कार्यालय, मदनगंज (किशनगढ़) राजस्थान, अगस्त १९५०, पृष्ठ ५५।
५. लौंग लायची श्रीफलसार; पूजों श्री मुनि सुखदातार।
श्री विष्णु कुमार महामुनि पूजा, रघुसुत, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १७४।
६. [क] मोच दन्तबीज वातशत्रु ल्याय के घने।
—श्री पद्मप्रभुजिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थयज्ञ, पृष्ठ ४८।
[ख] मीठे रसाल कदली फल नारिकेला।
— श्री अरहनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थयज्ञ, पृष्ठ १२८।
७. श्री ऋषभनाथजिनपूजा, बख्तावररत्न, चतुर्विंशति जिनपूजा, वीर पुस्तक भण्डार, मनिहारों का रास्ता, जयपुर, पौष सं० २०१८, पृष्ठ १०।
८. श्री सम्मेदशिखरपूजा, रामचन्द्र, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १२८।
९. श्री क्षमावाणी पूजा, मल्लजी, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ २५६।
१०. पं० शिखरचन्द्र जैन शास्त्री द्वारा सत्यार्थयज्ञ के पृष्ठ ४८ पर 'श्री पद्मप्रभु जिनपूजा' कृति की टिप्पणी में मोच का अर्थ केला उल्लिखित हैं।

में यह फल व्यवहृत है। वीसवीं शती के सेवक[1] और हीराचंद[2] रचित पूजाओं में भी यह फल अघ्यं-सामग्री के लिए प्रयुक्त है।

कैंथा—एक फल विशेष जिसका कपित्थ अपर नाम है।[3] उन्नीसवीं शती के मनरंगलाल विरचित 'श्री धर्मनाथ जिनपूजा'[4] तथा बख्तावररत्न प्रणीत 'श्री ऋषभनाथ जिनपूजा'[5] नामक पूजाओं में यह फल कपित्थ, कैंथ संज्ञाओं के साथ प्रयुक्त है।

खरबूज—भारतीय खरीफ फसल का फल विशेष। उन्नीसवीं शती के विवेच्य काव्य में मनरंगलाल द्वारा इस फल का व्यवहार हुआ है।[6]

छुहारा—खजूर का एक भेद जो रेगिस्तानी प्रदेशों में होता है उसका सूखा रूप ही छुआरा है।[7] पूजाकाव्य में अठारहवीं शती से इस फल के अभिदर्शन होते हैं। इस शती के कवि द्यानतराय कृत 'श्री रत्नत्रयपूजा'[8] और 'श्री सरस्वती पूजा'[9] नामक पूजाओं में यह फल अघ्यं-सामग्री के लिए व्यवहृत है। उन्नीसवीं शती के कवि मनरंगलाल[10] और वीसवीं शती के

---

१. श्रीफल और बदाम सुपारी,
केला आदि छुआरा ल्याय।
—श्री आदिनाथ जिनपूजा, सेवक, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ९६।

२. श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर समुच्चयपूजा, हीराचन्द, नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, पृष्ठ ७३।

३. वृहत् हिन्दी कोश, पृष्ठ ३१५।

४. चिरभट आम्र पनस दाड़िम ले दाख कपित्थ बिजौरें।
—श्री धर्मनाथ जिनपूजा, सत्यार्थयज्ञ, पृष्ठ १०९।

५. ऐला सुकेला आम्र दाडिम कैंथ चिरभट लीजिए।
—श्री ऋषभनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न, चतुर्विंशतिजिनपूजा, पृष्ठ १०।

६. खरबूज पिस्ता देवकुसुमा नवल पुंगी पावनी।
—श्री नेमिनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थयज्ञ, पृ० १५५।

७. वृहत् हिन्दी कोश, पृष्ठ ४७५।

८. फल शोभा अधिकार, लोंग छुहारे जायफल।
—श्री रत्नत्रयपूजा, द्यानतराय, जैनपूजा पाठ संग्रह, पृष्ठ ७०।

९. श्री सरस्वती पूजा, द्यानतराय, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ३७६।

१०. फल आम नारंगी केरा, बादाम छुहार घनेरा।
श्री वासुपूज्यजिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थयज्ञ, पृष्ठ ८७।

सेवक[1] तथा हीरांचंद[2] द्वारा रचित पूजा काव्य में छुहारा फल का प्रयोग अर्घ्य-सामग्री के लिए हुआ है।

जायफल— एक विशेष फल जिसे जातिफल भी कहते हैं।[3] पूजाकाव्य में अठारहवीं शती के द्यानतराय विरचित 'श्री रत्नत्रय पूजा'[4] तथा उन्नीसवीं शती के मनरंगलाल द्वारा 'श्री सम्भवनाथजिनपूजा'[5] काव्य में जायफल का प्रयोग हुआ है।

जावित्री— जावित्री जायफल जन्य है जो दवाई के काम आती है। दशांगुली[6] और देवकुसुमा[7] इसके अपर नाम हैं। पूजाकाव्य में यह फल उन्नीसवीं शती के पूजा कवि मनरंगलाल विरचित 'श्री पुष्पदन्तजिनपूजा,[8] श्री नेमिनाथ जिन-पूजा[9] नामक कृतियों में दशांगुली और देवकुसुमा संज्ञाओं में व्यवहृत है।

---

१. श्रीफल और बादाम सुपारी, केला आदि छुहारा ल्याय।
—श्री आदिनाथ जिनपूजा, जैनपूजा पाठ संग्रह, पृष्ठ ६६।

२. लोंग छिवारा भेंट चढ़ाऊँ, मोक्ष मिलन के काजा।
—श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर समुच्चयपूजा, हीराचन्द, नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, पृष्ठ ७३।

३. वृहत् हिन्दी कोश, पृष्ठ ४६८-६६।

४. फल शोभा अधिकार, लोंग छुहारे जायफल।
—श्री रत्नत्रयपूजा, द्यानतराय, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ७०।

५. जातिफल एला फल ले केला।
—श्री सम्भवनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थ यज्ञ, पृष्ठ २६।

६. पंडित शिखरचन्द्र जैन शास्त्री ने 'सत्यार्थयज्ञ' के पृष्ठ ७० पर 'श्री पुष्पदंत जिनपूजा' कृति की टिप्पणी में दशांगुली को जावित्री कहा है।

७. पंडित शिखरचन्द्र जैन शास्त्री ने सत्यार्थयज्ञ के पृष्ठ १५५ पर श्री नेमिनाथ जिनपूजा कृति की टिप्पणी में देवकुसुमा के अर्थ जावित्री कहे हैं।

८. दशांगुली दाख बादाम गोला।
—श्री पुष्पदंत जिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थ यज्ञ, पृष्ठ ७०।

९. खरबूज पिस्ता देव कुसुमा नवल पुंगी पावनी।
—श्री नेमिनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थयज्ञ, पृष्ठ १५५।

नारियल—यह दक्षिण भारत का प्रमुख फल है। इसे श्रीफल[1], लांगली[2], नारिकेल[3] भी कहते हैं। पूजाकाव्य में अठारहवीं शती के पूजा रचयिता द्यानतराय विरचित 'श्री सरस्वतीपूजा' नामक कृति में यह फल श्रीफल संज्ञा में प्रयुक्त है।[4] उन्नीसवीं शती के मनरंगलाल प्रणीत 'श्री सम्भवनाथ जिनपूजा,[5] श्री विमलनाथजिनपूजा'[6] नामक कृतियों में यह फल नारिकेल, लांगली संज्ञाओं के साथ व्यवहृत है। इस शती के अन्य कवि रामचन्द्र[7], बख्तावररत्न[8] और मल्लजी[9] ने श्रीफल, नारिकेल संज्ञाओं में इस फल का प्रयोग किया है। बीसवीं शती में सेवक[10], मुन्नालाल[11], पूरणमल[12]

---

१. हिन्दी का बारहमासा साहित्य : उसका इतिहास तथा अध्ययन, डॉ० महेन्द्र सागर प्रचंडिया, सन् १९६१, पृष्ठ २९५।
२. श्री पंडित शिखर चन्द्र जैन शास्त्री द्वारा सत्यार्थयज्ञ के पृष्ठ ९३ पर श्री विमलनाथ जिनपूजा कृति की टिप्पणी में लांगली को नारियल की संज्ञा दी गई है।
३. वृहत् हिन्दी कोश, पृष्ठ ७०४।
४. बादाम छुहारा, लोंग सुपारी, श्रीफल भारी ल्यावत हैं।
—श्री सरस्वती पूजा, द्यानतराय, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ३७६।
५. श्री सम्भवनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थयज्ञ, पृष्ठ २६।
६. ले क्रमुक पिस्ता लांगली अरु दाख बादामे घनी।
—श्री विमलनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थयज्ञ, पृष्ठ ९३।
७. बादाम श्रीफल चारु पूंजी, मधुर मनहर ल्यायये।
—श्री सुमतिनाथ जिनपूजा, रामचन्द्र, चतुर्विंशति जिनपूजा, नेमीचन्द्र बाकलीवाल, जैन ग्रन्थ कार्यालय, मदनगंज (किशनगढ़) राजस्थान, अगस्त १९५१, पृष्ठ ४८।
८. श्री ऋषभनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न, चतुर्विंशति जिनपूजा, वीर पुस्तक भंडार, मनिहारों का रास्ता, जयपुर, पौष सं० २०१८, पृष्ठ १०।
९. केला अंब अनारही, नारिकेल ले दाख।
—श्री क्षमावाणी पूजा, मल्लजी, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ २५७।
१०. श्री आदिनाथ जिनपूजा, सेवक, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ९६।
११. श्री खण्डगिरिक्षेत्रपूजा, मुन्नालाल, जैनपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ १५६।
१२. श्री चांदनगांव महावीर स्वामीपूजा, पूरणमल, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १६०।

रघुसुत[1] और भगवानदास[2] द्वारा रचित पूजाकाव्य में नारियल फल का प्रयोग अर्घ्य-सामग्री के लिए हुआ है।

नारंगी—यह अम्ल जाति का फल विशेष है। विवेच्य काव्य में उन्नीसवीं शती के कवि मनरंगलाल रचित 'श्री श्रेयांसनाथ जिनपूजा'[3] श्री वासुपूज्य-जिनपूजा[4] में नारंगी फल का व्यवहार हुआ है। बीसवीं शती के हीराचंद[5], मुन्नालाल[6] और भगवानदास[7] प्रणीत पूजाओं में अर्घ्य-सामग्री के लिए नारंगी फल का प्रयोग हुआ है।

नीबू—नारंगी की भांति यह भी अम्ल जाति का फल है। इस फल को विजोरे[8], वातशत्रु[9], निम्बु भी कहते हैं। उन्नीसवीं शती के मनरंगलाल रचित 'श्री पद्मप्रभुजिनपूजा'[10] श्री श्रेयांसनाथजिनपूजा[11], श्री धर्मनाथजिनपूजा[12]

---

१. श्री विष्णुकुमार महामुनि पूजा, रघुसुत, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १७४।

२. क्रमुखदाख बदाम अनारला,
नरंगनीबूहि आमहि श्रीफला।
—श्री तत्वार्थसूत्र पूजा, भगवानदास, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ४११।

३. मधुर मधुर पाके आम्र निम्बू नरंगी।
—श्री श्रेयांसनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थयज्ञ, पृष्ठ ८१।

४. श्री वासुपूज्यजिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थयज्ञ, पृष्ठ ८७।

५. श्री फल केला आम नरंगी, पक्के फल सब ताजा।
—श्री चतुर्विंशति तीर्थंकरसमुच्चयपूजा, हीराचंद, नित्यनियम विशेष पूजन संग्रह, पृष्ठ ७३।

६. श्री खण्डगिरिक्षेत्रपूजा, मुन्नालाल, जैनपूजापाठ संग्रह, १५६।

७. क्रमुक दाख बदाम अनारला, नरंगनीबूहि आमहि श्रीफला।
—श्री तत्वार्थसूत्र पूजा, भगवानदास, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ४११।

८. बृहत् हिन्दी कोश, पृष्ठ ९७३।

९. पंडित शिखरचंद जैनशास्त्री ने सत्यार्थयज्ञ के पृष्ठ ४८ पर 'श्री पद्मप्रभु जिनपूजा' कृति की टिप्पणी में वातशत्रु को नीबू की संज्ञा दी है।

१०. मोच दंतबीज वातशत्रु ल्याय के घने।
—श्री पद्मप्रभुजिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थयज्ञ, पृष्ठ ४८।

११. श्री श्रेयांसनाथजिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थयज्ञ, पृष्ठ ८१।

१२. चिरभट आम्र पनस दाड़िम ले दाख कपित्थ विजोरें।
—श्री धर्मनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थयज्ञ, पृष्ठ १०९।

और श्री नेमिनाथ जिनपूजा[१] नामक पूजाकृतियों में नीबू फल वातशत्रु, निम्बु, विजोरें और नीबू संज्ञाओं में उल्लिखित है। बीसवीं शती के पूजाकवि भगवानदास द्वारा रचित 'श्री तत्वार्थसूत्रपूजा' नामक रचना में यह फल व्यवहृत है।[२]

पनस—यह काष्ठ-फोड़ जन्यफल है। इसे कटहल भी कहते हैं।[३] यहाँ यह उन्नीसवीं शती के मनरंगलाल विरचित 'श्री धर्मनाथजिनपूजा'[४] और 'श्री वर्द्धमानजिनपूजा'[५] नामक पूजाओं में व्यवहृत है।

पिस्ता—यह एक पौष्टिक फल है। इसका अपर नाम है निकोचक।[६] उन्नीसवीं शती के मनरंगलाल विरचित 'श्री सुमतिनाथजिनपूजा'[७], श्री सुपार्श्वनाथजिनपूजा[८] नामक पूजाओं में निकोचक और पिस्ता संज्ञाओं के साथ व्यवहृत है। इस शती के अन्य कवि रामचंद्र प्रणीत 'श्री सुपार्श्वनाथ जिनपूजा'[९] तथा 'श्री सम्मेदशिखरपूजा'[१०] नामक कृतियों में पिस्ता के अभि-

---

१. श्री नेमिनाथजिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थयज्ञ, पृष्ठ १४६।

२. क्रमुक दाख वदाम अनारला,
नरंगनीबूहिं आमहिं श्रीफला।
—श्री तत्त्वार्थ सूत्र पूजा, भगवानदास, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ४११।

३. वृहत् हिन्दी कोश, पृष्ठ ७७१।

४. श्री धर्मनाथजिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थयज्ञ, पृष्ठ १०६।

५. पनस दाडिम आम्र पके भये।
—श्री वर्द्धमानजिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थयज्ञ, पृष्ठ १६८।

६. पंडित शिखरचंद्र जैन शास्त्री ने सत्यार्थयज्ञ के पृष्ठ ४० पर श्री सुमतिनाथ जिनपूजा की टिप्पणी में निकोचक को पिस्ता कहा है।

७. निकोचक सुगोस्तनीभराय थालिका वड़ी।
—श्री सुमतिनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थयज्ञ, पृष्ठ ४०।

८. पिस्ता सुवादाम नवीन हेरे।
—श्री सुपार्श्वनाथ जिनपूजा, सत्यार्थयज्ञ, पृष्ठ ५६।

९. वादाम श्रीफल लोंग पिस्ता. मिष्ट खारिक ल्याव ही।
—श्री सुपार्श्वनाथजिनपूजा, रामचंद्र, चतुर्विंशति जिनपूजा, नेमीचंद वाकलीवाल, जैन ग्रंथ कार्यालय, मदनगंज, किशनगढ़, राजस्थान, अगस्त १९५१, पृष्ठ ६२।

१०. वादाम श्रीफल लोंग पिस्ता लेय शुद्ध सम्हाल ही।
—श्री सम्मेदशिखरपूजा, रामचंद्र, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १२८।

दर्शन होते हैं। बीसवीं शती के मुन्नालाल[1] और पूरणमल[2] ने पिस्ता फल का प्रयोग बखूबी किया है।

फूट—एक फल विशेष जो खरीफ की फसल में उत्पन्न होता है। इसे चिरभट भी कहते हैं।[3] पूजाकाव्य में उन्नीसवीं शती के कवि मनरंगलाल[4] और बख्तावररत्न[5] ने चिरभट संज्ञा के साथ इस फल का व्यवहार किया है।

बादाम—यह शुष्क पौष्टिक फल है। अठारहवीं शती के द्यानतराय विरचित 'श्री सरस्वतीपूजा' रचना में बादाम प्रयुक्त है।[6] उन्नीसवीं शती के मनरंगलाल रचित 'श्री सुपार्श्वनाथजिनपूजा'[7], 'श्री मल्लिनाथजिनपूजा'[8] तथा रामचंद्र प्रणीत 'श्री सुमतिनाथजिनपूजा'[9], श्री पद्मप्रभुजिनपूजा[10] नामक पूजाओं में बादाम व्यवहृत है।

---

१. श्रीफल पिस्ता सु बदाम, आम नारंगिवरं।
—श्री खण्डगिरिक्षेत्र पूजा, मुन्नालाल, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १५६।

२. श्री चांदन गांव महावीरस्वामीपूजा, पूरणमल, जैनपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ १६०।

३. पंडित शिखरचन्द्र जैन शास्त्री ने सत्यार्थयज्ञ के पृष्ठ १०६ पर 'श्री धर्मनाथ जिनपूजा' कृति में चिरभट फूट के अर्थ में उल्लेख किया है।

४. श्री धर्मनाथजिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थयज्ञ, पृष्ठ १०६।

५. एला सुकेला आम्र दाडिम कैथ चिरभट लीजिये।
—श्री ऋषभनाथजिनपूजा, बख्तावररत्न, चतुर्विंशतिजिनपूजा, वीर पुस्तक भंडार, मनिहारों का रास्ता, जयपुर, पौष सं० २०१८, पृष्ठ १०।

६. बादाम छुहारी, लौंग सुपारी, श्रीफल भारी ल्यावत हैं।
—श्री सरस्वतीपूजा, द्यानतराय, राजेश नित्यपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ३७६।

७. पिस्ता सु बादाम नवीन हेरे, थारा भराऊँ कलधौत केरे।
—श्री सुपार्श्वनाथजिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थयज्ञ, पृष्ठ ५६।

८. श्री मल्लिनाथजिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थयज्ञ, पृष्ठ १३६।

९. बादाम श्रीफल चारु पुंगी, मधुर मनहर ल्याये।
—श्री सुमतिनाथ जिनपूजा, रामचंद्र, चतुर्विंशति जिनपूजा, नेमीचंद बाकलीवाल, पृष्ठ ४८।

१०. श्री पद्मप्रभुजिनपूजा, रामचंद्र, चतुर्विंशतिजिनपूजा, नेमीचंद बाकलीवाल, पृष्ठ ५५।

बीसवीं शती के पूजाकवि सेवक[1], मुन्नालाल[2] और पूरणमल[3] ने बादाम फल का प्रयोग अष्टद्रव्य के अन्तर्गत किया है।

लोंग—एक फल विशेष। पूजाकाव्य में अठारवीं शती के कवि द्यानतराय प्रणीत 'श्री सरस्वतीपूजा'[4], श्री रत्नत्रयपूजा[5] नामक पूजाओं में यह फल व्यवहृत है। उन्नीसवीं शती के पूजाकवि रामचंद्र विरचित 'श्री पद्मप्रभु जिनपूजा'[6], श्री सुपार्श्वनाथजिनपूजा'[7], श्री शीतलनाथजिनपूजा'[8] और श्री सम्मेदशिखरपूजा'[9] नामक कृतियों में लोंग फल द्रष्टव्य है।

बीसवीं शती के हीराचंद[10], पूरणमल[11] और रघुसुत[12] ने लोंग का व्यवहार अर्घ्य-सामग्री के लिए किया है।

---

१. श्रीफल और बादाम सुपारी,
केला आदि छुहारा ल्याय।
—श्री आदिनाथ जिनपूजा, सेवक, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ९६।

२. श्रीफल पिस्ता सु बदाम, आम नारंगि धरुं।
—श्री खण्डगिरिक्षेत्रपूजा, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १५६।

३. श्री चांदन गांव महावीरस्वामी पूजा, पूरणमल, जैनपूजापाठ संग्रह १६०।

४. श्री सरस्वतीपूजा, द्यानतराय, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ३७६।

५. फल शोभा अधिकार, लोंग छुहारे जायफल।
—श्री रत्नत्रयपूजा, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ७०।

६. श्रीफल लोंग बदाम सुपारी, एला आदि मंगावें।
—श्री पद्मप्रभुजिनपूजा, रामचंद्र, चतुर्विंशति जिनपूजा, नेमीचंद बाकलीवाल, पृष्ठ ५५।

७. श्री सुपार्श्वनाथजिनपूजा, रामचंद्र, चतुर्विंशतिजिनपूजा, नेमीचंद बाकलीवाल, पृष्ठ ६२।

८. फल लेहि उत्तम मिष्ट मोहन, लोंग श्रीफल आदि ही।
—श्री शीतलनाथ जिनपूजा, रामचंद्र, चतुर्विंशति जिनपूजा, नेमीचंद बाकलीवाल, पृष्ठ ८८।

९. बादाम श्रीफल लोंग पिस्ता लेय शुद्ध सम्हालही।
—श्री सम्मेदशिखरपूजा, रामचंद्र, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १२८।

१०. लोंग छिवारा भेंट चढ़ाऊं, मोक्ष मिलन के काजा।
—श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर समुच्चय पूजा, हीराचंद, नित्य नियम विशेष पूजन संग्रह, पृष्ठ ७३।

११. श्री चांदन गाँव महावीर स्वामी पूजा, पूरणमल, जैनपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ १६०।

१२. लोंग लायची श्रीफलसार, पूजों श्री मुनि सुखदातार।
—श्री विष्णुकुमार महामुनि पूजा, रघुसुत, जैनपूजापाठसंग्रह, पृष्ठ १७४।

सुपारी—एक भारतीय फल जिसे पुंगी[1], क्रमुक[2] भी कहते हैं। पूजा-काव्य में अठारहवीं शती के द्यानतराय प्रणीत 'श्री सरस्वतीपूजा' में यह फल सुपारी संज्ञा में दृष्टिगत है।[3] उन्नीसवीं शती के मनरंगलाल विरचित 'श्री नेमिनाथजिनपूजा'[4], 'श्री ऋषभदेवपूजा'[5] नामक पूजाओं में पुंगी, क्रमुक संज्ञाओं में यह प्रयुक्त है। इस शती के अन्य कवि रामचंद्र रचित 'श्री सुमतिनाथ-जिनपूजा[6], श्री पद्मप्रभुजिनपूजा'[7] में पुंगी, सुपारी संज्ञा में इस फल का व्यवहार हुआ है।

बीसवीं शती के कवि सेवक[8] और भगवानदास[9] ने सुपारी, क्रमुक संज्ञाओं के साथ इस फल का प्रयोग अर्घ्य-सामग्री के लिए किया है।

उपर्यंकित विवेच्य काव्य में इक्कीस फलों का प्रयोग अर्घ्य-सामग्री के लिए हुआ है। छुहारा, जायफल, नारियल, बादाम, लौंग, सुपारी नामक

---

१. हिन्दी का बारहमासा साहित्य : उसका इतिहास तथा अध्ययन, डॉ० महेन्द्र सागर प्रचंडिया, चतुर्थ अध्याय, पृष्ठ २९६।

२. बृहत् हिन्दी कोश, पृष्ठ ३२४।

३. बादाम छुहारी, लौंग सुपारी, श्रीफलभारी ल्यावत हैं।
—श्री सरस्वती पूजा, द्यानतराय, राजेश नित्यपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ३७६।

४. श्री नेमिनाथजिनपूजा, मनरंगलाल, सत्यार्थयज्ञ, पृष्ठ १५५।

५. क्रमुक श्रीफल सुंदर लाय सो।
—श्री ऋषभनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, पृष्ठ १२।

६. बादाम श्रीफल चारु पुंगी, मधुर मनहर ल्याये।
—श्री सुमतिनाथजिनपूजा, रामचंद्र, चतुर्विंशति जिनपूजा, नेमीचंद बाकलीवाल, पृष्ठ ४८।

७. श्रीफल लौंग बादाम सुपारी, एला आदि मँगावें।
—श्री पद्मप्रभुजिनपूजा, रामचंद्र, चतुर्विंशति जिनपूजा, नेमीचंद बाकलीवाल, पृष्ठ ५५।

८. श्रीफल और बादाम सुपारी,
केला आदि छुहारा ल्याय।
—श्री आदिनाथजिनपूजा, सेवक, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ९६।

९. क्रमुक दाख बदाम अनारला।
नरंगनी वृहि आमहि श्रीफला॥
—श्री तत्वार्थसूत्रपूजा, भगवानदास, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ४११।

फल अठारहवीं शती में तथा उन्नीसवीं शती में सभी इक्कीस विवेच्य फल पूजाकाव्य में प्रयुक्त हैं।

बीसवीं शती में कुल तेरह फलों का प्रयोग हुआ है जिनका अकारादिक्रम निम्न प्रकार है—अंगूर, अनार, आम, इलायची, केला, छुहारा, नारियल नारंगी, नीबू, पिस्ता, बादाम, लौंग, सुपारी।

अठारहवीं से बीसवीं शती तक निरन्तर व्यवहृत होने वाले फलों की संख्या पाँच है, यथा—छुहारा, नारियल, बादाम, लौंग तथा सुपारी।

इन सभी फलों के व्यवहार से यह सहज में कहा जा सकता है कि उन्नीसवीं शती के कवियों के चिन्तन का क्षेत्र व्यापक रहा है। उन्होंने तत्कालीन प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण कर अपनी भक्त्यात्मक अभिव्यंजना में तत्युगीन प्रचलित फलों को गृहीत किया है।

पशु-वर्णन

पशु शब्द को वैज्ञानिक नहीं माना जा सकता है। भाषारत्न में कणाद ने इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है—'लोम वल्लांगुलवत्वं पशुत्वं' लोम और लांगुल विशिष्ट जन्तु को पशु कहते हैं। स्थूल रूप से समस्त प्राणियों या देहधारियों को दो भागों में बांटा जा सकता है—अपक्ष और दूसरा सपक्ष। अपक्ष सभी पशु के अन्तर्गत दिये गये हैं और सपक्ष में पक्षी। इस दृष्टि से मेढक, मछली और झींगुर भी पशुओं में रखे गए हैं।[1] प्रकृति में मानव को अपने अलावा अन्य प्राणियों से भी परिचित होना पड़ता है। पूजा-साहित्य में व्यवहृत पशुओं की स्थिति पर यहाँ विचार करना हमारा मूलोद्देश्य है—

उरग—यह विषैला जीव है। इसके नेत्र और कान एक ही क्षेत्र-प्रदेश में होते हैं अस्तु इसे 'चक्षुश्रवा' भी कहा जाता है। इस जीव का प्रयोग हिन्दी साहित्य में निम्न रूपों में मिलता है :—

१. नाग कथा के रूप में
२. आलंकारिक प्रयोग के रूप में
३. खल स्वभाव की अभिव्यक्ति के लिए
४. पूर्वभव के रूप में
५. हिंसात्मक वृत्ति की अभिव्यक्ति के लिए
६. प्रकृति प्रसंग में

जैन-हिन्दी-पूजाकाव्य में उरग का प्रयोग अठारहवीं शती में उरग[2], नाग[3]

---

१. हिन्दी का बारहमासा साहित्य : उसका इतिहास तथा अध्ययन, डॉ० महेन्द्रसागर प्रचण्डिया, पृष्ठ १६४।

२. अति सबल मद कंदर्प जाको,
क्षुधा-उरग अमान है।
—श्री देवशास्त्र गुरुपूजा, द्यानतराय, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १८।

३. काम-नाग विषधाम,
नाश को गरुड़ कहे हो।
—श्री बीस तीर्थंकर पूजा, द्यानतराय, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ३४।

और भुजंग[1] आलंकारिक एवं प्रकृति प्रसंग में तथा उन्नीसवीं में नाग[2], उरग[3], धनिंद[4], पद्मावती[5] प्राकृतिक-प्रसंग में सहायक बनकर और बीसवीं शती में विषधर[6], नाग[7] नामक संज्ञाओं के साथ प्राकृतिक एवं आलंकारिक रूप में व्यवहृत है।

ऊँट—यह भारवाही पशु है। मरुभूमि में यात्रा के लिए प्रायः उपयोगी पशु है।[8] इसकी गर्दन अपेक्षाकृत अन्य पशुओं से लम्बी और बड़ी होती है। हिन्दी के बारहमासा साहित्य में ऊँट का वर्णन मुहावरा के प्रयोग में वर्णित है।[9]

---

१. भद्रबाहु भद्रनि के करता,
श्री भुजंग भुजंगम भरता।
— श्री बीस तीर्थंकर पूजा, द्यानतराय, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ३५।

२. भयो तव कोप कहे कित जीव,
जले तव नाग दिखाय सजीव।
—श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न, राजेश नित्यपूजा पाठ संग्रह, पृष्ठ १२२।

३. जय अजित गये शिव हनि कर्म,
जय पार्श्व करो जुग उरग सर्म।
—श्री सम्मेदशिखरपूजा, रामचंद्र, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १३६।

४. तवै पद्मावती कंथ धनिंद,
चले जुग आय तहाँ जिनचंद।
—श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १२६।

५. वही।

६. विषधर वम्बी करि चरनतल ऊपर वेल चढ़ी अनिवार।
युगजंगा कटि बाहु वेढ़ि कर पहुँची वक्षस्थल परसार॥
—श्री बाहुवलीस्वामी पूजा, जिनेश्वरदास, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १७२।

७. डरे ज्यों नाग गरुड़ को देखि।
भजे गज जुत्थ जु सिंहहि पेखि॥
—श्री सम्मेदाचलपूजा, जवाहरलाल, बृहजिनवाणी संग्रह, पृष्ठ ४८२।

८. वृहत् हिन्दी कोश, पृष्ठ २१५।

९. हिन्दी का बारहमासा साहित्यः उसका इतिहास तथा अध्ययन, डॉ० महेन्द्र सागर प्रचंडिया, पृष्ठ २०७।

बीसवीं शती के जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में ऊँट का प्रयोग भारवाही के रूप में उल्लिखित है।[1]

गज—यह भारतीय पशु है। यह श्वेत और काले रंग का पाया जाता है। इसके कान और सूंड़ दीर्घ होते हैं। हिन्दी काव्य में इस पशु का प्रयोग निम्न रूपों में उपलब्ध है—

१. संवेदनशील प्राणी के रूप में
२. मतवालेपन के लिए
३. पूर्वभव के लिए
४. आलंकारिक रूप में
५. प्रकृति वर्णन के रूप में
६. स्वप्न संदर्भ में
७. पुत्रजन्म प्रतीक अर्थ में
८. प्रमत्त चाल के लिए

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में अठारहवीं शती से इस पशु का प्रयोग द्रष्टव्य है। कविवर द्यानतराय प्रणीत 'श्री बृहत् सिद्ध चक्र पूजा भाषा' में गज का उल्लेख 'सवारी' के लिए मिलता है।[2]

उन्नीसवीं शती में इस पशु का व्यवहार कविवर वृंदावन, मनरंगलाल,

---

१. प्रभु में ऊँट बदल भैंसा भयो,
ज्यां पे लदियो भार अपार हो।
—श्री आदिनाथ जिनपूजा, सेवक, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ९८।

२. पुन्नीगज पर चढ़ चालन्ता,
पापी नंगे पग धावन्ता।
पुन्नी के शिर छत्र फिरावे,
पापी शीश बोझ ले धावे।
—श्री बृहत् सिद्धचक्रपूजाभाषा, द्यानतराय, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ २३९।

रामचंद्र और बख्तावररत्न द्वारा क्रमशः गज[1], ऐरावत[2], हस्ती[3] और गजराज[4] नामक संज्ञाओं के साथ प्राकृतिक वर्णन एवं सवारी के लिए हुआ है।

बीसवीं शती में पूजा कवयिता मुन्नालाल और जवाहरलाल द्वारा हाथी तथा गज संज्ञाओं के साथ क्रमशः 'श्रीखण्डगिरिक्षेत्रपूजा'[5] एवं श्री सम्मेदाचल पूजा'[6] नामक कृतियों में हाथी गुफा तथा युद्ध-प्रसंग में प्रयोग सफलतापूर्वक हुआ है।

गर्दभ—गर्दभ अपनी सिधाई के लिए प्रसिद्ध है। लोकजीवन में इसके स्वर-भंग की प्रसिद्धि कम महत्वपूर्ण नहीं है। जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में गर्दभ का व्यवहार अठारहवीं शती के उत्कृष्ट पूजा रचयिता द्यानतराय द्वारा प्रणीत

---

१. गजपुर गज साजि सबै तबै,
गिरि जजैं इतमें जजि हों अबै।
—श्री शांतिनाथजिनपूजा, वृंदावन, राजेश नित्यपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १२३।

२. ऐरावत सम अति क्रोधवान,
सनमुख आवत दंती महान।
—श्री अनंतनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ३५३।

३. हस्ती घोटक बैल,
महिष असवारी आयो।
—श्री चन्द्रप्रभु पूजा, रामचन्द्र, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ६५।

४. चढ़े गजराज कुमारन संग।
सुदेखत गंगतनी सु तरंग॥
—श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा, बख्तावररत्न, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ३७५।

५. तिनमें इक हाथी गुफा जान,
प्राचीन लेख शोभे महान्।
—श्री खण्डगिरिक्षेत्रपूजा, मुन्नालाल, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १५७।

६. भजे गज जूत्य जु सिंहहि देखि।
डरे ज्यों नाग गरुड़ को देखि॥
—श्री सम्मेदाचल पूजा, जवाहरलाल, बृहजिनवाणी संग्रह, पृष्ठ ४८२।

'श्री बृहत् सिद्धचक्रपूजा भाषा' नामक रचना में गर्दभ-स्वर के लिए परिलक्षित है।[1]

गाय—यह उपयोगी तथा सामाजिक पशु-धन है। यह अपनी उपयोगिता के लिए समादृत है। हिन्दी वाङ्मय में गाय का प्रयोग आलंकारिक तथा दुग्ध प्रदान करने वाले पशुओं में उल्लेखनीय है।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती से इस पशु का प्रयोग मिलता है। इस शती के पूजा कवयिता मनरंगलाल द्वारा प्रणीत 'श्री नेमिनाथ जिनपूजा' नामक कृति में गाय के घृत के लिए इसका प्रयोग हुआ है।[2]

बीसवीं शती के पूजाकवि पूरणमल ने गाय का प्रयोग कामधेनु संज्ञा के रूप में 'श्री चांदनपुर गाँव महावीर स्वामीपूजा' नामक पूजा रचना में सर्व प्रकार की एषणातृप्ति करने के साधन के लिए किया है।[3]

घोड़ा—यह शक्ति-बोधक पशु है। इस पशु के अन्य पशुओं की भाँति सींग नहीं होते। यह काला, लाल, सफेद रंगों में प्रायः पाया जाता है। हिन्दी काव्य में चाल, शक्ति तथा धन के लिए 'घोड़ा' पशु का प्रयोग परिलक्षित है। जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती के इस पशु का उल्लेख मिलता है। इस शती के पूजाकवि रामचन्द्र प्रणीत 'श्री चन्द्रप्रभु पूजा' नामक पूजाकृति में घोटक संज्ञा का प्रयोग सवारी के लिए हुआ है।[4]

---

१. सुस्वर उदय कोकिलावानी,
दुस्वर गर्दभ-ध्वनि समजानी।
—श्री बृहत्सिद्धचक्र पूजाभाषा, द्यानतराय, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ २४२।

२. पकान्नपूरित गाय घृत सों,
मधुर मेवा वासितं।
—श्री नेमिनाथ जिनपूजा, मनरंगलाल, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ३६६।

३. जहाँ कामधेनु नित आय दुग्ध जु बरसावे।
तुम चरणनि दरशन होत आकुलता जावे॥
—श्री चांदन गांव महावीर स्वामी पूजा, पूरणमल, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १६१।

४. हस्ती घोटक बेल,
महिष असवारी धायो।
—श्री चन्द्रप्रभुपूजा, रामचन्द्र, राजेश नित्य पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ९५।

बकरा—यह दीन परमुखापेक्षी पशु है। जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में बकरा का प्रयोग बीसवीं शती के पूजाकार सेवक प्रणीत 'श्री आदिनाथ जिनपूजा' नामक पूजाकाव्य में दीनता के लिए हुआ है। यह अनाथ के रूप में उल्लिखित है।[1]

बछड़ा—'गो-वत्स' वस्तुतः 'बछड़ा' कहलाता है। हिन्दी काव्य में इसका प्रयोग निम्न अभिप्राय में उपलब्ध है—

(१) उबकारने के लिए स्वप्न संदर्भ में
(२) दृढ़ता के लिए
(३) कथा प्रसंग में
(४) भार ढोने के अर्थ में
(५) प्रतीकात्मक अर्थ में
(६) प्रकृति वर्णन के रूप में।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में बीसवीं शती के पूजा कवयिता सेवक विरचित 'श्री आदिनाथजिनपूजा' नामक पूजा रचना में 'बछड़ा पशु' अनाथ पशु के रूप में प्रयुक्त है।[2]

बैल—यह कृषि प्रधान भारतदेश का उपयोगी पशु है। इसी के बलबूते पर भारतीय कृषि-कर्म निर्भर करता है। पूजाकाव्य में यह बोझा लादने के उद्देश्य से प्रयुक्त है। उन्नीसवीं शती के रामचन्द्र प्रणीत 'श्री चन्द्रप्रभु पूजा' नामक कृति में बैल का इसी रूप में प्रयोग परिलक्षित है।[3]

महिष—बोझ-वाहन के रूप में यह पशु अपना महत्व पूर्ण स्थान रखता है। जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती के पूजा कवि वृंदावन विरचित

---

१. हिरणा बकरा बाछड़ा,
पशुदीन गरीब अनाथ हो।
प्रभु में ऊँट बलद भैंसा भयो,
ज्यां पे लदियो भार अपार हो॥
—श्री आदिनाथजिनपूजा, सेवक, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ९८।

२. श्री आदिनाथ जिनपूजा, सेवक, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ९८।

३. कोउ पुण्य बसाय, बाल तपते सुर धायो।
हस्ती घोटक बैल, महिष असवारी धायो॥
—श्री चन्द्रप्रभुपूजा, रामचन्द्र, राजेश नित्यपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ९५।

क्रमशः श्री वासुपूज्य जिनपूजा[1] तथाश्री चन्द्रप्रभजिनपूजा[2] नामक काव्यों में यह पशुतीर्थंकर-पग चिह्न के लिए तथा बोझ-वाहक के लिए प्रयुक्त है।

मृग—यह वनचारी पशु है। शृंगविहीन और शृंगश्री के रूप में यह दो भागों में विभक्त किया गया है। इसकी आँखें सुन्दर होती हैं। इसकी त्वचा से बैठने का आसन बनता है।

हिन्दी वाङ्मय में इसका प्रयोग निम्न रूपों में हुआ है, यथा—

१. प्रकृति वर्णन के लिए
२. आलंकारिक प्रयोग के लिए मुख्यतः नयन के उपमान के लिए
३. वस्तुवर्णन के लिए—मृगतृष्णा, मृगमद, मृगछाला आदि
४. विरहिणी की दशा को उद्दीप्त करने के लिए
५. तीर्थंकर चिन्ह रूप में
६. पूर्वभव के रूप में
७. सहज स्वभाव के रूप में
८. दीनता के लिए

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में बीसवीं शती के उत्कृष्ट पूजाकार युगल किशोर जैन 'युगल' रचित 'श्री देवशास्त्र गुरुपूजा' नामक पूजारचना के जयमाला प्रसंग में मृग का व्यवहार तृष्णा उपमान के लिए किया है।[3]

इस शती के अन्य पूजाकवि सेवक द्वारा प्रणीत 'श्री आदिनाथ जिनपूजा' नामक पूजाकृति में हिरण संज्ञा के साथ यह पशु दीनता प्रदर्शन के लिए प्रयुक्त है।[4]

---

१. महिष-चिह्न पद लसे मनोहर,
लाल वरन-तन समता-दाय।
—श्री वासुपूज्य जिनपूजा, वृन्दावन, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ३४५।

२. कोउ पुण्य वसाय, बाल तपते सुरधायो।
हस्ती घोटक बैल, महिष असवारी धायो॥
—श्रीचन्द्रप्रभु पूजा, रामचन्द्र, राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, पृष्ठ ६५।

३. मृग सम मृग तृष्णा के पीछे,
मुझको न मिली सुख की रेखा।
—श्रीदेवशास्त्रगुरु पूजा, युगल किशोर 'युगल'—जैन पूजापाठ संग्रह पृष्ठ ३०।

४. हिरणा बकरा बाछड़ा पशुदीन गरीब अनाथ हो।
प्रभु मैं ऊँट बलद भैंसा भयो, ज्यां पे लदियो भार अपार हो॥
—श्री आदिनाथ जिनपूजा, सेवक जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ६८।

सिंह—यह शक्ति और साहस शौर्य का पशु है। अपनी वीरता और साहस के कारण यह 'वन का राजा' कहलाता है। इसकी अनेक उपजातियाँ होती हैं। केहरि, सिंह, चीता, व्याघ्र परन्तु यहाँ 'सिंह' कोटि में ही वर्णन किया गया है।

हिन्दी साहित्य में इस पशु का निम्न प्रकार से प्रयोग हुआ है—

(१) प्रकृति वर्णन के रूप में
(२) तीर्थंकर चिन्ह के रूप में
(३) आलंकारिक रूप में
(४) पूर्वभव के रूप में
(५) स्वप्न सन्दर्भ में
(६) प्रतीक रूप में
(७) हिंसक रूप में

जैन-हिन्दी—पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती के पूजाकवयिता वृन्दावन ने 'केहरि' संज्ञा के साथ 'श्रीमहावीरस्वामी पूजा' नामक रचना में चिह्न के लिए प्रयोग किया है।[1]

बीसवीं शती के पूजा रचयिता पूरणमल और जवाहरलाल ने इस जीव का उल्लेख क्रमशः शेर और सिंह नामक संज्ञाओं के साथ 'श्री चाँदनगाँव महावीर स्वामी पूजा'[2] एवं 'श्री सम्मेदाचलपूजा'[3] नामक रचनाओं में क्रमशः तीर्थंकर पग-चिन्ह तथा हाथी-मर्दक के रूप में किया है।

---

१. श्री मतवीर हरै भवपीर, भरै सुखसीर अनाकुलताई।
केहरि अंक अरीकरदंक, नये हरिपंकति मौलिसु आई॥
—श्री महावीर स्वामी पूजा, वृन्दावन,—राजेश नित्य पूजा पाठ संग्रह, पृष्ठ १३२।

२. तहाँ श्रावक जन बहु गये आय,
किये दर्शन करि मन वच काय।
है चिह्न शेर का ठीक जान,
निश्चय हैं ये श्रीवर्द्धमान॥
—श्री चाँदनगाँव महावीर स्वामीपूजा, पूरणमल, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १६३।

३. भजे गज जुत्थ जु सिंहहि पेखि।
डरै ज्यों नाग गरुड़ को देखि।
—श्री सम्मेदाचलपूजा, जवाहरलाल, वृहजिनवाणी संग्रह, पृष्ठ ४८२।

उपर्यंकित विवेचन के आधार पर यह सहज में कहा जा सकता है कि पूजाकाव्य की अभिव्यंजना में पशुओं की भूमिका बड़े महत्व की है। बारह पशुओं का विविध प्रसंगों में नाना अभिप्रायों के लिए प्रयोग उल्लेखनीय है। इन पशुओं के प्रयोग से पूजा काव्याभिव्यंजना में अर्थ प्रवाह के अतिरिक्त पशु-विज्ञान का सम्यक् उद्घाटन हुआ है।

पक्षी-वर्णन

पक्षी हमेशा से मानव-हृदय में भावों का उद्रेक करते आये हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की शब्दावलि—'पक्षी हमारे विनोद का साथी था, रहस्यालाप का दूत था, भविष्य के शुभाशुभ का द्रष्टा था, वियोग का सहारा था, संयोग का योजक था, युद्ध का सन्देश-वाहक था और जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं था जहाँ वह मनुष्य का साथ न देता हो।'[1] जैन-हिन्दी-पूजा काव्य में मानवीय भावों की अभिव्यक्ति के लिए पक्षियों का उपयोग हुआ है। विवेच्य काव्य में प्रयुक्त पक्षियों का अध्ययन कर उनका मूल्यांकन करना यहाँ हमें अभीष्ट रहा है, यथा—

काक—भारतीय पक्षी है—काक। वह कोयल की भाँति श्याम वर्ण का होता है। श्राद्धपक्ष में इस पक्षी का सामाजिक मूल्य बढ़ जाता है। भारतीय शकुन-परम्परा में इसके प्रातः बोलने से किसी आगन्तुक-आगमन की कल्पना की जाती है। जैन-जैनेतर साहित्य में काक पक्षी का प्रयोग विभिन्न रूप से निम्नांकित लेखनी में द्रष्टव्य है—

१. अशोभनीय वाणी के लिए
२. विकृत तत्वों (अपान) के भक्षक रूप में
३. आलंकारिक प्रयोग के रूप में
४. अशुभ जीव के रूप में
५. उच्छिष्ठ (जूठन) पर रुचि रखने वाला जीव
६. नरक-वर्णन प्रसंग में

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में इस पक्षी के अभिदर्शन अठारहवीं शती के उत्कृष्ट पूजाकार द्यानतराय द्वारा प्रणीत 'श्री दशलक्षण धर्मपूजा' काव्य में होते हैं। कवि ने सांसारिक प्राणी की काम-वासना जन्य मनोवृत्ति का चित्रण करते हुए स्पष्ट किया है कि जिस प्रकार अशौच तन में काम के वशीभूत

---

१. भारत के पक्षी, राजेश्वर प्रसाद नारायणसिंह, पब्लिकेशन्स डिवीजन, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, दिल्ली, सन् १९५८, पृष्ठ ३०।

प्राणी रति-क्रीड़ा किया करते हैं, उसी प्रकार श्मशान में मृत शरीर को चोंच भरकर काक सुखी होता है।[1]

कोकिला—यह पक्षी वसन्तऋतु में आम्र-मंजरियों में प्रच्छन्न पंचम स्वर में गाता है। इसकी स्वर-साधना और कलित काकली प्रसिद्ध है। साहित्य में इसका स्थान अक्षुण्ण है। कोकिला का व्यवहार हिन्दी वाङ्मय में सुन्दर स्वर के लिए तथा जिनवाणी एवं मिथ्यावाणी के परस्पर तुलनात्मक सन्दर्भ में परिलक्षित है।

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में कोकिला का उल्लेख अठारहवीं शती में मिलता है। इस काल के पूजा रचयिता द्यानतराय ने 'श्री बृहतसिद्धचक्र पूजाभाषा' नामक कृति में इस पक्षी का प्रयोग परम्परानुमोदित सुन्दर स्वर के लिए किया है।[2]

गरुड़—गरुड़ चील की तरह एक पक्षी है। यह नाग नामक कीट का घोर शत्रु होता है। बारहमासा साहित्य में गरुड़ प्रियतम के उपमान के लिए लाया गया है क्योंकि विरहिणी नायिका को नाग रूपी विरह डस रहा है। गरुड़ रूपी पति द्वारा ही वह निर्भय हो पाती है।[3]

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में अठारहवीं शती से गरुड़ पक्षी के अभिदर्शन होते हैं। इस शती के कवयिता द्यानतराय द्वारा प्रणीत 'श्री देवशास्त्र गुरुपूजा'[4] और 'श्री बीसतीर्थंकर पूजा'[5] नामक पूजा रचनाओं में गरुड़ का

---

१. कूरे तिया के अशुचि तन में,
   कामरोगी रति करें।
   बहु मृतक सड़हिं मसान माँही,
   काक ज्यों चोंचें भरें॥
   —श्री दशलक्षणधर्मपूजा, द्यानतराय, —जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ६७।

२. सुस्वर उदय कोकिला वानी,
   दुस्वर गर्दभ-ध्वनि सम जानी।
   —श्रीबृहत् सिद्धचक्र पूजाभाषा, द्यानतराय, जैनपूजापाठ संग्रह, पृ० २४२।

३. हिन्दी का बारहमासा साहित्य : उसका इतिहास तथा अध्ययन, डा० महेन्द्र सागर प्रचंडिया, पृष्ठ २४५।

४. अति सबल मद कंदर्प जाको, क्षुधा-उरग अमान है।
   दुस्सह भयानक तासु नाशन को सुगरुड़ समान है॥
   —श्रीदेवशास्त्र गुरुपूजा, द्यानतराय, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १८।

५. काम-नाग विषधाम,
   नाश को गरुड़ कहे हो।
   — श्रीबीसतीर्थंकर पूजा, द्यानतराय, जैनपूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ३४।

व्यवहार क्रमशः क्षुधारूपी उरग एवं कामरूपी नाग को समाप्त करने के लिए हुआ है।

बीसवीं शती में जवाहरलाल द्वारा गरुड़ पक्षी का प्रयोग सादृश्य मूलक पद्धति में हुआ है। जिस प्रकार सिंह को देखकर हाथी भयभीत होता है उसी प्रकार गरुड़ पक्षी को देखकर नाग भयभीत हुआ करता है।[1]

चकोर—यह आकार-प्रकार में बहुत कुछ तीतर नामक पक्षी से समता रखता है। इसका स्वभाव विरोधाभासी है। एक ओर यह शीतल चन्द्रमूयष का प्रेमी है तो दूसरी ओर जलते हुए अंगारे का भी। इसी अनोखी प्रवृत्ति के कारण साहित्य में इस पक्षी ने प्रमुख स्थान प्राप्त किया है। लोक में यात्रा के समय चकोर का बोलना प्रायः शुभ माना गया है।

जैन-अजैन साहित्य में चकोर पक्षी का व्यवहार निम्न रूप में द्रष्टव्य है—

१. आलंकारिक प्रयोग में
२. पुनर्जन्म विश्लेषण सन्दर्भ में
३. अनन्य प्रेमी के रूप में
४. प्रसन्न स्वभाव के प्रसंग में
५. तीर्थंकर के चिन्ह रूप में

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में चकोर पक्षी उन्नीसवीं शती से प्रयुक्त है। इस शती के पूजा प्रणेता वृन्दावन ने चित के लिए चकोर का व्यवहार 'श्री चन्द्रप्रभजिनपूजा' नामक रचना में किया है।[2]

बीसवीं शती के उत्कृष्ट पूजा रचयिता जिनेश्वरदास विरचित 'श्री नेमिनाथ जिनपूजा' नामक पूजाकृति में चकोर पक्षी व्यवहृत है।[3]

चातक—यह एक भारतीय पक्षी है। इसके सम्बन्ध में प्रसिद्धि है कि

---

१. डरे ज्यों नाग गरुड़ को देखि।
मजेगज जुत्थ जु सिंहहि पेखि॥
श्री सम्मेदाचलपूजा, जवाहरलाल, वृह जिनवाणी संग्रह, पृष्ठ ४८२।

२. जिन-चन्द-चरन चर च्यो चहत,
चित-चकोर नचि रच्चि रुचि।
श्री चन्द्रप्रभजिनपूजा, वृन्दावन, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ३३३।

३. भविजन सरस चकोर चन्द्रमा, सुख सागर भरपूर।
स्वहित निशि दीश बढ़ावे जी, जिनके गुण गावें सुर नरशेषजी।
—श्रीनेमिनाथजिनपूजा, जिनेश्वरदास, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ११३।

यह मात्र स्वांति नक्षत्र का जल पीता है। यह नीर और क्षीर को अलग-अलग करने में भी प्रवीण होता है।

हिन्दी वाङ्मय में चातक पक्षी का व्यवहार निम्न सन्दर्भो में हुआ है—

१. पुनर्जन्म विश्लेषण सन्दर्भ में
२. आलंकारिक प्रयोग में
३. प्रकृति वर्णन के लिए

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में उन्नीसवीं शती के पूजा-कवि मनरंगलाल विरचित 'श्री नेमिनाथजिनपूजा' नामक रचना में चित के लिए चातक का प्रयोग द्रष्टव्य है।[1]

भ्रमर—यदि कीट परक पक्षी है। इसका वर्ण काला होता है। इसकी गुनगुनाहट प्रसिद्ध है। भ्रमर का प्रयोग निम्न रूपों में साहित्य में हुआ है—

१. प्रेम, भक्त के रूप में
२. गुणाग्रही के रूप में
३. आलंकारिक रूप में
४. प्रकृतिवर्णन में

विवेच्यकाव्य में यह पक्षी अठारहवीं शती से प्रयुक्त है। कविवर द्यानतराय ने 'श्री देवशास्त्रगुरु पूजा' नामक कृति में इस पक्षी का सर्वप्रथम उल्लेख मधुपान के लिए किया है।[2]

उन्नीसवीं शती के पूजाकार वृन्दावन विरचित 'श्री चन्द्रप्रभजिनपूजा' नामक रचना में यह पक्षी अलि संज्ञा के साथ गन्धपान के लिए प्रयुक्त है।[3]

---

१. श्री नेमिचन्द जिनेन्द्र के चरणार्रविन्द निहारिके।
कर्रि चित-चातक चतुर चर्चित जजत हूं हित धारिके।
—श्री नेमिनाथजिनपूजा, मनरंगलाल, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ३६५।

२. विविध भाँति परिमल सुमन,
भ्रमर जास अधीन।
जासों पूजों परमपद,
देवशास्त्र गुरुतीन॥
—श्रीदेवशास्त्र गुरुपूजा, द्यानतराय, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १८।

३. सरद्रुम के सुमन सुरंग,
गंधित अलि आवे।
—श्रीचन्द्रप्रभजिनपूजा, वृन्दावन, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ३३३।

इस शती के अन्य पूजाकवयिता मनरंगलाल[1] एवं रामचन्द्र[2] द्वारा भ्रमर पक्षी का प्रयोग क्रमशः भौंरा तथा अलि संज्ञाओं में सुगन्धपान तथा गुंजन के लिए हुआ है।

बीसवीं शती में भ्रमरपक्षी का उल्लेख मधुकर नामक संज्ञा के साथ कविवर जवाहरलाल विरचित 'श्री अथ समुच्चयपूजा' नामक पूजाकृति में हुआ है।[3]

हंस – बड़ी-बड़ी झीलों में रहने वाला एक सफेद जलपक्षी है। कवि समय के अनुसार यह दूध से पानी अलग कर देता है।[4] अधिकतर यह मानसरोवर झील में पाया जाता है। हिन्दी वाङ्मय में हंस का उपयोग निम्न प्रकार से उपलब्ध है :—

१. सरल स्वभाव के लिए
२. प्रतीक रूप में
३. आलंकारिक प्रयोग के रूप में
४. प्रकृतिवर्णन प्रसंग में
५. सुन्दर चाल के लिए

जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में इस पक्षी के अभिदर्शन बीसवीं शती के पूजा-रचयिता भगवानदास विरचित 'श्री तत्वार्थ सूत्रपूजा' नामक कृति के 'जय-माला' प्रसंग में होते हैं।[5]

---

१. वशगंध भौंरा पुंजता पर,
करत रव सुखवासिनी।
—श्रीनेमिनाथजिनपूजा, मनरंगलाल, ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृष्ठ ३६७।

२. जाकी सुगन्ध थकी अहो,
अलि गुंजते आवे घने।
—श्री सम्मेद शिखर पूजा, रामचन्द्र, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ १२७।

३. कुन्द कमलादिक चमेली,
गन्धकर मधुकर फिरें।
—श्री अथ समुच्चयलघुपूजा, जवाहरलाल, बृहजिनवाणी संग्रह, पृष्ठ ४८७।

४. बृहत् हिन्दी कोश, पृष्ठ १६०३।

५. दशधर्मबहे शुभ हंस तरा,
प्रणमामिसूत्र जिनवाणि वरा।
—श्री तत्वार्थ सूत्रपूजा, भगवानदास, जैन पूजापाठ संग्रह, पृष्ठ ४१२।

उपर्यंकित विवेचन से स्पष्ट है कि जैन-हिन्दी-पूजा-काव्य में सात पक्षियों का प्रयोग हुआ है। इन पक्षियों में भ्रमर ही एकमात्र ऐसा पक्षी है जिसका व्यवहार अपनी विविध संज्ञाओं के साथ १८वीं शती से लेकर २०वीं शती तक सातत्य हुआ है।

विवेच्य पूजाकाव्य में इन पक्षियों का प्रयोग धार्मिक विश्वासबर्द्धन, लौकिक अभिव्यक्ति तथा भावाभिव्यंजना में प्रकृतिवर्णन प्रसग में सफलतापूर्वक हुआ है। इस प्रकार के वर्णन-वैविध्य में जैन पूजाकवियों की आध्यात्मिकता के साथ-साथ लोकविषयक ज्ञान भी प्रमाणित होता है।

उपसंहार

पूजा-काव्यकारों का संक्षिप्त परिचय

विवेच्यकाव्य में प्रयुक्त पूजाकाव्य के रचयिताओं का शताब्दि तथा अकारादि क्रम से संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है—

अठारहवीं शती

द्यानतराय—उत्तर प्रदेश के आगरा नगर में वि० सं० १७३३ में द्यानतराय का जन्म हुआ था। आप अग्रवाल गोयल गोत्र के थे। आपके पिता श्री का नाम श्यामदास था। आपके धर्मगुरु विहारी दास थे। कवि ने पद, स्तोत्र, रूपक तथा पूजा काव्यरूपों में काव्य-सृजन किया। आपके द्वारा प्रणीत ग्यारह पूजाएँ प्राप्त हैं।

उन्नीसवीं शती

कमलनयन—कमलनयन उन्नीसवींशती के अच्छे पूजाकवि हैं। 'श्री पंच-कल्याणक पूजा पाठ' आपकी उत्कृष्ट रचना है।

बख्तावररत्न—बख्तावररत्न दिल्लीवासी थे। आपका मूलनाम रतनलाल बख्तावर है। आप अग्रवाल जाति के हैं। आपका जन्म संवत् १८९२ में हुआ था—यथा—

संवत् अष्टादश शतक और बानवे जान।
फागुनकारी सप्तमी, भौमवार पहचान॥
मध्यदेश मण्डल विषै, दिल्ली शहर अनूप।
बादशाह अकबर नसल नमन करें बहुभूप॥

मनरंगलाल—जाति के पल्लीवाल कवि मनरंगलाल कन्नौज के निवासी थे। आपके पिता का नाम कन्नौजीलाल और माता का नाम था देवकी। आप उन्नीसवीं शती के सशक्त पूजाकवि हैं। नेमिचन्द्रिका, सप्तव्यसन चरित तथा पूजाकाव्य आपकी काव्यकृतियाँ प्रसिद्ध हैं। मनरंगलाल की पूजाएँ जैनसमाज में सर्वाधिक प्रचलित हैं।

मल्लजी—कवि मल्लजी का रचनाकाल उन्नीसवीं शती है। 'श्री क्षमावाणी पूजा' नामक पूजा श्रेष्ठ कृति है।

रामचन्द्र—रामचन्द्र उन्नीसवीं शती के सशक्त कवि हैं। आपके द्वारा प्रणीत अनेक पूजा काव्य प्रसिद्ध हैं।

वृन्दावन—गोयल गोत्रीय अग्रवाल कवि वृन्दावन का जन्म शाहाबाद जिले के वारा नामक ग्राम में सं० १८४२ में हुआ था। आपके पिता का नाम धर्मचन्द्र और माता का नाम सितावी। आपकी पत्नी रुक्मिणी एक धर्मपरायण महिला थीं। प्रवचनसार, तीस चौबीसी तथा चौबीसी पूजाकाव्य, छन्द शतक, वृन्दावन विलास (पदसंग्रह) नामक आपकी काव्यकृतियाँ उल्लिखित हैं। आपकी रचनाओं में भक्ति की ऊँची भावना, धार्मिक सजगता और आत्मनिवेदन विद्यमान है।

वीसवींशती

आशाराम—आशाराम वीसवी शती के कवि है। 'श्री सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पूजा' नामक पूजा आपकी रचना है।

कुंजिलाल—वीसवीं शती के कुंजिलाल उत्कृष्ट पूजाकवि हैं। आपकी तीन पूजा कृतियाँ—'श्री देवशास्त्रगुरुपूजा', 'श्री महावीर स्वामीपूजा' और 'श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा' है।

जवाहरलाल—जवाहरलाल छतरपुर के निवासी थे। आपके पिता मोतीलाल और काका हीरालाल थे। यथा—

पिता सु मोतीलाल 'जवाहर' के कहे।
काका हीरालाल गुणन पूरे लहे॥

वीसवी शती के पूजाकार जवाहरलाल की दो पूजायें—श्री सम्मेदाचलपूजा, श्री लघुसमुच्चय पूजा-उपलब्ध हैं।

जिनेश्वरदास—जिनेश्वरदास की तीन पूजा रचनाएँ—श्री नेमिनाथ जिन पूजा श्री वाहुवलीस्वामी पूजा और श्री चन्द्रप्रभु पूजा—प्राप्त हैं। इनका रचना काल वीसवीं शती है।

पूरणमल—पूरणमल वीसवीं शती के कवि हैं। आप शमशावाद ग्राम के निवासी हैं जैसा कवि स्वयं स्वीकारता है—

पूरणमल पूजा रची सार, हो भूल लेउ सज्जन सुधार।
मेरा है शमशावाद ग्राम, त्रयकाल करूं प्रभु को प्रणाम॥

भगवानदास—श्री तत्वार्थसूत्र पूजा नामक कृति के रचयिता भगवानदास वीसवीं शती के कवि हैं आपके पिता का नाम कन्हैयालाल है जैसा कि कवि ने स्वयं लिखा है—

सुत कन्हैयालाल परणाम करा,
भगवानदास जिहि नाम धरा।

भविलालजू—वीसवीं शती के पूजा रचयिता भविलालजू ने 'श्री सिद्ध पूजा भाषा' नामक पूजाकृति की रचना की है।

मुन्नालाल—मुन्नालाल बीसवीं शती के पूजाकवि हैं। 'श्री खण्डगिरि सिद्धक्षेत्रपूजा' नामक पूजा आपकी रचना है।

दीपचन्द—बीसवीं शती के पूजाकवि दीपचन्द ने 'श्री बाहुबली पूजा' नामक कृति की रचना की है।

दौलतराम—दौलतराम बीसवीं शती के सशक्त पूजाकवि हैं। दौलतराम की श्री पावापुर सिद्धक्षेत्रपूजा और श्री चम्पापुर सिद्धक्षेत्र पूजा नामक रचनाएँ हैं।

नेम—'श्री अकृत्रिम चैत्यालय पूजा' नामक कृति के रचयिता श्री नेम वीसवीं शती के उत्कृष्ट पूजा कवि हैं।

युगल किशोर जैन 'युगल'—पंडित युगल जी कोटा (राजस्थान) के निवासी हैं। अध्यापन-कार्य में संलग्न हैं। आपकी 'श्री देवशास्त्र गुरुपूजा' एक सशक्त रचना है।

रघुसुत—रघुसुत वीसवीं शती के उत्कृष्ट पूजाकार हैं। आपकी दो पूजा रचनायें श्री रक्षाबंधन पूजा, श्री विष्णुकुमार महामुनि पूजा—उपलब्ध हैं।

रविमल—वीसवीं शती के पूजाकार रविमल ने 'श्री तीस चौबीसी पूजा' की रचना की है।

राजमल पवैया—पवैया जी भोपाल, मध्य प्रदेश में रहते हैं। आप एक अच्छे कवि हैं। 'श्री पंचपरमेष्ठी पूजा' आपकी श्रेष्ठ पूजा रचना है।

सच्चिदानंद—सच्चिदानंद बीसवीं शती के पूजा कवि हैं आपने 'श्री पंच-परमेष्ठी पूजा' नामक पूजाकाव्य का प्रणयन किया है।

सेवक—सेवक वीसवीं शती के पूजा कवयिता हैं। आपकी तीन पूजा कृतियाँ—'श्री आदिनाथ जिनपूजा', श्री अनंतव्रत पूजा और श्री समुच्चय चौबीसी पूजा'—उपलब्ध हैं।

हीराचंद—वीसवीं शती के पूजा कवयिता हीराचंद की दो पूजा कृतियाँ 'श्री सिद्धपूजा, श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर समुच्य पूजा' उपलब्ध हैं।

हेमराज—हेमराज विरचित 'श्री गुरुपूजा' नामक पूजाकृति उत्कृष्ट रचना है। हेमराज वीसवीं शती के श्रेष्ठ कवि हैं।

पूजा-शब्द-कोश

अंजनशलाका	जैन मूर्ति की प्रतिष्ठा, मंत्रन्यास, नयनोन्मीलन, श्वेताम्बर विधि
अर्घ्य	अष्ट द्रव्य-जल, चंदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फल—का समीकरण/समवेत् रूप।
अजीव	जिसमें सुख-दुःख अनुभव करने की शक्ति नही है और जो ज्ञानशून्य है वह अजीव कहलाता है।
अणुव्रत	श्रावक दशा में पाँच पापों का स्थूल रूप—एक देश त्याग होता है, उसे अणुव्रत कहते हैं।
अतदाकार	भावपूजा, भावनापरक पूजन, जिसमें स्थापना, प्रस्तावना, पुराकर्म आदि नहीं होते।
अत्र	यहाँ; स्थापना के प्रथम चरण में यह आता है।
अतिचार	इन्द्रियों की असावधानी से शीलव्रतों में कुछ अंश-भंग हो जाने को अर्थात् कुछ दूषण लग जाने को अतिचार कहते हैं।
अतिशय	आश्चर्यजनक विशेषता को अतिशय कहते है, ये मात्र तीर्थंकरों में होते हैं।
अतिशय क्षेत्र	तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान नामक चार अथवा एक या दो कल्याणक सम्पन्न होने वाले क्षेत्र को अतिशय क्षेत्र कहते हैं।
अनंतचतुष्टय	आत्मा के चार गुणों—अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतवीर्य, अनंतसुख—के समन्वित रूप को अनंत चतुष्टय कहते हैं।
अनुप्रेक्षा	संसार आदि की असारता का चिन्तवन करना ही अनुप्रेक्षा कहलाता है, ये बारह प्रकार के प्रभेदों में विभाजित है—अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व,

अन्यत्व, अशुचित्व, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ, धर्म ।

अनुयोग — जिनवाणी में वर्णित आगम जिसमें भूत व भावीकाल के पदार्थों का निश्चयात्मक वर्णन किया गया है, अनुयोग कहते हैं । इसके चार भेद हैं—(क) प्रथमानुयोग (ख) करणानुयोग (ग) चरणानुयोग (घ) द्रव्यानुयोग ।

अनेकांत — यह यौगिक शब्द है—अनेक+अन्त; अन्त का अर्थ है—धर्म, प्रत्येक वस्तु में अनंतगुण विद्यमान रहते हैं, वस्तुजन्य उन सभी गुणों को देखना अनेकांत कहलाता है ।

अन्तराय कर्म — वे कर्म परमाणु जो जीव के दान, लाभ, भोग, उपभोग और शक्ति के विघ्न में उत्पन्न होते हैं, अन्तराय कर्म कहलाते हैं ।

अभिषेक — भगवान् की प्रतिमा का जल आदि से स्नान; इस तरह प्राप्त जल को 'गंधोदक' कहा जाता है, जिसे श्रावक वर्ग श्रद्धापूर्वक मस्तक, नेत्र और ग्रीवा भाग पर लगाता है; अभिषेक की तैयारी को प्रस्तावना कहा जाता है; प्रक्षाल; जिनके घातिया कर्म नष्ट हो गए हैं उन केवलियों को 'स्नातक' कहा गया है ।

अर्हं — 'अ' अभय का सूचक है, यह वर्णमाला का आरम्भी स्वर है तथा सर्वव्यन्जनव्यापी है; 'र्' अग्निबीज है, जो मस्तक में प्रदीप्त अग्नि की तरह व्याप्त होने की क्षमता रखता है, 'ह्' वर्णमाला के अन्त में आने वाला ऊष्म वर्ण है, जो हृदयवर्ती होने के कारण बहुमत/आदृत है, "ँ" यह चन्द्रबिन्दु नासिकाग्रवर्ती है और सारे वर्णों के मस्तक पर रहता है; "अर्हं" का समग्र अर्थ है : 'अरिहन्त रूप सर्वज्ञ परमात्मा', चार घातिया कर्मों का नाश कर अनंत चतुष्टय को प्राप्त करके जो केवल ज्ञानी परम आत्मा है जो अपने स्वरूप में स्थिर है, वह अर्हन्त है ।

अवतर — आयें, पधारें, विराजमान हों, अवतरित हों ।

अवधिज्ञान — ज्ञानरूपी पदार्थों को प्रत्यक्ष जानने वाला मर्यादा सहित ज्ञान अवधिज्ञान है अर्थात् जो ज्ञानद्रव्य, क्षेत्र, कालभाव की मर्यादा के लिए रूपी पदार्थ को स्पष्ट व प्रत्यक्ष जाने वह अवधिज्ञान है ।

अष्टक — आठ भागों वाला, आठ छन्दों का समुदाय, यथा-- मंगलाष्टक, महावीराष्टक दृष्टाष्टक, आदि ।

अष्टमूल गुण — निश्चय से तो समस्त पर—पदार्थों से दृष्टि हटाकर अपनी आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और लीनता ही मुमुक्षु श्रावक के मूल गुण हैं पर-व्यवहार से मद्य त्याग, मांस त्याग, मधु त्याग, और पांच उदुम्बर—बड़ का फल, पीपल का फल ऊमर, कठूमर (गूलर) और पाकर फल—फलों के त्याग को अष्टमूल गुण कहते हैं ।

अष्टद्रव्य — जल, चंदन, अक्षत्, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल ये आठ द्रव्य अष्टद्रव्य कहलाते हैं, इनका प्रयोग जैन-पूजा-उपासना में किया जाता है ।

अष्टपुष्प — आठ फूल, अष्टपुष्पी पूजा के काम में आने वाले आठ फूल, पूजा का यह प्रकार जैनों मे प्रचलित नहीं है ।

असाता — आठ कर्मों में तीसरे कर्म वेदनीय का एक भेद असाता कर्म है इसके उदय से संसारी जीव दुःख का अनुभव करता है ।

अक्षयपद — रत्नत्रयधारी जीव चार घातिया कर्मो का क्षय करके अनंत चतुष्टय प्राप्त कर संसार के आवागमन से छुटकारा पाकर अक्षय पद की प्राप्ति करता है; अक्षयपद वह पद विशेष है जहां जीव निराकुल, आनंदमय, शुद्ध स्वभाव रूप परिणमन करता है तथा सम्यक्त्व, ज्ञान-दर्शनादिक आत्मिक गुण पूर्णतः अपने स्वभाव को प्राप्त करता है ।

आकिञ्चन्य — आत्मा के दशधर्मों में से आकिंचन्य का क्रम ब्रह्मचर्य से पूर्व आता है, मद, परिग्रह और अहंकारों के अभाव में धर्म का यह लक्षण प्रकट होता है, इस

धर्म के उदय होने पर प्राणी पर-पदार्थों के प्रति उदासीन तथा अन्तर्मुखी होकर पूर्णतः आकिंचन्य बन जाता है जो मोक्ष प्राप्ति में परम सहायक है।

आगम	जिनेन्द्रवाणी को आगम कहा गया है, यह मूलतः निरक्षरी वाणी में निसृत हुआ किन्तु कालान्तर में आगम सम्पदा को आचार्यों द्वारा शब्दायित किया गया फलस्वरूप उसे आचार्य परम्परा से आगतमूल सिद्धान्त को आगम कहा गया है।
आचार्य	पंचपरमेष्ठियों का एक भेद है आचार्य। आचार्य में छतीस गुण विद्यमान होते हैं। आचार्य पर मुनिसंघ की व्यवस्था तथा नए मुनियों की दीक्षा दिलाने का दायित्व भी विद्यमान रहता है।
आर्जव	आत्मा के दशधर्मों में से तृतीय क्रम का धर्म आर्जव है, स्वपदार्थ की स्वानुभूति पर आर्जव धर्म का उदय होता है, मन वच, कर्म से जो अत्यन्त स्पष्ट, सरल स्वभावी है, वही प्राणी 'आर्जव' धर्म का पालनकर्त्ता माना जाएगा।
आत्मविशुद्धि	आत्मा की कर्ममल से क्रमशः, या नितान्त मुक्ति।
आर्त्तध्यान	भविष्य की दुःखद कल्पनाओं में मन का निरन्तर व्याकुल रहना आर्त्तध्यान कहलाता है।
आर्यिका	सात्विक आचरण करने वाली स्त्री-साधु आर्यिका है।
आयुकर्म	जीव अपनी योग्यता से जब नारकी, तिर्यंच, मनुष्य या देव शरीर में रुका रहे तब जिस कर्म का उदय हो उसे आयु कर्म कहते हैं।
आरती	नीराजना, भगवान का गुणानुवाद करते हुए उनके सम्मुख प्रज्वलित दीप-समूह को चक्राकार घुमाना।
आराधना	ध्यान, पूजा, सेवा, शृंगार, जिनवाणी में भक्ति का एक अंग विशेष आराधना है जिसका अर्थ है आत्मा के गुणों का सम्यक् चिन्तवन।
आलम्बन	सहारा, साधन, जिसके आश्रय में मन चारों ओर से खिंच कर टिका रह सके।

आस्रव	कर्म के उदय में भोगों की जो राग सहित प्रवृत्ति होती है वह नवीन कर्मों को खींचती है अर्थात् शुभाशुभ कर्मों के आने का द्वार ही आस्रव कहलाता है ।
आष्टान्हिकापूजा	प्रतिवर्ष आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन के शुक्लपक्ष में अष्टमी से पूर्णिमा तक मनाये जाने वाले पर्व में की जाने वाली पूजा, अष्टान्हिका पर्व को "अठाई" भी कहते हैं ।
आह्वानन	आमंत्रण, पूजा के निमित्त किसी देवता—यहाँ जिनेन्द्र भगवान को प्रतीक रूप बुलाना ।
आहार	जैन मुनिगण अपने भोजन का मन-वच-काय शुद्धि के साथ अपुष्ट पदार्थ का जो खाद्यान्न ग्रहण करते हैं उसे आहार कहते हैं ।
इज्या	अर्हन्त भगवान् की पूजा, मूर्ति, प्रतिमा ।
इति आशीर्वाद	सर्वभूत मंगल कामना, इसे पूजा के अन्त में पुष्पांजलि अर्पित करते हुए कहा जाता है, दिगम्बरों में पुष्पांजलि-रूप चन्दन से-रंगे अक्षत चढ़ाने की रस्म है ।
इन्द्रध्वज	एक पूजा-भेद जिसे ऐन्द्र ध्वज-विधान भी कहा जाता है; परम्परानुसार इसे इन्द्र सम्पन्न करता है ।
ईर्यासमिति	किसी भी जंतु को क्लेश न हो इसलिए सावधानी पूर्वक चलना ही ईर्या समिति है ।
उद्योतन	स्वयं को शंका, कांक्षा आदि दोषों से दूर करना, इसे सम्यक्त्व की आराधना भी कहते हैं ।
उपयोग	जीव की ज्ञान दर्शन अथवा जानने देखने की शक्ति का व्यापार ही उपयोग है ।
उपाध्याय	पंचपरमेष्ठी के भेद विशेष उपाध्याय हैं । रत्नत्रय तथा धर्मोपदेश की योग्यता रखने वाले साधु को उपाध्याय कहते हैं ।
उपासकाध्ययन	द्रव्यश्रुतागम का सातवाँ अंग, जिसमें श्रावक-धर्म की विस्तृत विवेचना की गई है ।
उपासना	शुद्धात्म भावना की कारणरूप-की-गयी अर्हत्सेवा, आराधना ।

एकेन्द्रिय	जिसके एक स्पर्शनेन्द्रिय ही होती है ऐसे जीव, पृथ्वी-कायिक, अपकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पति कायिक जीव ।
एषणा	एषणा का अर्थ निमित्त तप वृद्धि के लिए ही नियंत्रित इच्छा से भोजन ग्रहण करना है ।
ओम् (ॐ)	णमोकार मंत्र के प्रथमाक्षरों (अ+अ+आ+उ+म्) से बना प्रणवनाद, मोक्षद, समयसार, जिनेश्वर को ओंकार रूप कहा गया है ।
ओम् नम:	पंच परमेष्ठियों (अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु) को नमस्कार ।
करणानुयोग	वीतरागता को पोषण करने वाले कथन की चार विधियों में से एक वर्णित विधि करणानुयोग ।
कर्म	जीव के साथ जुड़ने वाला पुद्गल स्कन्ध कर्म कहलाता है, विषय की दृष्टि से इनके आठ भेद किए गए हैं—ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय, अन्तराय, वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र ।
कल्पद्रुमपूजा	चक्रवर्तियों द्वारा किमिच्छक दानपूर्वक की जाने वाली बड़ी पूजा, जिसमें जगत् के सब जीवों की आशा-आकांक्षा पूरा करने का प्रयत्न होता है ।
कल्याणक	तीर्थंकर के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और मोक्ष के समय होने वाले महोत्सव ही कल्याणक होते हैं ।
कषाय	राग द्वेष का ही अपर नाम कषाय है, जो आत्मा को कसे अर्थात् दुःख दे, उसे ही कषाय कहते हैं, कषाय चार हैं—क्रोध, मान, माया, लोभ ।
कृतिकर्म	देव वन्दना, जिस वाचनिक, मानसिक, कायिक क्रिया के करने से ज्ञानावरणादि आठ कर्मों का उच्छेदन/विनाश होता है ।
कायगुप्ति	काया की ओर उपयोग न जाकर आत्मा में ही लीनता ।
कायोत्सर्ग	शरीर से ममता रहित होकर आत्म साक्षात्कार के लिए प्रतिक्षण तटस्थ रहना ही कायोत्सर्ग है ।
क्लीं	भक्तिबीज, आद्याबीज ।

केवलज्ञान	किसी बाह्य पदार्थ की सहायता से रहित हो आत्म-स्वरूप से उत्पन्न हो, आवरण से रहित हो, क्रम रहित हो, घातिया कर्मों के क्षय से उत्पन्न हुआ हो तथा समस्त पदार्थों को जानने वाला हो उसे केवल ज्ञान कहते हैं।
क्रौं	अंकुश, गज साधन।
क्षमा	आत्मा के दश धर्मों मे से प्रथम धर्म का नाम क्षमा है, उपसर्ग से उत्पन्न क्रोध को मान्यता न देना ही क्षमा की प्रवृत्ति है।
गंध	अष्टद्रव्यों मे से द्वितीय, जिसे चंदन भी कहा जाता है।
गंधोदक	दे. अभिषेक।
गणधर	समवशरण के प्रधान आचार्य का नाम गणधर है।
गति	जिसके उदय से जीव दूसरी पर्याय (भव) प्राप्त करता है, तिर्यचगति, मनुष्यगति, देवगति और नरकगति।
गुण	द्रव्य के आश्रय से उसके सम्पूर्ण भाग में तथा समस्त पदार्थों में सदैव रहे उसे गुण अथवा शक्ति कहते हैं।
गुप्ति	संसार के कारणों से आत्मा का गोपन करना ही गुप्ति है अर्थात् मन, वच, काय की प्रवृत्ति का निरोध कर केवल ज्ञाता द्रष्टा भाव से समाधि-धारण करने को गुप्ति कहा है, इसके तीन प्रकार हैं—मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति।
गुरू	सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इन गुणों के द्वारा जो वड़े है उनको गुरू कहते हैं अर्थात् आचार्य, उपाध्याय, साधु ये तीन परमेष्ठी ही गुरू हैं।
गोत्र	जीव को उच्च या नीच आचरण वाले कुल में उत्पन्न होने में जिस कर्म का उदय हो उसे गोत्र कर्म कहते हैं।
घातियाकर्म	जो जीव के अनुजीवी गुणों को घात करने से निमित्त होते हैं वे घातिया कर्म कहलाते है, ये चार प्रकार के होते हैं –(१) ज्ञानावरणी, (२) दर्शनावरणी, (३) मोहनीय, (४) अन्तराय।

चतुर्विंशति	चौबीस (तीर्थंकर)।
चन्दन	दे० गंध।
चरणानुयोग	श्रावकों की आचार-विचार परम्परा का निर्देशक आगम ग्रंथ का एक मार्ग करणानुयोग है जिसमें मुनि तथा श्रावक चर्या का वर्णन है।
चारित्र्य	चारित्र संसार की कारणभूत बाह्य व अंतरंग क्रियाओं से निवृत्त होना कहा है।
चितिकर्म	दे० कृतिकर्म; कृतिकर्म के पुण्यसंचय के कारण रूप होने से चितिकर्म भी कहा जाता है।
चैत्य	अर्हत्प्रतिमा, जिनबिम्ब, जिनालय, जिनमन्दिर।
छहोंद्रव्य	जीव, अजीव (पुदगल), धर्म, अधर्म, आकाश और काल छह द्रव्य कहलाते हैं।
जप	जिनेन्द्रवाचक/वीजाक्षररूप मन्त्र आदि का अन्तर्जल्प-रूप (भीतर अनुगुंजित) वार-बार उच्चारण।
जयणा	किसी जीव को दुःख न हो इस तरह प्रवृत्ति करने का ख्याल, यतना, उपयोग, सावधानी से काम करने की क्रिया।
जयमाला	पूजा के अन्त में पूजा की विषय-वस्तु को सार रूप में प्रस्तुत करने वाला गेय भाग, जो प्राय: प्राकृत, अप-भ्रंश या हिन्दी मे होता है, मूलपूजा संस्कृत में होती है (अब यह परम्परा टूट गयी है)।
जल	अष्टद्रव्यों में प्रथम द्रव्य।
जाप	इष्टदेव का मन ही मन स्मरण, या किसी मन्त्र का मन ही मन उच्चार।
जिन	जिसने अपने कर्म-कषायों को जीत लिया हो वह जिन कहलाता है।
जिनालय	वह स्थान जहाँ जिन-प्रतिमा प्रतिष्ठित की गयी हो।
जीवन	जिसमें अनुभव करने की शक्ति हो, संसारी और मुक्त; जानने-देखने अथवा ज्ञानदर्शन शक्तिशाली वस्तु को आत्मा कहा जाता है, जो सदा जाने और जानने रूप परिगणित हो उसे जीव अथवा आत्मा कहते हैं।

जैन	जिनके अनुयायी जैन कहलाते हैं।
ठः	सर्वमित्र, चन्द्रमण्डल, नन्दप, एकत्रण, समासन, शून्यबीज, करुणा, अक्रूर, कृतान्तकृत्, "ठः ठः" आने पर स्वाहा या महामाता के अर्थ में प्रयुक्त।
णिसही	निःसही, स्वाध्यायभूमि, निर्वाणभूमि, पाप क्रियाओं के त्याग का संकल्प, साधुओं के रहने का स्थान, दिगम्बरों के मन्दिर में प्रवेश करते समय श्रावक "ॐ जय जय निःसही निःसही" का उच्चार करता है, जिसका परम्परित अर्थ है 'मैं जागतिक परिग्रह को निषिद्ध कर/छोड़कर इस पवित्र स्थान में प्रवेश करता हूँ', श्वेताम्बरों में इसका प्रयोग तीन प्रस्थान-बिन्दुओं पर होता है, पूजा के लिए घर से निकलते समय, मन्दिर में प्रवेश करते समय, पूजा आरम्भ करते समय; इसका एक रूपान्तर 'णमो णिसीहीए', जिसका अर्थ निर्वाण भूमियों को नमन है, भी प्रचलित है, प्राकृत में इसके रूप है णिसीहीए (निषीधिका); णिसीहिआ (नैषेधिकी)–स्वाध्यायभूमि, जहाँ स्वाध्याय के अतिरिक्त शेष प्रवृत्तियों का निषेध है (स्वाध्याय का एक अर्थ पूजा भी है); "निस्सही/निःसही" का लोकप्रचलित अर्थ है : मैं दर्शन पूजा के निमित्त समस्त पाप/परिग्रह को छोड़कर आ रहा हूँ।
तत्त्व	तत्त्व का अर्थ वस्तु का स्वभाव है, जीव, अजीव आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष ये सप्त तत्त्व हैं।
तप	कर्म क्षय के लिए तपा जाए वह तप है अर्थात् रत्नत्रय का आविर्भाव करने के लिए इष्टानिष्ट इन्द्रिय-विषयों की आकांक्षा के विरोध का नाम तप है।
तदाकार	द्रव्यपूजा, द्रव्यात्मक पूजा, ऐसी पूजा जिसमे अष्टद्रव्य प्रयुक्त हों।
तिष्ठ	ठहरें, रुकें, रहें (सं० √स्था)।
तीर्थ	तीर्थ का अर्थ है पापों से तरना अथवा पापों को दूर करने का स्थान वही तीर्थ कहलाता है।

तीर्थंकर	संसार-सागर को स्वयं पार करने तथा दूसरों को पार कराने वाले महापुरुष तीर्थंकर कहलाते हैं।
त्याग	अपने आत्मा के श्रद्धान, ज्ञान के साथ होने वाले स्वभाव-परिणमन को, जिसमें विभाव का परिपूर्ण त्याग है, त्याग कहते है।
दण्डक	नियम, सूत्रांश, संकल्प, परम्परा, छन्दांश, मन, वचन, काय की एकाग्रता।
द्रव्यपूजा	अष्टद्रव्य-युक्त पूजा; दे-तदाकार।
दर्शन	दर्शन का अभिप्राय श्रद्धान आस्था, विश्वास से है, इस प्रकार जो मोक्ष मार्ग दिखायें उसे दर्शन कहते हैं।
दर्शनावरणी	वे कर्म परमाणु जो आत्मा के अनंत दर्शन पर आवरण करते हैं, दर्शनावरणी कर्म कहलाते हैं।
दर्शनोपयोग	आकार-भेद न करके जाति गुण क्रिया आकार प्रकार की विशेषता किए बिना ही जो स्व-पर का सत्ता मात्र सामान्य ग्रहण करना ही दर्शनोपयोग है।
दीक्षा	जिससे दिव्यता की प्राप्ति होती हो पापों का समूह नष्ट होता है, प्राचीन आचार्यों ने उसे दीक्षा कहा है, जिनवाणी में वर्णित विभिन्न लिंग-क्षुल्लक, ऐलक, मुनि, अर्जिका पद के लिए दीक्षित होना अथवा ग्रहण करना ही दीक्षा कहलाती है।
देव	देव का अर्थ दिव्य दृष्टि को प्राप्त करना है, जो दिव्य भाव से युक्त आठ सिद्धियों सहित क्रीड़ा करते हैं, जिनका शरीर दिव्यमान है, जो लोकालोक को प्रत्यक्ष जानते हैं वही सर्वज्ञ देव कहलाते हैं।
देशनालब्धि	षट्द्रव्य, नवपदार्थ के उपदेश का रुचि से सुनकर धारण करना देशनालब्धि है।
देरासर	जिनालय, मंदिर, देवालय।
दोष	असाता वेदनी कर्म के तीव्र तथा मंद उदय से चित्त में विभिन्न प्रकार के राग उत्पन्न होकर चारित्र में दोष उत्पन्न कर देते हैं।

द्रव्य	द्रव्य वह मूल विशुद्ध तत्त्व है जिसमें गुण विद्यमान हो तथा जिसका परिणमन करने का स्वभाव हैं, द्रव्य दो प्रकार से कहे गए हैं—जीवद्रव्य, अजीव द्रव्य ।
द्रव्यानुयोग	द्रव्यानुयोग में जीवादि छह् द्रव्यों तथा सप्त तत्त्वादि का कथन किया गया है ।
द्वादशांग	अर्हन्त की वाणी को गणधरदेव ने सूत्रों में गूंथा है, वही सूत्र द्वादशांग कहलाते हैं, द्वादशांग बारह हैं—आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवयांग, व्याख्या प्रशस्ति, ज्ञानधर्मकथा अंग, उपासकाध्ययन अंतकृत-दशांग, अनुतरोपपादक अंग, प्रश्न व्याकरण नाम अंग, विपाक-सूत्र, दृष्टिवाद नाम ।
धर्म	धर्म-वस्तु का स्वभाव, दुःख से मुक्ति दिलाने वाला, निश्चय रत्नत्रय रूप से मोक्ष मार्ग, जिससे आत्मा मोक्ष प्राप्त करता है, रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र; धर्म के लक्षण—(१) वस्तु का स्वभाव वह धर्म (२) अहिंसा (३) उत्तमक्षमादि दश लक्षण (४) निश्चयरत्नत्रय ।
ध्यान	चित्त की एकाग्रता को ध्यान कहते है ।
धूप	अष्ट द्रव्यों में सातवां द्रव्य ।
नः	द्वि. बहुवचन "हमें"; च. बहु. "हमारे लिए"; ष. बहु. "हमारा" ।
नय	वस्तु के एकांशग्राही ज्ञान की यथार्थता को प्राप्त कराने में समर्थ नीति को नय कहते हैं ।
नवदेव	नौ देव, अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनधर्म, जिन प्रतिमा, जिन मंदिर ।
नवधाभक्ति	श्रावक की नौ प्रकार की भक्ति को नवधाभक्ति कहते हैं ।
नामकर्म	जिस शरीर में जीव हो उस शरीरादि की रचना मे जिस कर्म का उदय हो उसे नाम कर्म कहते हैं ।

निर्ग्रंथ	सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चरित्र रूपी मोक्ष मार्ग में बंधन रूप उपस्थित होने वाले बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह का त्याग करने वाले केवल ज्ञानी साधु को निर्ग्रन्थ कहते हैं।
निगोद	जिन जीवों के साधारण नाम कर्म का उदय होता है उनका शरीर इस प्रकार होता है कि वे अनंतानंत जीवों को निगोद कहते हैं।
निर्जरा	कर्मों की जीर्णता से निवृत्ति का होना निर्जरा है।
नित्यमह	दैनंदिनी पूजा, प्रतिदिन का पूजा-कर्तव्य।
निर्वपामिइति	भेंट करता हूँ, अर्पित करता हूँ, चढ़ाता हूँ (सं० निर्व √वप्)।
निर्वाण	कर्म रूपी वाणों का विनाश ही 'निर्वाण' है अर्थात् दुःख सुख, जन्म-मरण से छुटकारा मिलना ही 'निर्वाण' है।
निर्माल्य	ममत्व—मुक्त होकर महान् आत्माओं के सम्मुख क्षेपित/अर्पित अति निर्मल द्रव्य, स्वामित्व-विसर्जक द्रव्य।
निर्वहण	समापन, अन्त।
नोकर्म	औदारकादि पाँच शरीर और छह पर्याप्तियों के योग्य पुद्गल परमाणु नो कर्म कहलाते हैं।
पंचोपचार	आवाहन, संस्थापन, संनिधीकरण, पूजन और विसर्जन, पूजा के पांच उपचार।
परमेष्ठी	जो परमपद में तिष्ठता है वह परमेष्ठी कहलाता है। अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु ये पाँच परमेष्ठी है।
परिग्रह	मोह के उदय से भावों का ममत्वपूर्ण परिणमन होना ही परिग्रह कहा गया है।
परीषह	रत्नत्रय मार्ग से विचलित न होने तथा कर्मों की निर्जरा के लिए जो क्षुधा, तृष्णा, शीत, उष्ण, नग्न, याचना, अरति, अलाभ, दंशमशकादि, आक्रोश रोग, मल, तृणस्पर्श, अज्ञान, अदर्शन, प्रज्ञा, सत्कार,

पुरस्कार, शय्या, चर्या, वध बन्ध, निषद्या, स्त्री इन बाइस उपसर्गों को सहन करना ही परीषह कहा गया है ।

पुद्गल — गलन-मिलन स्वभाव ही पुद्गल है, स्पर्श, रस, गंध तथा वर्ण ये पुद्गल के लक्षण कहे गए है, यह जीव को शरीर, इन्द्रियों, वचन तथा श्वासोच्छवास प्रदान करता है ।

पुराकर्म — पीठ के चारों कोनों पर जल-से भरे कलशों को स्थापित करना ।

पुष्प — अष्ट द्रव्यों में से चौथा द्रव्य, चंदन-चर्चित अक्षत भी पुष्प की जगह काम में आते है ।

पुष्पांजलि — विसर्जन के बाद पुष्पों की अंजलि का क्षेपण, दिगम्बरों मे पुष्प के स्थान पर चंदन से रंगे अक्षतों की अंजलि अर्पित करने की परम्परा है ।

पूजन — दे, पूजा, श्रावक का पाँचवाँ कर्त्तव्य, अर्हंत्प्रतिमा का अभिषेक, उसको द्रव्य-पूजा-अर्चा, स्तोत्र-वाचन, गीत-नृत्य आदि के साथ भक्ति ।

पूजा — पूज्य पुरुषों के सम्मुख जाने पर, या उनके अभाव में उनकी प्रतिकृति के सम्मुख उनकी अर्चना या उनका गुण-स्मरण, इसके चार भेद है— सदार्चन, चतुर्मुख, कल्पद्रुम, अष्टाह्निक; अन्य रीति से इसके छह भेद हैं— १. नाम पूजा अरिहंतादि का नाम लेकर द्रव्य चढ़ना; २. स्थापना पूजा-आकारवान् वस्तुओं में अरिहंतादि के गुणों को आरोपित कर पूजा करना, ३. द्रव्यपूजा—अरिहंतादि की आठ द्रव्यों से विधि-विहित पूजा करना, ४. क्षेत्र-पूजा-जिनेन्द्र भगवान् की जन्म, निष्क्रमण, कैवल्य, तीर्थ, निर्वाण आदि भूमियों की पूजा करना, ५. कालपूजा—उक्त दिनों में पूजा करना, नदीश्वर पर्व या अन्य पर्व-दिनों में पूजा करना, ६. भाव-पूजा—मन से अरिहंतादि के गुणों का अनुचिन्तन करना, निश्चयपूजा—पूज्यपूजक में अन्तर न रहे इस तरह पूजा करना, इस स्वानुभूति के साथ पूजा करना कि 'जो परमात्मा है, वहीं मैं हूं ।'

प्रणति	नमस्कार, प्रणाम ।
प्रतिमा	मूर्ति, बिम्ब, विग्रह ।
प्रतिष्ठा	प्रोक्षण, वेदी पर अर्हत्प्रतिमा को विधिपूर्वक विराजमान करना ।
प्रस्तावना	अभिषेक की प्रक्रिया का सूत्रपात
प्रथमानुयोग	प्रथमानुयोग आगम का एक प्रकार है इसमें संसार की विचित्रता, पाप-पुण्य का फल, महन्त पुरुषों की प्रवृत्ति इत्यादि निरूपण कर जीवों को धर्म में लगाया जाता है ।
प्रातिहार्य	प्रातिहार्य अर्हन्त के महिमामयी चिन्ह विशेष हैं, ये आठ प्रकार से वर्णित है—अशोक वृक्ष, सिंहासन, तीनछत्र, भामण्डल, दिव्यध्वनि, पुष्पवृष्टि, चौसठ चमर ढरना, दुन्दुभि बाजे बजना ।
प्रार्थना	विनयपूर्वक स्वपक्ष-कथन, यानी अपनी बात कहना, भक्ति ।
प्रासुक	निर्जन्तुक, जिसमें से एकेन्द्रिय जीव निकल गये हैं, वे जल , वनस्पति, मार्ग आदि ।
बिम्ब	प्रतिमा, मूर्ति, विग्रह; यथा—जिन बिम्ब ।
बीज	उपादान कारण, मूलवर्ती कारण ।
ब्रह्मचर्य	निर्मलज्ञान-स्वरूप आत्मा में रमण करना ब्रह्मचर्य है ।
मन्दिर	जिनालय, देवालय, देरासर, चैत्यालय ।
मतिज्ञान	मनन करके जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उसे मतिज्ञान कहते हैं ।
मन:पर्यय	मतिज्ञान, श्रुतिज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्यय, केवलज्ञान में से एक ज्ञान मन: पर्यय है जो कर्म के क्षयोपशम होने पर ही प्रकट होता है ।
मह	पूजा, इसके अन्य पर्याय शब्द हैं—याग, यज्ञ, ऋतु, सपर्या, इज्या, मख, अध्वर ।
महामह	बड़ी पूजा; यथा इन्द्रध्वजपूजा ।
महामर्घ	अन्तिम बड़ा अर्घ्य, इसे सम्पूर्ण पूजा के अन्त में चढ़ाते हैं ।

महाव्रत	हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह का पूर्णरूपेण सर्वथा त्याग करना महाव्रत है।
मार्दव	मान का अभाव ही मार्दव है।
मिथ्यादर्शन	जीवादि तत्त्वों की विपरीत श्रद्धा।
मुनि	साधु परमेष्ठी, समस्त व्यापार से विमुक्त चार प्रकार की आराधना मे सदा लीन निर्ग्रंथ और निर्मोह ऐसे सर्व साधु होते हैं, समस्त भाव लिंगी मुनियों को दिगम्बर दशा तथा साधु के २८ मूल गुणों के साथ रहना होता है।
मूर्ति	प्रतिमा, बिम्ब, विग्रह।
मोहनीय	वे कर्म परमाणु जो आत्मा के शांत आनंद स्वरूप को विकृत करके, उसमें क्रोध, अहंकार आदि कषाय तथा रागद्वेप रूप परिणति उत्पन्न कर देते हैं, मोहनीय कर्म कहलाते हैं।
मोक्ष	अध्यात्म-दृष्टि से जीव की परमोच्च अवस्था, जो कर्म अपनी स्थितिपूर्ण करके बंध दशा को नष्ट कर लेता है और आत्म गुणों को निर्मल कर लेता है उसे मोक्ष कहते हैं।
भक्ति	वीतराग या वीतरागता के प्रति प्रशस्त रागानुभूति, जिनेन्द्र प्रभु का श्रद्धापूर्वक गुण स्मरण; इसका स्थायी-भाव शान्ति (निर्वेद) है।
भजन	उपासना, सेवा, पद-गान, गुण-संकीर्तन, ऐसा पद्य जिसमें भगवद्भक्ति हो।
भवभव	हो, हो; संस्कृत की √भू धातु का आज्ञार्थ (लोट्) रूप।
भावपूजा	दे, अतदाकार, द्रव्यों का उपयोग किए बिना मन-ही-मन पूजा करना।
रत्नत्रय	सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र का समीकरण वस्तुतः रत्नत्रय कहलाता है। इसके चिंतवन से व्यक्ति मोक्ष प्राप्त कर सकता हैं।
लय	एकाग्रता, तल्लीनता, साम्य की अवस्था, समाधि।

लोकांतिक देव	देवों को एक प्रकार विशेष लोकांतिक कहलाता है। यह सम्यक् दृष्टि होते हैं तथा वैराग्य कल्याण के समय तीर्थंकर को सम्बोधन करने में तत्पर रहते हैं।
वंदना	श्रावक के छह आवश्यकों में से एक; तीर्थकर-प्रतिमा को नमन करना, मन, वचन, काय की निर्मलता के साथ खड़े होकर या बैठकर चार बार शिरोनति और बारह वार आवर्तपूर्वक जिनेन्द्र का गुण स्मरण।
वचन गुप्ति	बोलने की इच्छा को रोकना अर्थात् आत्मा में लीनता।
वषट्	आकर्षण, शिखावीज, आवाहन के निमित्त इसका उपयोग होता है।
वषट्कार	देवोद्देशक त्याग-रूप पूजा, या यज्ञ।
व्रत	शुभ कर्म करना और अशुभ कर्म को छोड़ना व्रत है अथवा हिंसा, असत्य, चौरी, मैथुन और परिग्रह इन पांच पापों से भाव पूर्वक विरक्त होने को व्रत कहते हैं व्रत सम्यदर्शन होने के पश्चात् होते हैं और आंशिक वीतरागता रूप निश्चय व्रत सहित व्यवहार व्रत होते है।
विग्रह	देह, बिम्ब, मूर्ति, एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीर को प्राप्त करने के लिए जीव का गमन।
विधान	अनुष्ठान, पूजा-विधि, नियम।
विनती	विनय, प्रार्थना, गुणानुवाद।
विनयकर्म	कृतिकर्म, उत्कृष्ट विनय प्रकट करने के कारण ही कृतिकर्म को विनय कर्म भी कहा गया है; दे. कृतिकर्म।
विसर्जन	पूजा का उपसंहार, आहूत इष्ट देव, या देवों की भक्ति पूर्वक विदाई, जिनबिम्ब की मूलपीठ पर स्थापना।
वीतराग	संक्लेश परिणामों का नष्ट हो जाना ही वीतराग कहलाता है, मोह के नष्ट हो जाने पर उत्कृष्ट

	भावना से निर्विकार आत्म-स्वरूप का प्रकट होना ही वीतराग है।
वेदनीयकर्म	जिनके कारण प्राणी को सुख या दुःख का वोध होता है वेदनीय कर्म कहलाते हैं।
वैयावृत्य	मुनियों, साधुओं की सेवा करना ही वैयावृत्य है।
शान्तिपाठ	सर्वभूत-हित·कामना, इसमें शान्तिनाथ भगवान का गुणानुवाद होता है और विश्व में सर्वत्र शान्ति हो यह कामना रहती है, इसे पूजा के उपान्त-रूप वोलते हैं।
शौचधर्म	शुचिता आत्मा का स्वभाव है, यह स्वभाव ही शौच-धर्म कहलाता है।
संनिधान	यह वही जिनेन्द्र हैं, यह वही सुमेरु है, यह वही सिंहासन है, यह वही क्षरोदधि-जल है, 'मैं साक्षात इन्द्र हूँ"—इस कल्पना के साथ जिन·प्रतिमा के सम्मुख/निकट होने को सनिधान कहते हैं।
संनिधिकरण	दे. संनिधापन।
संयम	सम्यक् प्रकार से नियन्त्रण करना ही संयम है।
संवर	जीव के रागादिक अशुभ परिणामों के अभाव से कर्म वर्गणाओं के आस्रव का रुकना संवर कहलाता है।
संवौषट्	वश्यम्, जीतने का उपादान, जय-उपकरण।
सच्चतुर्मुख पूजा	इसे सर्वतोभद्र पूजा भी कहते है जिसे महामुकुटबद्ध राजाओं द्वारा सम्पन्न किया जाता है।
सप्तभंग	अनेकांतमयी वस्तु का कथन करने की पद्धति स्याद्वाद है, स्याद्वाद (सापेक्षवाद) में कथन के तरीके, ढंग, या भंग जो सात-स्याद् अस्ति, स्याद्नास्ति, स्याद-अस्ति-नास्ति, स्याद् अवक्तव्य, स्याद् अस्ति अवक्तव्य, स्याद्नास्ति अव्यक्तव्य, स्याद् अस्ति-नास्ति अव्यक्तव्य होते हैं, सप्तभंग कहते हैं।
समय	अपने स्वभाव व गुणपर्यायों में स्थिर रहने को समय कहते है।

समिति	यत्नाचार पूर्वक प्रवृत्ति को समिति कहते हैं, ईर्या, भाषा, एषणा, आदान निक्षेपण, उत्सर्ग ये पाँच भेद समिति के हैं।
समवशरण	केवलज्ञान प्राप्त होने पर उपदेश देने की सभा जो देवों द्वारा रचित होती है जिसमें सभी श्रेणियों के प्राणी एकत्र होते हैं।
सत्य	अध्यात्म मार्ग में स्व व पर अहिंसा की प्रधानता होने से आत्म हित-मित वचन को सत्य कहा जाता है।
सर्वतोभद्र	दे. चतुर्मुख, सच्चतुर्मुख।
स्तुति	शब्दों द्वारा गुणों का संकीर्तन।
स्तोत्र	स्तुतियों का समूह, पूज्य पुरुषों का गुणानुवाद।
स्थापना	वस्तु का ज्ञानकर उसी रूप में स्थापित करना स्थापना है; जल-कलशों के मध्यवर्ती स्थान में रखे सिंहासन पर जिनबिम्ब स्थापित करने की क्रिया, अभिषेक के निमित्त जिन-बिम्ब को विराजमान करना।
स्थावर	पृथ्वी अप आदि काय के एकेन्द्रिय जीव अपने स्थान पर स्थिर रहने के कारण अथवा स्थावर नामकर्म के उदय से स्थावर कहलाते हैं, ये जीव सूक्ष्म व बादर दोनों प्रकार के होते हुए सर्वलोक में पाये जाते हैं।
स्याद्वाद	अनेकांतमयी वस्तु का कथन करने की पद्धति का नाम स्याद्वाद है।
स्वस्ति	आत्म और लोक-कल्याण के लिए चतुर्विंशति तीर्थंकरों का मंगल स्मरण; क्षेम/कल्याण/आशीर्वाद/पुण्य आदि का सूचक अव्यय।
स्वस्तिक	साँथिया।
स्वस्तिपाठ	पुष्पांजलि चढ़ाते समय स्वस्ति मंगल पढना, यथा— 'श्री वृषभो : स्वस्ति स्वस्ति श्री अजितः' आदि।
स्वाध्याय	स्वयं आत्मा के लिए अध्ययन करना स्वाध्याय है, सत् वचनों का अध्ययन इसका लक्ष्य है।

स्वाहा	शान्ति वीज, सर्वदर्शी, अग्नि-पत्नी, नाद शब्द में अग्नि सम्मिलित है—(न=प्राण, द=अग्नि), परम्परा से मन्त्र स्वाहाकार से रहित होता है जिसके अन्त में स्वाहाकार होता है वह विद्या है, देवोद्देश से हवि (द्रव्य) चढ़ाना।
साधु	जो सम्यक् दर्शन, ज्ञान से परिपूर्ण शुद्ध चारित्र्य को साधते हैं, सर्वजीवों में समभाव को प्राप्त हो वे साधु कहलाते हैं।
सिद्ध	जिन्होंने चार अघातिया कर्मों का नष्ट कर मोक्ष पा लिया है, सिद्ध कहते हैं।
सिद्धपूजा	सिद्ध परमेष्ठी की पूजा, सिद्धचक्र पूजा।
सिद्धक्षेत्र	पाँच कल्याणकों में से मोक्ष कल्याणक जिस स्थल, क्षेत्र में सम्पन्न होता है उस क्षेत्र को सिद्धक्षेत्र कहते हैं।
सिंहासन	मूलपीठ से लाकर जिस आसन पर जिनबिम्ब को स्थापित विराजमान किया जाता है।
सोलहकारण	भावना पुण्य-पाप, राग-विराग संसार व मोक्ष का कारण है, जीव को कुत्सित भावनाओं का त्याग कर उत्तम भावनाओं का चिंतन करना चाहिए, जिनवाणी में सोलह भावनाओं का उल्लेख है, इन भावनाओं का चिंतन सिद्ध फल का कारण है, अतः इन भावनाओं को सोलह कारण कहा गया है।
सोलहस्वप्न	सोलह स्वप्न जैनधर्म में प्रतीकात्मक शब्द है। यहाँ तीर्थंकर जीव के गर्भ में आने पर तीर्थंकर की माँ सोलह प्रकार के स्वप्न देखती हैं, ये स्वप्न इस प्रकार हैं—हाथी, वैल, सिंह, पुष्पमाला, लक्ष्मी, पूर्णचन्द्र, सूर्य, युगल कलश, युगल मछली, सरोवर, समुद्र, सिंहासन, देवविमान, नागेन्द्र भवन, रत्नराशि, अग्नि; यह स्वप्न महत्त्वपूर्ण है तथा जीव के तीर्थंकर होने की भविष्य वाणी करते हैं।

श्रावक	अणुव्रती सम्यक् दृष्टि गृहस्थ को श्रावक कहते हैं।
श्रीं	लक्ष्मीबीज।
ज्ञानावरणी कर्म	वे कर्म परमाणु जिनसे आत्मा के ज्ञानस्वरूप पर आवरण हो जाता है अर्थात् आत्मा अज्ञानी दिखलाई देता है उसे ज्ञानावरणी कर्म कहते हैं।
हंस	प्राण, अजपा, हं—श्वास लेने के समय की ध्वनि, सः-श्वास छोड़ने के समय की ध्वनि, इन दोनों का अर्थ 'सो अहम्' या अहम् सः हुआ, प्रत्येक व्यक्ति दिन-रात में २१६०० श्वास लेता है, यानी अजपा जाप करता है।
ह्रीं	माया बीज, मन्त्रराज, ह्रींकार को २४ तीर्थंकरों की शक्ति से समन्वित माना गया है, समस्ता, शिवा, सर्वतोर्थमय, सर्वमन्त्रमय, सिद्धचक्ररूप, इसीलिए "ओं ह्री नमः" को मन्त्राभिराज कहा गया है, इसे 'आत्मबीज' भी कहा गया है, अतः इसका उपांशु जाप करना चाहिए।

जैन हिन्दी पूजा काव्य : परम्परा और आलोचना नामक शोध प्रबन्ध, जैन पूजा-उपासना विषयक, तथ्य तथा सत्य प्रामाणिक रूप से उद्घाटित करता है। सुधी गवेषक डा. आदित्य प्रचण्डिया 'दीति' का गम्भीर अध्ययन, विषय उपस्थापन शैली इसमें मुखर हो उठी है। इस दिशा में वे निरन्तर अग्रसर होते रहें, मेरी मंगल कामना है।

—बाल ब्रह्मचारिणी कु० कौशल जी

जैन हिन्दी पूजा काव्य : परम्परा और आलोचना—ग्रन्थ का परिशीलन करने पर पूजा-पुष्पवाटिका के रंग-विरंगे सुरभित सुमनों की बहुविध सुवास भरी आन्तरिक अनुभूति से मनः प्राण-प्रीणित हो गये।

सामान्य पाठक पूजा काव्य के माध्यम से पूजा-भक्ति-उपासना का ही आनन्द ले पाता है, किन्तु सुधी लेखक बंधुवर आदित्य प्रचण्डिया ने पूजा काव्य में छिपे बहुविध कला पक्षों को उद्घाटित कर उसके समग्र सुदर्शन स्वरूप का दर्शन करा दिया है। पाठ्य सामग्री में रुचिरता और ज्ञानवर्धकता का मधुर संगम हर पाठक मन को भायेगा, लुभायेगा ......

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'

मैंने यह शोध प्रबन्ध ध्यानपूर्वक आदि से अन्त तक पढ़ा हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि गम्भीर और विशद अध्ययन की साक्षी इस शोध-प्रबन्ध में मिलती है। इसमें पूजाकाव्य के उद्भव और विकास पूजाकाव्य का ज्ञान-पक्ष, पूजाकाव्य का भावपक्ष, भक्तिभावना के विकास के साथ, पूजा की पद्धतियाँ और तन्त्र, पूजा की साहित्यिक समीक्षा, वर्णनवैविध्य, मनोवैज्ञानिक अध्ययन आदि विषयों पर अनुसन्धानात्मक रूप में सप्रमाण निरूपण किया गया है। इस प्रकार पूजाकाव्यों के सभी पक्षों पर भली प्रकार से गहरी पैठ के साथ अध्ययन इसमें है। इससे मेरी सम्मति में पहली बार न केवल जैन काव्यों में प्रतिपादित पूजा, उसका स्वरूप और महत्व का ज्ञान प्राप्त होता है वरन जैनधर्म के विविध तत्वों पर और पूजा के तन्त्र पर भी प्रकाश पड़ता है। ऐसा यह पहला ही प्रयत्न है और इस दृष्टि से यह शोध-प्रबन्ध एक ठोस देन है हिन्दी साहित्य के लिए। लेखक की आलोचनात्मक प्रतिभा और गहन पैठ इससे सिद्ध होती है। अतः पूजा-काव्य के एक विधा के रूप में भी प्रतिष्ठा इस शोध-प्रबन्ध से हुई है।

इन बातों से मुझे जो आल्हाद मिला है, उससे प्रेरित होकर मैं आशीर्वाद देता हूं कि इस कृति में इन्हें पूर्ण सफलता मिले और ये इसके द्वारा यश और प्रतिष्ठा पा सकें तथा ज्ञान के क्षेत्र को ठोस योगदान कर सकें।

डा० सत्येन्द्र
(पूर्व आचार्य तथा अध्यक्ष : हिन्दी विभाग)
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)

आवरण पृष्ठ के मुद्रक: 'कुलदीप प्रेस' आगरा